मध्यएसिया का इतिहास

खण्ड १

राहुल सांकृत्यायन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

समर्पण

परंगत डा० काशीप्रसाद जायसवालको
जिनकी स्मृति अठारह वर्षोंके अनन्त वियोगके बाद भी
मेरे जीवनकी प्रिय निधि है

अस्तु। भारत का इतिहास पढ़ने पर प्रायः ऐसा अनुभव होता है कि मध्य एसिया के इतिहास से भारत के इतिहास की कितनी ही घटनाएँ सम्बद्ध हैं। परन्तु हिन्दी में मध्य एसिया के कुछ देशों के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक विवरण तो मिलते हैं, सम्पूर्ण मध्य एसिया का क्रम-बद्ध इतिहास नहीं मिलता। इसलिए अनेक ऐतिहासिक जिज्ञासाओं का समाधान नहीं हो पाता था। आशा है कि अब यह पुस्तक भारत और उसके पड़ोसी देशों के इतिहास की शृंखला को अटूट सिद्ध करके पाठकों को सन्तुष्ट करेगी।

इस पुस्तक के समर्थ लेखक महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायनजी अन्तरराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् हैं। इस युग के आप एक धुरन्धर साहित्यकार हैं। साहित्यिक शोध का क्षेत्र आपके अनवरत अनुसन्धानात्मक परिश्रम एवं लेखनी-संचालन से बहुत उर्वर हुआ है। आपकी अथक लेखनी ने कितने ही ऐसे विषयों को सनाथ किया है, जिनकी ओर हिन्दी-संसार के विद्वज्जनों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था। अतः हिन्दी-साहित्य आपकी खोज की लगन और देन से बहुत लाभान्वित हो रहा है। विश्वास है कि यह पुस्तक भी हिन्दी-साहित्य के एक चिर-अनुभूत अभाव की पूर्त्ति करेगी तथा ऐतिहासिक शोध के कामों में भी सहायक होगी।

शिवपूजन सहाय
(संचालक)

दीपावली, संवत् २०१३ वि०

क्षमताके लिये प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इसको जिस तत्परतासे छापा, उसके लिये मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूं। पहले नेशनल हेरल्डने फुर्तीसे छापना शुरू किया था, फिर उसने वर्षों तक चुप्पी साध ली। हर्ष है, नये प्रबन्धकने अब तत्परता दिखलाई है। आशा है, दूसरा खंड भी जल्दी निकल जायगा।

लिखावट खराब होने और अभ्यास छूट जानेके कारण, मैं पुस्तक को टाइपराइटर-पर बोल कर लिखाता हूं। मुझे परिश्रमका अभ्यास है, और बाहरी बाधा उपस्थित न हो, तो सारा समय लिखने-पढ़नेमें बिता सकता हूं। मेरे साथ चलनेवाले सहायक बहुत कम मिल सकते हैं। श्री मंगलदेव परियार इस विषयमें मेरी ही तरह निरलस हैं। उनकी सहायता और द्रुतगतिने इस पुस्तकमें बड़ी सहायता की है।

त्रुटियोंके बारेमें विषय-सूचीके हेडिंगों और उच्चारणोंको अन्तिम मानना चाहिये।

मसूरी,
४-६-५६

राहुल सांकृत्यायन

मध्य-एसियाका इतिहास (१)

विषय-सूची

मध्यएसिया का इतिहास

खण्ड १

भाग १

प्रागैतिहासिक मानव (१ लाख वर्ष—३००० ई० पू०)

के विभाजन को स्वीकार करें, तो पुराजीवक आदि युग हुआ, मध्य-जीवक द्वितीयक युग, नवजीवक तृतीयक और चतुर्थक दो युगों में विभक्त हुआ। नवजीवक के तृतीयक और चतुर्थक युग भी अनेक भागों में विभक्त हैं। इसी युग में प्रायः ५ करोड़ वर्ष पूर्व प्रथम स्तनधारी प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पहले के प्राणी (शुद्ध पक्षी, दन्तधारी पक्षी) अण्डज थे। अण्डज प्राणी का उत्पादन उतना सुरक्षित नहीं होता, क्योंकि माता को अण्डे बाहर कहीं रख देने होते हैं, जहाँ पर उनके खानेवालों की संख्या कम नहीं होती। उनकी रक्षा में मीन और शरट जैसे जल-थल उभयजीवी प्राणियों को, विशेषकर अंडे से बाहर निकलने के बाद पानी और भोज्य पत्तियों के लिए वृक्ष सहायक होता है। स्तनधारी प्राणियों को सबसे बड़ी सुविधा यह है, कि उनका अंडा बाहर नहीं, बल्कि माँ के पेट के भीतर परिपुष्ट होता है और काफी शक्ति-संचय के बाद बाहर आता है। उस वक्त भी तुरन्त वह अपने पैर पर खड़ा होकर स्वावलम्बी नहीं हो जाता, किन्तु, उसकी रक्षा के लिये जहाँ माँ की बच्चे के प्रति ममता सहायक होती है, वहाँ माता के स्तन से दूध निकलकर भोजन से उसे निश्चिन्त कर देता है। नवजीवक कल्प एक तरह स्तनधारियों का कल्प था।

जैसा कि अभी कहा, नवजीवक कल्प तृतीयक और चतुर्थक दो युगों में विभक्त हैं। इस सारे नवजीवक को जीवन की उषा मान कर पाँच भागों में विभक्त किया गया है, जिनमें उषा (एओसेन), लघुउषा (ओलिगोसेन), मध्यउषा (मिओसेन) और अतिउषा (प्लिओसेन) के चार युगों को तृतीय युग कहा जाता है। मध्यउषा-युग आज से साढ़े तीन करोड़ वर्ष पहले था और अतिउषा पन्द्रह लाख वर्ष पहले। मियोसेन (मध्यउषा) युगके अन्त के करीब प्राग्मानव का आरम्भ माना जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है, कि उषायुग में ही लेमूर और नर-वानर वंश का अलग विभाजन हुआ था। लघुउषा-युग में अभी नर-वानर वंश अलग नहीं हुआ था। यह मध्य उषा युग ही था, जिसमें नर और वानर दोनों वंश अलग होने लगे। अतिउषा युग के सारे समय तक हम कल्पना ही से कह सकते हैं, कि मानव का पूर्वज किसी रूप में अवस्थित था। हमारे यहाँ सिवालिक में इस जन्तु की फोसील हड्डियाँ मिली है। तो भी इसमें भारी सन्देह है, कि मनुष्य बनने की ओर बढ़ने में यह सफल हुआ था; उधर बढ़ रहा था, इसमें तो सन्देह नहीं, क्योंकि वनमानुषों की अपेक्षा उसके शरीर और कपाल का विकास अधिक मानवोचित था।

तृतीय कल्प के अन्त में चाहे मानव का प्रथम पूर्वज किसी रूप में अस्तित्व में आया हो, किन्तु उसका स्पष्ट पता हमें चतुर्थयुग या अतिउषा युग में ही मिलता है, जब कि उसे हम जावा-मानव, पेकिंग-मानव, हैडलवर्ग-मानव, नियंडर्थल (मुस्तेर)-मानव आदि के रूप में पाते हैं। तो भी हमारे नृवंश (सपियन-मानव) का पता बहुत पीछे लगता है।

मानव और उससे सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों के विकास का परिचय यहाँ दिये फलकों से अच्छी तरह हो जायगा। लेकिन, मध्य-एसिया में मानव-विकास को वहाँ प्राप्त सामग्री के आधार पर बतलाने के लिए यह जरूरी होगा, कि वहाँ के प्राकृतिक भूगोल और जलवायु के इतिहास पर भी कुछ कहा जाय, क्योंकि मानव-विकास में इनका भारी हाथ रहा है।

फलक १—भूतत्त्वीय कल्प[१]

कल्प	महायुग	युग	स्तर की मुटाई (फुट)	काल (वर्ष)	शरीर विशेष
जीवकल्प	नवजीविक	अधिउषा	४०००	१० लाख	मानव
		अतिउषा	१३०००	१५ "	मानव
		मध्यउषा	२१०००	३·५ करोड़	
		लघुउषा	१२०००		स्तनधारी
		उषा	२३०००	६ करोड़	
	मध्यजीविक	क्रैतासस्	४६०००		शुद्ध पक्षी
		जुरासिक	२००००		दन्तधारी पक्षी
		त्रियासिक	२२०००		शरट
	पुराजीविक	पैमीर्यन	१३०००		
		कर्वनभक्षीय	४००००	३० करोड़	
		प्राचीन रक्त	३७०००		प्रथम मीन
		सिलूरियन	१५०००		
		औदीविचियन्	४००००		
		केम्ब्रियन्	४००००	५७·५ करोड़	प्रथम फोसील
अजीव कल्प		प्राक्-केम्ब्रियन	१८०००		
			२५०००	२ या ४ अरब	

§२. प्राकृतिक भूगोल

तृतीय कल्प ऐसा समय था, जबकि पृथिवी लगातार कँप रही थी, भूकंपों का ताँता लगा हुआ था। पृथिवी की ऊपरी पपड़ी सिकुड़ रही थी, जिसके कारण एक विशाल पर्वत-श्रेणी पृथिवी के भीतर से ऊपर की ओर उठने लगी। यह उठी पर्वत-श्रेणी युरोप और एसिया (युरेसिया महाद्वीप) को दो भागों में विभक्त करती आज भी मौजूद है। इसी सुदीर्घ पर्वत-श्रेणी के अलग-अलग भाग हैं: पेरिनेस, काकेसस, हिमालय और उसके आगे मध्य-चीन के पर्वत। युरेसिया द्वीप का रूप आज की तरह पहिले नहीं था। इसके भीतर एक बड़ा समुद्र लहरें मार रहा था, जो कि अतलान्तिक को भूमध्य सागर और काला सागर से मिलाते कास्पियन, अराल समुद्र तथा बलकाश को लेते तियेनशान पर्वतमाला तक फैला हुआ था। उत्तर से दक्षिण की ओर फैली अल्ताई और तियेनशान पर्वतमाला इस महासमुद्र को और पूर्व बढ़ने में बाधक थी। इससे यह भी मालूम होगा, कि मध्य-एसिया का पूर्वी और पश्चिमी भागों में विभाजन कृत्रिम और राजनीतिक नहीं, बल्कि प्राकृतिक है। तियेनशान और पामीर की पर्वतमालाएँ दक्षिण में
मध्य-एसिया को पूर्वी मध्य-एसिया से अलग करती हैं।

---

[१] Geology in the Life of Man (Duncan Leith 1945) p. 39

के विभाजन को स्वीकार करें, तो पुराजीवक आदि युग हुआ, मध्य-जीवक द्वितीयक युग, नवजीवक तृतीयक और चतुर्थक दो युगों में विभक्त हुआ। नवजीवक के तृतीयक और चतुर्थक युग भी अनेक भागों में विभक्त हैं। इसी युग में प्रायः ५ करोड़ वर्ष पूर्व प्रथम स्तनधारी प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पहले के प्राणी (शुद्ध पक्षी, दन्तधारी पक्षी) अण्डज थे। अण्डज प्राणी का उत्पादन उतना सुरक्षित नहीं होता, क्योंकि माता को अण्डे बाहर कहीं रख देने होते हैं, जहाँ पर उनके खानेवालों की संख्या कम नहीं होती। उनकी रक्षा में मीन और शरट जैसे जल-थल उभयजीवी प्राणियों को, विशेषकर अंडे से बाहर निकलने के बाद पानी और भोज्य पत्तियों के लिए वृक्ष सहायक होता है। स्तनधारी प्राणियों को सबसे बड़ी सुविधा यह है, कि उनका अंडा बाहर नहीं, बल्कि माँ के पेट के भीतर परिपुष्ट होता है और काफी शक्ति-संचय के बाद बाहर आता है। उस वक्त भी तुरन्त वह अपने पैर पर खड़ा होकर स्वावलम्बी नहीं हो जाता, किन्तु, उसकी रक्षा के लिये जहाँ माँ की बच्चे के प्रति ममता सहायक होती है, वहाँ माता के स्तन से दूध निकलकर भोजन से उसे निश्चिन्त कर देता है। नवजीवक कल्प एक तरह स्तनधारियों का कल्प था।

जैसा कि अभी कहा, नवजीवक कल्प तृतीयक और चतुर्थक दो युगों में विभक्त है। इस सारे नवजीवक को जीवन की उषा मान कर पाँच भागों में विभक्त किया गया है, जिनमें उषा (एओसेन), लघुउषा (ओलिगोसेन), मध्यउषा (मिओसेन) और अतिउषा (प्लिओसेन) के चार युगों को तृतीय युग कहा जाता है। मध्यउषा-युग आज से साढ़े तीन करोड़ वर्ष पहले था और अतिउषा पन्द्रह लाख वर्ष पहले। मियोसेन (मध्यउषा) युगके अन्त के करीब प्राग्मानव का आरम्भ माना जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए यह समझ लेना आवश्यक है, कि उषायुग में ही लेमूर और नर-वानर वंश का अलग विभाजन हुआ था। लघुउषा-युग में अभी नर-वानर वंश अलग नहीं हुआ था। यह मध्य उषा युग ही था, जिसमें नर और वानर दोनों वंश अलग होने लगे। अतिउषा युग के सारे समय तक हम कल्पना ही से कह सकते हैं, कि मानव का पूर्वज किसी रूप में अवस्थित था। हमारे यहाँ सिवालिक में इस जन्तु की फोसील हड्डियाँ मिली हैं। तो भी इसमें भारी सन्देह है, कि मनुष्य बनने की ओर बढ़ने में यह सफल हुआ था; उधर बढ़ रहा था, इसमें तो सन्देह नहीं, क्योंकि वनमानुषों की अपेक्षा उसके शरीर और कपाल का विकास अधिक मानवोचित था।

तृतीय कल्प के अन्त में चाहे मानव का प्रथम पूर्वज किसी रूप में अस्तित्व में आया हो, किन्तु उसका स्पष्ट पता हमें चतुर्थयुग या अतिउषा युग में ही मिलता है, जब कि उसे हम जावा-मानव, पेकिंग-मानव, हैडलवर्ग-मानव, नियंडर्थल (मुस्तेर)-मानव आदि के रूप में पाते हैं। तो भी हमारे नृवंश (सपियन-मानव) का पता बहुत पीछे लगता है।

मानव और उससे सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों के विकास का परिचय यहाँ दिये फलकों से अच्छी तरह हो जायगा। लेकिन, मध्य-एसिया में मानव-विकास को वहाँ प्राप्त सामग्री के आधार पर बतलाने के लिए यह जरूरी होगा, कि वहाँ के प्राकृतिक भूगोल और जलवायु के इतिहास पर भी कुछ कहा जाय, क्योंकि मानव-विकास में इनका भारी हाथ रहा है।

फलक १—भूतत्त्वीय कल्प[१]

कल्प		युग	स्तर की मुटाई (फुट)	काल (वर्ष)	शरीर विशेष
जीवकल्प	नवजीविक	अधिउषा	४०००	१० लाख	मानव
		अतिउषा	१३०००	१५ "	मानव
		मध्यउषा	२१०००	३·५ करोड़	
		लघुउषा	१२०००		स्तनधारी
		उषा	२३०००	६ करोड़	
	मध्यजीविक	क्रैतासस्	४६०००		शुद्ध पक्षी
		जुरासिक	२००००		दन्तधारी पक्षी
		त्रियासिक	२२०००		शरट
	पुराजीविक	पैमीर्यन	१३०००		
		कर्वनभक्षीय	४००००	३० करोड़	
		प्राचीन रक्त	३७०००		प्रथम मीन
		सिलूरियन	१५०००		
		औदविचियन्	४००००		
		केम्ब्रियन्	४००००	५७·५ करोड़	प्रथम फोसील
अजीव कल्प		प्राक्-केम्ब्रियन	१८०००		
			२५०००	२ या ४ अरब	

§२. प्राकृतिक भूगोल

तृतीय कल्प ऐसा समय था, जबकि पृथिवी लगातार कँप रही थी, भूकंपों का ताँता लगा हुआ था। पृथिवी की ऊपरी पपड़ी सिकुड़ रही थी, जिसके कारण एक विशाल पर्वत-श्रेणी पृथिवी के भीतर से ऊपर की ओर उठने लगी। यह उठी पर्वत-श्रेणी युरोप और एसिया (युरेसिया महाद्वीप) को दो भागों में विभक्त करती आज भी मौजूद है। इसी सुदीर्घ पर्वत-श्रेणी के अलग-अलग भाग हैं: पेरिनेस, काकेसस, हिमालय और उसके आगे मध्य-चीन के पर्वत। युरेसिया द्वीप का रूप [illegible] था। इसके भीतर एक बड़ा समुद्र लहरें मार रहा था, जो कि अतलान्तिक को भूमध्य सागर और काला सागर से मिलाते कास्पियन, अराल समुद्र तथा बलकाश को लेते तियेनशान पर्वतमाला तक फैला हुआ था। उत्तर से दक्षिण की ओर फैली अल्ताई और तियेनशान पर्वतमाला इस महासमुद्र को और पूर्व बढ़ने में बाधक थी। इससे यह भी मालूम होगा, कि मध्य-एसिया का पूर्वी और पश्चिमी भागों में विभाजन कृत्रिम और राजनीतिक नहीं, बल्कि प्राकृतिक है। तियेनशान और पामीर की पर्वतमालाएँ [illegible] से मिलकर पश्चिमी मध्य-एसिया को पूर्वी मध्य-एसिया से अलग करती हैं।

---

[१] Geology in the Life of Man (Duncan Leith 1945) p. 39

यह अवस्था तृतीय कल्प के आरम्भ में थी। तृतीय कल्प के मध्य में पहुँचने तक युरेसियन महासागर कई स्थानों में छिन्न-भिन्न हो गया और उसके स्थान पर आस्ट्रिया से बलकाश सागर तक एक महासागर दिखाई पड़ने लगा। बल्कान से काला सागर, कास्पियन सागर, अराल और बलकाश तक को अपने पेट में रखनेवाले इस जलनिधि को भूतत्व-विशारद् सरमातिक सागर कहते हैं। लेकिन, भूपरिवर्त्तन का काम अभी समाप्त नहीं हुआ था, तृतीय कल्प के अन्त में सरमातिक सागर भी कई स्थानों से विलुप्त हो गया और उसके स्थान पर काला सागर, कस्पियन सागर तथा अराल और बलकाश के महासरोवर बच रहे।

तृतीय कल्प का अन्त हो रहा था और चतुर्थ का आरम्भ, जबकि एक और प्राकृतिक परिस्थिति उपस्थित हुई। तियेनशान् के पश्चिमवाले मध्य-एसिया में महासमुद्र के बहुत सूख जाने के कारण जलवायु में सूखापन होना जरूरी था, उधर भूमध्य-रेखाके ऊपर जमी महाजलराशि से आशा हो सकती थी, कि वह इस सूखी [illegible], [illegible] सहायता करेगी। लेकिन, बादलों के रास्तेमें हिमालयसे काकेसस तक फैली अति उच्च पर्वतमाला वैसा करने नहीं देती थी। वह बल्कि, समय-समय पर उचककर अभी और भी ऊपर उठती जा रही थी। आकाशमें सिर उठाकर बादलोंका [illegible], तैयार इस महापर्वत-श्रेणीने पश्चिमी मध्य-एसियाकी वर्षा को बहुत कम कर दिया। इसका परिणाम मध्य-एसियाकी भूमिपर यही हुआ, कि वहाँके बचे-खुचे समुद्र या महासरोवर और क्षीण होने लगे, नदियोंकी धाराएँ पतली हो चलीं, भूमि और शुष्क होने लगी। पानी और नमीके अभावमें वनस्पतियों और उनपर अवलम्बित प्राणियोंकी स्थितिमें क्रान्ति होना आवश्यक था। कजाकस्तानकी प्यासी भूमि, उज्बेकिस्तान तथा तुर्कमानिस्तानके कराकुम (कालामरु) एवं किजिलकुम (लालमरु) उसीके परिणाम हैं। चतुर्थ कल्पके आरम्भसे आज तक मध्य-एसियाकी यह सूखी प्यासी भूमि इसी अवस्थामें चली आई हैं, बीचमें कभी-कभी सूखा और नमीके कारण जलवायुमें थोड़ा-सा अन्तर देखनेमें आया। आज भी इस भूमिमें जाड़ोंमें थोड़ी-सी हिमवर्षा हो जाती है और वर्षाके नामपर गर्मियोंमें कभी-कभी कुछ छींटे पड़ जाते हैं। अत्यन्त ऊँचे पर्वत-शिखरों या पर्वत-पृष्ठोंको छोड़कर मध्य-एसियाकी सारी भूमि सालभर प्यासी ही रहती है।

पूर्वी और पश्चिमी दोनों मध्य-एसियाको लेकर देखें, तो मालूम होगा, कि मंचूरियाकी पश्चिमी सीमासे लेकर कालासागर या अजोफ सागरके पूर्वी छोर तकके दक्खिन की भूमि ऊँची धरती या पर्वतोंसे घिरी एक विशाल खलार है। यहाँका पानी बासफोरस (तुर्की) के एक सँकरे से मार्गको छोड़कर महासागरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि कालासागर मध्य-एसियासे बाहर होनेके कारण हम कह सकते हैं, कि उसके वर्षा या समुद्रके पानीका पृथिवीके महासागरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। बासफोरसका जलमार्ग भी बहुत समय तक बन्द था और वह अन्तिम हिमयुग (प्राय: १०००००० वर्ष पूर्व) के बलके कम होनेपर पिघली अपार जलराशिके फूट निकलनेके कारण ही खुला। मध्य-एसियाकी यह जलनिर्गमहीन खलार अल्ताई-तियेन्शान्की पर्वत-[illegible], जिसमें (१) पूर्वी मध्य-एसिया गोबीसे लेकर [illegible] तक पश्चिममें तियेनशान् और दक्षिणमें क्वेलुन पर्वतमालासे घिरा है। (२) पश्चिमी मध्य-एसियाके पूर्वमें तियेनशान् और पामीर दक्षिणमें अफगानिस्तान और ईरानकी पर्वतमाला तथा पश्चिममें काकेशस गिरिमेखलासे घिरा है। इसका पश्चिमी भाग अर्थात् [illegible]

यह अवस्था तृतीय कल्प के आरम्भ में थी। तृतीय कल्प के मध्य में पहुँचने तक युरेसियन महासागर कई स्थानों में छिन्न-भिन्न हो गया और उसके स्थान पर आस्ट्रिया से बलकाश सागर तक एक महासागर दिखाई पड़ने लगा। बल्कान से काला सागर, कास्पियन सागर, अराल और बलकाश तक को अपने पेट में रखनेवाले इस जलनिधि को भूतत्व-विशारद् सरमातिक सागर कहते हैं। लेकिन, भूपरिवर्त्तन का काम अभी समाप्त नहीं हुआ था, तृतीय कल्प के अन्त में सरमातिक सागर भी कई स्थानों से विलुप्त हो गया और उसके स्थान पर काला सागर, कस्पियन सागर तथा अराल और बलकाश के महासरोवर बच रहे।

तृतीय कल्प का अन्त हो रहा था और चतुर्थ का आरम्भ, जबकि एक और प्राकृतिक परिस्थिति उपस्थित हुई। तियेनशान् के पश्चिमवाले मध्य-एसिया में महासमुद्र के बहुत सूख जाने के कारण जलवायु में सूखापन होना जरूरी था, उधर भूम[illegible]रेखाके ऊपर जमी महाजलराशि से आशा हो सकती थी, कि वह इस सूखी प्यासी भूमि के लिए बादल भेजकर सहायता करेगी। लेकिन, बादलों के रास्तेमें हिमालयसे काकेसस तक फैली अति उच्च पर्वतमाला वैसा करने नहीं देती थी। वह बल्कि, समय-समय पर उचककर अभी और भी ऊपर उठती जा रही थी। आकाशमें सिर उठाकर बादलोंका रास्ता रोकनेके लिए तैयार इस महापर्वत-श्रेणीने पश्चिमी मध्य-एसियाकी वर्षा को बहुत कम कर दिया। इसका परिणाम मध्य-एसियाकी भूमिपर यही हुआ, कि वहाँके बचे-खुचे समुद्र या महासरोवर और क्षीण होने लगे, नदियोंकी धाराएँ पतली हो चलीं, भूमि और शुष्क होने लगी। पानी और नमीके अभावमें वनस्पतियों और उनपर अवलम्बित प्राणियोंकी स्थितिमें क्रान्ति होना आवश्यक था। कजाकस्तानकी प्यासी भूमि, उज्बेकिस्तान तथा तुर्कमानिस्तानके कराकुम (कालामरु) एवं किजिलकुम (लालमरु) उसीके परिणाम हैं। चतुर्थ कल्पके आरम्भसे आज तक मध्य-एसियाकी यह सूखी प्यासी भूमि इसी अवस्थामें चली आई है, बीचमें कभी-कभी सूखा और नमीके कारण जलवायुमें थोड़ा-सा अन्तर देखनेमें आया। आज भी इस भूमिमें जाड़ोंमें थोड़ी-सी हिमवर्षा हो जाती है और वर्षाके नामपर गर्मियोंमें कभी-कभी कुछ छींटे पड़ जाते हैं। अत्यन्त ऊँचे पर्वत-शिखरों या पर्वत-पृष्ठोंको छोड़कर मध्य-एसियाकी सारी भूमि सालभर प्यासी ही रहती है।

पूर्वी और पश्चिमी दोनों मध्य-एसियाको लेकर देखें, तो मालूम होगा, कि मंचूरियाकी पश्चिमी सीमासे लेकर कालासागर या अजोफ सागरके पूर्वी छोर तकके दक्खिन की भूमि ऊँची धरती या पर्वतोंसे घिरी एक विशाल खलार है। यहाँका पानी बासफोरस (तुर्की) के एक सँकरे से मार्गको छोड़कर महासागरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। बल्कि कालासागर मध्य-एसियासे बाहर होनेके कारण हम कह सकते हैं, कि उसके वर्षा या समुद्रके पानीका पृथिवीके महासागरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। [illegible] समय तक बन्द था और वह अन्तिम हिमयुग (प्राय: १००००० वर्ष पूर्व) के बलके कम होनेपर पिघली अपार जलराशिके फूट निकलनेके कारण ही खुला। मध्य-एसियाकी यह जलनिर्गमहीन खलार अल्ताई-तियेन्शान्की पर्वत-श्रेणियों द्वारा दो भागोंमें विभक्त है, जिसमें (१) पूर्वी मध्य-एसिया गोबीसे लेकर तरिम-उपत्यका तक पश्चिममें तियेनशान् और दक्षिणमें क्वेलुन पर्वतमालासे घिरा है। (२) पश्चिमी मध्य-एसियाके पूर्वमें तियेनशान् और पामीर दक्षिणमें अफगानिस्तान और ईरानकी पर्वतमाला तथा पश्चिममें काकेशस गिरिमेखलासे घिरा है। इसका पश्चिमी भाग अर्थात् कास्पियन समुद्रके पासकी

भूमि समुद्रतलसे ६०० फुट नीची है। यदि कालासागरसे कास्पियन सागरके बीचकी पार्वत्य भूमिको तोड़कर जलमार्ग बना दिया जाय, तो कालासागरका पानी बड़े वेगसे कास्पियनमें गिरने लगेगा और कास्पियन तथा अराल समुद्र मिलकर एक बहुत बड़े सागरके रूपमें परिणत हो जायेंगे, जिसका प्रभाव मध्य-एसियाके जलवायु पर भी बहुत भारी पड़ेगा। दूसरी ओर यदि तियेनशान्-पामीरके
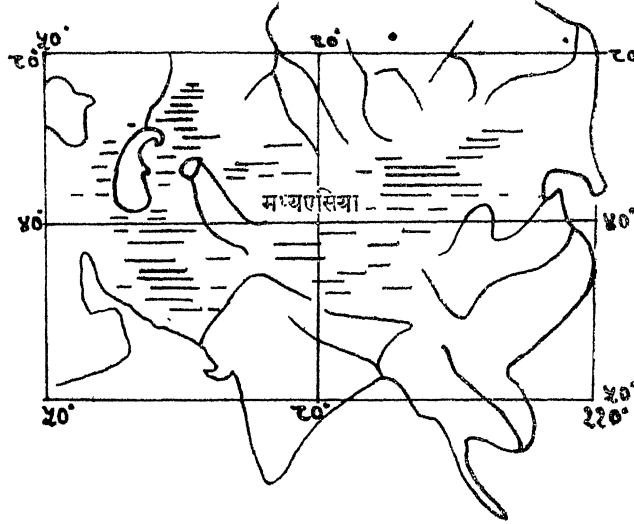
१. जलनिर्गमरहित

हिमाच्छादित पहाड़ोंसे निकलनेवाली इली, चू, सिर, जरफशाँ और वक्षु (आमू) नदियाँ दक्षिणसे मुर्गाब आदि, और पश्चिमी (काकेशस) गिरिमालासे किरा आदि छोटी-बड़ी नदियाँ पानी लाना बन्द कर दें, तो सारा पश्चिमी मध्य-एसिया पूर्णतया रेगिस्तान हो जायगा।[1]

§३. जलवायु-परिवर्त्तन

यद्यपि मध्य-एसियाके तीन तरफ खड़े इन विशाल पर्वतोंने वर्षाको रोक उसका बहुत अहित किया है, किन्तु साथ ही इस भूमिको बिल्कुल प्यासा मरने भी नहीं दिया। इनसे निकलनेवाली नदियाँ कम या अधिक परिमाणमें हिमगलित पानी बराबर लाती रहीं। मानवका प्रादुर्भाव तृतीयकल्पके अन्तमें उषापाषाण-युगमें हुआ। उस समय मध्य-एसियामें मानवके अस्तित्वका कोई पता नहीं लगता और जैसा कि हम आगे बतलायेंगे, जावा नर-वानरकी विचरण-भूमि मध्य-एसियासे तीन डिग्रीसे भी अधिक दक्षिणमें है। मध्य-एसियामें बीस हजार वर्ष पहले चतुर्थ हिमयुगके समय मानव अवश्य मौजूद था। निर्मानव कालसे मानवकाल लेते आज तक मध्य-एसियाकी भूमि प्रकृतिके निष्ठुर हाथोंमें खेल रही थी,[2] जिसके साथ मनुष्य भी अपनी बेबसी दिखलानेके सिवा कोई चारा नहीं रखता था। आज वहाँ मानव अपने भव्य सामाजिक उत्कर्षमें पहुँचकर प्रकृतिके

---

[1] Exploration in Turkistan, (R. Pumpelly, 1903) vol. I. pp. 1-4

[2] वही, I pp. 2,8

बाधाको हटानेके लिए कटिबद्ध हुआ है। कास्पियन सागरका अजोफ-कालासागरसे मिलानेके लिए वोल्गा-दोनकी विशाल नहर तैयार हो गई है, जिसके द्वारा बम्बईसे चला जहाज बाकूके तैलक्षेत्रमें आसानीसे पहुँच सकता है। लेकिन, यह परिवर्तन उससे बहुत कम है, जो कि मध्य-एसियाकी तीन विशाल मरुभूमियों (प्यासी भूमि, कराकुम और किजिलकुम) को सस्यश्यामला भूमिमें परिणत करनेके लिए किया जा रहा है। वक्षु (आमूदरिया) को एक विशाल नहर द्वारा [illegible] भीतर हो कास्पियन समुद्रसे मिलानेका काम बड़े जोर-शोरसे चल रहा है। इससे किजिलकुमकी करोड़ों एकड़ बालुका-भूमि मेवेके बागों और गेहूँ के खेतोंके रूपमें परिणत हो जायगी। इस नहरके कारण बम्बईका [illegible], भूमध्यसागर, कालासागर, अजोफ-सागर, दोन नदी, दोन-वोल्गा नहर, वोल्गा नदी और कास्पियन सागर होते वक्षु नहर और वक्षु नदी द्वारा अफगानिस्तान पहुँच जायेगा। लेकिन, इतनेसे हम पश्चिमी मध्य-एसियाकी जल-समस्याको पूरी हल हुई नहीं देखते। सिर, जरफशाँ और आमू दरियाके पानीसे बनी अनेक महान् जलनिधियों तथा उनसे निकलनेवाली नहरों द्वारा सिंचित करोड़ों एकड़ भूमि रेगिस्तानके पेटसे निकालकर जो हरे-भरे खेतोंके रूपमें परिणत की जायगी, उसके कारण सूर्य-किरणें इस भूमिके जलको मनमानी तौरसे सोखने नहीं पायेंगी और उससे जलवायुमें भी अनुकूल परिवर्त्तन होगा। लेकिन सोवियत विज्ञानवेत्ता इतने ही से संतोष नहीं करना चाहते। वह सोच रहे हैं, कि कैसे जिब्राल्टर और बासफोरसकी जलप्रणालियों द्वारा सम्बन्धित पृथिवीके महासागरोंको अजोफ और कास्पियनके कृत्रिम मार्ग द्वारा मिलाकर मध्य-एसियाकी जलराशिको बढ़ाया जा सकता है। परमाणु-शक्ति और परमाणु-बमका आविष्कार कर मनुष्यका मस्तिष्क बैठ नहीं सकता, वह उस दिनकी आशा रख रहा है, कि मध्य-एसियाके जलाभावको वह दूर करके छोड़ेगा। सोवियत राष्ट्र ओब नद के पानी के बहुत से भाग को मध्य-एसिया के रेगिस्तान की ओर मोड़ कर इसे करना चाहत है। प्रसंगवश यह कह देना आवश्यक है, कि हमारे यहाँ भी, जहाँ कि वर्षा करनेमें प्रकृति बहुत उदार है, अपने प्राकृतिक जलमार्गोंमें अनुकूल परिवर्तन करनेकी बहुत सम्भावना है। कटक या उड़ीसासे हमें समुद्र द्वारा बम्बई या सूरत जानेकी अनिवार्यता नहीं होगी, यदि महानदी और नर्मदाके ऊपरी भागोंको कुछ ही मील लम्बी नहर द्वारा मिला दिया जाय।

§४. वनस्पति-क्षेत्र में परिवर्त्तन

तृतीय कल्पका अति-उषा युग आया, जब कि जावामें प्रथम मनुष्यका दर्शन होने लगा। उस समय पश्चिमी [illegible] पास जहाँ-तहाँ थोड़ा-सा रेगिस्तान था, अर्थात् प्यासी भूमि, कराकुम और [illegible] अभी शिलान्यास ही भर हो पाया था, बाकी भूमि या तो तृण-वनस्पतिसे आच्छादित मैदान अथवा भारी जंगलोंसे ढंके पहाड़ और उसकी तराइयाँ थीं। भूकम्प समय-समयपर आए, जिनसे ये पर्वत उचककर और ऊपर उठ गये, बादलका रास्ता और रुका, वर्षाकी और कमी हुई, जिससे वनस्पति-क्षेत्र समुद्रोंके तटसे पहाड़ोंकी ओर सिकुड़ने लगा।

मध्यउषायुग (साढ़े तीन करोड़ वर्ष पूर्व) के बाद महासागरोंसे सरमातिक सागरका सम्बन्ध टूट गया। उसका जल भाप बनकर उड़ता गया, समुद्र सूखता और उसका जल अधिक

खारा होता गया। इसके अवशेषके रूपमें जिप्सम और लवणकी राशि जमा होती गई, जो आज भी वहाँ मिलती हैं। प्रकृतिने सूर्य-किरणों द्वारा ही जल सुखाकर अपना काम समाप्त नहीं कर दिया, बल्कि यह युग भीषण आँधियोंका भी था। आज वैसी प्रचण्ड आँधियोंके न होनेपर भी वायु देवता अपने पूर्व पौरुषको रेगिस्तानोंमें किसी जगह बालूके पहाड़ोंको बना और किसी जगह बिगाड़कर दिखाते हैं। उस समय जब कि वनस्पति-हीन[१] होते मैदान में अभी बालू नहीं, साधारण मिट्टीकी प्रधानता थी, इन प्रलयंकर झंझावातोंने मिट्टीके अतिसूक्ष्म रेणुओं (त्रसरेणुओं) को आकाशमें बहुत ऊपर उठाकर ले जाके ऊँचे पर्वतोंके मस्तकपर जमा करना शुरू किया। इन त्रसरेणुओंकी भारी मोटी तह वनस्पतियोंके लिए बड़ी ही उर्वर है, जिससे वायुने मैदानोंको वंचित कर पहाड़ोंका घर भरा।

§५. हिमयुग[१]

सूर्य-किरणें और झंझावातोंका प्रभाव मध्य-एसियाकी भूमिमें बहुत पड़ा, किन्तु उससे कम प्रभाव चारों हिमयुगोंका इस भूमिपर नहीं पड़ा। तृतीय कल्पके अति-उषायुगके बाद ये हिमयुग आने शुरू हुए। एक-एक हिमयुग हजारों नहीं लाखों वर्षों तक रहा। इनके समयमें मनुष्य पृथिवीपर आ चुका था, यद्यपि अभी वह उसका एक दुर्लभ प्राणी था और पृथिवीके कुछ ही स्थानोंमें देखा जाता था। यह हिमयुग आजके परमाणु-बमने भी अधिक भयानक साबित हुए थे। मानव प्रकृतिमाता पर बहुत विश्वास करके बहुत-कुछ आलसीकी जिन्दगी बिताने लगा था, न उसे तन ढाँकनेकी फिकर थी, न छत ढूँढ़नेकी। हिमयुग उनसे कहने लगा——या तो हमारे प्रहार-को सहन करने लायक बनो, नहीं तो पृथिवीसे लुप्त होनेके लिए तैयार हो जाओ। आज भी यदि युरोपका वार्षिक माध्यम तापमान पाँच ही डिग्री सेंटीग्रेड नीचे गिर जाये, तो हिमयुगकी अवस्था पैदा हो जायगी। सारे अतिउषाकालमें तापमान गिरता गया, सर्दी बढ़ती गई, जिसके परिणाम-स्वरूप हिमयुगोंका आरम्भ हुआ। चारों हिमयुगोंमें युरोपकी भूमिपर इंगलैण्डसे उराल पर्वत तक हजारों फुट मोटी बर्फ की तह जम गई थी। लेकिन, उरालसे पूर्व अर्थात् मध्य-एसियामें वैसा नहीं हुआ। बर्फकी तह मोटी न होनेपर भी जलवायु अत्यन्त भीषण रूपसे शीतल हो गया था। हिम-युगोंके [illegible] कारण [illegible] क्षेत्र क्षीण होते गये। इन दो हिमयुगके बीचके सन्धिकाल (हिमसन्धि) में जलवायुकी अवस्था कुछ नरम जरूर हो जाती और प्राणी-वनस्पति फिर अपनी खोई हुई भूमिको प्राप्त करनेकी कोशिश करते। यह स्मरण रखना चाहिए, कि यह सन्धिकाल भी हजारों वर्षके थे।

मान लो, हम आजसे लाखों वर्ष पूर्वके प्रथम हिमयुगमे जाकर मध्य-एसियाको देख रहे हैं। उस समय इसके पश्चिमोत्तरमें उरालसे परे हजारों फुट मोटी बर्फसे ढॅकी रूसकी भूमि है। मध्य-एसियाकी भूमिमें एक अति विशाल समुद्र (सरमातिक) लहरें मार रहा है, जिसमें पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके हिम-पर्वतोंकी हिमानियोंसे निकलकर बड़ी-बड़ी नदियाँ गिर रही हैं, जो अपने सागर-संगमोंपर डेल्टा और कछारोंमें मिट्टीके स्तर जमा करती जा रही हैं। हजारों

---

[१] General Anthropology (Franz Boas and others, New York 1938) p. 116; Expl. Turk. pp. 1-4।

वर्ष बाद प्रथम हिमयुग समाप्त हो गया। अब हिमसंधि-काल आ गया। पश्चिमोत्तर-भागमें दुरन्तव्यापी हिममालिका रूससे लुप्त हो गई। पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके हिम-पर्वतोंकी दूर तक विस्तृत हिमानियाँ भी संकुचित होने लगीं, इसके कारण नदियोंकी धाराएँ क्षीण होती गईं। सर-मातिक समुद्रमें जलकी आय कम और व्यय अधिक होने लगा—नदियोंसे जितना जल आता था, उससे कहीं अधिक धूपमें भाप होकर उड़ता जा रहा था। विशाल सरमातिक समुद्र और भी [illegible] नदियोंकी धाराएं और भी कृश हो गई। पानीकी कमी और रेगिस्तानकी वृद्धिके कारण चू, तलस, जरफशाँ और मुर्गाबकी भाँति कितनी ही समुद्रमें पहुँचनसे पूर्व ही अपनेको मरुभूमिमें खोने लगीं। झंझावात नदियोंकी लाई मिट्टीके साथ खेलवाड़ करने लगा। मोटे कण अर्थात् बालू एक जगहसे दूसरी जगह टीलोंके रूपमें बनते-बिगड़ते रहे और सूक्ष्म कण (त्रसरेणु) टिड्डी-दलकी भाँति उड़ते-भुन्नाते, घासके मैदानों, तराई और पहाड़ोंके जंगलोंको पड़ कर ढाँकते जा रहे थे।

इस प्रकार हिमयुगों और [illegible] मध्य-एसियाके भूतलको बड़ी निर्दयतापूर्वक दलित-मर्दित कर दूसरा ही रूप दे दिया। प्रकृतिकी इस निष्ठुर क्रीड़ाने केवल धरातलके ही आकार-प्रकारमें परिवर्त्तन नहीं किये, बल्कि वनस्पतियों और प्राणियोंकी अवस्थामें भीषण उथल-पुथल मचाई।

स्रोत ग्रंथ :

१. पेर्वोविल्नोये ओबश्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको) लेनिनग्राद १९३८
2. Geology in the Life of Man (Duncan Leith, London 1945)
3. Exploration in Turkistan (R. Pumpelly, 1903) vols I, II
4. General Authropology (Fruncz Boas and others, New York 1938)
5. Everyday Life in the Old Stone Age (Marjorie and C. H.B. Quennell, London 1945)

अध्याय २

पुरा-पाषाणयुग[1]

§१. मानव-जातियाँ

चतुर्थयुग अधिउषा (प्लेस्तोसेन) और अतिउषा (होलोसेन) के दो उपयुगोंमें विभक्त है। अधिउषायुग हमारी सपियन-मानव-जातिकी प्रधानताका है, जिसमें नवपाषाण युग प्रथम है, जो आजसे ७००० हजार वर्ष पहले शुरू हुआ था—यद्यपि उसका यह अर्थ नहीं, कि वह पृथिवी पर सभी जगह एक ही समय आरम्भ हुआ। तस्मानियाके मूल निवासी, जो युरोपीय लोभी नर-राक्षसोंके कारण अब संसारसे लुप्त हो चुके है, उन्नीसवीं सदी तक अभी पुरापाषाण-युगमें विचरण कर रहे थे। चतुर्थ युगके आदिम भाग पुरापाषाण-युगके आदिम या निम्न पुरापाषाण-युगमें और भी कितनी ही मानव-जातियाँ अस्तित्वमें आई थीं, जिनमेंसे नियंडर्थल (मुस्तेर) मानवका ही अभी तक मध्य-एसियामें पता लगा हैं। हो सकता है, इससे पहलेकी हैडलवर्ग और पेकिंग मानव जैसी जातियोंके भी अवशेष आगे मिलें। मानव-इतिहासको क्रमबद्ध करनेके लिए यह आवश्यक है, कि उज्बेकिस्तानमें मिले मुस्तर मानवकी कड़ीको पीछेसे मिलानेके लिए दूसरे मानवोंका भी कुछ वर्णन कर दिया जाय।

सभी मानव-जातियाँ उसी समय विद्यमान थीं, जब कि पृथिवीपर चार महान् हिमयुग आये थे। ये हिमयुग निम्न प्रकार थे[2]—

		मानव-जाति
पश्च-हिमयुग	१३००० वर्ष	ओरिन्यक
चतुर्थ हिमयुग (उर्म)	५०००० ,,	मुस्तेर
तृतीय हिमसंधि	१.५० लाख	अश्योल
तृतीय (रिस्)	२ ,,	प्राग्-अश्योल
द्वितीय हिमसंधि	३ ,,	शैल (हैडलूवर्ग)
द्वितीय ० (मिदेल)	४ ,,	पेकिंग
प्रथम हिमसंधि	५ ,,	
प्रथम ० (गुंज)	६ ,,	

ऊपरी-पुरापाषाण-युग चारों हिमयुगोंके समाप्त होनेके साथ आजसे प्राय: १५ हजार वर्ष पूर्व आरम्भ होता है। कुछ विद्वान् पुरापाषाण-युगमें एक मध्य-पुरापाषाण-युग को भी मानते

---

[1] Our Early Ancesters (M. C. Burkitt. 1929) pp. 3-6, Prehistoric India (P. Mitra, Calcutta 1928)

[2] पेर्वोबित्नोये ओबश्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको) पृष्ठ ३०, Everyday Life in the Old Stone Age (Marjorie and C. H. B. Quennell (1945) p. 11; Progress and Archaeology (V. Gordon Childe) p. 9

हैं, जो ३५ से ५० हजार वर्ष पूर्व मौजूद था और इसी समय चतुर्थ हिमयुगके भीतरसे मुस्तेर (नियण्डर्थल) मानव जीवन-संघर्ष कर रहा था। ऊपरी पुर [illegible] ६ हजार वर्षोंमें निम्न प्राचीन जातियोंका पता लगा है—

वर्ष पूर्व	जाति	उपजाति
१५०००	ओरिन्यक	ग्रिमाल्दी, क्रोम्योन्
१४०००	सोलूत्र	
१३०००	मद्लेन	
११०००	अज़िल	

यहाँ जो काल दिया गया है, उसे एकदम निश्चित नहीं समझना चाहिए। उदाहरणार्थ, जहाँ मद्लेन मानवको कोई-कोई विद्वान् १३००० हजार वर्ष पहले मानते हैं, वहाँ दूसरे उसे २५-२६ हजार वर्ष पहिले स्वीकार करते हैं। इनको स्पष्ट करनेके लिए यहाँ दिये हुए दूसरे, तीसरे और चौथे फलकों को देखें। पाँचवें फलकसे ताम्र और लौह-युगकी सभ्यता भारतवर्षमें किस रूपमें रही, इसका पता लगेगा।

फलक २—नवजीवक-कल्पका विवरण

फलक ३—चतुर्थ युग[1]

—प० प० एफिमैन्को ('पेर्वोबित्नोये ओब्श्चेस्त्वो') पृष्ठ ९९

फलक ४—मानव-जातियाँ[2]

	मानव-जातियां	वर्ष	हिमयुग	उद्योग	आविष्कार (मिश्र)
		१५०० ई० पू०			लौह
		२००० ,,			पित्तल
		३००० ई० पू०			इतिहासारम्भ
		४००० ,,			लोह उपयोग
		५५०० ,,			ताम्र
		६५०० ,,			
पुरापाषाण	क्रोमञो	८५०० ,,			
पुरापाषाण	ग्रिमाल्दी	१३५०० ,,			
पुरापाषाण	मुस्तेर	७५०० ,,	रिस उतार	प्राचीन मुस्तेर,	आग, धनुष
पुरापाषाण	हैडलवर्ग		मिन्देल,	अश्येल	
पुरापाषाण	पेकिङ		गुंज संधि,	शेल	
पुरापाषाण	जावा	५०००० ,,			
		१० लाख	अधिउषा		

---

[1] पे० ओब्० पृ० ११२।

[2] वहीं पृ० ९९ General Anthropology (Frunz Boas and others 1938) pp. 174-75

फलक ५--भारत में इद-उषा युग

काल	वर्ष
इस्लाम	१००० ई०
गुप्त	४०० ,,
शक	०
मौर्य	३०० ई० पू०
बुद्ध	५०० ,,
उपनिषद्	७०० ,,
ऋग्वेद	१२०० ,,
सिंधु सभ्यता	३००० ,,

§२. निम्न-पुरापाषाण युग[१]

१. जावा मानव[१]

अभी तक जितने मानव-अवशेषोंका पता लगा है, उनमें जावा-मानव [२]सबसे पुराना है। इसे त्रिनील मानव या पिथक-अंथ्राप भी कहते हैं। १८९१ ई० में डच विद्वान् प्रोफेसर ई० दुब्वाको मध्य-जावाकी सोलो नदीके किनारे त्रिनील स्थानमें इस मानव-खोपड़ीका ऊपरी भाग, दाढ़के दो

२. पुरापाषाणयुग का मानव

दाँतों और जाँघकी एक हड्डीके साथ प्राप्त हुआ। यह फोसील जिस स्तरमें मिली थी, उससे वह अतिउषाकालकी मालूम होती थी। इसी स्तरमें सूअर, जलीय अश्व, हरिन तथा बिलुप्त स्टेगोडन

[१]काल एक लाख वर्षसे पूर्व Gen. Anth. p. 227 [१]पेर्वो बित्नोये ओबृश्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको १९३८, पृष्ठ २७)

[२]Pithecanthropus, इसके समकालीन मानव नर्वदा उपत्यका (होशंगाबाद और जब्बलपुर के जिले) में मिले हैं--Prehistoric India (Stuart Pigget, 1950) p. 29

गज जैसे प्राणियोंकी फोसीलायित हड्डियाँ मिली थीं, जिससे मालूम होता है, कि जावा मानवको भोजनके लिए इन जानवरोंको मारना पड़ता था। जावा मानवका कपाल-क्षेत्र ६४० घन सेन्ती-मीतर है, जो सभी वन-मानुषोंसे अधिक है, क्योंकि उनका कपाल-क्षेत्र ६५५ घन सेन्तीमीतरसे अधिक नहीं होता। लेकिन यह आधुनिक मानवके कपालक-क्षेत्र १६०० घन सेन्तीमीतरका दो-तिहाई है, अथवा उतना ही, जितना कि आधुनिक मानवके अत्यल्प विकसित वेद्दा (लंका) लोगोंका कपाल-क्षेत्र होता है। जावा मानव बाहरसे दीर्घ कपाल (७१.२) किन्तु खोपड़ीके भीतर आयत-कपाल (८०) था। इलियट स्मिथके मतसे वह निसन्देह मानव-वंशका था और कुछ थोड़ी-सी वाणी (भाषा) की शक्ति भी रखता था, किन्तु वह खाँसने जैसी ध्वनिसे अधिक विकसित नहीं थी। खड़ा होके चलनेमें वह बहुत-कुछ मनुष्य जैसा था, किन्तु दांत वनमानुषसे अधिक समानता रखते थे। ऊँचाईमें वह ५ फुट ६ या ७ इंच था अर्थात् बहुत-कुछ आजकलके साधारण मनुष्य जितना लम्बा था। भय उपस्थित होनेपर वह आसानीसे वृक्षोंपर चढ़ जाता था

३. जावा मानव

और शायद रहनेके लिए वहीं घास-फूसकी नीड जैसी झोपड़ी भी बना लेता था। जावा-मानव[1] उसी समय जावाके सदाहरित जंगलोंमें निवास करता था, जब कि युरोप प्रथम-हिमयुगसे गुजर रहा था। उस समय सुमात्रा और मलायासे मिला हुआ जावा, एसियाका एक अभिन्न अंग था। जावा मानवके कालके विषयमें मतभेद होना स्वाभाविक है। कोई-कोई उसे हैडलवर्गीय मानवका समकालीन मानते हैं और कोई उसे पैकिंग मानवसे पीछेका।[2]

---

[1] विशेष के लिए पठनीय General Authropology, History of Anthropology (A.C. Haddon) 56-57 Man the verdict of science (G.N. Ridley 1946) p. 41, Progress and Archaeology [2] History of Anthropology (A.C. Haddon) p. 53

फलक ५--भारत में इद-उषा युग

काल	वर्ष
इस्लाम	१००० ई०
गुप्त	४०० ,,
शक	०
मौर्य	३०० ई० पू०
बुद्ध	५०० ,,
उपनिषद्	७०० ,,
ऋग्वेद	१२०० ,,
सिंधु सभ्यता	३००० ,,

§२. निम्न-पुरापाषाण युग[1]

१. जावा मानव[1]

अभी तक जितने मानव-अवशेषोंका पता लगा है, उनमें जावा-मानव [2]सबसे पुराना है। इसे त्रिनील मानव या पिथक-अंथ्राप भी कहते हैं। १८९१ ई० में डच विद्वान् प्रोफेसर ई० दुब्वाको मध्य-जावाकी सोलो नदीके किनारे त्रिनील स्थानमें इस मानव-खोपड़ीका ऊपरी भाग, दाढके दो

२. पुरापाषाणयुग का मानव

दाँतों और जाँघकी एक हड्डीके साथ प्राप्त हुआ। यह फोसील जिस स्तरमें मिली थी, उसमे वह अतिउषाकालकी मालूम होती थी। इसी स्तरमें सूअर, जलीय अश्व, हरिन तथा बिलुप्त स्टेगोडन

[1] काल एक लाख वर्षसे पूर्व Gen. Anth. p. 227 [1]पेवों बित्नोये ओब्श्चेस्त्वो (प० प० येफ़िमेंको १९३८, पृष्ठ २७)

[2] Pithecanthropus, इसके समकालीन मानव नर्वदा उपत्यका (होशंगाबाद और जब्बलपुर के जिले) में मिले हैं---Prehistoric India (Stuart Pigget, 1950) p. 29

२. पेकिंग-मानव

प्रोफेसर ओसबोर्न तथा दूसरे कितने ही नृतत्व-विशारदोंका मत है, कि मानव-जातिका उद्‌गम एसिया हीमें कहीं होना चाहिए। जावा मानव एसियामें मिला। पेकिंग मानव भी एसियामें ही प्राप्त हुआ। चीन और मंगोलियामें पुरा-पाषाण युगके बहुतसे पुराने पाषाण हथियार मिले हैं, किन्तु उनके साथ मानव-अवशेष नहीं मिले, अतः मानवकी आकृति आदिके बारेमें कुछ कहना मुश्किल है। वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें कुछ फोसील हुए मानव-दन्त भी मिले थे। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण प्राप्ति १९२६ में हुई जब कि चीनकी राजधानी पेकिंगसे ३७ मील दक्षिण-पश्चिम चूकूतीयानकी एक गुहामें अधिउषा (प्लैसृतोसेन) के दो मानव-दन्त प्राप्त हुए। १९२७ [illegible] का फोसील मिला, जो कि किसी तरुणका [illegible] था। यह [illegible] अधिक विकसित रहा होगा। २ दिसम्बर १९२९ को सभी सन्देहोंको दूर करनेवाली प्राप्ति एक तरुण चीनी विद्वान्‌को मिली। यह खोपड़ी प्रायः पूरी है और इसका कपाल-क्षेत्र जावा मानवसे कुछ अधिक है। इसका काल प्रायः ५ लाख वर्ष पूर्व बतलाया जाता है। बड़ा होनेपर भी पेकिंग मानवका कपाल जावा-मानवसे बहुत समानता रखता है। खोपड़ी अधिक चिपटी, सँकरी और पीछेकी ओर नीचा होती, ललाट तथा आँखोंके ऊपर उभड़ी हुई हड्डी दोनोंमें एक-सी है। किन्तु पेकिंग मानवकी अपेक्षा जावा मानवका ललाट अधिक ऊँचा है, इसलिए कितने ही विद्वान् उसे नेयण्डर्थल (मुस्तेर) के पास खींच लाना चाहते हैं। इसका कपाल-क्षेत्र ९०० घन सेंतीमीतर तक अर्थात् जावा-मानवसे ४० ही सेंतीमीतर कम है। जून १९३० ई० में उसी गुहासे एक और खोपड़ी मिली, जिसका कपालक-क्षेत्र प्रथमसे अधिक तथा आकृति मुस्तेर-मानवसे बहुत समानता रखती है। नवम्बर १९३६ में उसी गुफामेंसे तीन और खोपड़ियाँ मिलीं, जिनमेंसे दो १२०० और ११०० घन सेंतीमीतरवाली दो पुरुषोंकी थीं और तीसरी १०५० घन सेंतीमीतरकी

४. पेकिङ् मानव (खोपड़ी और मानव)

एक स्त्रीकी थी। स्टाइहाइमको मिली नियंडर्थल स्त्रीकी खोपड़ी ११०० घन-सेंतीमीतरकी थी। इन पिछली खोपड़ियोंके साथ गालकी हड्डियाँ भी मिलीं, जिनसे पता लगता है कि पेकिंग-मानव गाल और नाककी हड्डियोंमें आधुनिक मंगोलायित जातियोंसे समानता रखता था, यह

समानता उसके दाँतोंमें भी थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि यह मंगोलीय जातियोंका पूर्वज था। प्रोफेसर ब्लैकका कहना है—'पेकिङ्ग-मानवके दाँतोंकी विशेषता बतलाती है, कि वह उस मानवित (होमोनिद) से बहुत अन्तर नहीं रखता था, जिससे कि पीछे नियंडर्थल (मुस्तेर) और सपियन मानव-जातियोंका विकास हुआ।"

पेकिंग मानव अग्निका उपयोग करता था, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि वह अग्नि बना भी सकता था। इसके हथियार लकड़ी पत्थर और हरिनकी सींगके होते थे।

३. हैडलवर्ग मानव[1]

आजसे डेढ़ लाख वर्ष पहले प्रथम या द्वितीय हिमसंधिमें एक मानव रहता था, जिसे हैडलवर्ग मानव कहा जाता है। १९०७ ई० में जर्मनीके हैडलवर्ग नगरके समीप मावरमें इस मानवका सबसे पहले जबड़ा मिला था। स्थानके कारण इस मानव-जातिका नाम हैडलवर्ग पड़ गया। इससे पहले जावा और पेकिङ्ग मानव यद्यपि मौजूद थे, किन्तु उनपर अब भी नर या वन-मानुषके बीचमें होनेका सन्देह हो सकता था। हैडलवर्ग मानव पहला असंदिग्ध मानव है। इसका वह जबड़ा आजके धरातलसे ७९ फुट नीचे एक प्राचीन नदीकी बालुकामें चिपका हुआ मिला था। उसी स्तरमें अधि-उषा युगके स्तनधारियोंकी हड्डियाँ भी मिली थीं, जिनमें सरलदन्त गज, सिंह और लोमधारी गैंड़ा भी थे। हैडलवर्ग मानवके ये ही खाद्य थे और इन्हींसे उसका संघर्ष था। उस समय हिमसंधिके कारण जलवायु अधिक ठंडा नहीं था, जिससे उसे गुहामें रहनेकी अवश्यकता नहीं थी। इस मानवका जबड़ा बहुत बड़ा और भारी था, ठुड्डीका एक तरह अभाव था। वह आजकलके कितने ही आधुनिक मानवोंसे अधिक बड़ा नहीं था। कितने ही शरीर-शास्त्रियों का कहना है, कि जबड़ा यद्यपि वनमानुष जैसा भारी है, किन्तु कुछ दूसरे शरीर-लक्षण आगे आनेवाली मुस्तेर जाति जैसे है। इसीलिए कितने ही विद्वान् इसे मुस्तेर (नियंडर्थल) का पूर्वज मानते हैं। शायद इसके हथियार [illegible]-कालीन हथियारों जैसे थे। यह भी अनुमान किया जाता है, कि अपने सांस्कृतिक विकासमें [illegible] पेकिंग-मानव जैसा ही था।

४. मुस्तेर (नियण्डर्थल)[2]

वर्तमान सपियन मानव-वंशसे भिन्न जिन पुरातन मानव-वंशोंके चिह्न प्राप्त हुए हैं, उनमें सबसे अधिक इसी मानवके है। सर्वप्रथम १८४५ ई० में जिब्राल्टरमें इसकी एक खोपड़ी मिली थी, किन्तु उस समय विद्वानोंका ध्यान उसकी ओर नहीं गया। उससे आठ वर्ष बाद डुसेल्-डोर्फ (जर्मनी) के पास नियण्डर्थलकी घाटीकी एक गुहामें खुदाई करते समय मजूरोंको एक खंडित कंकाल मिला, जिसमें ऊपरी कपाल, बाँह और पैर एवं कंधे और कूल्हेकी हड्डियाँ थीं। खोपड़ी अधिक चिपटी तथा बाँहोंकी हड्डी अधिक उभड़ी हुई थी, जो कि आगे चलकर इस जातिका विशेष शरीर-लक्षण मानी गई; इसी कारण इसका नाम नियण्डर्थल-मानव पड़ा। लेकिन, नियण्डर्थलके

---

[1] Man : the Verdict of Science (G. N. Ridley) p. 41

[2] काल ५०००० वर्ष (V. Gordon Childe : Progress and Archcology, p. 79 : ५००००-३०००० वर्ष (Gen. Anth.)

अतिरिक्त इसका दूसरा अधिक प्रसिद्ध नाम मुस्तेर है। १९०८ ई० में फ्रांसके दोरदोएँ इलाकेके मुस्तेर स्थानमें एक नियण्डर्थल कंकाल प्राप्त हुआ था, जिसके नामपर यह मानव और उसकी संस्कृति मुस्तेरके नामसे प्रसिद्ध हुई। इस मानवकी हड्डियाँ बेल्जियम, इंग्लिशचेनलके द्वीप-समूह (१८४८ ई०), युगोस्लाविया (१८९९ ई०), क्रिमिया (१९२३ ई०), फिलस्तीन (१९२५ ई०), इताली (१९२९ ई०), क्रिमिया, दोनेत्स उपत्यका,[1] उज्बेकिस्तान (१९३८ ई०) आदि बहुत जगहों पर मिली हैं। यह मानव तृतीय हिमयुग (रिस्) के बादकी तृतीय हिमसंधिमें मौजूद था, जिसका काल एक लाखसे २५ हजार वर्ष पूर्व तक आँका गया है। मुस्तेरीय संस्कृतिके हथियार मंगोलिया और चीन (शेंन्सी) तक मिले हैं, किन्तु शरीर-अवशेष न मिलनेसे यह कहना मुश्किल है, कि वह मुस्तेर मानवके हैं।

मुस्तेरकी गुहामें प्राप्त हड्डी १५ वर्षके एक बालककी थी, जो ५ फुटसे कम लम्बी थी। आमतौरसे यह जाति छोटे कदके लोगोंकी थी, जिनकी लम्बाई ५ फुट २ इंचसे ५ फुट ४ इंच तक पाई जाती है। जिब्राल्तरकी स्त्री-खोपड़ीका कपालक-क्षेत्र १२८० घन-सेंतीमीतर था और शापेल-ओ-सेंतकी खोपड़ी १६०० घन-सेन्तीमीतर। मुस्तेर मानव दीर्घ-कपाल (७० और ७६ के

५. मुस्तेर (नियण्डर्थल मानव)

बीच) था। बाँहोंकी हड्डीका उभड़ा होना इसकी अपनी विशेषता थी, यह बतला आये हैं। इसका चेहरा बहुत लंबोतरा और नाक अधिक चौड़ी होती थी। चौड़ी होने का यह अर्थ नहीं, कि वह चिपटी होती थी। इसकी ठुड्डी नहींके बराबर थी। नियण्डर्थल-मानवके पैर आजकलके बच्चों

---

[1] पेर्बो०ओब्० पृष्ठ २९०, २९६; और २२०, ३०० में भी।

जैसे थे, जिससे जान पड़ता है, कि उसकी घुट्टीके जोड़ ऐसे थे, कि वह पैरोंपर अधिक चक्कर काट सकता था। कंधेपर सिर कुछ आगेको निकला रहता था।[१]

मुस्तेर-मानव तेशिकताश (मध्य-एसिया) में भी मिला है, इसे हम आगे बतलायेंगे। इसका मूलस्थान एसिया माना जाता है।[२]

चतुर्थ हिमयुगके उतार आरम्भ होनेके बाद कुछ सहस्राब्दियों (२५ हजार वर्ष पूर्व) तक मुस्तेर मौजूद रहा। आजसे २५-३० हजार वर्ष पूर्व सपियन (उत्तम) मानवकी पुरातन शाखा क्रोमेञों आ मौजूद हुई। कितने ही नृतत्त्व-विशारद् मानते हैं, कि विशेष परिस्थितियोंके कारण मुस्तेर मानव का ही सपियन-मानवके रूपमें जाति-परिवर्त्तन हुआ।[३] दूसरोंका कहना है, कि सपियन विजेताओंने मुस्तेरको पराजित कर उन्हें अपनेमें हजम कर लिया। अन्तिम उपरि-पुरापाषाण युगके क्रोमेञों, ग्रिमाल्दी और मद्लेन मानव सपियन जातिके थे। आजसे २५-३० हजार वर्ष पहले मुस्तेर मानव जाति लुप्त हो गई। सबसे पुरातन अवशेष मुस्तेर जातिका ही मध्य-एसियामें मिला है, इसलिए उसके बारेमें और विस्तारके साथ हम आगे लिखेंगे। यहाँ मानव-विकासकी कड़ीको स्पष्ट करनेके लिए सपियन मानवकी कुछ पुरानी जातियोंका वर्णन कर देना उचित है।

---

[१] आग का उपयोग यह जानता था (General Anthropology p. 239 विशेष के लिए L, Humanite Prehistorique (G) acques de Morgan, Paris (924)

[२] 10 Hist of Anth. p. 58.

[३] Gen. Anth. p. 78

स्रोत ग्रन्थ :

1. पेर्वो० ओब्०
2. Our Early Ancesters (M..H Burkitt, Cambridge, 1929)
3. Prehistoric India (Paggot),
4. Prehistoric India, (P. Mitra, Cal 1924)
5. General Anthropology
6. History of Anthropology (A. C. Haddon, London, 1945)
7. 7. Man : the Verdict of Science (G. N. Ridley, London 1946)
8. Progress and Archaeology (V. G. Childe, London 1944)
9. Stone Agt in India (P. T, S. Ayyangar)

अध्याय ३

उपरि-पुरापाषाण और मध्यपाषाण-युग

§१. ओरन्यक (१५००० वर्ष पूर्व)

तूलूज् (फ्रांस) से ४० मील [illegible] ओरन्यक नामक स्थान है। यहीं पर इस मानव के शरीर-अवशेष मिले थे, जिसके कारण इस जाति तथा इसकी शाखाओं का नाम ओरन्यक पड़ा। इसी जाति के अन्तर्गत क्रोमेञों, सोलूत्रे, मद्लेन और अज़िल जातियां हैं, जो आज से १५ हजार वर्ष पूर्व तक मौजूद थीं। मुस्तेर मानव के साथ पुरापाषाण युग का निम्न स्तर खतम हो जाता है और ओरन्यक से हम उपरिपुरापाषाण युग में पहुँचते हैं।

१. क्रोमेञों[१]

फ्रांस की वेजेर नदी की उपत्यका में, जहाँ पर कि पूर्वोक्त मुस्तेर-गुहा है, एक दूसरी लटकी हुई चट्टान है, जिसे क्रोमेञों कहते हैं। १८६८ ई० में क्रोमेञों की शैल-गुहा में पाँच मानव-कंकाल मिले, जिनका नाम प्राप्ति-स्थान के कारण क्रोमेञों पड़ गया। उपरि-पुरापाषाण युग में युरोप का सब से अधिक प्रसिद्ध मानव यही था। मुस्तेर मानव जहाँ खर्वकाय था, वहाँ क्रोमेञों कितनी ही बार ६ फुट का कद्दावर मनुष्य था। यह दीर्घ कपाल था और इसका कपाल-क्षेत्र १५६० से १७१५ घन सेन्तीमीतर तक होता था। चेहरा शरीर की अपेक्षा छोटा और चौड़ा था। क्रोमेञों स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक नाटी होती थीं। इस मानव का शरीर-लक्षण कितनी ही बातों में आधुनिक एस्किमों—विशेष कर ग्रीनलैण्डवालों—से इतनी समानता रखता है, कि कितने ही विद्वान् मानते हैं, कि मध्य-एसिया से नवपाषाण-युग के मानव के आने पर क्रोमेञों उत्तर की ओर हटते दूर चले गये, जो ही आजकल एस्किमों हैं। इस बात में तो सभी सहमत हैं, कि यह मानव-वंश मुस्तेर की भाँति उच्छिन्न नहीं हो गया, बल्कि उसकी संतान या रक्त आधुनिक मानव में मौजूद हैं।[२]

२. ग्रिमाल्दी[३]

भूमध्यसागर के तट पर फ्रांस के माने प्रदेश में ग्रिमाल्दी नाम की नौ गुफाएँ हैं, जिनमें अधिकांश ध्वस्त हो चुकी हैं। इन्हीं में से एक शिशु-गुहा में १९०१ में माँ और बेटे के दो सम्पूर्ण

---

[१] पेर्वो० ओब्० पृ० ४३; Gen. Anth. pp. 78-82

[२] Gen Anth. pp. 76, 78,

[३] Everyday Life in the old Stone Age p. 73

कंकाल मिले। स्त्री प्रौढ़ा रही होगी और पुत्र १४ वर्ष के करीब का। स्त्री का कद ५ फुट ३ इंच था और लड़के का ५ फुट से थोड़ा ही अधिक। दोनों कंकाल ओरन्यक काल के है, यद्यपि इनका सम्बन्ध उनसे नहीं है। नृतत्त्व-विशारद् इसे निग्रोयित जाति का बतलाते है। इसकी खोपड़ी दीर्घ कपाल, ठुड्डी थोड़ी सी विकसित, दाँत बहुत बड़े, नाक की हड्डियाँ चिपटी थीं। बड़े नथुने विशेष तौर से निग्रो जैसे थे। इसके निग्रो-सम्बन्ध को अपेक्षाकृत लम्बी टाँगें तथा बाहु के ऊपरी भाग भी बतलाते है। ग्रिमाल्दी कंकाल अफ्रीका के श्मेस लोगों से अधिक समानता रखते है। यद्यपि यह प्रश्न जटिल है, कि निग्रोयित आकार के ये लोग युरोप में कैसे पहुँचे। कुछ विद्वानों का कहना है, कि ग्रिमाल्दी-मानव क्रोमेञों मानव का पूर्वज था। प्रोफेसर इलियट-स्मिथ का मत है, कि ग्रिमाल्दी जाति का शरीर-लक्षण, निग्रो की अपेक्षा [illegible] मानव से ज्यादा मिलता है।

६. क्रोमञों मानव

ग्रिमाल्दी मानव यद्यपि ओरन्यक् कालमें था, तो भी उस जातिमें इसे सम्मिलित करनेके लिए अधिकांश विद्वान् तैयार नहीं हैं।

ओरन्यक् मानव सांस्कृतिक विकासमें मुस्तेर मानवसे आगे बढ़ा था। उसके चकमक-पत्थरके हथियार अधिक सुधरे तथा कार्यकारी थे। उसके हथियारोंके भेद भी अधिक थे। यद्यपि हथियार पत्थरके अतिरिक्त कुछ हड्डीके भी थे, लेकिन इसमें सन्देह नहीं उसके हथियारोंमें लकड़ीके भी बहुतसे रहे होंगे, जो १०-१५ हजार वर्षो तक सुरक्षित नहीं रह सकते थे। अपने पत्थरके हथियारोंसे वह बारहसिंगेकी सींगोंको काटकर वाण और भालेके फल बनाता था। हड्डीके हथियारोंका बनाना शायद इसी मानवने पहले-पहल आरम्भ किया। हड्डीकी सूइयोंसे वह चमड़ेकी सिलाई भी करने लगा था, यद्यपि इस सुईसे मोची की सुईकी तरह सूत खींचा जाता था। ओरन्यक् मानव धनुष और वाणका इस्तेमाल जानता था। इसने हड्डियोंपर अपनी कलाभिरुचिका प्रदर्शन

किया है, साथ ही गुफाओंमें उसके हाथके चित्र भी मिलते हैं। स्पेनके अल्तमीरा गुफाकी छत और दीवारोंपर उसके हाथके बनाये हुए कितने ही बैल, बिसोन, हरिन और घोड़ेके अत्यन्त सजीव चित्र हैं। अल्तमीराकी गुफा बहुत अँधेरी--२८० मीतर लम्बी है, (एक मीतर ३ फुट पौने ४ इंचका होता है)। गुफाके भीतर रोशनी बिल्कुल नहीं जा सकती और चित्र भीतरकी दीवारमें सब जगह बने हुए हैं। आज भी प्रकाशके विना उन्हें देखा नहीं जा सकता, इसलिए चित्रकारोंने अवश्य दिये की सहायता ली होगी। ओरनयक् मानव ४-५ इंचकी मिट्टीकी मूर्तियाँ भी बना लेता था, जो काफी अच्छी थीं।

३. सोलूत्रे[1] (१४००० वर्ष पूर्व)

फ्रांसमें मासोंके पास सोलूत्रे नामक स्थान है, जहां ऊपरी पुरापाषाण युगके मानवके शरीरावशेष मिले हैं, जिसके कारण उसका नाम सोलूत्रे पड़ा। इस मानवके अवशेष इंगलैण्ड, उत्तरी स्पेन और मध्य युरोप तक मिले हैं। वह घोड़ोंका शिकारी था और हिमयुगके समाप्त होनेके बाद युरोपमें जो घासके मैदान मौजूद हुए थे, उनमें घूमा करता था। चकमक-पत्थरके बने हुए सुन्दर फल वह अपने भालों और वाणोंमें लगाता था, जो शिकारके लिए ही भयंकर हथियार नहीं थे, बल्कि उनके बनानेमें कला और सुरुचिका भी भारी परिचय दिया गया था। सोलूत्रे मानवकी दस्तकारीके रूपमें चकमक पत्थरकी छिलाई और सफाई अपने जिस उच्चतम विकासपर पहुँची थी, उसका मुकाबिला नवपाषाण युगके पहलेवालोंने नहीं कर पाया। इसने हड्डीकी सच्ची सूई बनाई, इससे पहले मोचियोंकी तरह ही सिलाई होती थी। इस मानवकी सूईके लिए सूतका काम अँतड़ियोंके रेशे या नसें करती रही होंगी। इस समय मानवने अपने चमड़ेके परिधान और जूता आदिके बनानेमें बहुत तरक्की की होगी, इसमें सन्देह नहीं। इस मानवके रहनेके समय युरोपका जलवायु वैसा गरम नहीं था, जैसा ओरन्यक् मानवके समय। वह कुछ अधिक सर्द था। इस समय युरोपमें मम्मथ गज अब भी मौजूद थे।

४. मद्लेन[2] (१३००० वर्ष पूर्व)

सोलूत्रे मानवके दो सहस्राब्दियों बाद मद्लेन मानवका पता लगता है। फ्रांसकी वेज़ेर नदीकी उपत्यकामें मद्लेन कैसल (गढ़) के करीब ही इस मानवका अवशेष मिला था। अपने पत्थरके हथियारोंमें यह सोलूत्रे मानवका मुकाबिला नहीं कर सकता था। हड्डी और हाथी-दाँतके हथियारोंको यह ज्यादा पसन्द करता था और चकमकको बहुत कठोर हथियारोंके[3] तौर पर ही इस्तेमाल करता था। औरन्यक-वंशका इसे नालायक उत्तराधिकारी कह सकते हैं। यह फ्रांस ही नहीं स्पेन, जर्मनी, वेल्जियम और इंगलैण्डमें भी रहता था। इसके समय शायद हिमयुग की स्मृति भी लुप्त हो चुकी थी। मद्लेन मानव अपने भालों और वाणोंके फल हाथी-दाँत तथा हरिनकी

---

[1] पेर्वो० ओब्० पृ० ३५०–६३।

[2] Gen. Anth. p. 242.

[3] पेर्वो० ओब्० पृ० ४६६–८३, Gen. Anth pp. 77, 143,

सींगोंका बनाता था। इन फलोंमें कुछ काँटेदार भी होते थे, जिनसे आगे मछली मारनेकी वंशीका विकास हुआ। अपने हड्डीके हथियारोंपर यह चित्रकारी भी करना जानता था। मद्लेन मानव के चित्रों में सील और सामोन मछलीकी आकृतियाँ काफी मिलती है। इस्कैमोसे इसके शरीर-लक्षणों में भारी समानता है। एस्किमो लोग भी हड्डी और लकड़ी पर कारुकार्य करनेमें बहुत दक्ष होते हैं। हो सकता है, मदलेन मानव लकड़ीके बोटोंको चमड़ेसे बाँधकर एक तरहकी नाव बनाता था। वह धनुहीके सहारे बर्मा द्वारा लकड़ी और हड्डीमें गोल छेद कर सकता था। वह जाड़ेके दिनोंमें गुफाओं या चट्टानोंकी छायाके नीचे शरण लेता और गर्मियोंमें फूस या चमड़ेकी झोपड़ी में। आधुनिक एस्किमो लोगोंसे आकृति और हस्त-शिल्पमें ही नहीं वह भारी समानता रखता था, बल्कि दीपकसे प्रकाश और खाना पकानेका भी शायद काम लेता था। चित्रकलाके विकासमें, प्रागैतिहासिक मानवोंमें इसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसके चित्रोंमें मम्मथ गजका सजीव चित्रण यदि कहीं देखा जाता है, तो कहीं बिसौन और सिंहका आकार, कहीं लाल और दूसरे हरिनोंका शिकार अंकित मिलता है। वह लाल, भूरे, काले और पीले रंगोंको इतनी सुन्दरताके साथ इस्तेमाल करता था, कि चित्र बहुत सजीव और भावपूर्ण हो जाता था। इसके चित्रोंमें कितने ही पूर्ण आकार के हैं। वह ब्रुशका अवश्य इस्तेमाल करता था। रंगोंको शायद हरिनकी सींगोंकी बनी नलियों में रखता था।[1]

§२. मध्यपाषाण

अज़िल, अश्योल[2] (११००० वर्ष पूर्व)

मद्लेनसे दो सहस्राब्दी बाद इस मानवका पता लगता है, जो कि पुराण मानवजातियोंका अन्तिम प्रतिनिधि था, और अपनी विशेषताओं के कारण इसे पुरापाषाण और नवपाषाणके बीचवाले मध्यपाषाण युगका मानव कहते हैं। दक्षिणी फ्रांसमें लूदके समीप मा-द-अज़िलकी गुफामें इसके हाथकी चीजें मिली थीं। इंगलैण्ड और स्काटलैण्डमें भी इसका पता लगता है। अज़िल मानवकी एक विशेषता यह थी, कि वह मुर्देकी बहुत सी खोपड़ियोंको अलग करके अण्डेकी तरह एक जगह गाड़ा करता था। बवेरियामें नोर्दलिंगेन के पास ओफनेत गुहामें एक ही जगह १७ खोपड़ियाँ गाड़ी मिली थीं, जिनके साथ गेरूके टुकड़े भी थे, जिससे मालूम होता है, कि वह गेरूसे रंगकर शरीरका श्रृङ्गार किया करता था। उन खोपड़ियोंमें एक छोटे बच्चेकी भी थी, जिसके पास बहुतसे घोंघे आदि रक्खे हुए थे, जो मरनेपर भी लड़केको खेलनेके लिए थे। जान पड़ता है, शरीरके बाकी भागको ये लोग जला दिया करते थे। पीछे जब शरीरका जलाना आम हो गया, तो भस्मको मिट्टीके बर्तनमें रखकर गाड़ दिया जाता था, लेकिन यह नव-पाषाण युगकी बात है। हिमयुगके बीते बहुत दिन हो गये थे, युरोपका जलवायु इस वक्त नरम था। मदलेनके समय घासवाले मैदानों का स्थान घने जंगलोंने ले लिया था। अज़िल मानव अच्छे मछुए थे, साथ ही शिकार भी उनकी जीविकाका बड़ा साधन था। पालतू

---

[1] दक्षिण-भारत में कुर्नूल के पास एक गुहा में इस जसे हथियार १८८१ ई० में मिले थे, Prehistoric India (Paggot, page 35)

[2] (**पेर्वो० ओव् पृ० बि० १९०,** Gen. Anth. p. 45)

पशुका पहले-पहल इन्हींके समय पता लगता है, जो कि कुत्ता था। अभी कृषिका कहीं पता नहीं था। अज़िल मानवको मछली या जानवरके शिकारपर गुजारा करना पड़ता था। कुत्तेकी घ्राणशक्तिका उपयोग करके वह शिकारके जानवरोंका अच्छी तरह पीछा कर सकता था और शायद कुत्ते जानवरके घेरनेमें भी सहायता करते थे। अभी फल जमा करने और शिकारसे प्राप्त मांसके सिवाय आहारका कोई दूसरा साधन मानवको प्राप्त नहीं हुआ था।

§३. मानव शरीर-लक्षण

प्राचीन मानवोंका फोसील-भून हड्डियोंके सिवा और कोई शरीरावशेष नहीं मिला, [illegible] बनावट कैसी थी, चमड़े, आँख और केशका रंग कैसा था, रुधिर किस वर्गका था इत्यादि बातोंके जाननेका हमारे पास साधन नहीं है। आजकलकी मानव-जातिके मुख्यतः चार भेद हैं : आस्ट्रेलायित, निग्रोयित, मंगोलायित और श्वेतांग। रंगोंका अन्तर दिखलाई पड़ते भी मंगोलायित और श्वेतांग जातियोंके शिशुओंकी नासाकृतिमें पहले अन्तर नहीं रहता, नासा-सेतु (बाँसा) का विकास वयस्कताके साथ होता है।

१. शरीर-लक्षण[१]

केशकी बनावट चमड़ेका वर्ण और नासाकृतिको देखकर आज हम मानव-जातियोंके भिन्न-भिन्न भेदको समझ लेते हैं। निग्रोयित जातियोंके चमड़ेका रंग काला, बाल काले तथा ऊन जैसे फूले होते हैं। आस्ट्रेलायित लोगोंका चमड़ा काला और बाल काले तथा लहरदार होते हैं। मंगोलायित, जिसमें अमेरिकन इंडियन भी शामिल हैं, हल्का रंग, सीधे बाल तथा उन्नत-नासा-सेतुके होते हैं। श्वेतांग बहुत हल्का रंग, पतली नाक तथा भिन्न-भिन्न वर्ण और बनावटके केशोंवाले होते हैं। नेत्रकी आकृतिमें भी भेद देखा जाता है, किन्तु वह अधिक स्थिर लक्षण नहीं है। श्वेतांगों और निग्रोयितोंकी आँखें अधिक विस्फारित होती हैं, जब कि [illegible] ऊपरी पपनीमें एक भारी परत पड़ी रहती है, जिसके कारण वह पूरी तौर से खुल नहीं सकतीं। निग्रोयितों और आस्ट्रेलायितोंके ओठ बहुत मोटे होते हैं, मंगोलायितोंके उनसे कम और श्वेतांगोंके ओठ बहुत पतले होते हैं। [illegible] देखे जाते हैं। अमेरिकन इंडियन नियमितरूपेण काले बालों और आँखों तथा हल्के रंगवाले होते हैं, किन्तु अलास्का और ब्रिटिश कोलम्बियाके विशालतम मस्तिष्क और अल्पतम रोमवाले लिगित और हैदा एस्किमो इसके अपवाद हैं। इनका चमड़ा बहुत सफेद, केश लाल और आँखें हल्की भूरी होती हैं, जिनके कारण इन्हें कपिल (ब्लौंड) एस्किमो कहा जाता है। आजकल भी देखा जाता है, भिन्न-भिन्न जातिके लोग प्रायः अपनी ही जातिमें विवाह या सन्तानोत्पत्ति करते हैं, जिसके कारण उनकी शरीराकृतिमें आनुवंशिकता कायम हो जाती है : अर्थात् एक जातिमें एक ही रूपरंगके

---

[१] Gen. Anth. p. 102

व्यक्ति पैदा होते रहते हैं। मानव-आकृति और रंगके परिवर्त्तनमें जलवायु भी कारण होता है। अधिक गरम देशोंमें रहनेवाले लोगोंका रंग श्याम होने लगता है, चाहे उनके माता-पिता श्वेतांग ही हों, तो भी जलवायु का प्रभाव उतना अधिक और शीघ्रतासे नहीं देखा जाता, जितना कि जोड़ा-निर्वाचन या एस्किमोकी भाँति अज्ञात कारणों द्वारा देखा जाता है।

भिन्न-भिन्न मानव-जातियोंमें वर्ण-भेद और रूप-भेद किस तरह हुआ, इसके बारेमें विद्वानोंने बहुत सी कल्पनाएँ दौड़ाई है। अर्थर कीथके मतानुसार वर्ण-भेदका कारण मनुष्य-शरीरके भीतरकी निष्प्रणालिक ग्रंथियोंके हारमोन (जीवन-रस) है। मस्तिष्कके ललाटकी बगलमें अवस्थित पिटुइटरी ग्रंथि अधिक बढ़ी हो, तो उससे हारमोनका भी अधिक स्राव होगा, जिसके कारण नाक,[१] चिबुक (ठुड्डी), हाथ और पैर अधिक लम्बे हो जायेंगे। शरीरकी बृद्धिपर थाइराइड ग्रंथि नियंत्रण करती है। यदि इसका हारमोन कम निकले, तो नासा और केश बहुत कम विकसित हो पाते है और चेहरा चिपटा हो जाता है। इस हारमोनकी कमी से निग्रो जातिके लोगों के शरीरपर बालकी कमी है। जलमें आइडिनका अभाव होनेसे थाइराइड ग्रंथि हारमोन स्राव के लिए अधिक प्रयत्न करके स्वयं बढ़कर घेघेका रूप धारण कर लेती है। बचपनसे वैसा होना बकलोल भी बना देता है। इसका अर्थ यह हुआ, कि बाहरी प्रकृति (जलमें आइडिनका अभाव) भी मनुष्यकी भीतरी निष्प्रणालिक ग्रंथियोंपर प्रभाव डालती है और उसके द्वारा (अर्थात् प्राकृतिक वातावरणके कारण) शरीर-लक्षणोंमें परिवर्तन होता है। केवल रंग आदि हीमें नहीं, बल्कि शरीरके ढाँचे पर भी इस तरहके प्रभाव देखे जाते हैं, जिससे मालूम होता है कि शरीर-लक्षण कोई स्थिर चीज़ नहीं है। पूर्वी युरोपसे अमेरिका आये हुए यहूदियोंकी कपाल-भित्ति ८३ होती है, किन्तु उनके पुत्र-पुत्रियोंकी ८१.४ और पौत्र-पौत्रियोंकी ७८.७ बन जाती हैं। शरीर-दीर्घताकी बात तो यह है, कि हार्वर्ड-विश्वविद्यालयके छात्र अपने माता-पितासे ३.४ सेन्तीमीटर अधिक ऊँचे हो जाते हैं।

२. जातियों का सम्मिश्रण[१]

प्राचीन मानव-जातियों में भी जाति-सम्मिश्रण हुआ, क्योंकि मानव सदासे घुमन्तू रहा है—कृषियुगसे पहले तो वह घुमन्तू छोड़कर और कुछ था ही नही। हम आजकी मानव-जातिके इतिहास में भी ऐसे बहुत से उदाहरण पाते है, जिसमें दो-चार व्यक्ति नहीं, बल्कि जातियोंका सम्मिश्रण हुआ। ईसापूर्व द्वितीय शताब्दीके अन्तमें ग्रीक लोग आक्रमण कर भूमध्यसागरके तट पर बस गये। थ्रेस (बलकांन) वासी क्षुद्र-एसिया में चले गये, इसी तरह केल्ट भी इताली तक फैलते क्षुद्र-एसिया में पहुँच गये। रोमन उपनिवेशिक युरोपके बहुत से भागों में जा बसे। जर्मन कबीले कालासागर के उत्तरी तट से चलकर पश्चिम और दक्षिणी युरोप तथा उत्तरी अफ्रीका में जा बसे। स्लावोंने फिनोंको हटाकर रूसमें उनका स्थान ले लिया। बुलगार कालासागर-

---

[१] Gen. Anth. p. 102 शैशवके बाद नाक स्पष्ट होती है, Gen. Anth. p. 101, वहीं और p. 106.

तट छोड़ बल्कानमें चले गये। कितने ही हूण कबीले वर्तमान मंगोलियासे चलकर हुँगरीमें जा मगियार के रूप में बस गये। युरोप-निवासी तब तक बराबर चलते-फिरते ही दिखाई देते रहे, जब तक कि खेतों में वैयक्तिक संपत्ति का अधिकार स्थापित नहीं हो गया। जो बात युरोपके लिये हुई, एसिया उसका अपवाद नहीं रहा। इन्दोनेसिया के निवासी मलयू लोग पश्चिम की ओर प्रयाण करते-करते युरोपियन तुर्की तक चले गये। इस प्रकार किसी भी जाति का शुद्धताका दावा बिल्कुल झूठा है। हाँ, कभी-कभी [illegible] पर भी पहुँच गया, जहाँ प्राकृतिक बाधाओं के कारण वह बाहरसे सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सका। उदाहरणार्थ, ग्रीनलैण्ड के स्मिस-सोंड इलाके के एस्किमो और तस्मानिया के मूल निवासी। सहस्राब्दियोंसे दूसरी जातियोंके सम्पर्कसे वंचित होनेके कारण इन जातियों ने अपने विशेष शरीर-लक्षण विकसित कर लिये। एक समयकी संकरित या मिश्रित जातियाँ भी अधिक समय तक एक जगह अलग-अलग रहकर विशेष लक्षण विकसित करने में समर्थ होती हैं। अधिक देशोंमें बिखरी होनेपर भी प्रायः अपनी जातिमें ही सन्तानोत्पत्ति करनेके कारण युरोपीय यहूदी लोगों की शुकाकृति नाक उनका साफ परिचय देती हैं।

३. रक्त-भेद[१]

वर्तमान शताब्दीमें चिकित्सा शास्त्रकी खोजोंमें रक्त-परीक्षाका भी एक स्थान है। मानव-जातिके रक्तका ओ० ए० बी० और एबी इन चार समूहोंमें वर्गीकरण हुआ है। रक्तको किसी बीमारके शरीरमें डालते वक्त इस वर्गीकरणका ध्यान रखना आवश्यक होता है, क्योंकि जहाँ ओ रक्त किसी [illegible] दिया जा सकता है, वहाँ ए रक्तको बी में डालनेसे हानि होती है। शुद्ध अमेरिकन-इंडियन लोगोंमें शुद्ध ओ रक्त पाया जाता है। आस्ट्रेलियन मूलनिवासियोंमें भी ओ रक्त ही अधिक मिलता है और बाकीके ए रक्तवाले होते हैं। सारे एसियाको लेनेपर २० से ३५ सैकड़ा ही ओ रक्त मिलता है। पश्चिमी युरोपमें बीकी अपेक्षा ए रक्तवाले ज्यादा मिलते हैं, किन्तु पूर्वी और दक्षिणी युरोपमें बी की प्रधानता देखी जाती है। सीमान्त पर रहनेवाले कितने ही लोगोंमें ए बहुत कम मिलते हैं और बी रक्तवाले ही अधिक होते हैं। विद्वानोंका कहना है, कि ओ रक्त, चूँकि सर्वत्र मिलता है, इसलिए शायद यही मूल और सबसे प्राचीन रक्त हो। बीकी अपेक्षा ए रक्तको आदिम जातियोंमें ज्यादा पाया जाता है, इसलिये ए अधिक पुराना है। इस प्रकार रक्तकी आनुवंशिकतासे हम पीछेकी ओर बढ़ते-बढ़ते पुरा-पाषाणके मानवों तक पहुंच सकते हैं किन्तु तुलनात्मक परीक्षाके लिए हमारे पास साधन नहीं है। एक विद्वान्का कहना है, कि यूरेसि-याई जातियोंका चौड़े सिरवाला होना बी रक्तकी उत्पत्ति और प्रसारके कारण हुआ। राइन-लैण्डकी अपेक्षा बर्लिन और लाइपजिगमें एकी अपेक्षा बी रक्त अधिक पाया जाता है। एल्बे नदीके पूरब पश्चिमकी अपेक्षा और भी अधिक बी मिलता है। बी रक्तकी अधिकताका कारण वहाँके लोगोंका यूरेसियाई (स्लाव) लोगोंके साथ अधिक सम्मिश्रण है। रक्तका वर्गीकरण का चिकित्सा-शास्त्रसे बाहर नृतत्त्वीय अनुसन्धानमें भी उपयोगी हो चला है, किन्तु उससे हम

---

[१] पेर्वोबित्नोये ओबश्चेस्त्वो (प. प. एफिमेंको)

प्राचीनतम मानव-जातियोंके बारे में बहुत अधिक नहीं बतला सकते। हाँ, मुस्तेर, क्रोमेञों आदि कितनी ही प्राचीन जातियोंकी मंगोलायित आकृति शायद उन्हें ए वर्गका बतलाती है।

स्रोत ग्रन्थ :

1 History of Anthropology, pp. 36-37
2 L' Humnite Prehistorique (J. de Morgan)
3 General Anthropology (Boas)
4 Our Early Ancetsors, (M. C. Burkitt)
5 Progress and Archaeology (V. G. Childe)
6 Anthropology I, II (E. B. Taylor, London. 1946)
7 In the Beginning (G. Elliot Smith, London. 1946)
8 Geology in the life of man (Duncan Leith, Londan. 1945)
9 Man the verdict of Science (G. N. Ridley, London. 1946)
10 History of Anthrpology (A. C. Haddon)

अध्याय ४

मध्य-एसिया के आदिम मानव

मध्य-एसियाकी अपार बालुकाराशि (प्यासी भूमि, कराकुम, किजिलकुम, तकलामकान और गोबी) का पूरी तौरसे अनुसंधान अभी ही शुरू हुआ है, जब कि ये रेगिस्तान कम्युनिस्त शासनमें आये। नृतत्त्व-विशारदोंको बहुत आशा है, कि मानवके आरंभिक इतिहासकी कुंजी शायद इन्हीं रेगिस्तानोंसे मिले, जो कि किसी समय हरे-भरे घासके मैदान अथवा वृक्ष-वनस्पतिसे आच्छादित वनखंड थे। पश्चिमी मध्य-एसियामें सबसे प्राचीन मानव मुस्तेरके अवशेष दो जगह मिले हैं। इरतिसके तटपर कुरदाइ में मध्य-पुरापाषाण युगका मानव रहता था, लेकिन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है दक्षिणी उज्बेकिस्तान में तेशिकतांशका गुहा-मानव।

§१. मध्य-पुरापाषाण-युग

१. तेशिकताश मानव

पामीर का ही पश्चिमकी ओर बढ़ा हुआ पर्वतीय भाग उज्बेकिस्तान गणराज्यमें समरकन्दसे लेकर तिरमिजके उत्तर तक फैला हुआ है। इसी पर्वतमालाके दक्षिणी भागमें दरबंदका प्रसिद्ध गिरिद्वार है, जो स्वेन-चांगकी यात्राके समय (६३० ई०) देशकी प्रतिरक्षाका बहुत जबर्दस्त साधन समझा जाता था। इस सँकरे गलियारेमें लोहेका फाटक लगा हुआ था। अब उसका वह सैनिक महत्त्व नहीं रह गया है, और न समरकंद बुखारासे आनेवाले यात्रीके लिए दरबंदसे गुजरना आवश्यक है। लेकिन दरबंद होकर जानेवाली शीराबादकी छोटी नदी अपना एक दूसरा महत्त्व रखती है। दरबंदसे कुछ मील उत्तर इसी नदीके दाहिने किनारेपर कत्ताकुर्गनका विशाल गाँव है, जिससे कुछ और ऊपर जानेपर नदीके बाँयें तटपर अमीर-तैमूर स्थान है। शायद अमीर-तैमूर यहाँ आया हो, किंतु अमीर-तैमूरके आनेसे पचासों हजार वर्ष पहले एक दूसरी ही मानव-जातिका यहाँ डेरा था, जो तैमूरसे कहीं ज्यादा खूनखार थी। अमीरतैमूरके बिल्कुल पास की पहाड़ीमें तेशिकताशकी गुहा है। यहीं मुस्तेर मानवके अवशेष जून १९३८में मिले।[1] यह स्थान उज्बेकिस्तानके बाइसून जिलेमें है। अमीर-तैमूरमें भी मध्य-पुरापाषाण युगके अस्त्र मिले हैं, किंतु वहाँ मानव-शरीरावशेष नहीं मिले। एसियामें यहाँसे पूरब मुस्तेर मानवका अवशेष और कहीं नहीं मिला है। यह गुफा १५-१६ सौ मीतर लंबी और १५ से २० मीतर चौड़ी है। सोवियत पुरातत्ववेत्ताओंने इसकी सुव्यवस्थित रीतिसे खुदाई करके बहुत सी एतिहासिक सामग्री प्राप्त की है, जिनमें पाषाण-अस्त्र (नुकलेयस, छुरे) तथा बहुत प्रकारके जानवरोंकी हड्डियाँ हैं। जंगली बकरियोंकी विशाल सीगें काफी परिमाण में प्राप्त हुई हैं। इस गुफाके [illegible] नीचे दस स्तरोंका पता लगा है। ऊपर से तीसरे

---

[1] त्रुदी उज्बेकिस्तान्स्कओ अकदमी नाउक (ताशकंद १९४०, पृष्ठ ५४२-४)

तलम ५० मीतर लंबा एक चबूतरा-सा मिला, जिसपर बहुतेरे बड़े-बड़े पत्थर पड़े हुए थे। यहाँ बकरीकी सीगों तथा पत्थरके हथियार बनानेके साधन प्राप्त हुए। नवें स्तरके तीसरे चौथे तथा दसवें स्तरके भी तीसरे चौथे [illegible] सबसे अधिक सामग्री मिली, जिनमें पाषाण-अस्त्रोंके साथ दो बकरीकी सींगें तथा बहुतसे जंगली जानवरोंकी हड्डियाँ मिलीं। मालूम होता है, पत्थरके हथियारोंका मिस्त्रीखाना यहीं पर था। सबसे महत्त्वकी चीज जो यहाँ मिली, वह थी आदमीकी
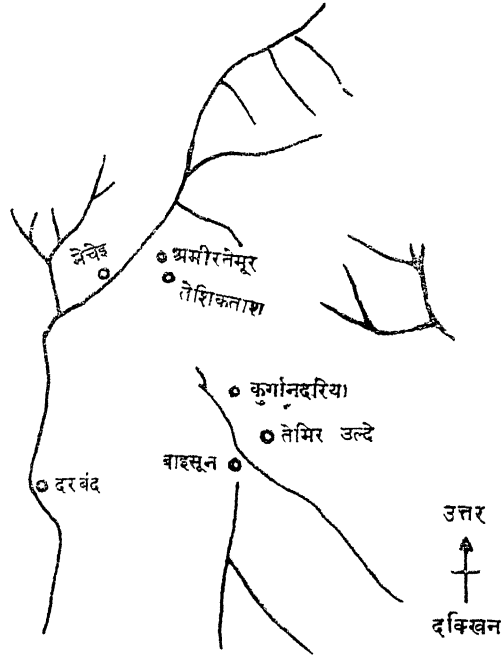
७. तेशिकताश गुहा

हड्डी, खोपड़ी, जिसमें नेयण्डर्थल या मुस्तेर मानवके शरीर-लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। खोपड़ी बहुत मोटी थी, इसका ललाट नीचा था, भौंकी हड्डी उभड़ी हुई थी, दाँतोंमें कुकुरदंत छोटा था यद्यपि और दाँत बहुत बड़े थे। मुँह बहुत बड़ा था, पर ठुड्डीका अभाव था।

तेशिकताश गुफामें मिली हड्डियोंके देखनेसे पता लगता है, कि वहाँ सबसे ज्यादा सिबेरीय बकरीका इस्तेमाल होता था, जिसकी ६४९ संख्याका पता लगा है। इसके अतिरिक्त ५ पक्षी, २ घोड़े, २ सूअर, १ पार्दसिंग तथा ५, ७ और जानवरोंका पता लगा है। हड्डियोंसे मालूम होता है, कि तेशिकताश मानवका सबसे प्रधान खाद्य सिबेरीय बकरी थी, उसीका शिकार उसकी प्रधान जीविका थी।

इस खोपड़ीका कपालक-क्षेत्र १४९० घन-सेंतीमीतर था, जबकि आजकलके शिशुका ११५० से १५०५ घन-सेंतीमीतर होता है (चिम्पांजीका कपालक-क्षेत्र ३५०, ओराङऊतानका ३८० और गुरिल्लाका ४०० घन-सेंतीमीतर होता है)। यह खोपड़ी १५-१६ सालके लड़केकी थी। गुहामें से बहुत सारे पाषाणास्त्र और हड्डियाँ मिलीं, इसलिए आशा हो सकती थी,
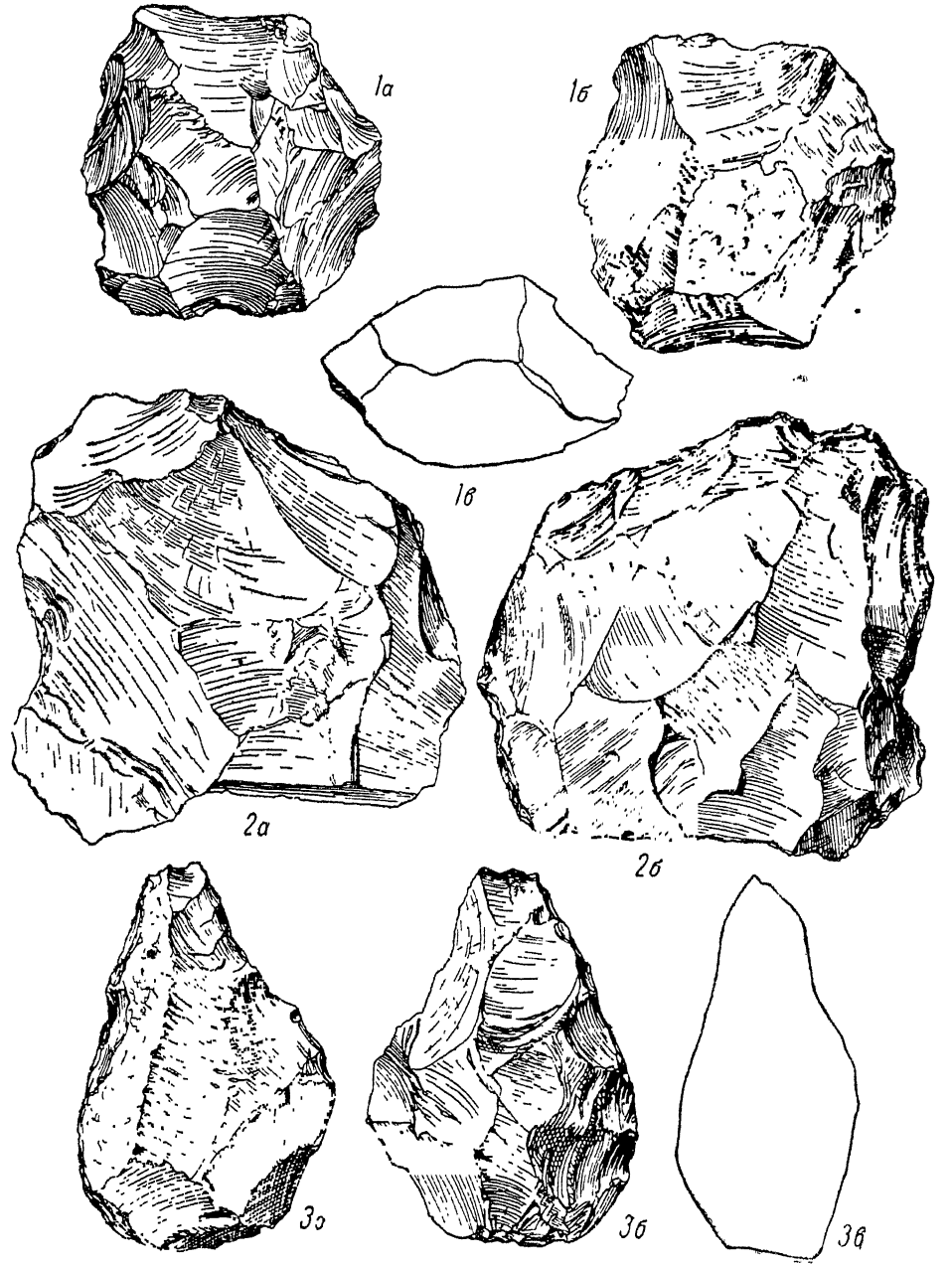
८. तेशिकताश मानवके पाषाणास्त्र p १८,

कि वहाँ और भी खोपड़ियाँ या शरीरावशेष होंगे। किंतु मुस्तेर मानवके अवशेष उतने सुलभ कहीं भी नहीं हैं। नृतत्त्व-विशारदोंका कहना है, कि तेशिकताश मानव पेकिंग मानव और आधुनिक मानवके बीचका था।

(१) जीवनचर्या

आजसे २५-३० हजार वर्ष पहले चतुर्थ हिमयुगके अंतमें लुप्त इस मुस्तेर मानवकी जीवन-यात्रा कैसी थी, इसका कुछ पता उसकी गुफामें मिली हड्डियाँ बतलाती हैं और कुछ का अनुमान हम तस्मानिया के मूल-निवासियोंकी जीवन-यात्रासे कर सकते हैं। तस्मानियाके लोग दक्षिणी उज्बेकिस्तानके बराबर ही शीतोष्ण (प्रायः ४० डिग्री अक्षांश) में रहते थे, यद्यपि एक दूसरेसे भिन्न (दक्षिणी और उत्तरी गोलार्ध) में होनेके कारण उनकी ऋतु एक दूसरेसे उलटे कालमें पड़ती थी। तेशिकताश मानवको जहाँ हिमयुगकी कठोर सर्दीमे जीवन-संघर्ष करना पड़ रहा था, [illegible] अँगरेजोंकी कृपासे जीवनसे मुक्त हो जानेवाले तस्मानियन लोगोंको उतनी सर्दीका मुकाबिला नहीं करना पड़ता था, तो भी वह ऐसी जगह पर थे, जहाँ कभी-कभी जाड़ोंमें बर्फ पड़ जाती थी। आबेल तस्मनने १६४२ ई० में आस्ट्रेलियाके दक्षिणमें अवस्थित इस द्वीपका पता लगाया था, जिसके ही नाम पर उसका नाम तस्मानिया[१] पड़ा। १७७७ ई० में कप्तान कूक जब तस्मानिया पहुँचा, तो उसने वहाँके लोगोंको [illegible] पाया। जान पड़ता है, तस्मानियन लोग एसियासे मलाया-जावा होते आस्ट्रेलिया पहुँचे थे। उस समय आस्ट्रेलिया शायद एसियासे स्थल द्वारा मिला हुआ था। प्रबल मानव-शत्रुओंके भयके मारे तस्मानियन लोग भागते भागते इस द्वीपमें पहुँच हजारों वर्षोंसे अपना सरल जीवन बिता रहे थे। दूसरे बर्बर मानव-शत्रुओंने उन्हें भागकर जान बचानेका अवसर दिया था, किंतु सभ्य अँगरेज उतनी दया दिखलानेके लिए तैयार नहीं थे। अस्तु, तस्मानिया द्वीपमें पहुँचकर ये मानव-संपर्कसे वंचित हो अपना पुराना जीवन बिता रहे थे, जबकि श्वेतांग नई भूमियोंकी खोज करते उनके पास पहुँचे। उस समय वह लोहा या किसी धातुका हथियार इस्तेमाल नहीं करते थे। [illegible] मानवकी तरह उनके हथियार छिले चकमक पत्थरके होते थे। पाषाण कुठारको भी बनाना नहीं जानते थे, जिसे कि शेल मानव बना सकता था। वे आमतौरसे नंगे रहा करते थे, किंतु कभी-कभी चमड़े भी पहनते थे। कांगरूके चमड़ेसे बिछौनेका काम लेते थे। वर्षा और गर्मीसे उनके स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था। उनका घर खाली शाखाओं और घासोंका बनाया हुआ आड़ होता था, जिसके ऊपर छत डालनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। अँगरेजोंने धीरे धीरे नसमानियाके सुन्दर द्वीपको निगलकर अधिकांश निवासियोंको अकाल ही काल-कवलित करा दिया। बचे हुए निवासियोंको १८३१ ई० में पासके फिलण्डर द्वीपमें निर्वासित कर दया दिखाते हुए झोपडियों में रख दिया गया। खुली जगहमें वर्षामें भीगते और जाड़ेमें काँपते उन्हें कोई रोग नहीं हुआ था, किंतु अब उन्हें सर्दी और जुकाम होने लगा। अपनी प्राकृतिक अवस्थामें यह लोग शरीर पर चर्बी और गेरू पोता करते थे, जिससे शायद सर्दी-गर्मीका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता था।

---

[१] Everyday Life in the Old Stone Age, pp. 40-44

तस्मानियन लोगोंके जीवनसे हमें पता लग सकता है, कि आजसे ५० हजार वर्ष पहले मध्य-एसियाके प्राचीन निवासी कैसे रहते थे। तस्मानीय लोग घोंघे-कौड़ी आदिकी मालाके बड़े शौकीन थे और तेज चकमक पत्थरसे काट कर गोदना भी गोदाते थे। आहारकी खोजमें वह बराबर एक जगहसे दूसरी जगह घूमते रहते थे। कितनी ही बार बच्चोंको भी आहारकी कमीके कारण भूखे मरनेके लिए छोड़ दिया जाता था, वही बात विकलांगों और अधिक बूढ़े आदमियोंकी भी थी। कड़ी लकड़ीके बने हुए सीधे-सादे भालेसे वह कांगरूका शिकार करते थे। लकड़ीको काटकर उसे चकमक से छील लेते थे। यदि लकड़ी टेढ़ी होती तो उसे आगसे गर्माकर सीधा करते थे। एक छोरको आगसे जला लेते थे, फिर उसे छीलकर तेज बना लेते। यह छोर उसी ओर होता था, जिधर लकड़ी ज्यादा मोटी अतएव भारी होती थी। उनके भाले ११-१२ फुट लंबे होते थे। एक ओर भारी होनेकी वजहसे उस ओर सामने करके फेंका हुआ भाला लक्ष्यपर सीधे जाता था। तस्मानीय शिकारी ४०-५० गजके फासलेसे काँगरूको मार सकता था। वह जिस तरह चिर-अभ्यासके कारण भालेका ठीक निशाना लगा सकता था, वैसे [illegible] भी फेंककर शिकार कर सकता था। उनकी आँख, कान और घ्राणकी शक्ति बड़ी तीव्र थी, जिससे अपने शिकारका अच्छी तरह पीछाकर सकते थे। जो भी पशु-पक्षी उनके हाथमें आता, उसे लकड़ीकी आगमें डाल अधपका करके बालों और पंखोंको झुलसा कर चकमकके चाकूसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देते। नमकका काम थोड़ी-सी लकड़ीकी सफेद राख देती थी। वह केवल भुना हुआ मांस खाते थे, उबालनेके लिए उनके पास कोई बर्तन नहीं था।

भोजनके बारेमें तेशिकताश मानवकी भी यही अवस्था रही होगी। तेशिकताश मानव गर्मियोंमें अपनी गुफासे बहुत दूर-दूर तक भटकता रहा होगा। उसको ऐसी नदी, जलाशय भी मिलते होंगे, जिनमें मछलियाँ रहती थी। शायद इनकी स्त्रियाँ भी तस्मानीय स्त्रियोंकी भाँति पानीमें गोता लगाकर या वैसे ही मछलियां पकड़ती रही होंगी। बंसी या जालका पता तस्मानीय लोगोंको नहीं था। पुरुषोंका काम शिकार खेलना था। तस्मानीय स्त्रियाँ दूसरा काम करती थी। वह अपने पुरुषोंके पास खाते वक्त बैठ जातीं, वह अपनी आज्ञाकारिणी स्त्रियों को अपने मांसमेंसे काटकर एक टुकड़ा थमा दिया करते थे। तस्मानीय पुरुष लकड़ीके बोटोंको नावकी तरह इस्तेमाल करते थे, तीन चार आदमी उस पर बैठ कर लकड़ीके भालोंसे मछली मारते थे। यही भाले नावकी लग्गीका भी काम देते थे।

वह व्यापार या चीजोंकी अदला-बदलीका ज्ञान नहीं रखते थे, न कृषि जानते थे और न पशुओंका पालन ही। उनके यहां न कोई सामन्त-राजा था, न कानून और नहीं कोई नियमित सरकार। अगर बीमारी होती, तो थोड़ा-सा खून निकालकर चिकित्सा कर लेते थे। मुर्दोको कभी-कभी वह गाड़ देते थे और कभी-कभी किसी पेड़के कोटरमें रख देते थे। यदि जलाते तो अवशेष को गाड़ देते, लेकिन खोपड़ीको या तो संस्मारकके तौरपर रख लिया जाता या पीछेसे कहीं अलग गाड़ दिया जाता था। उनका विश्वास था, कि मनुष्य मरनेके बाद अपने पितरोंके साथ एक आनन्दमय द्वीप में रहता है। झगड़ा खड़ा होने पर उनके न्याय तरीका बड़ा विचित्र था : "दोनों पक्ष वाले पास आकर आमने सामने से छातीके ऊपर अपने दोनों हाथोंको रक्खे अपने सिरको एक दूसरेके चेहरेपर हिलाते बहुत क्रोधपूर्ण चीखनेकी आवाज तब तक करते रहते, जब तक कि उनमेंसे एक थक नहीं जाता या

उसका क्रोध शांत नहीं हो जाता था।" शायद सहस्राब्दियोंके तजर्बेके बाद उन्हें युद्धकी जगह यह तरीका पसंद आया। तस्मानीय जातिका अंतिम पुरुष तृगनिनि १८७७ ई० में मरा, जिसके साथ पुरापाषाण युगकी इस प्राचीन जातिका खातमा हो गया।

(२) भाषा[१]

प्राचीन मानवने अपने पत्थरके हथियारों या हड्डियोंके रूपमें जो अवशेष छोड़े है, उनसे उनके इतिहास पर सबसे अधिक प्रकाश पड़ा है। पर, भाषा द्वारा मानवके प्रागैतिहासिक काल पर उससे भी अधिक प्रकाश पड़ा है, जितना कि शरीरके ढाँचे या हथियारोंके अध्ययनसे। शरीरके ढाँचेमें भिन्न-भिन्न जातियोंके सभी व्यक्तियोंमें वह भिन्नता नही देखी जाती, जो कि भाषाके अध्ययनसे स्पष्ट दिखाई पड़ती है। भाषाने एक दूसरे से बहुत दूर निवास करनेवाली जातियोंके पुराने संबंधका पता दिया। अफ्रीकाके पासके मदगास्कर द्वीपके निवासियोंका संबंध मलय लोगोंसे है, इसका किसको पता लगता, यदि भाषाने इसकी सूचना न दी होती। भारतीय आर्योंका, अँगरेजों, जर्मनों, और रूसियोंसे वंश-संबंध है, इसका पता नहीं लग सकता था, यदि भाषाने इसका संकेत न किया होता। लेकिन जिह्वा, तालु, ओठके अतिरिक्त स्वर-यंत्रके काफी विकास होने पर ही मानव ठीकसे वर्ण-उच्चारण कर सकता है। स्वर-यंत्रके विकासका पता मस्तिष्कके भीतरके उस क्षेत्रके विकाससे लगता है, जहाँसे भापण-यंत्र पर नियंत्रण होता है। निम्न-पुरापाषाण युगके मानव——जावा, पेकिंग और हैडलवर्ग——के स्वर-यंत्रका विकास इतना नहीं हुआ था, कि वह वर्णोंका [illegible]। मुस्तेर मानव इस विषय में कुछ आगे बढ़ा हुआ था, किंतु वर्तमान भापा-वंशों में से किसी का उसके साथ संबंध जोड़ना बहुत कठिन है। भाषा भावों के संकेत का साधन है। शब्द, स्पर्श, और गति (अंग-परिचालन) द्वारा प्राणी एक दूसरे को अपने भावों से अवगत कराते है। कुत्ता अपने स्पर्श और भिन्न-भिन्न प्रकार की अंग-गति से ही अपने भावों को नहीं व्यक्त करता, बल्कि उसके शब्दों मे भी दुःख, रुवाँसे होने, प्रार्थना, आग्रह, खतरा या आक्रमण के भावों को प्रकट करनेवाले भिन्न-भिन्न स्वर होते हैं। तो भी वनमानुष जैसे बहुत ही विकसित प्राणियों में भी किसी प्रकार की भाषा का पता नहीं लगता। मनुष्य अन्य प्राणियों की तरह संकेत द्वारा भी अपने भावों को [illegible] और वचन द्वारा भी। यह कहना कठिन है, कि इन दोनों में पहले किसका विकास हुआ। आज भी एक दूसरे की भाषा से अपरिचित व्यक्ति अथवा गूंगे-बहरे संकेत द्वारा अपने भावों को प्रकट करते है। भाषा के विकास के लिए स्वर-यंत्रों का अधिक विकसित होना अवश्यक है। लेकिन स्वर-यंत्र के भी विकसित होने पर भाषा का विकास तब तक नहीं हो सकता, या भाषा तब तक नहीं फूट निकल सकती, जब तक कि मष्तिस्क में उसका नियंत्रक-यंत्र भी विकसित न हो चुका होता। तोता-मैना इसके उदाहरण हैं। अपने स्वर-यंत्रों के विकास के कारण वह मनुष्य-जैसी भाषा बोल तो सकते हैं, किंतु नियंत्रक स्थान के अभाव के कारण केवल मनुष्य के स्वरों की नकल भर है। धीरे-धीरे बोलता आदमी ०.०७ ($\frac{७}{१००}$) सेकेण्ड में एक स्वर बोल सकता है, जल्दी बोलने में और भी कम

[१] Gen. Anth. pp. 135-40

समय लगता है। इतनी जल्दी और बारीकी मे शब्द को निकालना मनुष्य के उपर्युक्त यंत्र की करामात है।[1]

भाषा का लिपिबद्ध होना बहुत पीछे हुआ। मिस्र और असीरिया की भाषाएं आज से ४-५ हजार वर्ष पहले लिपिबद्ध हुई। मिस्र में अक्षर-संकेत न हो अर्थ-संकेत रहने के कारण उच्चारण का पता नहीं लग सकता। उच्चारण का पता तो आज की हमारी लिपिबद्ध भाषाओं की पुस्तकों द्वारा न भी पूरा हीं हो सकता। एक-एक स्वर के उच्चारण में जहाँ व्यक्ति में अन्तर देखा जाता है, वहाँ स्वरों के उतार-चढ़ाव आदि के संबंध में तो आज भी हमारी लिपियों में कोई विशेष संकेत नहीं है। देश और काल में दूरस्थ एक वंश की भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से हमें उनका संबंध मालूम होता है, तथा यह भी कि उनमें कितना परिवर्तन हुआ है। भाषाओं का इतिहास यह स्पष्ट बतलाता है, कि उनका उच्चारण, अर्थ और व्याकरण-नियम सभी परिवर्तन-शील हैं। सांस्कृतिक स्तर में जब भारी परिवर्तन आता है, तो इस परिवर्तन की गति भी तीव्र हो जाती है। सांस्कृतिक विकास जब एक तल पर रुक सा जाता है, तो भाषा में परिवर्तन भी बहुत कम होता है। हिन्दी-युरोपीय भाषा-वंश की स्लाव-जैसी भाषाओं का संश्लिष्ट (सेन्थेटिक) रूप अब तक मौजूद रहना यही बतलाता है, कि काफी समय तक वह उसी सांस्कृतिक स्तर पर रह गई। हम जानते हैं कि स्लाव जातियों के पूर्वज (शक) बहुत पीछे तक धुमन्तू पशुपाल रहे और अपने दक्षिण के पड़ोसियों के लौह-युग में चले जाने के बाद भी कुछ शताब्दियों तक पित्तल-युग में ही रहे। भिन्न-भिन्न भाषा बोलनेवाले लोगों के साथ घनिष्ठ संपर्क होने पर भी भाषा में तेजी से परिवर्तन होता है। यह गलत धारणा है कि लिपिबद्ध भाषा ही में परिवर्तन की गति मंद होती है। ग्रीनलैंड और मेकेंजी नदी के एस्किमो लोग अत्यन्त प्राचीन समय से एक दूसरे से अलग हो गये, किंतु उनकी आजकल की बोलियों में बहुत कम अन्तर पाया जाता है। अफ्रीका की बन्तू बोलियाँ भी देश और काल के भारी अन्तर के बाद भी बहुत कम परिवर्तित हुई। यह भी इसी तत्त्व को बतलाती है, कि सांस्कृतिक विकास की गति मंद होने पर भाषा में परिवर्तन की गति भी धीमी हो जाती है। दूसरी तरफ हम हिंदी-युरोपीय भाषाओं को देखते हैं, कि युरोप से लेकर एसिया तक की उनकी भिन्न-भिन्न भाषाओं और बोलियों में [illegible] के साथ परिवर्तन हुआ।

परिवर्तन में स्वर सबसे आगे रहती है, लेकिन व्यंजन भी कम परिवर्तित नहीं होते। भाषा के यह बाहरी कलेवर ही तेजी से परिवर्तित नही होते, बल्कि उनके अर्थो में भी भेद हो जाता है और कभी-कभी तो वह बिल्कुल उल्टा अर्थ देने लगते है। हिंदी और बँगला में उपन्यास से हम कथाग्रंथ का अर्थ लेते हैं, किंतु दक्षिण भारत की बोलियों में उसका अर्थ है भाषण।

जिस तरह यह कल्पना अवैज्ञानिक है, कि एक ही जोड़े से दुनिया की सभी मानव जातियाँ पैदा हुई, उसी तरह एक भाषा से दुनिया की भाषाओं का विकास मानना भी गलत है। यद्यपि आज चार पाँच भाषा-वंश ही पृथ्वी के अधिकांश देशों और लोगों में बोले जाते हैं: युरोप, अमेरिका और एसिया के भी बड़े भाग में हिंदी-युरोपीय भाषा-वंश की बोलियाँ चलती हैं। तुर्की चीनी तुर्किस्तान से लेकर तुर्की तक में बोली जाती है। चीनी भाषा भी एसिया के बहुत बड़े भूखण्ड में बोली जाती है। मलय भाषा-वंश फिलिपाइनसे मदगास्कर तक फैला हुआ है। अफ्रीका के

---

[1] Language its Nature, Devolopment and origin (O. Jasperson, 1923)

बहुत बड़े भाग में बंतू भाषा-वंश का राज्य है। लेकिन एक-एक भाषा का इतना विस्तार नव-पाषाण युग ही नहीं, बल्कि और पीछे की घटना है। युरोप के बहुत से भागों तथा भूमध्यसागर के निकटवर्ती देशों में बहुत पीछे तक अ-हिन्दूयुरोपीय भाषाएँ बोली जाती थीं। दक्षिणी अफ्रीका में बन्तू भाषा का प्रचार हाल के समय में हुआ है। तुर्की भाषा-वंश पांचवीं सदी ई० में पश्चिमी मध्य-एसिया में जरा-जरा फैलने लगा और आधुनिक तुर्की विशेषकर उसके युरोपीय भाग में तो, पंद्रहवीं सदी में उसका प्रवेश हुआ। अरबी का मिस्र और मराको की भाषा होना पैगंबर मुहम्मद (मृत्यु ६२२) के बाद की बात है। अनुसंधान से पता लगता है, कि प्राचीन काल में भाषाओं का बहुत अधिक विकेंद्रीकरण था और आज से कहीं अधिक भाषाएँ उस समय बोली जाती थी। उनमें से कुछ सदा के लिए लुप्त हो किसी एक भाषा के अधिक फैलने में सहायक हुई। सांस्कृतिक इतिहास हमें बतलाता है, कि उच्च संस्कृतियाँ अल्प-विकसित संस्कृतियों को अपने जैसा बनाने में सफल होती हैं। उच्च संस्कृति पर जल्दी पहुँचने के लिए अल्प-विकसित लोगों को जो परिवर्तन करना पड़ता है, उसमें पराई भाषा का स्वीकार भी शामिल है। भाषा वस्तुतः सांस्कृतिक अवस्था के विकास का दर्पण है। सांस्कृतिक विकास के साथ भाषा का विकास अनिवार्य है, और इसी परिवर्तन में जातियों की तरह कितनी ही भाषाओं का नाम शेष हो जाना भी आवश्यक है। भाषा-वंश बतलाता है, कि उनकी भाषाओं को बोलनेवाले खास मानव-वंश रहे होंगे अर्थात् एक मानव-वंश की एक भाषा रही होगी; किंतु भाषा रक्त के संबंध को सर्वदा निश्चित नहीं बतलाती। कितनी ही जातियाँ अपनी भाषा छोड़ दूसरी भाषा स्वीकृत कर लेती है। अमेरिका के निग्रो अपनी भाषा भूल गये हैं, और वह अब अँगरेजी बोलते हैं। पूर्वी जर्मनी के अधिकांश निवासी स्लाव-जाति के हैं, लेकिन अब वह जर्मन भाषा बोलते हैं।

§२. मध्यपाषाण-युग (१२००० वर्षपूर्व)

पहले युगों की अपेक्षा इस युग के मानव के अवशेष पश्चिमी [illegible] में बहुत जगहों पर मिले हैं। निम्न सिरदरिया में तुर्किस्तान-शहर में इसका पता लगा है। कराताउ, और म्यूकम (जंबुलिजिला), बेत्पक् दला (अलमाअता) भी मध्य-पाषाण युग के अवशेषों के लिए मशहूर हैं। अराल समुद्र के पास भी इस युग के मानव के अवशेष पाये गये हैं। किजिलकुम और कराकुमकी विशाल मरुभूमियाँ आज सोवियत पुरातत्ववेत्ताओं की आखेट-भूमि बन गई हैं। कोई आश्चर्य नहीं, यदि वहाँ ऐसे मध्यपाषाण युगीन मानव के अवशेष और भी मिल जायँ, जिनसे उस युग के इतिहास पर काफी प्रकाश पड़े। यह तो हमें मालूम है, कि आज से १०-१२ हजार वर्ष पहले से ही, जब मध्यपाषाण-युग का मानव मध्य-एसिया में रहता था, उस समय का जलवायु वहाँ के मानव के लिए अत्यन्त प्रतिकूल सिद्ध हो रहा था। हिमयुग के पश्चात् समुद्र और नदियों के सूखते जाने से यहाँ की भूमि अत्यन्त सूखी होती। जंगलों और घास के मैदानों को बिकराल रेगिस्तान अपने पेट में हजम करने गये। मध्य-एसिया के मानवों के लिए यह सत्यानाश की घड़ी थी। उसके लिए दो ही रास्ता था, या तो वहाँ रहकर लुप्त हो जायँ अथवा अन्यत्र चले जायँ। युरोप की अवस्था इस वक्त बड़ी अनुकूल थी, इसलिए

उनका उधर जाना स्वाभाविक था। भारत में इस युग के अवशेष ऊपरी गंगा से कच्छ तक मिले हैं ।[१]

जैसा कि नाम से ही पता लगता है, मध्यपाषाण युग पुरा-पाषाण और नव-पाषाण के बीच का समय है। यह मानव-प्रगति में बहुत शिथिल सा समय था। इस समय प्रवाह रुक सा गया था, उसका खुलना नव-पाषाण युग ही में देखा जाता है (यह वही समय था, जबकि युरोप में अज़िल मानव रहता था)। मध्यपाषाण-युगीन मानव की जीविका का साधन फल-संचय तथा पशु और मछली का शिकार था। अभी केवल कुत्ता मनुष्य का पालतू साथी बन सका था। ग्राम्य पशुओं में यही वह जानवर था, जो मनुष्य के घनिष्ठ संपर्क में सबसे पहले आया और आज भी उसकी स्वामि-भक्ति वैसी ही देखी जाती है।

[illegible]-युगीन मानव उस समय के प्रतिकूल वातावरण में बेत्पक्दला (अल्माअता) से अराल और कास्पियन तट तक किसी तरह अपना जीवन व्यतीत करता रहा। [illegible] के कारण उसके लिए जीवन-संघर्ष बहुत कठिन था, जिसी के कारण वह युरोप की अनुकूल भूमि की ओर गया। हिमयुग के अवसान हुए देर होने के कारण बहुत से पहाड़ हिममुक्त हो गये थे, जिसके कारण यातायात का बहुत सुभीता था। मध्यपाषाण-युग के बाद मध्य-एसिया के अनौ जैसे कितने भागों में, हम जिस मानव को पाते हैं, उसका संबंध यदि खोपड़ी में से अल्पाइन जाति से मिलता है, तो संस्कृति में उसकी मसोपोतामिया और सिंध-उपत्यका से अधिक घनिष्ठता दिखाई पड़ती है। ऐसी अवस्था में यह कहना कठिन है, कि यहाँ रहनेवाली जाति मध्यपाषाण-युगीन मानवों की संतान थी, अथवा पश्चिमी मध्य-एसिया के दक्षिणी भाग को अधिक अनुकूल पाकर भूमध्य जातीय मेसोपोतामिया और सिंध-उपत्यकाके लोगों का यहाँ स्थायी प्रवेश हो गया। सिंधु-उपत्यका या मसोपोतामिया से अनौ या अराल तट तक भूमध्य-जातीय लोगों और उनकी संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। हो सकता है, मध्यपाषाण [illegible] के पुराने निवासी युरोप की ओर प्रवास कर गये हों और पीछे उनकी जगह भूमध्यीय लोग अपनी नवीन संस्कृति के साथ आ गये हों। यदि पहले के निवासियों में कुछ रह गये हों, तो वह भी धीरे-धीरे भू मध्यीय जाति के भीतर मिल गये।

---

[१] Gen. Anth. p. 252. L' Humenite' Prehistorique p. 594 Our Early Ancesters pp. 10, 75 Prehistoric India (S. Paggot) p. 36

स्रोत ग्रंथ:

1. त्रुदी उज्बेकिस्तान्स्कओ अकदमी नाउक (ताशकंद १९४०)
2. Everyday Life in the Old Stone Age (Quinnell)
3. General Anthroplology (Boas)
4. Language its Nature, Devolopment and Origin (O. Japerson, 1923)
5. Le' Humenite' Prehistorique (J. De Morgan)
6. Prehistoric India (S. Paggot)
7. Prehistoric India (P. Mitra)
8. Language (L. Bloomfield, 1933)
9. Les Langues du Monde (A. Meillet and M Cohen, Paris 1924)
10. Researches to the Early History of Mankind (E. B. Taylor, London, 1878)

अध्याय ५

नवपाषाण-युग, अ-नवपाषाण-युग

मध्य-एसिया में मानव पाषाण-युग से नवपाषाण युग में ईसा पूर्व ५००० अर्थात् आज से ७००० वर्ष पूर्व आया। सिरदरिया की उपत्यका, सोग्द (जरफशाँ-उपत्यका), तुषार (मध्यवक्षु-उपत्यका), ख्वारेज्म (निम्न वक्षु-उपत्यका) और अराल, मेर्व (मुर्गाब, उपत्यका) आदि बहुत से स्थानो में नव पाषाण युग के अवशेष मिले हैं।

§१. नवपाषाण-युग (५००० ई० पू०)

मध्यपाषाण युग में जलवायु के अत्यन्त सूखे होने के कारण यहाँ के मानव को बहुत कष्ट हुआ। नवपाषाण युग में उसमें थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ था, जिसके कारण प्रगति का अवरुद्ध मार्ग फिरसे खुला। [illegible]—१ कृषि, २ पशुपालन, ३ मृत्पात्र-निर्माण और ४ पीस-घिस कर बने पाषाणास्त्र। कृषि और पशुरक्षाके कारण अब मानव निरा घुमन्तू नहीं रह सकता था। उसे अब एक जगह बसने की अवश्यकता हुई—इसी समय पहले-पहल ग्राम आबाद हुए। मनुष्य सामाजिक जीवन की उस अवस्था में पहुंचा, जब कि वह एक जगह रहते हुए सामूहिक काम कर सकता था और सामूहिक तौर से अपने शत्रुओं से रक्षा भी कर सकता था। अब शिकार और फल-संचय ही जीविका के साधन नहीं रह गये थे। कृषि और पशुपालन में स्त्री का अब प्रधान भाग नहीं रह गया था, इसलिए सारे पुरापाषाण-युग में चली आई मातृसत्ता का लोप हुआ और उसकी [illegible] या पितृसत्ता की स्थापना हुई। शिकार (चाहे मछली का हो या प्राणियों का) ही मध्य-एसिया के मानव की पिछले युग में प्रधान जीविका थी। पहाड़ों में जंगल था और वहाँ आज जैसे तब भी जंगली सेब, नास्पाती, अंगूर आदि फल होते थे। मानव को फल-संचय का भी अधिक सुभीता था, किंतु जिन जगहों पर नवपाषाण युग के मानव के अवशेष मिले हैं, वहाँ फल-संचय का सुभीता कम ही रहा।

१. कृषि[१]

गेहूँ और जौ मध्य-एसिया के पहाड़ों में जंगली अवस्था में मौजूद थे। आज भी लाहुल की सीमाके पार लदाखके रास्ते में नदी की कछारों के पास जंगली गेहूँ और चने मिलते हैं और लदाख जानेवाले अपने घोड़े-खच्चरों को वहाँ दो-चार दिन ठहरकर चराना आवश्यक समझते हैं। गद्दी लोग तो हर साल वहाँ अपनी भेड़ों को मोटी करने के लिए ले जाते हैं। कोई आश्चर्य नहीं, यदि

---

[१] Gen. Anth, p. p 90-99

कृषि के लिए नवपाषाण-युग के मानव ने गेहूँ और जौ को स्वीकार किया। आरंभिक गेहूँ-जौ जंगली गेहूँ जौ की तरह ही पतला होता रहा होगा। जंगली अवस्था में पशु, जलवायु अनुकूल होने पर अधिक मोटे होते हैं, किंतु पालतू बनने के बाद उनकी हड्डियाँ पतली, तथा उनके कण सूक्ष्म हो गये। पर अनाज और फल मनुष्य के हाथों में पड़कर अधिक बड़े और स्वादु बने।

कृषि का अविष्कार कैसे हुआ, इसके बारे में विद्वान् कहते हैं: शिकारी आदमी ने घास के अभाव में शिकार के पशुओं को दूसरी जगह जाने से रोकने के लिए पहले घास के तौर पर अनाज को बोना शुरू किया, जिसके खाद्य होने का परिचय उसे पीछे मिला। सूखे फल यद्यपि देर तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं, किंतु जैसा कि पहले बताया, मध्य-एसिया में उसकी सुलभता बहुत कम जगहों पर थी। शिकार के मांस को जाड़ों में भले ही कुछ महीनों तक रक्खा जा सके, नही तो जल्दी न खतम करने पर उसके सड़कर खराब हो जाने का डर रहता है। उस समय के मानव को मांस की दुर्गन्ध आज की जितनी नापसन्द नहीं थी, तो भी मांस सड़ाकर खाना स्वास्थ के लिए हानिकर है, इसका पता तो उसको था ही। अनाज ऐसी चीज थी, जिसको बहुत समय तक रक्खा जा सकता था। [illegible] तरुतल-वास बिल्कुल अनिश्चिन्तताका जीवन है। कृषि ने मानव को इसके बारे में बहुत-कुछ निश्चित कर दिया। चाहे मांस के बराबर स्वाद और शक्ति अनाज में न भी हो, किंतु उसके द्वारा महीनों के लिए आहार की चिंता का दूर हो जाना मानव-प्रगति के लिए हुई बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। शिकारी मानव को प्राय: रोज शिकार की चिंता में दौड़ते रहना पड़ता था। अपने पत्थर के हथियारों द्वारा शिकार करने में सफल होना रोज-रोज नहीं हो सकता था। कितनी ही बार उसे सपरिवार भूखे रहना पड़ता था।

खेती करने के लिए अब उसे विशेष हथियारों की अवश्यकता हुई, जो सभी हथियार पत्थर के होते थे। पुरापापाण-युग के मानव अपने पत्थर के हथियारों से पेड़ों को काट लेते थे, डालियों को काट छीलकर लकड़ी के भाले या डंडे बना लेते थे। मई १९५१ में (परमाणु-युग के भीतर) मुझे निम्न-पुरापाषाण युग के शिल्पका परिचय मिला। केदारनाथ ४ मील के करीब रह गया था। मेरे भार-वाहक तरुण नेपाली बलबहादुर ने पहिले डंडा रखने की अवश्यकता नहीं समझा था, लेकिन जब ९००० फुट से ऊपर की चढाई में साँस फूलने लगी, तो उसे डंडे की अवश्यकता मालूम हुई। वृक्षों के क्षेत्र से हम लोग ऊपर थे, किंतु झाड़ियाँ अभी खतम नही हुई थीं। झाड़ियों में डेढ़-दो इंच मोटे डंडे मिलने आसान थे, किंतु हमारे पास फल खाने के छोटे से चाकू के अतिरिक्त यदि कोई दूसरा हथियार था, तो रिवाल्वर, जिससे डंडा नहीं काटा जा सकता था। बलबहादुर अपने पूर्वजों की तरह चौबीस घण्टे खुकुरी बाँधना धर्म नहीं समझता था। लेकिन, डंडे की भारी अवश्यकता थी। पुरापाषाण-मानव का चकमक का पास में किसी तरह का छिला हथियार भी नहीं था। उसने नाले में पड़े बहुत से पाषाण-खंडों में से एक धारदार पत्थर उठा लिया, और कुछ ही मिनटों में झाड़ी में से एक अच्छा खासा मोटा डंडा काट लाया। उसी पाषाणास्त्र से उसने डंडे की कमचियाँ काटकर गाँठों को भी चिकना कर दिया, फिर छाल को छीलने लगा। मुझे डर लगा, कहीं वह इसमें अपनी कला न दिखाने लगे। मैं केदारनाथ जल्दी पहुँचना चाहता था। आकाश का कोई ठिकाना नहीं था, न जाने कब धूप छिप जाय और मैं फोटो लेने से वंचित हो जाऊँ। उसने ऊपर के थोड़े से भाग को छीलकर अपना काम खत्म कर दिया और हम वहाँ से चल पड़े। मैं अपने पूर्वजों के इस युग से परिचित था,

किंतु बलबहादुर को इतिहास से क्या काम था, उनके तो काला अक्षर भैंस बराबर था। अवश्यकता आविष्कारकी मा होती है, इसका ही यहाँ पता नहीं लगा, बल्कि यह भी मालूम हुआ, कि पाषाण-युग के सिद्धहस्त मानव ने और भी अच्छी तरह से काटने, फाड़ने, छीलने आदि कामों को अपने पत्थर के हथियारों से किया होगा। कृषि-युग के लिए आवश्यक हल को उसने पहले ही बना लिया होगा, इसमें संदेह है; किंतु वर्षा से भीगी धरती को पत्थर की कुदाल से वह खोद सकता था। आगे चलकर उसने लकड़ी के किसी तरह के हल में चकमक पत्थर का फाल [illegible]। फसल काटने के लिए उसका पत्थर का हसिया मध्य-एसिया और दूसरी जगहों में बहुत मिला है। टेढी लकड़ी में दाँत की तरह तेज धारवाले छोटे छोटे पत्थरों को जड़ दिया जाता था, यही उस समय का हसिया था। डंठल काटने के कारण पत्थर के दाँत धीरे-धीरे अधिक चिकने हो जाते हैं, ऐसे दांत बहुत से मिले हैं। कृपि के साथ तीसरा आवश्यक हथियार था आटा पीसने का ओखल-मूसल। आजकल ओखल-मूसल अधिकतर चावल कूटने या अनाज के छिलके को छुड़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मैदान में लकड़ी और पत्थर दोनों के ओखल होते हैं, किंतु मूसल लकड़ी का ही होता है। पहाड़ में पत्थर की ही ओखल होती है, जो प्रायः किसी चट्टान में गढा खोदकर बनाई जाती है। आटा पीसने का साधन उस समय ओखल-मूसल नही, बल्कि खरल से अधिक समानता रखता था। ११वीं शताब्दी में भी तिब्बत के घुमन्तू लोग किसानों से बदल के लाये अपने अनाज को पत्थर की बड़ी कुंडी में मोटे लोढ़े से पीसा करते थे। भारतीय विद्वान् स्मृतिज्ञान-कीर्ति (१०४० ई०) भेस बदल कर किसी पशुपाल के यहाँ चाकरी करते थे। एक दिन बड़ी रात तक मालकिन के हुक्म से आटा पीसते हुए उनको झपकी लग गई, और शिर लोढ़े से जाकर टकरा गया। सत्तू के लिए भूना जौ कुछ बिखर गया, जिसके लिए मालकिन ने गालियाँ देना जितना आवश्यक समझा, उतना बेचारे स्मृति के शिर में लगी चोट के लिए सान्त्वना देना जरूरी नहीं समझा। नवपाषाण-युग में अभी न हाथ की चक्की का पता था न पनचक्की का। उस समय यही पत्थर की कुंडी-लोढ़ा या ओखल-मूसल काम देता था। आज भी तिब्बत आदि देशों में सत्तू खाने का रवाज है। इससे आदमी रोटी बनाने के झंझट से ही नहीं बच जाता, बल्कि जहाँ रोटी बनाने के लिए रोज-रोज लकड़ी जमा करने और चूल्हा फूँकने की तरद्दुद है, वहाँ एक दिन भूनकर सत्तू पीस लेने पर महीनों के लिए छुट्टी हो जाती है। भारतीय [illegible] डेढ़ हजार वर्ष पहले भारत पहुँचे। उनके प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में ही नहीं, बल्कि पीछे के भी पुराने संस्कृत-ग्रंथों में रोटी का पता बहुत कम लगता है। सत्तू (सक्तु) और छालनी तो वैदिक काल में दृष्टान्त रूप में [illegible] थे। अनौ की खोदाई में[1] तंदूर का भी पता लगा है, जिससे मालूम होता है, कि मध्य-एसिया के नवपाषाण-युगीन मानव तंदूरी रोटी से अपरिचित नहीं थे। शायद मिट्टी या पत्थर के तवों पर भी वह रोटी बना लेते थे।

२. पशुपालन

तिब्बत के ऊँची पथारों में गदहे की जाति का एक जानवर (क्याङ्) पाया जाता है, जो खच्चर के जितना बड़ा होता है। तिब्बती लोगों ने क्याङ् को पालतू बनाने की बहुत कोशिश

---

[1] Exploration in Turkistan pp. 16-27

को, किंतु वह उसमें सफल नहीं हुए। पालतू बनाने का मतलब केवल साथ रखना ही नहीं, बल्कि जानवर से काम लेना भी है। साक्या के लामा के खच्चरों के साथ मैंने एक क्याङ् को देखा था। क्याङ् का छोटा बच्चा कहीं से मिल गया था, जिसे अपने खच्चरों के साथ लामा ने पाल लिया और अब वह बड़ा होने पर भी खच्चरों के साथ रहता था। लेकिन, उस पर भला कौन बोझ लाद सकता था? वह प्राण देने के लिए तैयार हो जाता, यदि कोई पीठ पर कुछ बाँधने की कोशिश करता। नव-पाषाण युग ही में नहीं, बल्कि उससे पहले भी मनुष्य के पास किसी जंगली जानवरों के बच्चे का पल जाना मुश्किल नहीं था, और ऐसे हरिन, कुत्ते, भेड़ या दूसरी जाति के छोटे बच्चे को कभी किसी ने पाल लिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन असली पशुपालन तब कहते है, जब कि मनुष्य अपने घर में नर-मादा पशुओं को रखकर उनकी संतान बढ़ाता है। मध्य-पाषाण युग में कुत्ता पालतू हो गया था, यह हम बतला आये हैं। विस्तार के साथ पशुपालन का व्यवस्थित प्रबंध नवपाषाण-युग में ही हुआ। यह बतला चुके हैं, कि पालतू जानवरों की हड्डियाँ पतली और सूक्ष्म होती हैं, जब कि उसी जाति के जंगली प्राणियों में उससे उल्टा पाते हैं। यदि भूमि अत्यन्त हरी-भरी हो, तो, जंगली जानवर बड़े कद्दावर होते हैं। बारहसिंगे तो वनस्पति की कमी के कारण जहाँ शरीर में छोटे होते जाते हैं, वहाँ उनकी सींगें छोटी तथा शाखायें कम होती जाती हैं, तो भी उनकी हड्डियों की बनावट पालतू जानवरों जैसी नहीं होती। भेड़, गाय और सूअर मध्य-एसिया में इस समय पालतू बनाये गये। घोड़े के पालतू बनने में कुछ संदेह है। मध्य-एसिया में ही पालतू बनाई गई भेड़ें, यहाँ से गये लोगों के साथ युरोप गई। यद्यपि जंगली गदहा मध्य-एसिया में भी रहा होगा, किंतु गदहे और बिल्ली को सबसे पहले पालतू बनाया मिस्रियों ने। मध्य-एसिया का ऊँट दो कोहानों का होता है, जब कि अरब और दूसरी जगह के ऊँटों के पीठ पर एक ही कोहान होता है। ऊँट नवपाषाण-युग के पीछे मध्य-एसिया में पालतू बनाया गया।

३. मृत्पात्र

मिट्टी के बर्तन बनाना भी नवपाषाण-युग की एक विशेषता है। आग का पता निम्न-पुरापाषाण-युग में ही लग गया था। उसी समय (युग के पिछले भाग में) लकड़ी या पत्थर से घिस कर आग पैदा करना भी आदमी को मालूम हो गया था। वह अपने मांस को आग पर भूनकर खाना जानता था। अनाज की उत्पत्ति से उसे मिट्टी के बर्तनों की अधिक आवश्यकता मालूम हुई, इसीलिए इस समय मृत्पात्रों के बनने और उनके उपयोग का विशेष प्रचार हुआ। कई-कई प्रकार और रंग के मिट्टी के बर्तन बनने लगे—पानी रखने के बर्तन, पानी पीने के बर्तन, [illegible] नाना प्रकार के भेद इसी समय प्रकट हुए। अभी कुम्हार का चक्का नहीं बन पाया था। श्रम का विभाजन भी उतना नहीं हुआ था और एक ही आदमी या परिवार पीर-बबरची-भिश्ती-खर सबका काम देता था। तिब्बत में आज भी कुम्हार की अलग जाति या पेशा नहीं है, लोग स्वयं मिट्टी के बर्तन बना लेते हैं। कितने ही बर्तन वहां आज भी कुम्हार के चक्के की सहायता से नहीं बनते। चाय रखने की खोटी (टोटीदार हैण्डलदार सैकी) तो बहुधा हाथ से बनाई जाती, और कितने ही हाथ उसमें अद्भुत कला का चमत्कार दिखलाते हैं। नव पाषाण-युग के मानव भी अपने हाथों से ही मिट्टी के बर्तनों बनाया करते थे। गोलाई लाने के

लिए वह मिट्टी की गोल-गोल मेखलाएँ बना कर एक के उपर एक रख देते और फिर गीले हाथों से भीतर-बाहर उसमें चिकना देते। यदि मिट्टी के बर्तनों को खुले आंवे में पकाया जाय, तो हवा का प्रवेश निर्बाध हो जाता है। मिट्टी में लौह-कण मौजूद रहते हैं, पकते वक्त हवा के साथ इनके सीधे संबंध से बर्तन लाल हो जाते हैं। यदि बन्द हवा के साथ भट्ठी के भीतर बर्तन को पकाया जाय, तो हवा के सम्पर्क से बहुत-कुछ वंचित रहने के कारण बर्तन लाल न हो, भूरा या राखके रंग का हो जाता है। यदि मिट्टी में कुछ कोयला पीसकर मिला दिया जाय, तो बर्तन का रंग काला हो जाता है। यह बातें नव पाषाण-युग के मानव को मालूम थीं ?

४. पाषाणास्त्र[1]

पुरापाषाण-युग के मानव के हथियार बहुत कुछ फ्लिन्ट (चकमक) पत्थर के होते थे, जो मामूली पत्थर से ज्यादा कड़ा होता है, इसीलिए उसकी मांग बहुत अधिक थी, और वह हर जगह सुलभ नहीं था। खड़िया की खानों क खड़िया के स्तर में हड्डी की तरह यह मिला करते हैं। नवपाषाण-युग का मानव अपने पत्थर के हथियार से खोदकर कुआँ सा बनाते हुए चकमक के स्तर पर पहुँचता था। कभी-कभी इसके लिए उसे २०-२० फुट गहरी खुदाई करनी पड़ती थी। चकमक को निकाल लेने के बाद कुएँ फिर उसी गड्ढे में कभी-कभी ढह जाते थे। बेल्जियम में स्पीनेस की चकमक खान में पुरापाषाण-युग के दो पिता-पुत्र खनक खान के नीचे उतरकर अपना काम कर रहे थे, इसी समय उनपर से छत गिर गई और दोनों दबकर मर गये। आज भी उनका शरीर ब्रुसेल्स के राष्ट्रीय म्यूजियम में रखा हुआ है। चकमक पत्थर की दुर्लभता ही कारण थी, जिसमें कि नयी तरहके हथियारों के बनानेका दिशा-निर्देश किया। खतरा शायद कभी ही कभी होता था। खड़िया की खानों में चकमक की रीढ़ ढूँढ़ना और निकालना इतना समय और श्रमसाध्य था, कि आदमी ने उसकी जगह साधारण पत्थरों को भी इस्तेमाल किया। उसने देखा कि रगड़कर पालिश करने से दूसरे पत्थरों में भी धार आ जाती है। [illegible]-युग के मानव के हथियार की सबसे बड़ी विशेषता थी। १८६६ ई० में डेनमार्क के कुछ प्रागैतिहासिकों ने नवपाषाण युग की कुल्हाड़ी की परीक्षा ली। उन्हें मालूम हुआ, कि केवल इन्हीं हथियारों से जंगल के कैल और दयार जैसे दरख्तों को काटा जा सकता है और इनके सहारे पेड़ के तने को खोदकर नाव बनाई जा सकती। नवपाषाण-युग के मानव ने घिसे पालिश किये हथियारों के बनाने के साथ-साथ पुराने ढंग के चकमकवाले पाषाण-अस्त्रों को, जो कि छाँट और चैली निकालकर बनाये जाते थे, छोड़ा नहीं। पाषाण-अस्त्रों के अतिरिक्त उस समय लकड़ी और सींग के हथियार भी इस्तेमाल किये जाते थे।

५. जलवायु

पुरापाषाण-युग के मानव के लिए तापमान की अनुकूलता-प्रतिकूलता सब से अधिक ध्यान देने की बात थी। तापमान गिरने से सरदी बढती, जिसके कारण शिकारके जानवर दक्षिण

---

[1] Gen. Anth. pp. 152-62

की ओर अधिक गरम जगहों में चले जाते। इसलिए शिकारी को भी दक्षिणाभिमुख यात्रा करनी पड़ती। इसके अतिरिक्त अपने शरीर के लिए भी उसे अधिक चमड़ा पहनने की अवश्यकता होती। नवपाषाण-युग का मानव अब कृषि-जीवी भी था। कृषि में तापमान से भी अधिक नमी अथवा वर्षा के न्यूनाधिक होने पर ध्यान देना पड़ता। मध्य-एसिया में जहां मध्य-पाषाण-युग वर्षा और जल के अभाव का समय था, वहाँ नवपापाण-युग अपेक्षाकृत अधिक आर्द्र था। इसके कारण मानव वहाँ वर्षा के भरोसे खेती कर सकता था। अभी नहरों द्वारा सिंचाई करने का समय नहीं आया था। इस नमी के कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता था, जहाँ यह वनस्पति के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होती थी, वहाँ उसके कारण मक्खियाँ और मच्छरों को भी बहुत सुभीता था, जिनकी भरमार से तरह-तरह की बीमारियाँ होती थीं। मृत्यु का तुलनात्मक अध्ययन भी हमें इसी परिणाम पर पहुँचाता है। भिन्न-भिन्न युगों के भिन्न-भिन्न आयु के लोगों में प्रतिशत मृत्यु-संख्या निम्न प्रकार थी[1]——

युग	आयु : ०-१४	१५-२०	२१-४०	४१-६०	६० से ऊपर
मध्य-पुरापाषाण	४०	१५	४०	५	
उपरिपुरापाषाण	२४.५	९.८	५३.९	११.८	
मध्य-पाषाण	३०.८	६.२	५८.५	३	१.५
नवपाषाण	,,	,,	,,	,,	,,
प्राचीनपित्तल (आस्ट्रिया)	७.९	१७.२	३९.९	२८.६	७.३
१९वीं सदी (,,)	५०.७	३.३	१२.१	१२.८	२१
२०वीं सदी (,,)	१५.४	२.७	११.९	२२.६	४७.४

यद्यपि यह विवरण मध्य-एसिया नही मध्य-युरोप (अस्ट्रिया) का है, तो भी हम मध्य-एसिया के नवपाषाण युग के बारे में भी कह सकते हैं, कि उसके अधिकांश मानव २१ से ४४ वर्ष की उमर में मर जाते थे, उसके बाद १४ वर्ष से नीचे के लड़के ज्यादा मरते थे। ४० वर्ष से ऊपर जीनेवाले बहुत थोड़े ही आदमी होते थे।

६. अनौमें नवपाषाण-युग[2]

पश्चिमी मध्य-एसिया के दक्षिण-पश्चिम कोण पर तुर्कमानिया सोवियत गणराज्य की राजधानी अश्कावाद से थोड़ी दूर पश्चिम अनौ के प्राचीन ध्वंसावशेष हैं, जिनकी खुदाई १९०३ में अमेरिकन पुरातत्त्ववेत्ता राफेल पम्पेलीने की थी। यह स्थान ईरान और सोवियत की सीमा पर अवस्थित कोपेत दाग पर्वतमाला से थोड़ा उत्तर में है। पम्पेलीने यहाँ ध्वंसावशेषों की खुदाई के अतिरिक्त अश्कावाद के एक पाताल-कूप के भिन्न-भिन्न स्तरों की भूस्थिति का भी परिचय दिया है। इस कुएँ में २२ सौ फुट तक नल धँसाया गया था, तो भी चट्टान का पता नहीं लगा

---

[1] Progress and Archaeology p. 111

[2] Exploration in Turkistan vol. I p. 16

था। २१सौ फुट पर भूरे रंग की चिकनी मिट्टी मिली थी। उसके ऊपर कभी पत्थर के ढोंके, कभी भूरी मिट्टी, १८ सौ फुट पर बालू, १७ सौ फुट पर गोल-गोल पत्थर इसी तरह आगे इन्हीं चीजों को पाया गया। ६०० से ८०० फुट की गहराई में हिमयुग का प्रभाव दिखाई पड़ा। इन स्तरों से पता लगा, कि मध्य-एसिया के जलवायु में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। अनौ में खुदाई तीन जगहों पर हुई थी, जिसमें उत्तरी कुर्गान (उत्तरी डीह) की खुदाई वर्तमान तलसे २० फुट नीचे तक की गई। यह कुर्गान आस-पास के धरातल से २० फुट ऊंचा है। उत्तरी कुर्गान में नवपाषाण-युग और अनव-पाषाण युग के अवशेष मिले थे। अनौ के नवपाषाण-युगीन लोग कच्ची ईटों के आयताकार मकानों में रहते थे। घरों की छतें आज की तरह मिट्टी की नहीं, बल्कि फूस की होती थीं। आजकल वर्षा के अत्यन्त कम होने के कारण सारे मध्य-एसिया में मिट्टी की छतें होती हैं। यह मिट्टी की छतें कौशांबी और रायबरेली से पच्छिम उराल पर्वतमाला तक चली जाती हैं। पूरब में मिट्टी की छतों का स्थान फूस की झोपड़ियाँ या खपड़ैलके मकान लेते हैं। यही अवस्था प्रागैतिहासिक कालसे चली आ रही है। पूरबमें मिट्टीकी छतोंका रवाज नहीं है, उसका कारण मिट्टीका कमजोर होना नहीं, बल्कि वर्षाका आधिक्य है। अनौमें फूसकी झोपड़ियाँ यही बतलाती हैं, कि ६ हजार वर्षपूर्व वहाँ आजकी अपेक्षा वर्षा अधिक होती थी। तो भी वह बहुत अधिक नहीं होती थी, नहीं तो कच्ची ईटोंका स्थान मिट्टीकी रद्देवाली दीवारें लेती। पक्की ईटोंका बनाना तभी सुकर था, जब कि आस-पासमें जंगल काफी होता। करीब-करीब उसी समयसे थोड़ा पीछे मोहनजोदडोमें पक्की ईटोंका उपयोग होता था।

अनौ के मानव हाथसे मिट्टीके बर्तन भी बनाते थे, जो पतले किंतु देखनेमें भद्दे होते थे। अपने बर्तनोंपर वह भिन्न-भिन्न ज्यामितीय आकृतियाँ बनाते थे। मिट्टीकी तकली पर वह ऊन कातते थे, लोढ़े और कुंडीसे अनाज पीसते थे। उनकी खेती गेहूँ और जौकी थी, जिसकी भूसीको मोटे बर्तनोंके बनानेकी मिट्टीमें सान लेते थे। उनके शिकारके जन्तुओंमें सूअर, लोमड़ी, भेड़िया, हरिन आदि थे। सीनेके लिये हड्डीका सूआ इस्तेमाल करते थे। इनके हथियार छिले हुए चकमक पत्थरके होते थे। लकड़ीके डंडे और पत्थरकी मुंडीकी गदा इनका युद्धका हथियार था। तीर और भालेके फल या गोफन (ढेलवाँस) के पत्थरका भी उपयोग इन्हें मालूम नहीं था। इनके शिकार किये हुए पशु ऐसी आयु और आकारके थे, जिन्हें आसानीसे मारा जा सकता। घरके भीतर मिट्टीके फर्शके नीचे यह अपने बच्चोंको दफना देते थे, साधारण मुर्देको बाहर फर्शके नीचे दबाते थे। शवके साथ गुरिया अन्य उपभोगकी चीजें और खान-पानकी वस्तुएँ भी दफनाते थे। शायद बच्चे देवताको प्रसन्न करनेके लिए घरकी फर्शके भीतर बलि रूपमें दबाये जाते हों। अन्दमनके आदि-निवासी भी बच्चोंको घरके भीतर और बड़ोंको बाहर दफनाते हैं। दाँत न निकले बच्चे रोममें भी दफनाये जाते थे, जबकि सयानों को आगमें जलाना होता था। भारतके हिंदुओंमें यह प्रथा आज भी देखी जाती है। सबसे नीचे १० फुट मोटाईवाले प्राचीनतम स्तरमें पालतू पशुओंका पता नहीं लगता, बल्कि हाँ, शिकार किये हुए जंगली पशुओंकी हड्डियाँ मिलती हैं। पम्पेलीने नवपाषाण-युगीन स्तरमें निम्न चीजोंका भाव और अभाव उल्लिखित किया है[१]—

---

[१] Exploration in Turkistan p. 60

भाव	अभाव
हस्तनिर्मित रेखा-रंजित मृत्पात्र	पालिश किया पात्र या गुरिया
गेहूँ-जौकी खेती	पक्की ईंटें
कच्ची ईटके आयताकार गृह	बर्तनकी मुठिया
हड्डीका सूआ	उत्कीर्ण पात्र
चकमकके सीधी धारवाले हथियार	सोना-रूपा
मिट्टीकी तकली	राँगा
तांबे-सीसेका हलका-सा ज्ञान	लोहा
पीसनेका पत्थर	धातुके फल
फीरोजेकी मणियाँ	पशु, मनुष्य या वृक्षके चित्र
दीर्घश्रृंग गाय, सूअर, घोड़े	कुत्ता
घरमें सिकुड़े शिशुकी समाधि	ऊँट
गौ, भेड़, हरिन, बारहसिंगा, घोड़ा, भेड़िया और सूअरका शिकार	बकरी

इस स्तरमें जिन चीजोंका अभाव था, उनमेंसे कितनी ही ऊपरके स्तरोमें मिलीं।

§२. अनवपाषाण-युग[1] (३००० ई० पू०)

जैसा कि नामसे प्रकट है, यह एक अवान्तर युग था, जब कि पाषाण-युगका अन्त हुआ, किंतु धातु-युगका आरंभ नहीं हो पाया। अनौ की खुदाई में हम देख आये हैं, कि इससे पहलेके युगमें भी तांबे-सीसेका हलका-सा परिचय था, किंतु असली धातु-युगके आरंभ होनेके लिये आवश्यक है, कि आदमी धून (धातुपाषाण) को गलाकर धातु बना सके। यह भी याद रखना चाहिए, कि पाषाण-युगका अन्त दुनिया के सभी देशोमें एक समय नहीं हुआ। जहाँ मेसोपोतामियामें [illegible] अन्त ३५०० ई० पू० में होता है, वहाँ डेन्मार्कमें १६०० ई० पू० में और न्यूजीलैण्डमें उसका अन्त सन् १८०० ई० मे ही जाकर होता है, जबकि वहाँके आदिम निवासियोंका युरोपियन जातिसे सम्पर्क होता है। अनौमें इस स्तरको पम्पेलीने द्वितीय-संस्कृति कहा है, जो कि ऊपरके तलसे २५ फुट नीचे है। पम्पेलीने इसका काल ६०००-५००० ई० पू० माना है, लेकिन अधिकांश विद्वानोंके मतसे यह समय ४००० ई० पू० से अधिक पुराना नहीं हो सकता। उस कालमें निम्न वस्तुओंका भाव और अभाव देखा जाता है—

भाव	अभाव
मृत्पात्र पूर्ववत्	कुम्हारका चक्का
तन्दूर पात्र	पक्की ईंटें
घर पूर्ववत्	बर्तनकी मुठिया
चकमक का हँसिया, सूआ, गदा और गोफन	उत्कीर्ण पात्र

[1] Le' Humanite' Prihistorique, 590-95

भाव	अभाव
मिट्टीकी तकली	सोना-रूपा
तांबे और सीसेका थोड़ा-सा ज्ञान	राँगा-पीतल
पीसनेका पत्थर	लोहा
छोटी-बड़ी सींगवाली गायें, सूअर, घोड़े,	धातुके फल
बकरी, ऊँट, कुत्ता और मुंडिया भेड़	पशु और मनुष्यके चित्र
घरमें शिशु-समाधि	

अनवपाषाण-युगमें खेतीके अतिरिक्त पशुओंको पालतू बनानेका भी प्रयास देखा जाता है, यद्यपि हथियारोंमें अभी कोई परिवर्तन नही हुआ था। हत्थेके बिना मिट्टीके बर्तन अब भी बनते थे, लेकिन उनको लाल और दूसरे रंगकी रेखाओंसे अलंकृत किया जाता था। तांबेके छुरे का होना संदिग्ध-सा मालूम होता है। कुत्ता, बकरी, ऊँट और बिना सींगकी भेड़को इस समय पालतू बना लिया गया था। अनौमें इससे पहलेके स्तरमें भी फीरोजेकी मणियाँ मिली हैं। तरह-तरहके आभूषणोंसे शरीरको सजाना और पहलेसे चला आता था। फीरोजाकी खानें अनौ से थोड़ा ही दक्खिन ईरानके भीतर मिलती हैं। ऊँट शायद पूरबसे लाकर पालतू किये गये।

§३. मानव-जाति

मुस्तेर मानव [illegible] भेद रखता था। उसको आजकी किसी जातिसे मिलाना संभव नहीं है। यद्यपि प्रकृतिके और स्थानोंकी तरह प्राणियोंमें भी विकास सर्पकी गतिसे ही नहीं होता, बल्कि कभी-कभी मेढ़ँक-कुदानकी तरह एकाएक जाति-परिवर्तन भी हो जाता है। इस नियमके अनुसार हजारों वर्षोंमें एक मानव-जातिसे विलक्षण शरीर-लक्षणवाली दूसरी मानव-जाति पैदा हो सकती है। इस प्रकार तेशिकताश-मानव ३०-३५ हजार वर्ष बाद मध्यपाषाण-युगके मानवके रूपमें परिणत हो सकता है, किंतु तो भी इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। मध्यपाषाण-युगके अन्तमें जो मानव अपने पालतू कुत्तोंके साथ मध्य-एसियासे पहले-पहल युरोपकी ओर गया, वह हिंदू-युरोपीय जातियोंका पूर्वज था। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए, कि हिंदू-युरोपीय जातियोंके निर्माणमें किसी और रक्तका संमिश्रण नहीं हुआ है। अनौमें मिली नवपाषाणयुगकी खोपड़ियाँ दीर्घकपाल थीं। विशेषज्ञ बतलाते है, कि इन खोपड़ियोंमें वही सारे लक्षण मिलते हैं, जिन्हें कि भूमध्यीय जातिकी विशेषता माना जाता है। उनमें मंगोलायित खोपड़ीसे कोई समानता नही है। यह खोपड़ियाँ बतलाती हैं, 'भूमध्मीय [illegible] एक शाखा मध्य-एसियाके भीतर घुस गई थी।'

मध्य-एसियाके भिन्न-भिन्न भागोंमें जिन जातियोंके अवशेष मिले हैं, उनपर एक विहंगम दृष्टि डालनेसे मालूम होगा, कि अन्तिम हिमयुगके बीच तथा उसके कई सहस्राब्दियों पीछे तक मुस्तेर (नेयंडर्थल) मानव यहाँ रहता था। [illegible] जब तक स्थायी साधन नहीं प्राप्त हो, और जब तक प्रकृति और प्राणि शत्रुओंसे अपनी रक्षा करनेमें सफल नहीं हो जाये, तब तक प्रजननकी अपार क्षमता रहने पर भी मानव-वंश तेजीसे नहीं बढ़ सकता। अपने घातक शत्रुओं पर कुछ हद तक विजय करके ही मानव फल-फूल सकता है। गुहाओंमें रहनेवाला मुस्तेर-मानव मध्य-एसियामें बहुत ही कम संख्यामें रहा होगा, यद्यपि, इसका यह अर्थ नहीं कि उसके अवशेष

अभी जिन दो-चार जगहोंमें मिले हैं, उन्हें छोड़ और स्थानोंमें वह नहीं मिल सकते। मध्यपाषाण-युगीन मानव भी बहुसंख्यक नहीं हो पाया होगा, तो भी मुस्तेरसे उसकी संख्या अवश्य बड़ी होगी। मध्यपाषाण-युगका मानव आधुनिक [illegible] संबंध रखता था और वही शायद हिंदू-युरोपीय जातियोंका पूर्वज था। यह भी बतलाया जा चुका है, कि इसी मानवने नवपाषाण-युगीन संस्कृतिको अपने साथले जाकर युरोपमें इसकी नींव डाली। युरोपमें जो खोजें हुई हैं उनसे यह बात मान ली गई है, कि मध्य-एसियासे आया यही मानव युरोपकी पुरानी जातियोंको अपनी संस्कृति और शस्त्रसे पराजित करनेमें सफल हुआ, जिसके परिणामस्वरूप पुराने निवासियोंमेंसे कितने ही या तो मर-हर गये, या अपने पुराने निवासस्थानको छोड़कर एस्किमो लोगोंके रूपमें दूर किनारों पर भाग गये, अथवा विजेताओंमें घुल-मिल गये। मध्य-एसियामें मध्यपाषाण-युगीन मानवों (हिंदू-युरोपीय जातियोंके पूर्वजों) के कुछ भाग रह गये या नहीं? अभी तक जो अनुसंधान हुआ है, उससे यही पता लगता है, कि अगले नवपाषाण-युगमें अनौ या ख्वारेज्मके नवपाषाण-युगीन ध्वंसावशेषोंसे जिस मानवका पता लगता है, वह भूमध्यीय जातिका था। साथ ही यह भी स्वीकार किया जाता है, कि मध्य-एसियासे जानेवाले हिंदू-युरोपीय जातिके पूर्वज युरोपमें जाकर नवपाषाण-युगीन संस्कृतिका प्रचार करते हैं, अर्थात् नवपाषाणास्त्रोंके साथ जौ-गेहूँकी खेती और गाय-भेड़के पालन करनेका काम इन्हीं के द्वारा वहाँ आरंभ होता है, इससे सिद्ध होता है, कि नवपाषाण-युगमें पुरातन हिंदू-युरोपीय मानवका संबंध मध्य-एसियासे था। भूमध्यीय जातिका ख्वारेज्म तक घुस जाना क्या यह नहीं बतलाता, कि पुरातन हिंदू-युरोपीय लोग केवल जलवायुकी प्रतिकूलताके कारण ही पश्चिमकी ओर भागनेके लिए मजबूर नहीं हुए, बल्कि भूमध्यीय जातिके यह मानव-शत्रु भी उनके पीछे पड़े हुए थे?

मुस्तेर, प्राग्-हिंदू-युरोपीय और दीर्घकपाल भूमध्यीय इन्हीं तीन जातियोंका इस समय तक मध्य-एसियामें होना सिद्ध होता है। इन तीनोंका संबंध किस तरहका रहा, यह अभी अंधकारमें है। नवपाषाण-युगसे भी पहलेसे मध्य-एसियाकी भूमि की अपनी विशेषता चली आती है, जिसके कारण उसके गर्भसे ऐसे प्रकाशके निकलनेकी सम्भावना है, जो मानवके भूले हुए इतिहास-को अँधेरे से उजाले में लादें। अतीतकालमें प्राची-भूमि, क़िज़िलकुम और कराकुमके विशाल रेगिस्तान मानवके लिए सबसे बड़े शत्रु रहे। इन रेगिस्तानोंके भीतर भूलकर हजारोंने अपने प्राण गँवाये। इतना ही नहीं रेगिस्तान हमेशा मानवकी भूमि पर आक्रमण करता रहा, साल-साल वह खेतीकी भूमि ही नहीं, गाँव और नगरोंको उदरसात् करता रहा। आज केवल ख्वारेज्मके रेगि-स्तानोंमें ही २०० नगरों और बस्तियोंके ध्वंसावशेषोंका पता लगा है। सोवियत इतिहासज्ञ और पुरातत्त्ववेत्ता इन ध्वंसावशेषोंके महत्त्वको समझते हैं। वह जानते है, कि जिस तरह बालूने अपनी ध्वंस-लीला दिखलानेमें कोई कसर उठा नहीं रखी, उसी तरह उसने बहुत सी अ मोल ऐतिहासिक सामग्रीको अपने नीचे सुरक्षित रक्खा है। सोवियत सरकार दूसरे सांस्कृतिक कार्योंकी तरह पुरातत्त्वके अनुसंधानों पर भी बड़ी उदारतासे पैसे खर्च करती है। पिछले १४-१५ वर्षोंसे ख्वारेज्मके रेगिस्तानमें यह अनुसंधान जारी है। १९४९ ई० में इसके लिए हवाई जहाजोंने १० हजार मीलोंकी उड़ान की। मोटरों, लारियोंका बड़े व्यापक रूपमें उपयोग किया गया। उस साल ७ दर्जनके करीब चर्मपत्र पर लिखे अभिलेख इस मरुभूमिने दिये। यह अभिलेख उस भाषामें लिखे हुए हैं, जो लुप्त हो चुकी है। १७०० वर्ष पुरानी भाषाका नमूना प्राप्त करना पुरातत्ववेत्ताओंके

लिए कम प्रसन्नताकी बात नहीं है। पुरातात्त्विक अभियानोंके अतिरिक्त रेगिस्तानकी भूमिमेंसे करोड़ों एकड़ जमीनको खेत और बगीचेके रूपमें परिणत करनेके लिए वक्षु नदीको कास्पियन सागरसे मिलानेवाली महानहरकी खुदाई हो रही है। इससे जहाँ निर्जन मरुभूमि पर मानव बस्तियाँ बसेंगीं, वहाँ पुराने ध्वंसावशेषोंके भीतरसे मानव-इतिहासके रहस्यको ढूँढ़ निकालना आसान होगा।

अनव पाषाण-युगके बाद हम धातु-युगमें प्रवेश करते हैं। कृषि और धातुशिल्प मिलकर ग्रामों और नगरोंको स्थायित्व प्रदान करते हैं, किंतु मध्य-एसियामें घुमन्तू जीवनका सर्वथा उच्छेद हाल तक नहीं हो पाया था। नवपाषाण-युगमें भी घुमन्तू और स्थायी निवासियोंका संघर्ष रहा, जो संघर्ष सोवियत क्रान्तिके बाद ही खतम हुआ। बीचका सारा मध्य-एसियाका इतिहास घुमन्तूओं और अघुमन्तूओंके संघर्षका इतिहास है। अघुमन्तू दासता, अर्धदासतासे होते समान्तवाद तक पहुँच गये थे, जबकि धुमन्तू जातियाँ बहुत-कुछ जनयुग अथवा जन-सामन्त युग तक ही अपने जीवनको सीमित रखती रहीं।

स्रोत-ग्रंथ :

1. General Anthropology (Boas)
2. Exploration in Turkistan (R. Pumpelly) vols. I, II
3. Progress and Archaeology (V. G. Childe)
4. Le' Humanitie' Prehistorique (J. de Morgar)
5. Our Early Ancesters (M. C. Burkitt)
6. Geology in the Life of Man (Dumcan Leith)
7. The Evolution of Man (G. Elliot Smith, London 1927)
8. The Skeletan Remain of Early Man (G. E. Smith)
9. Antiquity of Man, 2 vols (Arthur Keith 1925)
10. New Discovery relating to the Antiquity of Man (A. Keith, 1931)

भाग २

धातु-युग (३०००-७०० ई० पू०)

अध्याय १

ताम्र-युग (२५००-१५०० ई० पू०)

१. युगकी विशेषता

पाषाण-युग मानवका प्रथम युग है, जो भिन्न-भिन्न विद्वानोंके मतानुसार ३ लाख या १ लाख वर्ष तक रहा। ताम्र-युगके साथ मानव धातु-युगमें प्रवेश करता है, जो आजसे पहिले ७००० से ४५०० वर्ष तक भिन्न-भिन्न देशोंमें चला आया। सभी देशोंमें ताम्रयुग एक साथ नहीं शुरू हुआ। मिस्र और मेसोपोतामियामें उसका आरंभ सबसे पहले (३५०० ई० पू०) हुआ। हो सकता है, भूमध्यीय जाति से मध्य-एसियामें घुस आनेके समय हिंदी-युनोरीय-पूर्वजोंने धातुकी कला सीखी। किसी देशमें ताम्रयुग और पित्तलयुगमें अन्तर रहा है, जैसा कि मध्य-एसियामें २५०० से १५०० ई० पू० तक ताम्रयुग रहा और १५०० से ७०० ई० पू० तक पित्तलयुग; परन्तु कई देशोंमें दोनोंका अन्तर इतना कम रहा, कि पाषाणयुगसे सीधे पित्तलयुगमें मानवका प्रवेश माना जा सकता है।[1] पाषाणयुगके अन्तमें भी कहीं-कहीं प्राकृतिक रूपमें तांबेके कठोर डले (ओहायो भाँति) आदमीको मिल जाते थे, जिन्हें विना आगमें गरम किये वह ठोंक-पीटकर तेज बना लेता था; किंतु ऐसे बनाये हुए हथियारोंके कारण इसे हम ताम्रयुग नहीं मानते। ताम्रयुग तब शुरू होता है, जब कि आदमी तांबेकी धून ([illegible]) को लेकर उसे कोयलेकी आगमें पिघले द्रव्यको अपने भिन्न-भिन्न उपयोगके हथियारोंके रूपमें ढालने लगा। यह विद्या आदमीको बहुत पीछे मालूम हुई। प्राचीन मानव धधकते लकड़ीके कोयलेको एक गढ़ेकी पेंदीमें रख देता, और उसके ऊपर एकतह धून और एक तह कोयलेको रखता ऊपर तक भर देता। फिर फूँकनेकी फोंफियाँ लगाकर कई आदमी हवा देने लगते, जैसा कि आज भी कहीं-कहीं सोनार करते देखे जाते है। पीछे आदमीको मालूम हुआ, कि मुँहसे फूँकने की जगह चमड़ेकी भाथीसे हवा देना ज्यादा अच्छा है। इस प्रक्रियासे वह धूनसे धातु अलग करने लगा। १९ वीं शताब्दीके मध्य तक कुमाऊँ-गढ़वालमें और मध्य-प्रदेशमें आज भी कहीं-कहीं जनजातियोंने धूनसे धातु निकालनेकी यही विधि अपना रखी है। भाथीमें अवश्य इन लोगोंने कुछ विकास किया, और कहीं-कहीं आदमी हाथकी जगह पैरसे चलनेवाली बड़ी-बड़ी भाथियोंका इस्तेमाल करने लगे।[2]

---

[1] किसी-किसीका कहना है कि भारतमें नवपाषाणके बाद सीधे लौहयुग आया (Gen Anth. pp 199, 201) पर ताँबेके हथियार मोहनजोदरो और बहादुरगढ़ (हरद्वार) में मिले हैं।

[2] Our Early Ancestors, pp 185-94

२. ताम्र-उद्योग

ताँबा बनाना पत्थर, हड्डी या लकड़ीको छीलकर हथियार बनाने जैसा नहीं था। ताँबेकी धूनमें ओषिद्, सलफिद् और सिलिकेत (कार्बोनेत) मिला रहता है। उनसे बहुत तेज तापमानमें पिघला कर ही ताँबेको अलग किया जा सकता है। ताँबा पिघलानेके लिए भारी गर्मीकी अवश्य-कता होती है। १०८३° सेंटीग्रेटके तापमानमें ताँबा पिघलकर पानी हो जाता है और अपने अन्य साथियोंकी अपेक्षा अधिक भारी होनेके कारण उसका पानी नीचे चला जाता है, जिसे नीचेके छेद से अलग करते हुए भिन्न-भिन्न प्रकार के साँचों में ढाल लिया जाता है। ताँबे के इस प्रकार के निर्माण के साथ-साथ मानव पाषण-युग से धातु-युग में ही नहीं आया, बल्कि वह अब वैज्ञानिक युग का मानव बन गया। ताँबा बनाना रसायन-शास्त्र का बाकायदा प्रयोग है। इसके साथ मानव के शिल्प में विशेष परिवर्तन हुआ। संस्कृत और पाली के पुराने ग्रंथों में लोह का अर्थ ताँबा होता है सिंहलद्वीप (लंका) में अशोक के पुत्र भिक्षु महेन्द्र के लिये जो महाविहार बनाया गया था, उसमें एक निवास का लोह-महाप्रासाद (लोहे का महल) नाम इसलिए पड़ा था, कि उसकी छतें ताँबे की थीं। इससे पता लगता है, कि आज से २१-२२ सौ वर्ष पहले भी ताँबे के लिए लोह शब्द प्रयुक्त होता था। आजकल लोहार लोहे के काम करनेवाले को कहा जाता है। पहाड़ में ताँबे के बर्तन बनानेवालों को तमोटा या टमटा कहते हैं। नीचे मैदान में ताम्रकार नाम की कोई जाति नहीं मिलती, उनके स्थान पर वहाँ कसेरे हैं, जो काँसे, पीतल के बर्तनो को बनाते हैं। ताम्र-युग में लोहार या लोहकार जैसे शब्द का प्रयोग ताम्रकार के लिए होता था।[1]

इस प्राचीनतम धातु के लिए भारतीय आर्यों की भाषा में अयस् शब्द का भी प्रयोग होता था, जो कि पीछे केवल लोहे के लिए बर्ता जाने लगा। फिर ताँबे और लोहे में भेद करने के लिए ताँबे को लोह-अयस् और ताम्र-अयस् तथा लोहे के लिए कृष्णायस् (काला-अयस्) शब्द का प्रयोग होने लगा। भारत में आने के कई शताब्दियों बाद हिंदी-आर्य असली लोहे से परिचित हुए।

ताम्र के आविष्कार के साथ-साथ हम एक नये उद्योग को स्वतंत्र रूप से स्थापित होते देखते हैं। पत्थर, लकड़ी या हड्डी के हथियार के लिए कच्चे माल को विशेष प्रयत्न से तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती, उनको छील-घिसकर किसी हथियार का रूप देना, उस युग का हरएक आदमी थोड़ा-बहुत कर सकता था। हाँ, अधिक कुशल और अभ्यस्त शिल्पी की बनाई चीजें अधिक सुन्दर और उपयोगी होती थीं। इसके कारण भले ही लोग उसकी खुशामद करते रहे हों। लेकिन, वह ऐसी स्थिति में नहीं था, कि शिकार और पीछे कृषि और पशुपालन की जीविका को छोड़कर पत्थर छीलने का ही व्यवसाय करने लगता। यह भी स्मरण रखने की बात है, कि जिस तक्ष (छेदने, छीलने) धातु का प्रयोग संस्कृत में केवल लकड़ी के छीलने-छेदने के लिये ही होता है, वह रूसी भाषा में केवल पत्थर छीलने-छेदने के लिए इस्तेमाल होता है। आरंभिक ताम्रयुग में हिंदी-युरोपीय जाति की वह शाखा पूर्वी-युरोप से मध्य-एसिया में लौट आई थी, जिसके वंशज

---

[1] ४००० और ३००० ई० पू० के बीच नियरऐसिया में ताँबा पिघलाकर ढालने का आविष्कार हुआ। Progress and Archaeology p, 32)

आज आर्य और शक के नाम से प्रसिद्ध हुए, यह संदिग्ध-सा है। किंतु, ताम्रयुग के मध्य या पित्तल-युग के आरंभ में (२००० ई० पू० के करीब) वह अवश्य वहाँ पहुँच गये थे ।

३. व्यापार[१]

ताम्रयुग के साथ लोहारों का स्वतंत्र पेशा स्थापित हुआ। गाँवों में अलग लोहारशाला कायम हुई और कुछ आदमी नियमित रूप से ताम्र-उत्पादन के व्यवसाय में लग गये। इसके साथ ही ताँबे की माँग बहुत बढ़ गई। पत्थर के हथियारों के सामने ताँबे के हथियार उतने ही शक्तिशाली थे, जितने तलवार के सामने बारूद से चलनेवाले हथियार। ताँबे के हथियार केवल युद्ध और शिकार के लिए ही उपयोगी नहीं थे, बल्कि कृषि में भी उनका अधिक और अधिक उपयोग होने लगा। जंगलों और झाड़ियों को साफ करके खेत बनाना पाषाण-युग में मुश्किल काम था, लेकिन ताँबे के कुल्हाड़े उसको बहुत आसानी से कर सकते थे। यदि मनुष्य को अवश्यकता होती, तो जंगलों और झाड़ियों के लिए उस समय खैरियत नहीं थी। हलके फाल और हँसिया में भी ताँबे का उपयोग अधिक होने लगा। इतनी माँग होने के कारण अगर ताँबे ने व्यापार का स्थायी रास्ता निकाला, तो इसमें आश्चर्य करने की अवश्यकता नहीं। ताँबा उस वक्त की बहुत दुर्लभ चीज थी, और उसके बनाने की विद्या तथा आवश्यक कच्चे माल सब जगह सुलभ नहीं थे। ऐसे मँहगे उद्योग का सब जगह जल्दी फैलना आसान काम नहीं था। इसीलिए दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में ताम्रयुग के फैलने में २५०० ई० पू० से १८०० ई० तक का समय लगा। इससे पहले खाने-पीने की चीजों का आदान-प्रदान भले ही होता रहा हो, किंतु वह बाकायदा व्यापार नहीं था। शिकारी अवस्था में जहाँ आदमी को कभी-कभी शिकार के न प्राप्त होने के कारण भूखे रहना पड़ता, वहाँ शिकार मिल जाने पर मांस को खतम करने की जल्दी भी पड़ जाती थी; जिसमें कि वह सड़ने न पाये। कनौर (किन्नर) [illegible] आज भी यह प्रथा देखी जाती है : शिकार को मार लेने पर शिकारी जोर से [illegible] है—'है कोई यहाँ है तो आके अपना हिस्सा ले।' आज यद्यपि शिकारी अपनी पलीतेवाली बन्दूक को इस्तेमाल करते हुए वैयक्तिक रूप से शिकार करता है, लेकिन तब भी उसके पुराने संस्कार उसे सामूहिक शिकार के युग का स्मरण दिलाते हैं, इसलिए वह आसपास में खड़े किसी आदमी को भी उसमें भागीदार बनाना चाहता। शिकारी समझता था, कि यदि उसका शिकार बड़ा जानवर है, तो वह और उसका परिवार अकेले जल्दी मांस को खा नहीं सकता, वह सड़ जायगा। ऐसे मांस के साथ क्रय-विक्रय तथा अदला-बदली करने का भी कहाँ सुभीता हो सकता था? इसीलिए व्यापार करने की जगह पर, हमारी पुरानी विवाह आदि प्रथाओं के अवसरों पर न्यौता के रूप में चीजों के भेजने जैसा रवाज था, जिसका यही अर्थ था, कि इस वक्त आपके कार्य-प्रयोजन में हम सहायता करते हैं, हमारे कार्य-प्रयोजन में यदि क्षमता हो, तो आप भी इसी तरह सहायता करें।

कृषियुग और पशुपालन के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति की स्थापना हुई। सम्पत्ति भी रोज-रोज के खाने से अधिक जमा होने लगी, इसीलिये उधार देने या अदला-बदली करने का रवाज

---

[१] वही P. 59

चला। लेकिन, अदला-बदली से, विशेषकर जब कि उतनी ही चीजें मिलती हों, बाकायदा व्यापार-प्रथा स्थापित नहीं हो सकती और न सारे समय व्यापार करनेवाला वणिग्वर्ग स्थापित हो सकता था। ताम्रयुगने व्यापारके लिए सबसे अधिक सुभीता प्रदान किया, क्योंकि ताँबेके हथियार केवल विलास की चीज नही थे। वह युद्ध और जीविका दोनों के सबसे उपयोगी साधन थे, उनकी हर जगह मांग थी और माँगके अनुसारही उनका मूल्य भी अधिक था। अब अनाज, मांस या पशुओं का मूल्यांकन ताँबे के टुकड़ों या हथियारों में किया जाने लगा और बराबर के भार के खाद्य को ढोने की जगह छोटे से ताँबे के टुकड़े को ले जा बहुत सी खाद्य-सामग्री लाई जा सकती थी। ताम्रयुग ने देशों की छोटी-छोटी सीमाओं को व्यापार के लिए तोड दिया। व्यापार के लिए अब यातायात का सुभीता ढूँढ़ा जाने लगा। मानव-दिमाग सोचने लगा, कि कैसे थोड़े समय में अधिक से अधिक चीजों को दूर से दूर जगहों में पहुँचाया जा सकता है। इसीका परिणाम हुआ, नदियों और समुद्रों का में नौका संचालन और धरती पर गाड़ी या रथ का संचार।

४. हथियार

ताँबे के हथियारों के बनने के पहले पाषाण-युग मे भी बहुत तरह के पत्थर, हड्डी या लकड़ी के हथियार बनने लगेथे। काटने के लिए जहाँ कुल्हाड़े बनते थे, वहाँ मांस काटने या छीलने आदि के लिये पत्थर की छुरियाँ भी बनती थीं। तीर और भाले के फल भी बहुत बना करते थे। ताँबे के हाथ में आने पर आदमी पाषाण-युग के हथियारों की नकल करने लगा। ताँबे के कुठारों की शक्ल वही थी, जो कि पत्थर के कुल्हाड़ों की। हाँ, समय बीतने के साथ उसमे और कितने ही भेद शुरू किये गये। भाले और तीर के फल भी पाषाण-युग की नकल पर ही बने। पत्थर का हथियार छुरे [illegible] था, लेकिन ताँबेके हथियार को काफी लम्बा बनाया जा सकता था, इसलिए इसी युग में पहले-पहल लम्बी सीधी तलवारें बनने लगीं। पाषाण-युग के मानव को अस्तुरे की अवश्यकता नहीं थी। उसको अपनी दाढी-मूँछ बढ़ानेमें कोई शौक का खयाल नहीं था, बल्कि वह उसे सहजात समझकर बुरा नहीं समझता था। लेकिन, ताम्रयुग में आकर अब इच्छानुसार दाढ़ी-मूँछ बनाने के लिये अस्तुरा भी आन उपस्थित हुआ। हँसिया, फरसा, दोहरा फरसा, बसूला आदि बहुत तरह के हथियार बनने लगे।

मानव को आदिकाल से ही शरीर को सजाने का शौक था। वह पहले फूलों-पत्तों, दाँतों, कौड़ियों, हड्डियों आदि से शृंगार किया करता था। नवपाषाण-युग में मध्य-एसिया का मानव फीरोजा और दूसरे कितनी ही तरह के रंग-बिरंगे पत्थरों के आभूषण बनाता था। ताम्रयुग में अब ताँबे के बहुत तरह के आभूपण बनने लगे। लौहयुग में लोह के आभूषण उतने नहीं बने, जितने कि ताम्रयुग में ताँबे और पित्तलयुग में काँसे-पीतल के। इसमें एक कारण यह भी था, कि ताँबा लोहे की तरह मोर्चा खानेवाली धातु नहीं थी। ताम्रयुग के बहुत तरह के कंकण, कुंडल, हँसली आदि आभूषण मिले हैं।

५. राज-व्यवस्था

लाखों वर्षो से मनुष्य प्रकृति का स्वतंत्र पुत्र था। उसका सामाजिक संगठन पहले परिवार के रूप में हुआ। परिवार जहाँ अपने व्यक्तियों के आहार को एकत्रित करने के लिए मिलकर

प्रयत्न करता रहा, वहाँ उनके झगड़ों को भी शांत करता था, साथ ही बाहर से आक्रमण होने पर सारे नर-नारी अपनी रक्षा के लिए लड़ने जाते थे। उसी युग में मानव मातृसत्ताके आदिम साम्यवाद से निकल कर जन-युग में पहुंचा, जबकि सामाजिक संगठन कई परिवारोंसे मिलकर बने जन के रूप में हुआ। नवपाषाण-युग में कृषि और पशुपालनने मातृ-सत्ता हटाकर पुरुष-सत्ता स्थापित करते हुए जनके प्रधान नेता महापितर की सृष्टि हुई। यद्यपि वह आगे आने-वाले राजा का अंकुर था, तो भी वह अभी उनसे ऊपर नहीं समझा जाता था, और उसकी प्रतिष्ठा इसीलिए अधिक थी, कि वह योग्य सैनिक नेता और जनके भीतर शांति रखनेवाला योग्य पंच था। ताम्र-युग में अब महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों को आगे बढकर सर्वेसर्वा बनने का अच्छा मौका मिला। कृषि और पशुपालन द्वारा कुछ व्यक्तियों के पास अधिक सम्पत्ति जमा होने लगी। इन्हीं व्यक्तियों ने आरंभिक जनयुग के दासताहीन समाज में दासता का आरंभ किया। पहले यदि जनों में युद्ध होता, तो वह बहुत क्रूर होता था (क्रूरता तो [illegible] की एक विशेषता है, कोरिया में सैनिकों से अधिक गाव के निरीह नर-नारी बच्चे-बूढे अमेरिकन बमों के शिकार हो रहे हैं)। आदिम जनों के युद्ध में हारे हुए जन को या तो निःशेप नष्ट हो जाना पड़ता, या अपनी शिकार-भूमि को छोड़ बचे-खुचे आदमियों को लेकर दूर भाग जाना पड़ता था। उस वक्त पराजित को दास बनाने की प्रथा नहीं थी, बहुत हुआ तो उनकी कितनी ही स्त्रियों को पकड़कर अपनी स्त्री बना लिया। मातृ-सत्ता-युग में विवाह की प्रथा नहीं थी, इसलिए पिता का पता लगना आसान नहीं था, पर माता को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं थी; इससे भी माता का नाम ओर शासन चल पड़ा, यद्यपि शरीर में उस वक्त की स्त्री पुरुष से अधिक बलवान् नहीं होती थी। आदिम जनयुग में भी विवाह की प्रथा यहीं तक पहुँच सकी थी, कि पुरुषों का एक झुंड पति माना जाय और स्त्रियों का एक झुंड पत्नी। कृषि और पशुपालन के साथ सम्पत्ति का उत्पादन बढ़ चला अधिक हाथों के का होने पर अधिक काम तथा उससे अधिक सम्पत्ति के उत्पादन का रास्ता निकल आया था, इसलिए वैयक्तिक सम्पत्ति के उत्पादन और स्वामित्व के बलपर जहाँ पुरुष समाज का नेता बन गया, वहाँ इस पितृसत्तायुग के युद्धों में पकड़े गये शत्रुओं को मारने की जगह दास बनाकर जीवित रहने का अधिकार दिया गया। युद्ध की पहले की क्रूरता में इसके द्वारा कुछ कमी हुई, इसमें संदेह नहीं। दासों का श्रम अधिक धन उत्पादन करने लगा।

ताम्रयुग में दासता-प्रथा ज्यादा बढ़ चली—दासों की संख्या अधिक बढ़ने लगी, क्योंकि खेती और दूसरे व्यवसायों में उनके श्रम की बड़ी माँग थी। दास वही लोग रख सकते थे, जिनके पास काफी सम्पत्ति थी, जिनके पास काफी काम था। युद्ध रोज-रोज नहीं हुआ करता, कि दास बिना मूल्य के मिलते रहे। इसलिए फुसला-बहका, डरा-धमका, प्रलोभन देकर दास-दासियाँ बनाई जाने लगीं। दासों के श्रमने धनिकों के हाथ में और भी सम्पत्ति एकत्रित कर दी, वह धन के बलपर और भी लोगों को हाथ में करने लगे। इस प्रकार ताम्र-युग के साथ एक और बड़ी सामाजिक क्रान्ति यह हुई, कि जनयुग के स्वतन्त्र मानव-समाज के स्थान पर सामन्तयुग की घोर विषमता का समाज स्थापित हुआ। ताँबे के हथियार, उस समय ऐसे ही महँगे थे, जैसे कि आजकल के लड़ाई के बारूदी हथियार। जहाँ सामन्त अपनी सम्पत्ति से महँगे हथियारों को खरीद या बनवाकर, उनके चलानेवाले आदमियों को भाड़े पर रखकर शक्तिशाली हो सकता था, वहाँ

साधारण आदमी इसकी क्षमता नहीं रखता था। ताम्रयुग के सामन्तों के सामने उनके पिछड़े हुए स्वच्छन्द जन (कबीले) टिक नहीं सकते थे, क्योंकि उनके हथियार निकम्मे थे, चाहे लड़ने में वह अधिक वीर थे। शस्त्र-बल के अतिरिक्त संख्या-बल भी सामन्तों के पक्ष में था, क्योंकि उनके पास सम्पत्ति-बल अधिक था।

ताम्रयुग ने व्यापार के लिए छोटी-छोटी जन-सीमाओं को तोड़ फेंका और अपने क्षेत्र को व्यापक बनाया। मिस्र कहाँ, मेसोपोतामिया कहाँ, सिन्धु-उपत्यका कहाँ, अनौ और ख्वारेज्म कहां? आजकल नक्शे में देखने से भले ही वह [illegible] मालूम हों, और विमान द्वारा पहुँचने में भी दूर न मालूम होते हों; लेकिन आज से साढ़े चार हजार वर्ष पहले वह दुनिया के छोर पर अवस्थित थे। लेकिन, ताम्रयुग में हम एक जगह की बनी हुई चीजों को समुद्रों, पहाड़ों और रेगिस्तानों को पारकर दूसरी जगह पहुँचते देखते हैं। व्यापारिक एकता की तरह देशों के एकीकरण में भी इस युग ने बड़ा काम किया। अपने ताम्र के हथियारों के बलपर सामन्त दूसरों को अपने अधीन करते जन-सीमाओं को मिटा राज्यों और महाराज्यों की स्थापना करने में सफल हुए। ताम्रयुग ने मनुष्य को बतला दिया, कि अब छोटे-छोटे जन अपनी रक्षा नहीं कर सकते। मध्य-एसिया का दक्षिणापथ इस समय नवपाषाण युग से ताम्रयुग में आकर ग्राम-नगरों में बसे स्थायी निवासियों का देश था, किंतु इसका उत्तरापथ वर्तमान (कजाकस्तान) अब भी पूर्णतया घुमन्तुओं की निवास-भूमि था। जैसे पिछली शताब्दियों में हम उत्तरापथिक घुमन्तुओं का दक्षिणापथिक निवासियों के साथ बराबर संघर्ष देखेंगे, वही अवस्था ताम्रयुग में भी थी। उत्तर के घुमन्तू जन (कबीले) अपने सरदारों के नेतृत्व में दक्षिण के समृद्ध नगरों और ग्रामों को लूटने के लिए आते, और पीछे उनमें से कितने ही वहाँ बसकर शासन करते, जातियों के सम्मिश्रण और संस्कृतियों के दानादान का काम करते थे।

६. अनौमें

ऐतिहासिक काल में पश्चिमी मध्य-एसिया को दक्षिणापथ और उत्तरापथ इन दो भागों में विभक्त देखा जाता है। दक्षिणापथ से हमारा मतलब है, सिरदरिया और अराल समुद्र से दक्षिण का भाग, जिसमें आजकल तुर्कमानिस्तान, उज्बेकिस्तान और ताजिकिस्तान के गणराज्य मौजूद हैं। उत्तरापथ में किरगिजिस्तान का कुछ भाग और कजाकस्तान सम्मिलित हैं। दक्षिणापथ में कराकुम और किजिलकुम जैसे दो महान् रेगिस्तान हैं, जिनमें किजिलकुम पुरानी संस्कृतियों की सुरक्षित समाधि-सा है। उत्तरापथ में प्यासी-भूमिका भारी रेगिस्तान है। यहीं पश्चिममें तलस नदी से पूरब में इली नदी तक, फैला सप्तनद भूभाग है। जो उत्तरापथ का सबसे अधिक आबाद तथा ऐतिहासिक महत्त्व की भूमि है। इसिककुल और बलकाश के दो महासरोवर भी इसीमें हैं। त्यानशान् तथा अल्ताई की पर्वतमालाएँ इसके दक्षिण-पूर्वी तथा पूर्वी छोर पर हैं। सप्तनद उत्तरापथ का एक छोटा भाग है। त्यानशान् पर्वतमाला ही इली नदी से टूटकर उत्तर में अल्ताई का रूप ले लेती है, जो कि अपने ताँबे और सोने की खानों के लिए सदा से प्रसिद्ध है। एक समय सारा एसिया इसी के सोने के ऊपर निर्भर करता था—तुर्की और मंगोल भाषा का अल्ताई (सुवर्णगिरि) नाम यथार्थ ही है।

६. अनौमें ताम्रयुग[१]

दक्षिणी कुर्गान की स्थापना के साथ ईसा पूर्व तृतीय सहस्राब्दी के मध्य में यहाँ ताम्रयुग की स्थापना होती देखी जाती है। यह समय मध्य-एसिया के लिए जलवायु के अनुकूल था। अनौके दक्षिण खुरासान में ताँबा मौजूद था, पामीर तथा अल्ताई तो अपने ताँबे की महान् निधियों के लिए प्रसिद्ध हैं ही। अनौ में इस युग में कुम्हार के चक्के का उपयोग दिखाई देता है। मृत्पात्र भी
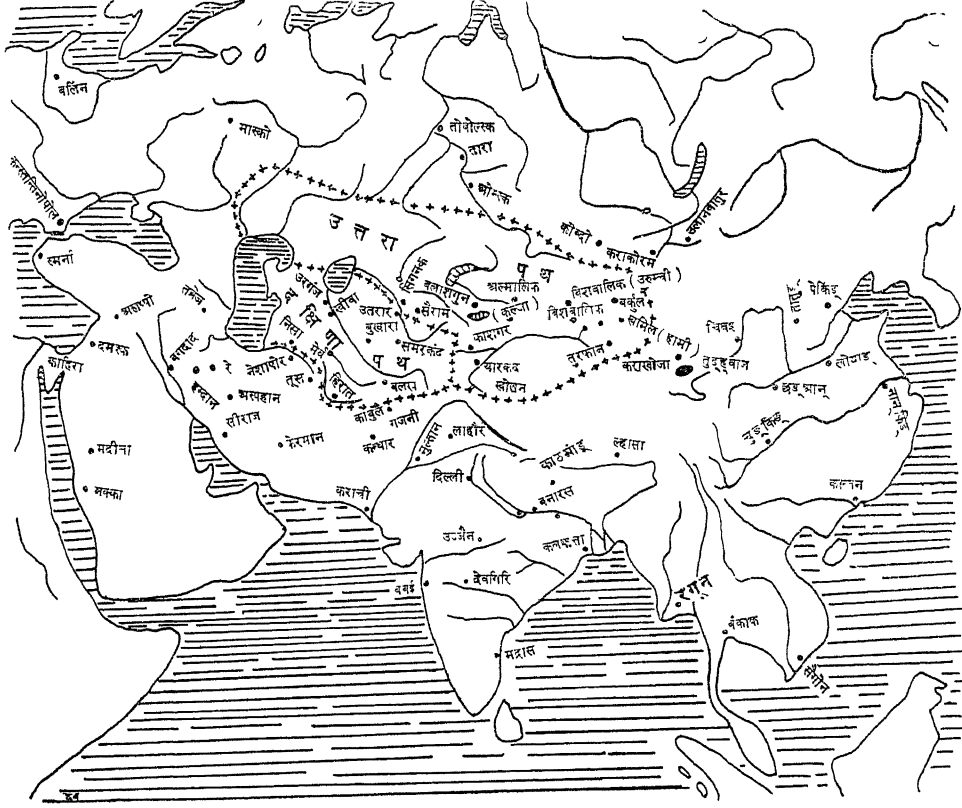
११. मध्यएसिया (उत्तरा, दक्खिना पथ)

नाना रूप के बनने लगे थे। पात्रों पर मनुष्य, प्राणी और वृक्ष-लता आदि के चित्र होते थे। यद्यपि, आभूषणों में बहुत भेद नहीं हुआ, किंतु अब वह अधिक सुन्दर बनते थे। बहुमूल्य पत्थरों का उपयोग बड़ी कला मकता के साथ किया जाता था। पता लगता है, इस युग में अनौवालों का सिन्धु-उपत्यका, और मसोपोतामिया से संबंध था। काल्दिया, असीरिया और सिन्धु-उपत्यका में बहु- पूजित माता-माई का सम्मान यहाँ भी बहुत अधिक था। घर के भीतर अब भी मृत शिशुओं को दफनाया जाता था। इस युग में निम्न चीजों का भाव और अभाव देखा जा ता है:

---

[१] Exploration in Turkistan, pp. 18-19

भाव	अभाव
कुम्हार का चक्का	कलई वाला मृत्पात्र
तांबा और मामूली चित्र	पक्की ईंटें
घर (पूर्ववत्)	बर्तन की मुठिया
किवाड़ की चूल के नीचे पथरी (पूर्ववत्)	धातु या पाषाण का कुल्हाड़ा
गाय, बैल, देवी की मिट्टी की मूर्तियाँ	लोहा
हड्डी के शर-फल	धातु में सीसा का मिश्रण
ताँबे का हँसिया, माला और बाण के फल	लेख
जानकर ताँबे में सीसे की मिलावट	
करवट शव-समाधि	

७. ख्वारेज्ममें ताम्रयुग

ख्वारेज्म की किजिलकुम की मरुभूमि में नवपाषाण युग से लेकर १२वीं-१३वीं सदी ईस्वी तक के बहुत से ध्वंसावशेष मिलते हैं, जिनमें ई० पू० चौथी सहस्राब्दी से तीसरी सहस्राब्दी के आरंभ तक केल्त मीनार संस्कृति का अस्तित्व पाया जाता है। यह संस्कृति मुख्यतया मत्स्यजीवी तथा शिकारी मानवों की थी। इसके अतिरिक्त यह लोग खेती भी किया करते थे। कई बातों में यह अनौके नवपाषाण-युग से समानता रखते थे। ईसापूर्व तृतीय सहस्राब्दी के मध्य में ख्वारेज्म ताम्रयुग में अथवा स्थानीय पित्तलयुग में चला गया। वस्तुतः सारे मध्य-एसिया में ताम्रयुग और पित्तलयुग का भेद स्पष्ट नहीं पाया जाता।

ख्वारेज्म में पित्तलयुग का परिचय ताजाबागयाब (ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी) और अमीराबाद (१०००-६००० ई० पू०) की संस्कृतियों में मिलता है।[१]

अनौ और ख्वारेज्म के रहनेवाले एक ही जाति के मालूम होते हैं, जो उस समय अराल से लेकर सिङकियाङ (पूर्वी तुर्किस्तान) तक फैले हुई थी। रुसी विद्वान् स. प. ताल्सतोफका मत है, कि यह जाति मुण्डा-द्रविड जाति से संबंध रखती थी। ख्वारेज्म की इस संस्कृति का सिन्धु-उपत्यका (मोहनजोडरो) की संस्कृति से इतना सादृश्य है, कि दोनों को आकस्मिक न समझ एक मानना ही अधिक युक्तियुक्त है।

८. लिपि आदि

ताम्रयुग सभी देशों में लिपि के प्रचार का युग है। व्यापार और राज्य के वि तार के कारण लिखित संकेतों द्वारा सूचना देना अत्यावश्यक था। हम मोहनजोडरो में इस युग में लिपि का उपयोग देखते है, यद्यपि वह अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। मेसोपोतामिया और मिस्र में तो हजारों अभिलेख मिले हैं। ख्वारेज्म में भी कुछ चिह्न मिले हैं, लेकिन कहा नहीं जा सकता, कि

---

[१] क्रत्किये सोओब्श्चेनिया vol. 13 pp. 46-50, देखो आगे ४।२

वह लिपि है या शिल्पियों के संकेत मात्र। कुछ भी हो, धातु-युग में प्रवेश करने के बाद किसी तरह की लिपिका होना आवश्यक हो जाता है। उसके साथ ही गणित और नाप-तौल भी राज्य और व्यापार के संचालन के लिए आवश्यक होते हैं; इसीलिए यह कल्पना करना गलत नहीं होगा, कि ताम्र-पित्तलयुग में मध्य-एसिया में इन चीजों का उपयोग होने लगा था।

स्रोत-ग्रंथ :

1. General Anthropology (Francz Boas)
2. Our Early Ancesters (M. C. Burkitt)
3. Exploration in Turkistan 2 vols (R. Pumpelly)
4. क्रत्किये सोओब्श्चेनिया vol. XIII (लेनिनग्राद)
5. अर्खेओलोगिचेस्किये रस्कोप्कि व् त्रिअलोति (गुर्जी,त्बिलिसि १६४१)
6. The Most Ancient East (V. G. Childe, London 1928)
7. The Primitive Society (R. H. Lowie, 1920)

अध्याय २

पित्तल-युग (७०० ई० पू०)

१. युग की विशेषता

ताँबे में दशांश राँगा (टिन) मिला देने से पीतल बन जाता है। ईसा पूर्व २००० ई० पू० में मानव को यह सूत्र मालूम हो गया था। राँगा मिला देने से जहाँ धातु का रंग बदल जाता है, वहाँ वह अधिक कड़ी भी हो जाती है। ताँबे में राँगा संभवतः अकस्मात् ही मिला। आजकल टिन पैदा करनेवाले देश मलाया, दक्षिणी अफ्रीका, खुरासान (ईरान), टस्कनी (जर्मनी), चेकोस्लोवाकिया, स्पेन, दक्षिणी-फ्रान्स, कार्नवाल (इंगलैंड) आदि हैं। काकेशस, शाम में भी राँगा मिलता है। काकेशस, [illegible], स्पेन और कार्नवाल में पास ही पास राँगे और ताँबे दोनों की खानें हैं। जान पड़ता है, ताम्रकारों ने कभी गलती से राँगे की धून भी ताम्र-धून के साथ मिला दी, जिससे चमत्कारपूर्ण एक नई धातु तैयार हो गई और फिर काफी तजर्बे के बाद मालूम हुआ, कि दशांश राँगा मिलने से अच्छा पीतल बनता है। शायद राँगे का सुलभ न [illegible] ताम्र युग के देर तक रहने का कारण हुआ। सिन्धु-उपत्यका और सुमेरिया (मसोपोतामिया) में जो ताँबे की चीजें मिली हैं, उनमें निकल का भी अंश है। उसे जान-बूझकर मिलाया नहीं कह सकते, बल्कि उसका कारण इन देशों में उम्माँ की ताम्र-धूनों का उपयोग होना था, जिनमें कि काफी निकल होता है।

पीतल के आविष्कार के साथ धातु-विज्ञान और आगे बढ़ा। यह उस महान् धातु-युग का आरंभ था, जिसका विकास आधुनिक धातु-युग में हजारों तरह के मिश्रित धातुओं के रूप में देखा जा रहा है। काकेशस दक्षिणापथ से कास्पियन समुद्र के परले पार है, जहां पहुँचने के लिए उसके दक्षिण से सुगम स्थल-मार्ग भी था। काकेशस में पीतल बनाने के लिये राँगे की जगह सुर्मे का [illegible]स्तेमाल होना था। सुमेरियन लोग सीसा मिलाकर पीतल बनाते थे। यह स्मरण रखना चाहिए, कि जस्ता (ज़िंक) और ताँबे के मिश्रण से तैयार हुआ काँसा बहुत पीछे बनने लगा, जब कि मानव लौह-युगमें पहुँच चुका था। नवपाषाण-युग और ताम्र-पित्तल-युगकी बस्तियोंमें एक और महत्त्वपूर्ण भेद देखा जाता था: नवपाषाण-युगीन बस्तियाँ हर बात में स्वावलंबी देखी जाती थीं, किंतु ताम्र-पित्तल-युग के आरंभ होते ही वह स्वावलंब खतम हो गया, क्योंकि अब धातुओं के हथियारों या उसके कच्चे माल के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता था।

---

[१] The Bronze Age (V. G. Childe) p. 2 (मिस्र, [illegible] और सिंधु-उपत्यकाएँ ३६००-६००० ई० पू० तक)

२. ख्वारेज्ममें पित्तल-युग[1]

ताजाबागयाब-संस्कृति पित्तलयुग की संस्कृति मानी जाती है, जो कि ईसापूर्व दूसरी सहस्राब्दी में मौजूद थी। अङका-कला, तेशिककला आदि के ध्वंसावशेष इस संस्कृति से संबंध रखते हैं। इस युग का मानव कृषक और पशुपाल था। उसका समाज मातृसत्ताक जन था। गाँव किस तरह के होते थे, इसका अच्छी तरह पता नहीं लगा, जिसका कारण निर्माण-सामग्री का स्थायित्व-हीन होना हो सकता है। इस समय के मृत्पात्र विना मुठिया के होते थे, लेकिन काले-लाल रंगों के सजाने के अतिरिक्त कच्चे बर्तन पर खोदकर भी उन्हें अलंकृत किया जाता था।

इसी युग में अमीराबाद की संस्कृति (ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी का पूर्वार्ध) भी है, जिसे प्राग्-लौह संस्कृति भी कहा जाता है। यह मानव भी मातृसत्ताक जन-समाज में पहुँचा था। कृषि, पशुपालन इसकी मुख्य जीविका थी। जानबासकला आदि के ध्वंसावशेष इसीके हैं।

३. सप्तनदमें

ईसा-पूर्व द्वितीय सहस्राब्दीके अन्तमें उत्तरापथका सप्तनद प्रदेश भी पित्तल-युगमें पहुँचा। तलस्, चू, इली आदि सात नदियोंके कारण इस प्रदेश का यह नाम पड़ा। हो सकता है सप्त-सिन्धु जैसा ही कोई इसका मूल नाम रहा हो, जिसे कि तुर्की और मँगोल भाषाओं से रूसी में अनुवादित होकर आजकल सेमी-रेच्ये (सात नदी) कहा जाता है। इस प्रदेशको यह भी बड़ा लाभ था, कि [illegible] खानें इसके पास थी। [illegible] अव-स्थित करागंदा के कारखाने नोन्त्रिन-रूनके ताँबा बनानेंके सबसे बडे कारखाने हैं। हालमें सप्तनदके कितने ही पुराने नगरोंके ध्वंसावशेषोंकी खोदाई हुई है, जिनमें तरज़ (जम्बूल), सरिग तथा बालासगून (दोनों किर्गिजिस्तान की चू उपत्यकामें,), कोइलूक (इली-उपत्यका) खास महत्त्व रखते हैं। १९४१ में महा-चू-नहर तैयार हुई, जो प्राचीनकालकी परित्यक्त बस्तियोंके भीतर होकर गुजरी। यहां खोदते समय हजारों पुरातत्त्व-सामग्री प्राप्त हुई। चू और इलीके द्वाबे में पित्तलयुग का केन्द्र था। यहांके लोग कृषि, मछुवाई और शिकारीका जीवन बिताते थे।

१. अंद्रोनीय—पित्तलयुगमें उत्तरापथमें अंद्रोनी, करासुक और मिनूसून लोगोंकी जिन संस्कृतियोंका पता लगा है, वह भी शिकारी, मछुवाई और कृषिसे जीविका करते थे। अंद्रोनीय संस्कृति का समय १७००-१२०० ई० पू० माना जाता है। यह उत्तरापथके उत्तरी भागमें येनेसेइ नदीसे उराल तक फैली थी। उस्त-एरबाके पास अंद्रोनीय संस्कृतिसे संबंध रखनेवाली कितनी ही चीज़ें मिली हैं। इसके मृत्पात्रोंमें ज्यामितीय [illegible] अलंकरण देखा जाता है।

२. करासुक—१२००-८०० ई० पू० में उत्तरापथमें हम करासुक संस्कृतिका पता पाते हैं। अल्ताई पर्वतमालाके पश्चिमोत्तरमें इसकी कितनी ही कब्रें मिली हैं, जिनकी चीजें अंद्रोनीय जैसी हैं।

३. मिनूसून—पित्तलयुगमें उत्तरापथमें एक और संस्कृतिका पता लगा है, जिसे मीनूसून कहते हैं। इसकी भी बहुत सी कब्रें मिली हैं, जिनमें मुर्दोंके साथ पीतलके आभूषण, छूरे,

---

[1] क्रत्किये सोओब्श्चेनि ग. XIII, 110-18

तलवार, कुल्हाड़े आदि रखे प्राप्त हुए हैं। येनेसेइ नदीके किनारे तक इसका पता लगता है। शायद इस जाति का केन्द्र उत्तरापथके पूर्वोत्तर था और बेकालके पास तक फले खकासी लोगोंके साथ इसका संबंध था।[1]

उत्तरापथकी उपरोक्त तीन संस्कृतियां जिस समय समाप्त होती है, उसके अनंतर ही शक लोगोंका उत्तरापथमें स्पष्ट पता लगता है। इससे अनुमान होता है, कि यही शकोंके पूर्वज थे। नवपाषाण-युग और अनवपाषाण-युगमें दक्षिणापथ ही नहीं उत्तरापथ और सिङक्याङ (तरिम-उपत्यका) तकमें हम मुंडा-द्रविड जातिका पता पाते हैं। ईसा-पूर्व ७वी ८वी शताब्दीमे देखते हैं, कि सारे मध्य-एसियामें हिन्दू-युरोपीय वंशकी शक-आर्य शाखाका ही पर प्राधान्य है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि मुंडा-द्रविड और हिन्दू-युरोपीय कालके बीचमें उत्तरापथमें रहनेवाली पित्तलयुगकी उक्त तीनों जातियां वही हों, जिन्होंने मध्य-एसियासे मुंडा-द्रविड-वँशके प्राधान्यको खतम किया, और स्वयं उनका स्थान लेकर आगे उत्तरापथ और सिङक्याङमें शक और दक्षिणापथमें आर्यके रूपमें अपनेको प्रकट किया। इससे यह भी मालूम होता है, कि मध्य-एसियामें हिन्दू-युरोपीय जन ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दीके मध्यसे पहले नहीं थे। ऐसा होने पर उनकी एक शाखा हिंदू-आर्योंका भारतमें पहुंचना ईसा-पूर्व दूसरी सहस्राब्दी के मध्यमें अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है।

४. अनौमें[2]

अनौमें दक्षिणी कुर्गान ताम्र-पित्तल-युगका अवशेष है, तो भी इस स्तरमें हम पित्तलकी जगह ताम्रकी ही प्रधानता देखते हैं। लोगोंके बारेमें भी हम निश्चित नहीं बतला सकते, कि वह नवपाषाण-युगकी तरह मुंडा-द्रविड जातिके थे अथवा [illegible] आर्य।

५. जातियाँ

मध्यपाषाण-युगसे पित्तल-युगके अन्त तक हमें मध्य-एसियामें चार मानव जातियोंका पता लगता है। मध्य-पुरापाषाण युगमें उत्तरापथकी प्यासी-भूमि, और अल्ताईमें मुस्तेर मानवके अवशेष मिले हैं, इसी तरह दक्षिणापथमें सोग्द और तुखार (मध्य-वक्षु उपत्यका) में भी मुस्तेर मानवका पता लगता है। १२ हजार वर्ष पूर्व मध्य-पाषाण युगीन मानवके अवशेष उत्तरापथमें किपचक (प्यासी-भूमि) और सप्तनदमें तथा दक्षिणापथमें सिर उपत्यका, सोग्द और ख्वारेज्ममें मिलते है।

ताम्रयुगमें अनौ, ख्वारेज्मसे सप्तनद तक मुंडा-द्रविड जातिकी प्रधानता थी। पित्तल युगमें आर्यों और शकोंके पूर्वज सारे उत्तरापथ और दक्षिणापथमें फैले। मुस्तेर और मध्य-पाषाण युगीन मानवके संबंधमें हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। मध्य-पाषाण युगीन मानव, हो सकता है, नवपाषाण युगके मुंडा-द्रविडका ही पूर्वज हो, और यह भी हो सकता है, कि

---

[1] "नेकतोरिये इतगी आर्खेआलोगिचेस्किख़ रवोत् व् सेमिरेच्ये" (अन० बेर्नश्तम) "ऋत्किये सोओब्" XIII, 110-18

[2] Expl. in Turk. p. 18-19

अध्याय ३

लौहयुग (७०० ई० पू०)

ईसापूर्व द्वितीय सहस्राब्दीमें पित्तलयुगमें पहुंचने पर भौगोलिक तौरसे हमें शकों और आर्योंका भेद स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस समय शक यक्सर्त नदी (सिर-दरिया), अरालसमुद्रसे उत्तर रहते थे, उनके दक्षिणमें आर्योंका निवास था। सुग्ध (जरफशां-उपत्यका), ह्वारज्म (ख्वारज्म) से लेकर पहले हिंदूकुश और खुरासानके पर्वतों तक और थोड़े ही समय बाद फारसकी खाड़ी और सिन्धु तथा गंगाकी कछारों तक आर्य पहुंच गये। ग्रीक इतिहासकारोंके [illegible] यह भी जानते हैं कि दुनाई (डेन्यूब) से त्यानशान तक फैली घुमन्तू जातिको शक, स्कुथ अथवा सिथ कहते थे।[१] ग्रीक और उसका अनुसरण करनेवाली अंग्रेजी भाषामें उसका चाहे कितना ही बुरा अर्थ हो, किन्तु शक शब्दमें ऐसा कोई बुरा भाव नहीं है। ग्रीक लेखकोंके अनुसार शक लोग अपनेको स्कोल या सकोल कहते थे। दार्योशने अपने बहिस्तून्के अभिलेखमें उन्हें शक नामसे पुकारा है। भारत भी ईरानकी इस रायसे सहमत है। बहुतसे लेखक कालासागरके उत्तरमें रहनेवाले सिथियों और सिरदरियाके उत्तरमें घूमनेवाले शकोंमें अन्तर करना चहते हैं। इतने दूर तक फैले हुये घुमन्तू जनमें कुछ स्थनीय भेद हो सकता है, लेकिन इससे उन्हें हम अलग नहीं मान सकते। ग्रीक इतिहासकार ई० पू० ५वीं शताब्दीमें भी यह माननेके लिये तैयार थे, कि कालासागरसे सिरदरिया तकके घुमन्तूओंमें रीति-रिवाज, खान-पान और वस्त्र-भूषा में अन्तर नही था। उनके हथियार भी एक तरहके होते थे। दोन नदीको पूर्वी और पाश्चमी शकोंकी सीमा माना जाता था।

१. शकद्वीप

युरेसिया द्वीपमें एक समय दुनाइ (डेन्यूब) से त्यान्शान्-अल्ताई (पर्वत-श्रेणी) तक फैली शक जातिकी भूमिको हम पित्तलयुगके आरंभमें भारतीय परिभाषाके अनुसार शक द्वीप कह सकते हैं, पुराने ईरानी शब्दानुसार शकानवेइजा या पीछेकी भाषाके अनुसार शकस्तान भी कह सकते हैं। लेकिन ई० पू० द्वितीय शताव्दीमें शकोंके वस जानेके कारण ईरानके पूर्वी भागको शकस्तान या सीस्तान कहा जाने लगा। इस भागको हम [illegible] कह सकते हे, इसी परिभाषाके अनुसार हम अराल और सिरदरियाके दक्षिणकी भूमिको आर्यद्वीप, आर्यान-

---

[१] "अल्ताइ व् स्किफ़्स्कोये व्रेमिया" (स० ब० किसेलेफ़), वेस्लिक द्रेव्नेइ. इस्तोरिइ १९४७ पृ० १५७-७२, क्रत्कये सोओबश्चेनिया XIII, p 112 में वेर्नश्ताम का लेख भी इसी विषय पर। इसका समर्थन पुनः वेर्नश्तामने किया है "इस्तोरिको-कुल्तुर्नोये प्रोश्लोये सेवेर्नोइ किर्गिजिइ पो मतेरिलियाम् वोल्शवो चुइस्कओ कनाला" में (फ्रुन्जे १९४३)

न होनेसे हम उसे पश्चिमी हिंदू-युरोपीय जनगण कहते हैं। मध्य-एसियासे हिंदू-युरोपीय जनोंका युरोपमें जाना सभी स्वीकार करते हैं, और इसमें भी सहमत हैं, कि वह नवपाषाण-युगमें हुआ। नवपाषाण-युगकी एक विशेषता है कृषि, लेकिन कृषिके हथियारों और धान्योंके लिये एक प्रकारकी शब्दावली हम केन्तम और शतम् भाषाओंमें नहीं पाते। केन्तम् की बात तो दूर शतम् भाषाओंमें भी कृषि-संबंधी एक तरहके शब्द नहीं मिलते, इससे यह कहना उचित नहीं जंचता, कि नवपाषाण-युगमें हिंदू-युरोपीय मध्य-एसियासे पश्चिममें गये, शतम् और केन्तम् का भेद हुआ, शक और आर्य दो स्वतन्त्र जनोंमें विभक्त हुए। यदि हम नव पाषाण-युगसे पहले इन विभाजनोंको मानें तो भाषाशास्त्रके अनुसार इसमें कोई हरज नहीं पड़ता, किन्तु कालके अनुसार बहुत लम्बा समय भाषाओंके परिवर्तनके लिये देना पड़ता है। इस शतम्-केन्तम् और शक-आर्य भेदके समयको निर्धारित करनेके लिये शायद मध्य-एसियाकी मरुभूमि इतिहास-वेत्ताओंकी सहायता करे।

ऊपर कहे आर्यद्वीपमें भूमध्यीय जाति चली आई, यह अनौ (दक्षिणी तुर्कमानिया) और ख्वारेज्मकी पुरातात्विक खोजोंसे सिद्ध है, किंतु शकद्वीपमें भूमध्यीय जातिका कोई इस तरहका हस्तक्षेप दिखाई नहीं पड़ता। मध्यपाषाण युग हो या नवपाषाण-युग, इसी समय पश्चिमकी ओर भागे हिंदू-युरोपीय जनगणकी शाखा शकार्य मध्य-एसियामें पहुँचकर फिरसे अपना द्वीप कायम करनेमें सफल हुई। यहाँ आर्योंका सम्पर्क उसी भूमध्यीय जातिसे हुआ, जिसकी समुन्नत संस्कृतिके अवशेष सिन्धु-उपत्यका और मसोपोतामियामें मिलते हैं। इस सम्पर्कके कारण आगे बढ़नेमें बहुत सहायता मिली और आर्य जल्दी जल्दी पित्तलयुगको पार हो लौहयुगमें पहुँच गये। ऐसे सम्पर्क के अभावके कारण शकद्वीपके शक सामाजिक विकासमें उतने नहीं बढ़ सके। ई० पू० ६ठी ५वीं शताब्दीमें, जब कि आर्योंके स्थानोंमें लोहेका खूब प्रचार था, शकलोग अभी पीतलकी ही तलवारों, बाण और भालेके फलोंको इस्तेमाल करते थे। दारयोशकी सेनामें सम्मिलित ग्रीक लोगोंसे लड़ते इन शक सैनिकोंके बारेमें लिखते हुए ग्रीक इतिहासकार कहते हैं, कि उनके देशमें चांदी और लोहा नहीं होता, इसीलिए इन धातुओंका प्रचार उनमें नहीं है; साथ ही सोने और तांबेकी बहुतायत है, इसीलिए वह हथियारोंके लिये पीतल और सौंदर्यके लिये सोनेका मुक्तहस्त हो उपयोग करते हैं। इस समयके पीछे तथा हूणोंके प्रहारसे [illegible] [illegible] या अंशतः छोड़कर कृपिजीवी ग्रामवासी बन गये। शकद्वीपका सारा पूर्वी भाग तब तक अपने [illegible]-घुमन्तू-जीवनको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हुआ, जब तक कि हूण उनको इस भूमिसे भगानेमें समर्थ नहीं हुये। १२८ ई० पू० में चीनी सैनिक-पर्यटक चाङक्यान् जब उनके केन्द्र बाख्तरमें पहुँचता, तो एक विशाल वैभवशाली राज्यके स्वामी होनेके बाद भी अभी [illegible] तम्बुओंमें रहते अपने घोड़ों और भेड़ोंको जगह जगह [illegible] देखा —अर्थात् अब भी वह अपने पुराने जीवनसे चिपके रहना चाहते थे। स्थायी निवासियोंको लड़ाकू घुमन्तू जातियाँ आमतौरसे डरपोक कह कर घृणाकी दृष्टिसे देखती है। डरपोक न होने देनेके लिये तैमूर विश्वविजेता बननेके बाद तथा नवीन समरकन्द जैसी बड़े बड़े प्रासादोंकी नगरीका संस्थापक होते हुए भी घुमन्तू जीवनका अभिनय करता था। यह अभिनय बिल्कुल बेकारकी चीज नहीं थी। वस्तुतः घुमन्तू जीवन युद्धके लिये सदा तैयार सैनिक जीवन जैसा है। अन्तर इतना ही है, कि सैनिक जहाँ घूमनेके लिये स्वतन्त्र

न होनेसे हम उसे पश्चिमी हिंदू-युरोपीय जनगण कहते हैं। मध्य-एसियासे हिंदू-युरोपीय जनोंका युरोपमें जाना सभी स्वीकार करते हैं, और इसमें भी सहमत हैं, कि वह नवपाषाण-युगमें हुआ। नवपाषाण-युगकी एक विशेषता है कृषि, लेकिन कृषिके हथियारों और धान्योंके लिये एक प्रकारकी शब्दावली हम केन्तम और शतम् भाषाओंमें नहीं पाते। केन्तम् की बात तो दूर शतम् भाषाओंमें भी कृषि-संबंधी एक तरहके शब्द नहीं मिलते, इससे यह कहना उचित नहीं जंचता, कि नवपाषाण-युगमें हिंदू-युरोपीय मध्य-एसियासे पश्चिममें गये, शतम् और केन्तम् का भेद हुआ, शक और आर्य दो स्वतन्त्र जनोंमें विभक्त हुए। यदि हम नव पाषाण-युगसे पहले इन विभाजनोंको मानें तो भाषाशास्त्रके अनुसार इसमें कोई हरज नहीं पड़ता, किन्तु कालके अनुसार बहुत लम्बा समय भाषाओंके परिवर्तनके लिये देना पड़ता है। इस शतम्-केन्तम् और शक-आर्य भेदके समयको निर्धारित करनेके लिये शायद मध्य-एसियाकी मरुभूमि इतिहास-वेत्ताओंकी सहायता करे।

ऊपर कहे आर्यद्वीपमें भूमध्यीय जाति चली आई, यह अनौ (दक्षिणी तुर्कमानिया) और ख्वारेज्मकी पुरातात्विक खोजोंसे सिद्ध है, किंतु शकद्वीपमें भूमध्यीय जातिका कोई इस तरहका हस्तक्षेप दिखाई नहीं पड़ता। मध्यपाषाण युग हो या नवपाषाण-युग, इसी समय पश्चिमकी ओर भागे हिंदू-युरोपीय जनगणकी शाखा शकार्य मध्य-एसियामें पहुँचकर फिरसे अपना द्वीप कायम करनेमें सफल हुई। यहाँ आर्योंका सम्पर्क उसी भूमध्यीय जातिसे हुआ, जिसकी समुन्नत संस्कृतिके अवशेष सिन्धु-उपत्यका और [illegible] मिलते हैं। इस सम्पर्कके कारण आगे बढ़नेमें बहुत सहायता मिली और आर्य जल्दी जल्दी पित्तलयुगको पार हो लौहयुगमें पहुँच गये। ऐसे सम्पर्क के अभावके कारण शकद्वीपके शक सामाजिक विकासमें उतने नहीं बढ़ सके। ई० पू० ६ठी ५वीं शताब्दीमें, जब कि आर्योंके स्थानोंमें लोहेका खूब प्रचार था, शकलोग अभी पीतलकी ही तलवारों, बाण और भालेके फलोंको इस्तेमाल करते थे। दारयोशकी सेनामें सम्मिलित ग्रीक लोगोंसे लड़ते इन शक सैनिकोंके बारेमें लिखते हुए ग्रीक इतिहासकार कहते हैं, कि उनके देशमें चांदी और लोहा नहीं होता, इसीलिए इन धातुओंका प्रचार उनमें नहीं है; साथ ही सोने और तांबेकी बहुतायत है, इसीलिए वह हथियारोंके लिये पीतल और सौंदर्यके लिये सोनेका मुक्तहस्त हो उपयोग करते हैं। इस समयके पीछे तथा [illegible] सागरके तट पर रहनेवाले शक भी पशुपाल-घुमन्तू-जीवनको पूर्णतया या अंशतः [illegible] ग्रामवासी बन गये। शकद्वीपका सारा पूर्वी भाग तब तक अपने [illegible] छोड़नेके लिये तैयार नहीं हुआ, जब तक कि हूण उनको इस भूमिसे भगानेमें समर्थ नहीं हुये। १२८ ई० पू० में चीनी सैनिक-पर्यटक चाङक्यान् जब उनके केन्द्र बाख्तरमें पहुँचता, तो एक विशाल वैभवशाली राज्यके स्वामी होनेके बाद भी अभी शकोंको उसने तम्बुओंमें रहते अपने घोड़ों और भेड़ोंको जगह जगह चराते-घूमते देखा —अर्थात् अब भी वह अपने पुराने जीवनसे चिपके रहना चाहते थे। स्थायी निवासियोंको लड़ाकू घुमन्तू जातियाँ आमतौरसे डरपोक कह कर घृणाकी दृष्टिसे देखती है। डरपोक न होने देनेके लिये तैमूर विश्वविजेता बननेके बाद तथा नवीन समरकन्द जैसी बड़े बड़े प्रासादोंकी नगरीका संस्थापक होते हुए भी घुमन्तू जीवनका अभिनय करता था। यह अभिनय बिल्कुल बेकारकी चीज नहीं थी। वस्तुतः घुमन्तू जीवन युद्धके लिये सदा तैयार सैनिक जीवन जैसा है। अन्तर इतना ही है, कि सैनिक जहाँ घूमनेके लिये स्वतन्त्र

होने पर भी स्त्री और बाल-बच्चोंके संबंधसे वंचित रहता है, वहाँ घुमन्तूका सारा परिवार (नर-नारियों और बच्चे-बूढ़ों सहित सारा जन) सेनाका अभिन्न अंग होता है। वह जैसे आक्रमणके लिये एक क्षणकी सूचनामें तैयार हो सकता है, वैसे ही सैनिक अवश्यकता पड़ने पर भागनेके लिये भी तैयार हो सकता है। घुमन्तू विजेताको जहाँ शत्रुके समस्त नगर और गाँव लूटपाटके लिये खुले मिलते हैं, वहाँ उनपर विजय प्राप्त करनेवाले नागरिकोंको कुछ भी हाथ नहीं आता। यही कारण है, जो घुमन्तू लोग सहस्राब्दियों तक अजेय साबित हुए। चीनने हूणोंको बार बार मार भगाते जब सफलता नहीं पाई, तो अपनी प्रतिरक्षाके लिये महा दीवार खड़ी की। कुरव महान् मसागेत घुमन्तूओंके साथ लड़ते लड़ते मारा गया। उसके उत्तराधिकारी दारयोशको भी ५१३ ई० पू० में पश्चिमी शकों पर आक्रमण करके पछताना पड़ा। ग्रीक लोगोंका तजर्बा इससे वेहतर नहीं था।

२. शक लोग

घुमन्तू जीवनमें जहाँ सैनिक और राजनीतिक दृष्टिसे कितने ही सुभीते हैं, वहाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे यह घाटेका सौदा है। दूसरी जातियोंके लौहयुगमें चले जानेके बाद भी शकोंका पित्तलयुगमें पड़ा रहना सामाजिक गतिरोध ही था। हम जानते हैं, सामाजिक विकासके अनुसार भाषाका विकास होता है। शक भाषाके बहुत कम ही नमूने हमारे पास तक पहुँचे हैं, और जो पहुँचे भी है, वह ईसवी सन्के आरंभ होनेके बादके हैं। लेकिन शकोंके उत्तराधिकारियोंकी भाषा देखनेसे मालूम होता है, कि उनकी भाषा जो विश्लेषात्मक न हो, संश्लेषात्मक ही रह गयी, [illegible]। भारतीय आर्योंकी भाषामें परिवर्तन भारतमें आते ही होने लगा, जब कि अपने सारे शतम् वंशमें अपरिचित टवर्गका ऋग्वेद तकमें प्रयोग होने लगा। हमारी भाषामें मौलिक परिवर्तन (संश्लेषात्मकसे विश्लेषात्मक होना) जहाँ ईसाकी छठीं-सातवीं शताब्दीमें हो चुका, वहाँ शकोंके आधुनिक वंशज स्लावों (रूसी आदि जातियों) की भाषा आज भी संश्लेषात्मक है—उसमें क्रिया तथा शब्दके [illegible] की भाँति अभिन्न अंगके तौर पर प्रयुक्त होते हैं और सहायक क्रियाओंका उपयोग आज भी नहीं देखा जाता। इससे उनमें यह विशेषता देखी जाती है, कि भाषाके ढांचेकी दृष्टिसे स्लाव भाषायें संस्कृतसे जितनी नजदीक हैं, उतनी हमारे यहाँ की कोई भी जीवित भाषा नहीं है।

दारयोश एक आर्य राजा था। उसने ५१३ ई० पू० में युरोपके भीतरसे कालासागरके किनारे किनारे उत्तर में बढ़कर शकोंके ऊपर असफल आक्रमण किया था। ग्रीक इतिहासकारों द्वारा उद्धृत शक परम्पराके अनुसार इस आक्रमणसे १००० वर्षपूर्व शकोंका प्रथम राजा हुआ था। इसमें संदेह है, कि जब तक शकोंकी भूमिमें शक रहे, तब तक कोई उनका वास्तविक राजा हुआ होगा। शक घुमन्तूओंके सरदार या नेताओं को भी दूसरोंकी देखादेखी राजा माना गया होगा। शकोंमें स्त्रियोंका विशेष स्थान था, बल्कि ई० पू० चौथी-पांचवीं शताब्दीमें दोनसे पूर्व रहनेवाले शक जनगणका नाम सरमात या सर्वमात इसीलिए पड़ा था, कि उनमें माता (स्त्री) सर्वे-सर्वा होती थीं। स्त्रियाँ मृत जन-पतिका स्थानापन्न ही नहीं होती थीं, बल्कि वह सेना-संचालन भी करती थीं।

इतिहासके आरंभमें शकोंमें जो रीति-रवाज, वेष-भूषा देखी जाती थी, वह बहुत पुराने कालसे चली आई थी। चीनी और ग्रीक दोनों लेखक इस बातमें सहमत हैं, कि शकोंका मुख्य

न होनेसे हम उसे पश्चिमी हिंदू-युरोपीय जनगण कहते हैं। मध्य-एसियासे हिंदू-युरोपीय जनोंका युरोपमें जाना सभी स्वीकार करते हैं, और इसमें भी सहमत हैं, कि वह नवपाषाण-युगमें हुआ। नवपाषाण-युगकी एक विशेषता है कृषि, लेकिन कृषिके हथियारों और धान्योंके लिये एक प्रकारकी शब्दावली हम केन्तम और शतम् भाषाओंमें नहीं पाते। केन्तम् की बात तो दूर शतम् भाषाओंमें भी कृषि-संबंधी एक तरहके शब्द नहीं मिलते, इससे यह कहना उचित नहीं जंचता, कि नवपाषाण-युगमें हिंदू-युरोपीय मध्य-एसियासे पश्चिममें गये, शतम् और केन्तम् का भेद हुआ, शक और आर्य दो स्वतन्त्र जनोंमें विभक्त हुए। यदि हम नव पाषाण-युगसे पहले इन विभाजनोंको मानें तो भाषाशास्त्रके अनुसार इसमें कोई हरज नहीं पड़ता, किन्तु कालके अनुसार बहुत लम्बा समय भाषाओंके परिवर्तनके लिये देना पड़ता है। इस शतम्-केन्तम् और शक-आर्य भेदके समयको निर्धारित करनेके लिये शायद मध्य-एसियाकी मरुभूमि इतिहास-वेत्ताओंकी सहायता करे।

ऊपर कहे आर्यद्वीपमें भूमध्यीय जाति चली आई, यह अनौ (दक्षिणी तुर्कमानिया) और ख्वारेज्मकी पुरातात्विक खोजोंसे सिद्ध है, किंतु शकद्वीपमें भूमध्यीय जातिका कोई इस तरहका हस्तक्षेप दिखाई नहीं पड़ता। मध्यपाषाण युग हो या नवपाषाण-युग, इसी समय पश्चिमकी ओर भागे हिंदू-युरोपीय जनगणकी शाखा शकार्य मध्य-एसियामें पहुँचकर फिरसे अपना द्वीप कायम करनेमें सफल हुई। यहाँ आर्योंका सम्पर्क उसी भूमध्यीय जातिसे हुआ, जिसकी समुन्नत संस्कृतिके अवशेष सिन्धु-उपत्यका और मनोपोतामियामें मिलते हैं। इस सम्पर्कके कारण आगे बढ़नेमें बहुत सहायता मिली और आर्य जल्दी जल्दी पित्तलयुगको पार हो लौहयुगमें पहुँच गये। ऐसे सम्पर्क के अभावके कारण शकद्वीपके शक सामाजिक विकासमें उतने नहीं बढ़ सके। ई० पू० ६ठी ५वीं शताब्दीमें, जब कि आर्योंके स्थानोंमें लोहेका खूब प्रचार था, शकलोग अभी पीतलकी ही तलवारों, वाण और भालेके फलोंको इस्तेमाल करते थे। दारयोशकी सेनामें सम्मिलित ग्रीक लोगोंसे लड़ते इन शक सैनिकोंके बारेमें लिखते हुए ग्रीक इतिहासकार कहते हैं, कि उनके देशमें चांदी और लोहा नहीं होता, इसीलिए इन धातुओंका प्रचार उनमें नहीं है; साथ ही सोने और तांबेकी बहुतायत है, इसीलिए वह हथियारोंके लिये पीतल और सौंदर्यके लिये सोनेका मुक्तहस्त हो उपयोग करते हैं। इस समयके पीछे तथा हूणोंके प्रहारसे पहले ही काला-सागरके तट पर रहनेवाले शक भी पशुपालन-घुमन्तू-जीवनको पूर्णतया या अंशतः छोड़कर कृपिजीवी ग्रामवासी बन गये। शकद्वीपका सारा पूर्वी भाग तब तक अपने पशुपालन-घुमन्तू-जीवनको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हुआ, जब तक कि हूण उनको इस भूमिसे भगानेमें समर्थ नहीं हुये। १२८ ई० पू० में चीनी सैनिक-पर्यटक चाङक्यान् जब उनके केन्द्र बाख्तरमें पहुँचता, तो एक विशाल वैभवशाली राज्यके स्वामी होनेके बाद भी अभी शकोंको उसने तम्बुओंमें रहते अपने घोड़ों और भेड़ोंको जगह जगह चराते-घूमते देखा —अर्थात् अब भी वह अपने पुराने जीवनसे चिपके रहना चाहते थे। स्थायी निवासियोंको लड़ाकू घुमन्तू जातियाँ आमतौरसे डरपोक कह कर घृणाकी दृष्टिसे देखती है। डरपोक न होने देनेके लिये तैमूर विश्वविजेता बननेके बाद तथा नवीन समरकन्द जैसी बड़े बड़े प्रासादोंकी नगरीका संस्थापक होते हुए भी घुमन्तू जीवनका अभिनय करता था। यह अभिनय बिल्कुल बेकारकी चीज़ नहीं थी। वस्तुतः घुमन्तू जीवन युद्धके लिये सदा तैयार सैनिक जीवन जैसा है। अन्तर इतना ही है, कि सैनिक जहाँ घूमनेके लिये स्वतन्त्र

होने पर भी स्त्री और बाल-बच्चोंके संबंधसे वंचित रहता है, वहाँ घुमन्तूका सारा परिवार (नर-नारियों और बच्चे-बूढ़ों सहित सारा जन) सेनाका अभिन्न अंग होता है। वह जैसे आक्रमणके लिये एक क्षणकी सूचनामें तैयार हो सकता है, वैसे ही सैनिक अवश्यकता पड़ने पर भागनेके लिये भी तैयार हो सकता है। घुमन्तू विजेताको जहाँ शत्रुके समस्त नगर और गाँव लूटपाटके लिये खुले मिलते हैं, वहाँ उनपर विजय प्राप्त करनेवाले नागरिकोंको कुछ भी हाथ नहीं आता। यही कारण है, जो घुमन्तू लोग सहस्राब्दियों तक अजेय साबित हुए। चीनने हूणोंको बार बार मार भगाते जब सफलता नहीं पाई, तो अपनी प्रतिरक्षाके लिये महा दीवार खड़ी की। कुरव महान् मसागेत घुमन्तूओंके साथ लड़ते लड़ते मारा गया। उसके उत्तराधिकारी दारयोशको भी ५१३ ई० पू० में पश्चिमी शकों पर आक्रमण करके पछताना पड़ा। ग्रीक लोगोंका तजर्बा इससे बेहतर नहीं था।

२. शक लोग

घुमन्तू जीवनमें जहाँ सैनिक और राजनीतिक दृष्टिसे कितने ही सुभीते हैं, वहाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे यह घाटेका सौदा है। दूसरी जातियोंके लौहयुगमें चले जानेके बाद भी [illegible] गतिरोध ही था। हम जानते हैं, सामाजिक विकासके अनुसार भाषाका विकास होता है। शक भाषाके बहुत कम ही नमूने हमारे पास तक पहुँचे हैं, और जो पहुँचे भी है, वह ईसवी सन्के आरंभ होनेके बादके हैं। लेकिन शकोंके उत्तराधिकारियोंकी भाषा देखनेसे मालूम होता है, कि उनकी भाषा जो विश्लेषात्मक न हो, संश्लेषात्मक ही रह गयी, उसका कारण पूर्वजोंका यही सामाजिक गतिरोध था। भारतीय आर्योंकी भाषामें परिवर्तन भारतमें आते ही होने लगा, जब कि अपने सारे शतम् वंशमें अपरिचित टवर्गका ऋग्वेद तकमें प्रयोग होने लगा। हमारी भाषामें मौलिक परिवर्तन (संश्लेषात्मकसे विश्लेषात्मक होना) जहाँ ईसाकी छठीं-सातवीं शताब्दीमें हो चुका, वहाँ शकोंके आधुनिक वंशज स्लावों (रूसी आदि जातियों) की भाषा आज भी संश्लेषात्मक है—उसमें क्रिया तथा शब्दके रूपोंमें प्रत्यय संस्कृत की भाँति अभिन्न अंगके तौर पर प्रयुक्त होते हैं और सहायक क्रियाओंका उपयोग आज भी नहीं देखा जाता। इससे उनमें यह विशेषता देखी जाती है, कि भाषाके ढांचेकी दृष्टिसे स्लाव भाषायें संस्कृतसे जितनी नजदीक हैं, उतनी हमारे यहाँ की कोई भी जीवित भाषा नहीं है।

दार्‌योश एक आर्य राजा था। उसने ५१३ ई० पू० में युरोपके भीतरसे कालासागरके किनारे किनारे उत्तर में बढ़कर शकोंके ऊपर असफल आक्रमण किया था। ग्रीक इतिहासकारों द्वारा उद्धृत शक परम्पराके अनुसार इस आक्रमणसे १००० वर्षपूर्व शकोंका प्रथम राजा हुआ था। इसमें संदेह है, कि जब तक शकोंकी भूमिमें शक रहे, तब तक कोई उनका वास्तविक राजा हुआ होगा। शक [illegible] सरदार या नेताओं को भी दूसरोंकी देखादेखी राजा माना गया होगा। शकोंमें स्त्रियोंका विशेष स्थान था, बल्कि ई० पू० चौथी-पांचवीं शताब्दीमें दोनसे पूर्व रहनेवाले शक जनगणका नाम सरमात या सर्वमात इसीलिए पड़ा था, कि उनमें माता (स्त्री) सर्व-सर्वा होती थीं। स्त्रियाँ मृत जन-पतिका स्थानापन्न ही नहीं होती थीं, बल्कि वह सेना-संचालन भी करती थीं।

इतिहासके आरंभमें शकोंमें जो रीति-रवाज, वेष-भूषा देखी जाती थी, वह बहुत पुराने कालसे चली आई थी। चीनी और ग्रीक दोनों लेखक इस बातमें सहमत हैं, कि शकोंका मुख्य

भोजन मांस और मुख्य पान दूध था। मांसके साथ ताजा खून पीना भी उनमें प्रचलित रहा होगा, तभी तो युद्धमें प्रथम गिरे शत्रुका गरम-गरम खून वह पाण्डव भीमकी तरह पीते थे, शत्रु सरदारकी खोपड़ीका कटोरा बनाकर बड़ी सावधानीसे रखते थे। यह दोनों प्रथायें हूणोंमें भी देखी जाती हैं, यद्यपि वह मंगोलायित थे। चंगेज खानके मंगोल सैनिकोंके इतने सफल होनेमें एक कारण उनका घोड़ा था, जिसपर चढ़कर वाण चलाते हुए जहाँ वह युद्ध कर सकते थे, वहाँ अवश्यकता पड़ने पर घोड़ेकी नसमें छेदकर उसके खूनसे भूखको शान्तकर फिर लड़नेकेलिये ताजा हो जाते थे। विवाह-प्रथा शकोंमें बहुत प्रारंभिक रूपमें थीं। कई भाइयोंकी एक स्त्री हो सकती थी और स्त्रियोंके एक समूहका पुरुषोंका एक समूह पति समझा जाता था, अर्थात् यूथ-विवाह उनमें प्रचलित था। किसी सरदारके मरने पर उसकी एक पत्नीको अवश्य कब्रमें अपने पतिका साथ देना पड़ता था। मिस्री सामन्तोंकी तरह शकोंमें भी शव-क्रिया बड़ी शानसे सम्पन्न होती थी। मृत सरदारके साथ उन सभी चीजोंको कब्रमें रख दिया जाता था, जिनकी कि उसे जीवनमें जरूरत पड़ती थी। सभी तरहके हथियार, आभूषण, खान-पानकी चीजें और घोड़ोंको ही कब्रमें नहीं रखा जाता था, बल्कि दास-दासियोंको भी स्वामीके साथ जाना पड़ता था। पुराने शकोंमें मुर्दे (विशेष कर सामन्तके मुर्दे) को दफनानेका रवाज था। उनकी कब्रें काकेशस्के उत्तरमें मिली हैं, और अल्ताई भी उनसे खाली नही है। साधारण कब्रोंमें भी खान-पान-सहित बर्तनोंका रक्खा जाना आवश्यक समझा जाता था। यह प्रथा शकोंकी एक शाखा खसोंमें ईसवी सन्के आरंभसे पीछे तक भी पाई जाती थी, यह लदाखसे कुमाऊँ तक मिलने वाली खस-समाधियोंसे सिद्ध है। दफनानेके अतिरिक्त शक मुर्देको पेड़के ऊपर टाँग देते थे, जिसमें पक्षी मांस खा जायें। उसके बाद हड्डीको इकट्ठा करके गाड़ दिया जाता था। पारसियों में अब भी इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता है, और वृक्ष की जगह दख्मा में शव को गिद्धों द्वारा खाने के लिये छोड़ दिया जाता है। यूनानीं लेखकों से यह भी मालूम होता है, कि पक्षियों के लिये छोड़ देने की जगह कभी कभी मनुष्य अपने हाथों से हड्डी से मांस को अलग कर देता और इस तरह बिना चिरप्रतीक्षा के ही हड्डी को दफना ने का मौका मिल जाता था। मुर्दा दफनाने के साथ-साथ शकों में मुर्दा जलाने का भी रवाज था। उस समय पत्नी को साथ भेजने के लिये जिंदा जलाने की जरूरत पड़ती। ८वीं ९वीं शताब्दी में, जब कि रूसी लोग अभी ईसाई नहीं हुये थे, उनमें सती प्रथा मौजूद थी, जिसे एक अरब पर्यटक ने अपनी आंखों देखा था। भारत में सती-प्रथा का रवाज शकों के आने के साथ हुआ।

शकों की पोषाक सारे युरेसिया द्वीप में एक सी थी। उनके सिर पर एक नुकीली टोपी होती थी, जो शक-सिक्कों से लेकर मथुरा और अमरावती की २री-३री शताब्दियों की मूर्त्तियों में भी पाई जाती है। पैरों में पायजामा और देह पर लंबा चोला, साथ ही घुटने या उसके पास तक पहुँचनेवाला चमड़े या नम्दे का बूट उनकी विशेष पोशाक थी। कमर में कमरबन्द के साथ सीधी लम्बी तलवार लटका करती थी। उनकी लम्बी नाक और भूरेबालों का चीनी लेखकों ने विशेष तौर से उल्लेख किया है। संस्कृत के लेखकों ने शकों, यवनों, पल्हवों और बाह्लिकों को रक्तमुख कहा है। शक सुंदरियां अपने सौन्दर्य के लिये भारत में अधिक विख्यात थीं। हमारे वैद्यों ने उनके सौंदर्य का कारण प्याज अधिक खाना बतलाया है। बागभट्टने अपनं "अष्टांगहृदय" (उत्तरतंत्र) में लिखा है—

"यस्योपयोगेन शकांगनानां लावण्यसारादि-विनिर्मितानाम्।"

शकों के परम देवता सूर्य थे, इसका पता ग्रीक पुस्तकों से ही नहीं मिलता है, बल्कि भारत में शकों जैसी बूटधारी सूर्य-प्रतिमाओं का व्यापक प्रसार तथा ईसाई धर्म स्वीकार करने से पहले रूसियों की सूर्य में एकांत-भक्ति भी इसी बात को बतलाती है। सूर्य के अतिरिक्त "दिवु" शकों का पूज्य देवता था, जो कि वैदिक द्यौ और ग्रीक जेउस है। "अपिया" (आप्या) के नाम से पृथ्वी
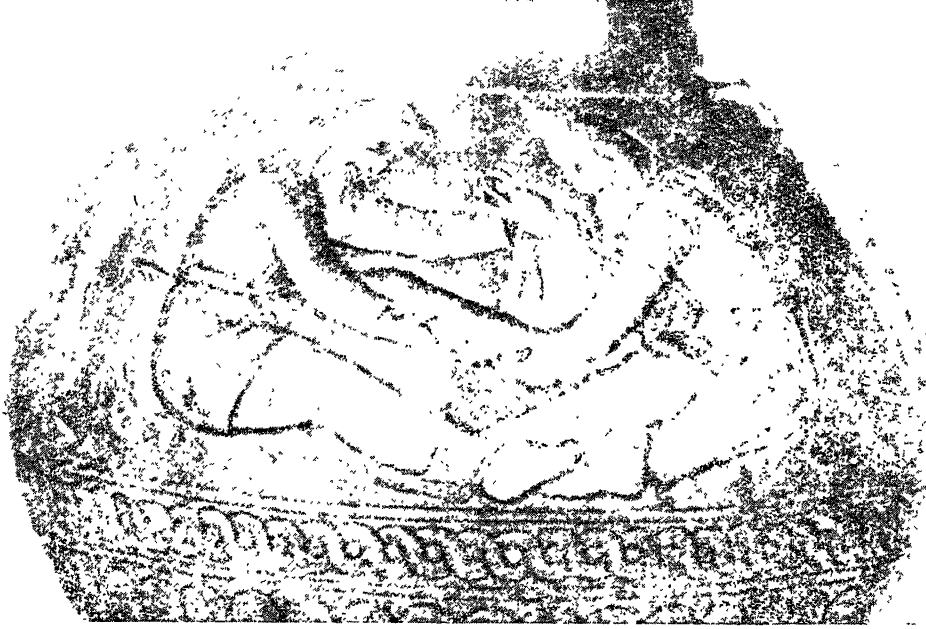
माता पूजी जाती थी। सूर्य को वह "स्वलियु" कहते थे, जिसमें रके स्थान में लके साथ शकों के अत्यन्त प्रेम को हटा देने पर सूर्य शब्द साफ दिखाई पड़ेगा। स्वलियु देवता दिवू पिता और अपिया माता का (द्यावापृथिवी) पुत्र था। 'पक' भी एक प्रधान देवता था, जो वेद में भग, ईरानी में बग (बगदाद=भगदत्त) और रूसी में बोग के रूप में मौजूद है। राजा या बड़े सरदार को शक लोग पकपूर कहते थे, जो कि भगपूर (भगपुत्र) का ही रूपानन्तर है। फारसी और अरबी में चीन के सम्राट् को फगफूर कहा जाता है, जो कि इसी पकपूर से निकला है। चीनी सम्राट् देवपुत्र (स्वर्गपुत्र) कहे जाते थे, यह हमें मालूम ही है। चन्द्रमा देवता को शक लोग अरतिम्पत (अर्थी-पति) कहते थे। वृन्दू भी उनकी एक देवी थी और थमी-मसद तथा विरोपत (वीरपति) उनके देवता थे। शक भाषा के पुराने नमूने बहुत ही कम मिले हैं। उनमें से कुछ हैं[1]—

---

[1] Les Scythes p. 539

तविती=अग्नि	स्वलियु=सूर्य
शक=शक	पर्थ=पृथक्कृत
ज़रिना=हरिना	कनग=राजा (रूसी कन्याग)
महकनग=महाराजा	तवितवरू=जनपाल
नगूरीन=ननग़ीर (रानी)	स्परोत्र=स्वरएथ्र

स्रोतग्रन्थ :

1. Les Scythes (F. G. Bergmanss, Halles 1860)
2. वेस्लिक द्रेब्नेइ इस्तोरिइ 1947
3. क्त्कि० सोओब्० XIII

भाग ३

उत्तरापथ (६०० ई० पू०-७०० ई०)

अध्याय १

शक (६००-१७४ ई० पू०)

§१. शक-जातियाँ[1]

हम देख चुके हैं, ई० पू० ३री सहस्राब्दी से प्रथम सहस्राब्दी के प्रायः मध्य तक सप्तनद और अल्ताई में क्रमशः अफनास (२५००-१७०० ई० पू०), अन्द्रोन (१७००-१२०० ई०) पू०, करासुक (१७००-८०० ई० पू०) और अन्तिम के समकालीन मिनिसुन जातियाँ रहती थीं। कोई प्रमाण नहीं है, कि यह लोग शकों के पूर्वज छोड़ किसी दूसरी जातिके थे। ईसा पूर्व ७वीं शताब्दी में हम उत्तरी मध्य-एसिया में शक जातियों का प्रसार निम्न प्रकार पाते हैं। (१) दोन से पूरब कास्पियन के उत्तर होते अराल समुद्र और यक्सर्त (सिरदरिया) के मध्य तक मसागित जाति का विस्तार था, अराल समुद्र के पास यह जाति निम्न वक्षु-उपत्यका में अर्थात् ख्वारेज्म में भी फैली हुई थी। इसके दक्षिण में कास्पियन के किनारे दहा घुमन्तू शक जाति थी, जिसने पीछे पार्थ जातिको जन्म दिया। मसागित् से पूरब यक्सर्त की ऊपरी उपत्यका के उत्तरी भाग, नरिम नदी और इसिकुल तक सकरौका (प्राग्-सइवङ) जाति रहती थी। सइवङ जन पीछे इसीसे निकला। अल्ताई में उस समय प्राग्-वूसुन जाति थी, जिससे पीछे वूसून जन पैदा हुआ। इससे पूरब ह्वाङहो नदी के पास कानसु तक यूची जन के पूर्वज रहते थे। तरिम-उपत्यका या सिङकियाङ में शकों की ही एक शाखा खश रहते थे, जो ई० पू० ७ वीं सदी से पहिले ही कराकुरम गिरिमाला को पारकर गिल्गित और कश्मीर में फैल गये थे। फिर आगे चलकर उन्होंने नेपाल तक सारे हिमालय को खशभूमि बना दिया। यह सारी शक-खश जाति ई० पू० ५ वीं सदी तक पित्तल-युग में थी। दारयोश के अभिलेख में तिग्राखौदा, हौमवर्क, त्याई नाम के तीन शक जनों का पता लगता है, किन्तु उनके स्थान के बारे में कुछ कहना मुश्किल है। मसागित् के पूरब में शकरौका का विचरण स्थान सप्तनद का पश्चिमी भाग था। यह जातियां अभी प्रागैतिहासिक काल में विचर रही थीं। इन के बारे में ग्रीक और ईरानी लोगों ने जो कुछ वर्णन किया है, उसके अतिरिक्त और पता नहीं लगता। इनमें से कुछ जातियों के बारे में निम्न बातें मालूम होती हैं—

(१) मसागित्[2]—मसागित् शब्द मसाग या महाशक से निकला है। सचमुच ही उस समय यह शक जनों में सबसे बड़ा जन था। दोन से लेकर यक्सर्त नदी के मध्य तक तथा खारेज्म में फैला यह महाजन महाशक कहे जाने का अधिकारी था। इनका

---

[1] Les Scythes,

[2] वही p.540

सबसे प्रिय हथियार कुल्हाड़ा था। दूसरे शकोंकी तरह यह घोड़े पर चढ़कर तीरका निशाना लगा सकते थे। तीर और भाले के फल ही नहीं इनके कुल्हाड़े और लम्बी सीधी तलवारें भी पीतलकी होती थीं। पशुओं का मांस और दूध इनका मुख्य भोजन था। तम्बू के डेरों को छोड़कर कोई इनका स्थायी निवास नहीं होता था। यह पक्के यायावर थे। इनकी स्त्रियां पुरुषों की भांति युद्ध में लड़ती थीं, और कितनी ही बार सेना का नेतृत्व भी करती थीं। यद्यपि महाशक पुरुष अलग अलग व्याह करते थे, किन्तु तो भी दूसरी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखने की स्वतन्त्रता थी। इससे मालूम होता है, कि अभी यह यूथ-विवाह से आगे नहीं बढ़े थे। वृद्ध-वृद्धाओं को मार डालने की प्रथा इनमें प्रचलित थी। एस्किमों लोगों में अभी हाल तक वृद्धावस्था में पहुंचने पर बुजुर्गों को मार डालनेका आम रवाज था, जिसका कारण उनका परिवार के ऊपर भारस्वरूप होना था। मसगित् या महाशक जन के साथ अखामनशी (ईरानी) शासकों का बराबर संघर्ष रहा, जिसके बारे में हम आगे कहेंगे। मसगित् के पश्चिमी कबीलों को सरमात भी कहते थे। बल्कि कभी कभी इस सारे कबीले का नाम मसगित्-सरमात बतलाया जाता है। यह बतला चुके हैं, कि स्त्रियों की प्रधानता के कारण ही इस कबीले का सर-मात या सर्व-मात नाम पड़ा। शायद यह यूनानियों का दिया हुआ नाम हो।

(२) सकरौका—महाशक जन से पूरब किन्तु यक्सर्त नदी के उत्तर-उत्तर सप्तनद भूमि के पश्चिमी भाग में यह घुमन्तू जन पशुचारण करता था। सकरौका वस्तुतः शक-ओक (शकस्थान) का ही परिचायक है। इनकी भूमि सोग्द के उत्तर में थी। यह एक समय दारयोश प्रथम की प्रजा थे। इनके दक्षिण में सोग्द लोग सोग्द (ज़रफ़शां) नदी से वक्षु नदी तक रहते थे। [illegible]। कुछ विद्वानों का मत है, कि शकरौका और शक-हौमवर्क एक ही थे। दारयोश के समय यह यक्सर्त नदी के दाहिने किनारे पर बसते थे, किन्तु ई० पू० द्वितीय सदी में इनके श्रोर्दू खोजन्द की पश्चिमी पहाड़ियों में रहते थे। यह भी सन्देह किया जाता है, कि चीनियों ने जिन्हें सइवाङ लिखा है, वह वस्तुतः यही सकरौका थे।

(३) दाहै—यह संभवतः शकरौका और महाशक के बीच में यक्सर्त नदी के पहाड़ियों के निवासी थे, जो पीछे कास्पियन के किनारे ईरान की सीमा तक पहुँच गये। चीनियों ने इनका नाम अनसी बतलाया है। यह अच्छे घोड़सवार धनुर्धर होते थे। इन्हींके एक कबीले पारथी ने २४८-४७ ई० पू० में मामूली राज्य स्थापित करके अन्त में ईरानी-ग्रीकों के सारे राज्य को अपने कब्जे में कर लिया।

(४) खस—इस जनका ग्रीक या ईरानी स्रोतों से पता नहीं लगता। तालमी और दूसरे लेखकों ने हिमालय के खसों का वर्णन किया है, और हमारे लिये जो आज भी यह एक जीवित जाति है। गिल्गित-चित्राल में कसकर, कश्मीर में कश, काशगर में खशगिरि, और कश्मीर से पूरब नेपाल तक खस या खसिया जाति तथा नेपाली भाषा का दूसरा नाम खसकुरा (खस भाषा) यही बतलाते हैं। पित्तल युग में तरिम उपत्यका इनका निवास थी। हूणों से भगाये जाने के बाद जब तक कि लुघुयूची इनकी भूमि में छा गये, तब तक सारी तरिम-उपत्यका खसभूमि थी।

(५-६) वूसुन्, यूची—यह दोनों शक जातियाँ को आगे हम त्यानशान से ह्वाङहो तक देखेंगे। जिस काल के बारे में हम यहाँ लिख रहे हैं, उस समय चाहे जिस नाम से हों, इन्हीं के पूर्वज इस भूमि के स्वामी थे।

सारे उत्तरापथ के शक घुमन्तू पशुपाल थे, इसीलिये उनके अवशेषों में गाँवों, गढ़ों और मकानों का पता मिलना संभव नहीं है। लेकिन घुमन्तू होने पर भी शक सरदारों की कब्रें बहुत शान-शौकत से बनाई जाती थीं, जिनमें उनके उपयोग की कितनी ही सामग्री दफना दी जाती थी। ऐसी कब्रों से उनके बारे में बतलानेवाली कितनी ही सामग्री प्राप्त हो सकती है।

§२. अल्ताई के शक[1]

सोवियत पुरातत्त्व-वेत्ताओं की खोजों से अल्ताई के शकों के इतिहास पर बड़ी रोशनी पड़ रही है। क. मोइसेवा ने अपने एक लेख में[1] लिखा है :—

"साफ-सुथरी और बल खाती हुई सड़क अधिकाधिक ऊंचाई पर चढ़ती चली गई है। चट्टानी कगारों को पाकर मोटरों का एक दल इस सड़क पर से आगे बढ़ रहा है। सोवियत संघ की विज्ञान अकदमी और देश के एक सबसे बड़ी म्युजियम लेनिनग्राद एर्मीतेज ने पाज़ीरिक घाटी में पु[illegible] खोज का संगठन किया है। पश्चिमी साइबेरिया में अल्ताई पहाड़ों के बीच स्थित यह स्तपीय घाटी चालू पथों और बस्तियों से बहुत दूर है।

ऐसा मालूम होता है, मानो अल्ताई पहाड़ों का सारा सौन्दर्य पाज़ीरिक घाटी के इस रास्ते में केन्द्रित हो गया है। सदा मौजूद रहने वाली बर्फ से ढँकी पहाड़ी चोटियां नीले आसमान की पृष्ठ-भूमि में बहुत भली लगती हैं। निस्तब्ध जंगलों के बाद चरागाहों की ताज़ा हरियाली आंखों के सामने आती है। कातूना नदी का हरा पानी धीमी गति से घाटी में से बहता पहाड़ के कगार पर पहुंचता है। वहां से वह जब नीचे गिरता है, तो फुहारों के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता। नदी के किनारे भेड़ों के रेवड़, ढोर तथा घोड़ों के दल चरते रहते हैं।

यह एक समृद्ध और सुन्दर प्रदेश है।

मोटरें इस समय चिबित दर्रे से गुज़र रही हैं, फिर पाज़ीरिक घाटी से जानेवाली घूमती हुई सड़क पर मुड़ जाती हैं। शोध-दल के मुखिया प्रोफेसर रुदेन्को और उनके सभी साथी खुदाई-स्थल पर पहुंचने और अपना काम शुरू करने के लिए उत्सुक हैं। उन्हें पांच बड़े पाज़ीरिक टीलों की खुदाई का काम पूरा करना है। दो की खुदाई और पुरातत्वविदों द्वारा उनका अध्ययन हो चुका है। प्राचीन शकों के जीवन और रीति-रिवाजों के बारे में यहां से अत्यधिक मूल्यवान् सामग्री मिली है।

आखिर महा उलगान नदी के पानी पर सूरज की किरनों की चमक दिखाई देती है। इसके एक बाज़ू भीमाकार कगारों के समूह से घिरी एक तलहटी है। यही पाज़ीरिक घाटी है। इसके रहस्यमय दिखाई पड़ने का कारण शायद यह है, कि यहां कोई नहीं रहता। यहां इस लिए कोई नहीं रहता, कि घाटी में पानी का एकदम अभाव है। यहां पानी कई किलोमीतर दूर से लाना पड़ता है।

पुरातत्वविदों के कैम्प के साथ निस्तब्ध घाटी में मानवीय आवाज़ों तथा हथौड़ियों, कुदालों और लट्ठों की ध्वनियां गूंजने लगती हे। टीलों की बगल में तम्बू लग जाते हैं, और अलावों का धुंआ उठने लगता है। खनक मुर्दों के प्राचीन टीलों पर से पत्थरों को हटाने लगते हैं।

---

[1] "सोवियत् भूमि" (दिल्ली १९५३)

टीलों पर छाई मिट्टी और लट्ठों के साफ हो जाने पर सामने बड़ी चतुराई से बने लकड़ी के तहखाने का दृश्य आ जाता है। यह तहखाना एक बड़े घर के समान मालूम होता है, सिवा इसके कि उसमें दरवाज़े या खिड़कियां नहीं हैं।

तहखाने को खोला जाता है, लेकिन कुछ दिखाई नहीं देता। हर चीज़ पर बर्फ की मोटी तह जमी है। टीले पर से कुछ भी हटाना कठिन है। चिर-आच्छादक [illegible] की चीज़ों को हज़ारों सालों से सुरक्षित रखे हैं।

क्यों टीलों की प्रत्येक चीज बर्फ-बन्द दिखाई देती है? विद्वान् एक मुद्दत से इस सवाल में दिलचस्पी ले रहे हैं। अल्ताई पहाड़ों की भूमि सदा बर्फ से जमी नहीं रहती। फिर भी चट्टानी टीलों के नीचे उसे अक्सर वैसा देखा गया है। पूरी खोजबीन के बाद विद्वान् इस नतीजे पर पहुंचे हैं, कि टीलों में बर्फ का चिर-जमाव कृत्रिम रूप से पैदा किया गया है। उनका कहना है, कि टीलों का पतझड़ में निर्माण किया गया होगा, ताकि नमी और पाला टीलों में प्रवेश कर प्रत्येक चीज को बर्फ से ढँक दे। गर्मी के दिनों में तहखानों पर स्थित चट्टानों के कारण धूप उनमें प्रवेश नहीं कर पाती और बर्फ के पिघलने की नौबत नहीं आती। इस प्रकार बर्फ दीर्घकालीन युगों तक—पुरातत्वविदों द्वारा टीलों की निस्तब्धता के भंग होने तक—जैसी-की-तैसी बनी रही।

अब समस्या यह थी, कि टीलों से चीजों को कैसे हटाया जाय। इसका एक ही तरीका था, कि बर्फ को गर्म पानी से धीरे-धीरे पिघलाया जाय। बर्फ के पिघलने पर पुरातत्वविदों की आंखों में चमक दौड़ गई। कितनी अप्रत्याशित निधि यहां जमा थी? कारु कार्य युक्त चमड़े की चीजें, रेशम और फर से बने महिलाओं के समूचे कपड़े, और प्राचीन योद्धाओं के सिर पर पहनने के कवच। शोध-दल की कलाकार वेरा सुन्त्सोवा ने तुरन्त इन चीजों के चित्र बनाने शुरू कर दिए, ताकि चमड़े, फर और फैल्ट से बनी इन चीजों के सजीव रंगों का रिकार्ड रह सके। बर्फ के चिर-जमाव ने अब तक उन्हें अपने असली रूप में पूर्णतया सुरक्षित रखा था। लेकिन कौन जाने अब, प्रकाश में आने के बाद भी, उनकी पहले वाली शोभा बाकी रह सकेगी?

पुरातत्त्व के इतिहास में ऐसी एक भी मिसाल नहीं मिलती, जहां हजारों साल पुरानी चमड़े, फर, कपड़े या फैल्ट की चीजें सही-सलामत अवस्था में उपलब्ध हुई हों। मिस्र के शाहों के समाधि-स्थलों में अनेक सुन्दर चीजें मिली थीं। लेकिन, वहां के महीन कपड़ों और चमड़े तथा लकड़ी की चीजों को जैसे ही बाहर निकाला गया, वे पुरातत्वविदों के हाथ का स्पर्श पाते ही राख का ढेर हो गईं और उनके चित्र तक नहीं लिए जा सके। लेकिन यहां सभी चीजें इतने अच्छे ढंग से सुरक्षित थीं, कि वे आज भी उतनी ही मजबूत और सुन्दर दिखती थीं, जितनी कि पहले,—लगता था जैसे उन्हें अभी अभी बनाया गया है।

दृढ़ देवदार से बनी शव-पेटिका इतनी भारी थी, कि उसे बिना अलग अलग किए बाहर निकालना असम्भव था। सबसे पहले मजबूती से फिट किए हुए ऊपर के ढक्कन को हटाया गया। पुरातत्वविदों की नजर अल्ताई के प्राचीन निवासियों के शरीरों पर टिक गई। वे इतनी अच्छी हालत में थे, कि लगता था मानों उन्हें अभी कुछ ही दिन पहले शव-पेटिका में रखा गया हो। उनकी संख्या दो थी,—एक शक सैनिक शरीर दूसरा उसकी पत्नी।

सैनिक का रंग सांवला था और गालों पर हड्डियां अपेक्षाकृत ऊंची थीं। स्त्री का चेहरा सफेद और छोटा तथा हाथ कमनीय था। दोनों शरीर मसाले से सुरक्षित थे।

पुरुष की छाती और कंधों पर गोदना गुदा हुआ था, इसकी ओर ध्यान गया। बिल्ली की भांति मालूम होता परदार गिद्ध, और एक हिरन बाज जैसी चोंच वाला और बिल्ली की एक ल[illegible] था। यह कल्पनातीत पेचीदा डिज़ाइन सांवली चमड़ी पर साफ नजर आता था। प्राचीन शकों का ख्याल था, कि इस तरह के गोदने क्रूर पिशाचों से उनकी रक्षा करते हैं और साहस तथा ऊंचे वंश के सूचक हैं।

उपलब्ध चीजों की पूर्णतया जांच करने, उनका वर्णन करने तथा चित्र बनाने में कई दिन लग गए। इस बीच तहखाने में भी काम होता रहा। प्रतिदिन अधिकाधिक आश्चर्यकर चीजों का पता लगता था। फैल्ट का एक बहुत बड़ा कालीन मिला। इस पर सम्पन्नता और समृद्धि की देवी का रंगीन चित्र बना था, जो अपने हाथों में जीवन के वृक्ष को लिए थी। उसके सामने काले घुंघराले बालों से युक्त एक घोड़सवार खड़ा था। कालीन के चारों ओर तेज रंग के फूलों की किनारी थीं। प्राचीन प्रथा के अनुसार घर की सबसे बढ़िया चीजों को भी मृत व्यक्ति के साथ दफना दिया जाता था।

नम्दे के बराबर में ही एक मखमली कालीन भी मिला, जो बहुत ही मूल्यवान कालीन सिद्ध हुआ। इस पर घोड़सवारों, शेर के शरीर और बाज़ की चोंच वाले विचित्र जन्तुओं और हिरन के चित्र बने थे। कालीन के डिजाइन से पुरातत्वविदों को शक योद्धा के दफनाने की तिथि का पता लगाने में मदद मिली। अल्ताई के मखमली कालीन पर अंकित घोड़-सवार की छवि ईरान की प्राचीन राजधानी के खण्डहरों में से मिली छवियों और मुहरों के डिजाइन से मिलती है। यह खण्डहर ईसवी सन् से पूर्व छटी या पांचवीं शती के हैं, अर्थात् आज से २४०० या २५०० साल पुराने हैं।

टीलों में चीनी कपड़े भी निकले। एक प्राचीन चीनी आईना तथा अन्य कितनी ही चीजें मिलीं, जिनसे पता चलता है, कि टीलों का निर्माण करने वाले अल्ताई के प्राचीन लोग ईसा से पहिले पांचवीं शती के निवासी थे।

अब तक हुई खुदाई से पुरात्वविदों को यह मालूम हो गया, कि कबर की दीवार के पीछे उन्हें घोड़े मिलेंगे। सचमुच उन्होंने एक लकड़ी की दीवार देखी, जिसके पीछे चौदह सुन्दर घोड़े दफनाए हुए थे। ये सब-के-सब, अपने शानदार साज़-सामान के साथ बहुत बढ़िया स्थिति में सुरक्षित थे। लकड़ी पर नक्काशी के काम और सोने के पत्तर से सुसज्जित ज़ीन, विविध रंगों से युक्त घोड़े के लबादे और चीनी रेशम की बनीं ओहारें सभी बहुत सुन्दर थीं।

घोड़ों के विशेपज्ञों को ऐसा मौका शायद ही मिलता है, जबकि उन्हें दो हजार साल से भी ज्यादा पहले मारे गए घोड़ों के सुनहरी ताम-झाम को अपने हाथ से स्पर्श करने [illegible] हो। हां मारे गए, क्योंकि ये घोड़े युद्ध या किसी दुर्घटना में पड़कर नहीं, बल्कि योद्धा की कब्र में दफनाने के लिए मरे थे।

पाज़ीरिक टीलों की अन्तिम निधियों को बक्सों में पैक करने के बाद शोध-दल घाटी से विदा हो गया। प्राचीन शकों के मृत शरीरों को लेनिनग्राद के एर्मीताज म्युजियम के लिए रवाना कर दिया गया।

सोवियत विज्ञान ने अल्ताई के टीलों के रहस्यों का उद्‌घाटन कर लिया। सुदूर अतीत को उन्होंने फिर से हमारे लिए मूर्त कर दिया। पाज़ीरिक घाटी से मिली चीजें उन लोगों के जीवन, धार्मिक विश्वासों और कला की कहानी हमें बताती हैं, जो किसी जमाने में अल्ताई पहाड़ों में रहते थे। इन्हें देखने से पता चलता है, कि ये लोग चिरकाल से ही संस्कृति में हीन तथा अविकसित नहीं थे। इन चीजों से पता चलता है, कि शक जाति के लोगों की संस्कृति ऊंची थी। ये चीजें प्राचीन शकों के इतिहास में एक नया पृष्ठ जोड़ने में मदद देती हैं।"

स्रोत-ग्रंथ :

1. Les Scythes (F. G. Bergmann)

२. [illegible] (अ. न. वेर्नूश्ताम्, फ्रुन्ज़े १९४१ ई०)

३. [illegible] किर्गिज़िइ पो मतेरियलाम् वोल्शवो चुइस्कओ कनाला (बेर्न्श्ताम, फ्रुन्ज़े १९४३)

४. अल्ताई व् स्किफ़स्कोये व्रेमियां (स. ब. किसेलेफ़), "वेस्लिक् द्रेव्नेइ इस्तोरिइ" 1947 II pp 157-72

५. ऋत्क० सोओब्० XIII,p112

६. "सोवियत् भूमि" (दिल्ली १९५३ ई०)

अध्याय २

हूण (३०० ई० पू०—३०० ई०)

शकों के उनके मूलस्थान से निकाल कर उसपर अपना अधिकार जमाना हूणों का काम था। यही नहीं, बल्कि मध्य एसिया के उत्तरापथ और दक्षिणापथ दोनों में जो आज सभी जगह मंगोलायित चेहरे देखे जाते हैं, यह भी हूणों की ही देन है। तुर्क हूणों ही से निकले और मंगोल भी हूणों ही की सन्तान हैं।

१. प्राचीन हूण

शकों की तरह हूण भी घुमन्तू पशुपाल थे। मध्य-एसिया में दोनों एक दूसरे के पड़ोसी थे। यूची के निकाले जाने से पहिले शक-भूमि त्यानशान् और अल्ताई से पूरब हूणों की गोचर-भूमि से मिल जाती थी। इसलिये अन्तिम संघर्ष के पहिले भी इनका कभी कभी आपस में युद्ध या वस्तुविनिमय के लिये संबंध हो जाया करता था। चीन के इतिहास से पता लगता है, कि वहां पर भी धातुयुगीन सांस्कृतिक विकास में पश्चिम से जानेवाली जाति का विशेष हाथ रहा। यह जाति शकों से संबंध रखनेवाली थी, इसमें सन्देह नहीं। चीनियों के उत्तर में रहनेवाले हूणों का भी यदि शकों के साथ संबंध रहा और उनके द्वारा वह धातुयुग में आये, तो कोई आश्चर्य नहीं है। तातार और तुर्क यह दोनों शब्द हूणों के वंशजों के लिये इस्तेमाल हुये हैं, लेकिन चीनी इतिहास में ईसा की दूसरी सदी के पूर्व तातार शब्द का पता नहीं है, और ५वीं सदी से पहिले तुर्क शब्द भी उनके लिये अज्ञात था। ग्रीक और ईरानी स्रोत जब सूखने लगते हैं, इसी समय से चीनी स्रोत हमारे लिये खुल जाते हैं। शकों के बारे में चीनी इतिहासकारों ने बहुत कुछ लिखा है। लेकिन अभी तक उसमें से थोड़ा ही युरोप की भाषाओं में आ सका है। रूसी विद्वानों का इस सामग्री को प्रकाश में लाने तथा व्यवस्थित रूप से छानबीन करने का काम बहुत सराहनीय है। किन्तु वह रूसी भाषा में बद्ध होने से हमारे लिये बहुत उपयोगी नहीं हुआ। नवीन चीन और सोवियत-रूस आज सारी शकभूमिका स्वामी है। वहां इतिहास के अनुसन्धान में जितनी दिलचस्पी दिखाई जाती है, उससे आशा है, कि उनके बारे में पुरातत्व-सामग्री तथा लिखित सामग्री से बहुत सी बातें मालूम होंगी। त्यानशान् (किरगिजिया) में नरीन् की खुदाई में शकों के विशेष तरह के वाण के फल तथा मट्टी के गोल कटोरे और दूसरी चीजें भी मिली हैं। इस्सि कुल सरोवर के किनारे त्यूप स्थान में भी इस काल की कुछ चीजें मिली हैं, जोकि मास्को के राजकीय ऐतिहासिक म्यूजियम में रखी हुई है। कजाक गणराज्य के बेरकारिन स्थान में निकली कब्र में भी कुछ चीजें मिली है, जो ५वीं-४थीं सदी ई० पू० की मानी जाती है। वहीं कराचोको (इलीपत्यका) में खुदाई करने पर शकों के पीतल के बाणफल मिले।

मिनूसीन और उनके उत्तराधिकारियों से संबंध रखनेवाले हैं। शक-जनों के पीतल के हथियार पूर्वी युरोप (चेरतोम लिक) से बेकाल और मन्चूरिया की सीमा तक हैं, इनकी गोचर भूमि समय-समय पर बहुत दूर तक फैली हुयी थी। डाक्टर बेर्नश्ताम—सप्तनद, अल्ताई और त्यानशान के प्राचीन इतिहास और पुरातत्व के बड़े विद्वान—का कहना है, कि ई० पू० ६वीं शताब्दी में इस सारे इलाके में घुमन्तू शक जनों का निवास था। यह भी पता लगा है, कि शकों ने कुछ खेती का भी काम सीखा था, तब भी वह प्रधानतया पशुपाल थे[1]।

चीन में भी अपने इतिहास को बहुत अधिक प्राचीन दिखलानेका आग्रह रहा है, किन्तु चीनका यथार्थ इतिहास ई० पू० छठीं सदीसे शुरू होता है। उसके पहिलेकी सारी बातें पौराणिक जनश्रुतियोंसे अधिक महत्व नहीं रखतीं। चीनका प्रथम ऐतिहासिक राजवंश चिन (२५५-२०६ ई० पू०) है। इस वंशके संस्थापक चिन-शी-ह्वाङ-ती (२५५-२५० ई० पू०) ने बहुत सी छोटी-छोटी सामन्तियोंमें बंटे चीन को एक राज्यमें संगठित किया। इससे पहिले उत्तरके घुमन्तू हूण चीनको अपने लूटपाटका क्षेत्र बनाये हुए थे। यह अश्वारूढ़, मांसभक्षक, कूमिशपायी लड़ाके बराबर अपने दक्षिणके चीनी गांवों और नगरोंपर आक्रमण किया करते थे। उनकी संपत्ति घोड़ा, ढोर और भेड़ें थीं, और कभी कभी ऊंट, गदहे, खच्चर भी इनके पास देखे जाते थे। वर्तमान मंगोलिया, मंचूरिया तथा इनके उत्तरके गार्ड्बेरियाके भूभाग इनकी चरभूमि थे। हूण कबीलोंको चीनी ह्युङ्-नू कहते थे। तुर्क, किरिगिज, मगयार (हुंगर) आदि पीछे इनके ही उत्तराधिकारी हुए। ह्युङ्-नूके अतिरिक्त चीनी इतिहास एक और भी घुमन्तू मंगोलायित जनका पता देता है, जिसको तुङ-हू कहते थे। इन्हींके उत्तराधिकारी पीछे कित्तन (खिताई), मंचू आदि हुए। विशाल हूण जनके बहुत छोटे छोटे उपजन थे, जिनके अपने अपने सरदार हुआ करते थे। हमारे यहां तथा दूसरे देशोंमें भी ओर्दू (उर्दू) शब्द सेनाका पर्याय माना जाता है। इन घुमन्तुओंमें एक पूरे जन—जिसमें उसके सभी नरनारी बाल-वृद्ध सम्मिलित थे—को ओर्दू कहा जाता था। इनका [illegible] था, और सरदारको जनके ऊपर अपना स्वतंत्र दर्जा कायम करनेका अधिकार नहीं था। हूण बच्चे जहां बचपन हीसे पशुओं का चराना सीखते थे, वहां उससे भी पहिले वह छोटी छोटी धनु ही से पहिले चूहेका शिकार करते, फिर सियार और खरगोशका। नंगी पीठ पर घोड़सवारी करना भी बचपन ही से इन्हें सिखाया जाता था और अधिक क्षमता प्राप्त करनेपर वह घोड़े पर बैठे-बैठे धनुष चलाने लगते थे। दूध और मांसका भोजन तथा चमड़ेकी पोशाक इन्हें अपने पशुओंके ऊपर निर्भर करती थी। ऊनके नम्दे भी यह बना लेते थे। जवानों अर्थात् योद्धाओंका इनके यहां बहुत मान था, और खानपानमें सबसे पहिले उनकी ओर ध्यान दिया जाता था। बूढ़े और निर्बल सिर्फ जूठ-कांठ पानेके अधिकारी थे। मरे पिताकी रखी या छोड़ी हुई स्त्रियोंके पति बेटे हुआ करते थे। छोटे भाईकी विधवा भी दूसरे भाईकी पत्नी बनती थी। शकों या इनकी स्थितिमें रहनेवाले दूसरे जनोंकी तरह लड़ाईसे पीठ दिखाकर भागना इनके यहां बुरा नहीं समझा जाता था, बल्कि वह युद्ध-कौशलका एक अंग था। दया-मायाकी इनके यहां कम गुंजाइश थी। इनके हथियार धनुष-वाण, तलवार और छुरे थे। सालमें तीन बार इनकी जन-सभा होती थी, जबकि सारा ओर्दू एकत्रित होकर जहां

[1] आर्खे० ओचेर्क० पृष्ठ २४-२५

धार्मिक और सामाजिक कृत्योंको पूरा करता, वहां साथ ही राजनीतिक और दूसरे झगड़े भी मिटाता। बहुत से सरदारोंके ऊपर निर्वाचित राजा को शान्यू कहा जाता था।

अन्दाज लगाया जाता है, कि १४००-२०० ई० पू० तक चीनमें उत्तरके इन घुमन्तुओंकी लूटपाट बराबर होती रहती थी। ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दीमें सान्-शी, शेन्-शी, ची-ह्ली में इनके ओर्दू विचरा करते थे। इसी समय ह्वाङ-हो नदीके मुड़ाव पर भी इनका ओर्दू रहा करता था, जिसके कारण आज भी उस प्रदेशको ओर्दुस् कहते हैं। चिन-शी-ह्वाङ ती (२५५-२०६ ई० पू०) ने चीनके बड़े भागको एक राज्यमें परिणत कर सोचा, कि हूणोंकी लूटमारसे कैसे चीनकी रक्षा की जाय। इसके लिये उसने चीनकी महान् दीवारके कितने ही भागको एक रक्षाप्राकारके तौर पर निर्मित कराया, और ओर्दू तथा शान्-सी आदि प्रदेशोंमें घुस आये हूणोंको निकाल कर उत्तरकी ओर भगा दिया। समुद्र तटसे पश्चिममें लन्चाउ तक की इस दीवारको बनानेमें ५ लाख आदमी मर-मर कर वर्षों तक कोड़ोंके नीचे काम करते रहे। निर्माण-कालसे लेकर हजार वर्षों तक उत्तरके घुमन्तुओं और चीनका जो खूनी संघर्ष होता रहा, उसके प्रमाण स्वरूप लाखों खोपड़ियां दीवारके किनारे जमा होती गई। चीनके उत्तरमें जहां हूणोंसे मुकाबिला करना पड़ता था, वहां पश्चिममें यूची-पूर्वज शक भी कम खून-खराबी नहीं करते थे।

२. हूण-राजावलि

१.	तूमन शान्-यू	२५० ई० पू०
२.	माउदुन्, तत्पुत्र	१८३ ,,
३.	ची-यू, तत्पुत्र	१७२ ,,
४.	चू-चेन्, तत्पुत्र	१७२-१२७ ,,
५.	इचिसे, तद्भ्रात	१२७-११७ ,,
६.	अच्वी	११७-१०७ ,,
७.	चान्-सीलू	१०७-१०४ ,,
८.	शूली-हू	१०४-१०३ ,,
९.	शूती-हू	१०३-९८ ,,
१०.	हूलू-हू	९८-८७ ,,

(१) तूमन शान्-यू (२५० ई० पू०)[1]—जिस समय चिन-वंशके नेतृत्वमें चीन एकताबद्ध हो रहा था, उसी समय (२५० ई० पू०) हूणोंमें भी एकता पैदा हुई। चीन सम्राट्की मृत्युके बाद जो अराजकता पैदा हुई, उससे हूणोंके प्रथम शान्यू तूमन ने लाभ उठाया और डेढ़ हजार बरस पीछे होनेवाले अपने योग्य उत्तराधिकारी चिंगिज खान्की तरह ओर्दू तथा दूसरे प्रदेशोंपर लूटमार की, और ओर्दूस्को फिरसे अपने जनकी गोचर-भूमि बना लिया। उत्तरसे हूण आकर अब फिर पश्चिमी कान्सूके निवासी यूचियोंके पड़ोसी बन गये। तूमन्का प्रभाव अपने जनपर बहुत था, किन्तु हूणोंका सबसे बड़ा शान्यू उसका पुत्र माउदुन हुआ। बुढ़ापेमें पिताने अपनी

---

[1] A thousand years of Tatars (E. H. Parker, Shanghai 1895)

तरुणी पत्नीके फेरमें पड़कर ज्येष्ठ पुत्र माउ-दुनको वंचित करके छोटेको राज देना चाहा। माउ-दुनको रास्तेसे अलग करनेके लिये उसने अपने पश्चिमी पड़ोसी (यूची लोगोंके) पास अमानत रखा और फिर उनपर आक्रमण कर दिया। जिसका अर्थ यही था, कि यूची माउदूनको मार डालें। लेकिन, माउ-दून एक तेज घोड़ेपर चढ़कर भाग निकला। पिताने प्रसन्नता प्रकट करनेके लिये उसे दस हजारी सरदार बना दिया; किन्तु, माउदून अपने पिताकी करनीको भूलनेवाला नहीं था। कहते हैं, माउदूनने मिङली (गानेवाले वाण) का आविष्कार किया। वह शब्दवेधी वाणमें अभ्यस्त था, एक दिन उसने बूढ़ पिताको वाणका लक्ष्य बनाकर बदला लिया।

(२) माउदून (१८३ ई० पू०)[1]—शान्-यू बनते ही माउदूनने अपने पिताके परिवारको कत्ल कर डाला और केवल पिताकी एक स्त्रीको अपने लिये जीवित रहने दिया। इस समय तक चीन और यूची ही नहीं, बल्कि पुराने तुगुस (तुङ हू, ह्वान) भी अपने जनका एक बड़ा संगठन कर चुके थे। हूणोंकी उनके साथ भी लड़ाई होने लगी। गोबीकी बालुका भूमिके बीचमें दोनों जनोंका एक भीषण संघर्ष हुआ। वह [illegible] कर बुरी तौरसे हारे। बहुतसे तुंगुसोंको हूणोंने अपना दास बनाया। उनमेंसे कुछ भागकर मंगोलियाके उत्तर-पूर्वमें जानेमें सफल हुए, जो आगे धीरे धीरे शक्ति-संचय करके फिर हूणोंके प्रतिद्वन्द्वी बन गये। माउदून एक चतुर सेनानायक था। जनके संगठन और शासनमें भी उसने वैसी ही प्रतिभा दिखलाई। उसने अपने तीन प्रतिद्वन्दी जनोंको परास्त कर हूणोंकी शक्तिको बढ़ाया। उसे कोरोस, दारयोश्, सिकन्दरकी श्रेणीका विजेता माना जा सकता है। तुंगुसोंको उसने परास्त करके उत्तरसे अपने को सुरक्षित कर पश्चिमी पड़ोसी यूचियोंकी खबर लेनेकी ठानी। यूची भी बड़े वीर योद्धा थे, हूणोंकी तरह ही वह घुमन्तू पशुपाल तथा घोड़सवारीके साथ धनुष चलाना जानते थे। यह बहुत संभव है, हथियार और युद्धकी शिक्षामें हूणोंके गुरु इन्हीं शकोंके पूर्वज थे। यूची माउ-दूनकी सेनासे कितने ही समय तक मुकाबिला करते रहे, किन्तु अंतमें (१७६ या १७४ ई०पू०) उन्हें हूणोंके सामने पराजय स्वीकार कर कोकोनोर और लोबनोरकी अपनी पितृभूमिको छोड़नेके लिये मजबूर होना पड़ा। माउदूनने चीन-सम्राट् वेन्-ती (१६९-५६ ई० पू०) को लिखा था—"जितनी जातियां (तातार) घोड़ेपर चढ़े धनुषको झुका सकती हैं, उन्हें एकताबद्ध कर मैंने एक राज्य कायम कर लिया। यूचियोंको और तरबगताइयोंको भी मैंने नष्ट कर दिया। लोबनोर तथा आसपासके २६ राज्य, अब मेरे हाथमें हैं। अगर तुम नहीं चाहते, कि ह्य ुङ-नू महादीवारको पार करें, तो तुम्हें चीनियोंको महादीवारके पास हर्गिज नहीं आने देना चाहिये। साथ ही मेरे दूतको नजरबंन्द न कर तुरन्त मेरे पास लौटा देना चाहिये।"

(क) शासन आदि—

माउदूनका राज्य पूरबमें कोरियासे लेकर पश्चिममें बल्काश तक और उत्तरमें बैकालसे दक्षिणमें क्विन्लन् पर्वतमाला तक फैला हुआ था। उसके पिताके समय हूण राज्य केवल अपने कबीले तक सीमित था और दक्षिणमें चीनके भीतर हूण जब तब लूटमार भर कर लिया करते थे। इतने बड़े राज्यके संचालनके लिये पुरानी व्यवस्था उपयुक्त नहीं हो सकती थी, इसलिये माउदूनको

---

[1] वहीं p 347, वेर्नश्ताम् (आर्खे० ओचेर्क० पृ० ४२)

नई व्यवस्था कायम करनी पड़ी। यह स्मरण रहना चाहिये, कि हूणोंका समाज पितृसत्ताक था, अभी वहां सामन्तशाही नहीं फैली थी। चीनमें किसान अर्धदास और दास जैसे थे। उनके बाल-बच्चे सामन्तोंकी चल सम्पत्ति थे। हूण-शासनयन्त्र निम्न प्रकार था—
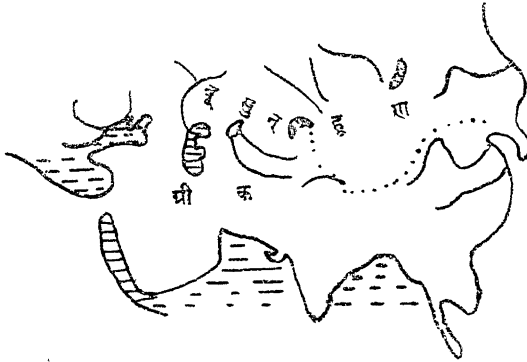
१२. शाउदुनका हूणसाम्राज्य (१८३ ई०)

(१) शान्-यू—राजावाची चीनी शब्द शान्-यूका हूण भाषाका रूप जेंगी कहा जाता है। शायद इसीका रूपान्तर चंगीज हुआ। राजाकी पूरी उपाधि थी तेंग्री-कुद्रु शान्-यू (देव-पुत्र महान्)। आज भी मंगोल और तुर्की भाषामें देवताका वाचक तेंग्री शब्द मौजूद है। शान्-यू प्रभावशाली योद्धा और नेता होता, लेकिन उसके ऊपर हूण-ओर्दूका नियंत्रण रहता था।

(२) दूगी—इसका अर्थ है धर्मात्मा या न्यायी। शान्-यूके नीचे दो दूगी हुआ करते थे, जिनमें एकको पूर्व-दूगी और दूसरेको पश्चिम-दूगी कहते थे। पूर्व-दूगीका दर्जा ऊंचा समझा जाता था, और आमतौरसे वह युवराज माना जाता था। हूण साम्राज्यके पूर्व भाग पर पूर्व-दूगीका शासन था और पश्चिम पर पश्चिम-दूगीका। राज्यके मध्य-भाग अर्थात् हूण-जनक्षेत्र पर स्वयं शान्-यू सीधे शासन करता था।

(३) रुक-ले (कुनलू)—यह भी दक्षिण और वाम दो होते थे, जिनमें वामका दर्जा ऊंचा था।

(४) इनके नीचे वाम और दक्षिणके दो सेनापति होते थे।

(५) इनके नीचे वाम दक्षिण के दो दीवान होते थे। आगे भी दो वाम दक्षिण कुतलू जैसे दसहजारी और हजारी तकके चौबीस सैनिक अधिकारी होते थे। हूण-शासनमें सैनिक-असैनिक अधिकारका भेद नहीं था।

इनके अतिरिक्त हूण-शासकों की उपाधि, श्रृंगोंसे समझी जाती थी, जो शायद समय समय पर उनके श्रृंगार होते हों। दोनों दूगी और दोनों रुकले चतु:श्रृंग कहे जाते थे। उनके नीचे षट्-श्रृंग अधिकारी थे। दोनों कुतलू शासन-प्रबंधकको देखते थे। दूगी आदि २४ श्रेष्ठ [illegible]-के अपने क्षेत्र थे, जिनके भीतर ही वह अपने ओर्दू तथा पशुओंको लेकर विचरण कर सकते थे। उनको अपने हजारी शतिक और दशिक आदि अफसरोंके नियुक्त करनेका अधिकार था।

शान्-यूकी रानीकी पदवी इन्-ची (येङ-ची) थी। हूणोंके तीन-चार ऊंचे कुलोंमें से उसे लिया जाता था। शान्-यूका अपना कुल बहुत ही सम्मानित समझा जाता था। हूणोंने जो श्रेणियां और पदवियां स्थापित की थीं, वह तुर्कों और मंगोलोंके समय तक मानी जाती रहीं। तैमूरने भी हजारी, पंच-हजारी, दस-हजारी दर्जे स्वीकार किये थे, जो कि उसके वंशज बाबरके साथ पीछे भारतमें आये।

(ख) नववर्षोत्सव—

यह उत्सव हूणोंका सबसे बड़ा राष्ट्रीय मेला था, जिसे शान्-यू बड़ी शान-शौकतसे मनाता था। पितरों, तिङरी (देव), पृथिवी और भूत-प्रेतोंके लिये बलि इसी समय दी जाती थी। शरदमें दूसरा महोत्सव मनाया जाता था, जिसमें ओर्दूकी जनगणना, सम्पत्ति और पशुओं पर कर लगानेका काम किया जाता था। हूण-जनोंमें अपराध कम था और उसके दण्ड देनेमें देरी नहीं की जाती थी। वह दोनों महोत्सवोंके समय किया जाता था। महोत्सवमें घुड़-दौड़, ऊंटोंकी लड़ाई तथा दूसरे कितने ही सैनिक और नागरिक मनोरंजनके खेल होते थे। उनके अपराध दण्डमें मृत्यु-दण्ड तथा घुटना तोड़ देना भी शामिल था। सम्पत्तिके विरुद्ध अपराध-का दण्ड था सारे परिवारका दास बना दिया जाना।

नववर्षोत्सव और शरदोत्सव दोनों सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक महा-सम्मेलन थे। इनके अतिरिक्त भी शान्-यूको कुछ धार्मिक कृत्य रोज करने पड़ते थे। दिनमें शान्-यू सूर्यको नमस्कार करता और सन्ध्याको चन्द्रमाकी पूजा और नमस्कार। चीनियोंकी भांति हूण भी पूर्व और वाम दिशाको श्रेष्ठ मानते थे। शान्-यू सभामें उत्तरकी ओर मुंह करके बैठता, जब कि चीन सम्राट का बैठना दक्षिणाभिमुख होता था। [illegible] प्रधानता दी जाती थी। सेना अभियानके लिये शुक्लपक्ष और वहांसे लौटनेके लिये कृष्ण-पक्ष प्रशस्त माना जाता था। लूट में सम्पत्ति और बंदी हुए दासोंका स्वामी वही होता था, जिसने दुश्मनसे उन्हें छीना। दुश्मन का सिर काट लेना, बहुत वीरता मानी जाती थी।

जान पड़ता है, शकोंका प्रभाव हूणों पर भी पड़ा था। शकोंकी भांति ही हूणोंमें भी मृत सरदारकी बहुत सी मूल्यवान सम्पत्ति कब्रमें गाड़ दी जाती थी, समाधिके ऊपर कोई स्तूप या वृक्ष आदि चिन्ह नहीं लगाया जाता और न मरेके लिये बहुत रोना-धोना किया जाता था।

(ग) युद्ध—

हूण पशुजीवी ही नहीं आयुध-जीवी भी थे। लूटमार उनका पेशा था। उनकी लड़ाईकी एक बड़ी चाल थी, दुश्मनके सामने पराजित होनेका अभिनय करके भाग पड़ना। जब दुश्मन उनका पीछा करते कुछ दूर निकल जाता, तो सुशिक्षित [illegible] छिपे हूण दस्ते शत्रुकी पीठ पर आक्रमण कर देते। माउदूनने चीनके युद्धमें एकबार इस तरह ३ लाख २० हजार चीनी सैनिकोंको अपने जालमें फंसा लिया था। चीन सम्राट् अपनी सेनाके साथ आधुनिक ता-तुङ-फू (शेनसी) से एक मील दूर एक दृढ़ [illegible] पर पहुंच चुका था, [illegible] सेना पीछे रह गई थी। माउदून अपने ३ लाख चुने हुए सैनिकोंके साथ चीनियों पर टूट पड़ा और सम्राट् घिर गया। सेना ७ दिन तक घिरी रही। बड़ी मुश्किलसे चीनी अपने सम्राट्को घेरेसे निकाल पाये। समझौतेमें उन्हें कितनी [illegible] बातें करनी पड़ीं। माउदूनके घेरेका

एक कोना ढीला था। इ[illegible]ते सम्राट् सेनाके साथ भागनेमें समर्थ हुआ। माउदूनने पीछा नहीं किया। चीनको अपनी एक राजकुमारी, रेशम तथा बहुमूल्य धातु, रत्न, चावल, अंगूरी शराब तथा बहुत तरहके खाद्यकी भेंट देनेके लिये मजबूर होना पड़ा। इस तरह चीनी राजकुमारियोंका [illegible] घुमन्तू राजाओंसे व्याह करनेकी प्रथा चली। समझा गया, राजकुमारीका लड़का मातृकुलका पक्षपाती होगा।

चीन सम्राट् हुङ-तीके मरनेके बाद उसकी विधवा रानी कौ-ठू अपने पुत्र (वेन्-ती) को गद्दी पर बैठा बारह साल (१८७-७९ ई० पू०) तक स्वयं राज करती रही। हूणोंमें पितृ-सत्ताक समाज होनेके कारण कुछ सुभीता था, जिसके कारण कितने ही चीनी भाग कर उनके राज्यमें चले जाते थे। ऐसे ही किसी दरबारीकी बातमें पड़कर माउदूनने रानीको संदेश-पत्र भेजकर अपने हाथ और हृदयको देनेका प्रस्ताव किया। दरबारियोंने युद्धकी आग भड़कानेकी कोशिश की, लेकिन किसी समझदारने रानीको समझाया—"अभी भी लड़के हमारी सड़कों पर सम्राट्के भागनेकी गीत गाते फिरते हैं।" रानीने बहुत नरम सा पत्र लिखा—"मेरे दांत और केश परम-भट्टारक (आप) के प्रेमको प्राप्त करनेके योग्य नहीं हैं।" साथ ही उसने दो राजकीय रथ, बहुत से अच्छे अच्छे घोड़े तथा दूसरी भेंटे भेजीं। माउदून इससे कुछ लज्जित सा हुआ और उसने बहुत से हूणी घोडे भेजकर क्षमा मांगी। माउदूनने बहुत लम्बे काल (३६ साल) तक राज्य किया।

(३) **चीयू[1]** (कूदुक् १६२ ई० पू०) यह माउदुनका पुत्र था, जिसे चीनी लेखक लाऊशान् शान्-यू (महान् वृद्ध जेङ-गी) के नामसे याद करते हैं। सम्राट्ने शान्-यूके लिये नई राजकुमारी भेजी, जिसके साथ वहांसे एक हिजड़ा (ख्वाजासरा) भी आया, जो जल्दी ही शान्-यूका विश्वासपात्र मंत्री बन गया। चीनी भेटों, राजकुमारियोंके प्रभावमें आकर हूण ज्यादा विलासी होते जा रहे थे। ख्वाजासरा इसे पसंद नहीं करता था। उसने हूणोंको समझाया—"तुम्हारे ओर्दूकी सारी जनसंख्या मुश्किलसे चीनके कुछ परगनोंके बराबर होगी, किंतु तब भी तुम चीनको दबानेमें समर्थ होते रहे। इसका रहस्य है, तुम्हारा अपनी वास्तविक अवश्यकताओंके लिये चीनसे स्वतंत्र होना। मै देखता हूँ, कि तुम दिन पर दिन अधिक और अधिक चीनी चीजोंके प्रेमी बनते जा रहे हो। सोच लो, चीनी सम्पत्तिका ५वां भाग तुम्हारे सारे लोगोंको पूरी तौरसे खरीद लेनेके लिये काफी है। तुम्हारी भूमिके कठोर जीवनके लिये रेशम और साटन उतने उपयुक्त नहीं हैं, जितना कि ऊनी नम्दा। चीनके तुरन्त नष्ट हो जाने वाले व्यंजन उतने उपयोगी नहीं हो सकते, जितनी तुम्हारी कूमिश और पनीर।" वह बराबर हूणोंको इस तरह सजग करता रहा। चीनके जवाबमें शान्-यूकी ओरसे जो चिट्ठी उसने लिखवाई थी, वह चर्मपत्रकी लम्बाई चौड़ाईमें ही अधिक बड़ी नहीं थी, बल्कि उसमें शान्-यूकी अधिक लम्बी उपाधि भी लिखी गयी थी—"हूणोंके महान् शान्-यू जेंगी, और पृथिवीके पुत्र, सूर्य-चन्द्र-समान आदि" आदि।

चीनी राजदूतने एक बार हूणोंमें वृद्धोंका [illegible] था, इसपर उसने जवाब दिया—"जब चीनी सेना लड़ाईके लिये निकलती है, तो मै नहीं देखता, कि उनके संबंधी अपनी सेनाके लिये कितनी ही अच्छी चीजोंसे अपनेको वंचित न करते हों। हूणोंका व्यवसाय

---

[1] A thousand years of Tatars, p. 348

है युद्ध। बूढ़े और निर्बल युद्ध नहीं कर सकते, इसीलिए सबसे अच्छा आहार लड़नेवालोंको दिया जाता है।" "लेकिन पिता और पुत्र एक ही तम्बूको इस्तेमाल करते हैं, पुत्र अपनी सौतेली मांसे व्याह करता है। भाई अपनी भ्रातृ-बधुओंके साथ कोई विशेष विचार नहीं रखता।"...यह कहने पर उसने कहा—"हूणोंका रवाज है, अपनी भेड़ों और ढोरोंके मांसको खाना और दूधको पीना। वह ऋतुके अनुसार अपने पशुओंको लेकर भिन्न-भिन्न चरभूमियोंमें घूमा करते हैं। हर एक हूण पुरुष दक्ष धनुर्धर होता है, शांतिके समय भी उसका जीवन सरल और सुखी होता है। उनके शासनके नियम बिल्कुल सरल हैं। शासक और जनताका संबंध उचित और चिरस्थायी है।...यद्यपि पुत्र या भाई अपने पिता या भाइयोंकी स्त्रियोंको रख लेते हैं, किंतु इसका कारण यही है, कि अपने खानदानको सुरक्षित रख सकें। चीनी विचारानुसार यह पाप हो सकता है, लेकिन इससे कुल और वंशकी रक्षा होती है।" यह कहते हुए यह भी कहा—"लेकिन चीनमें दिखावाके लिये चाहे पुत्र या भाई ऐसे पापके भागी न होते हों, किंतु इसका परिणाम होता है विद्रोह, शत्रुता और परिवारका ध्वंस। तुम्हारे यहां आचार और अधिकारकी ऐसी गंदी व्यवस्था है, जिसने एक वर्गको दूसरे वर्गके खिलाफ खड़ा कर दिया है, एक आदमी दूसरे आदमीके विलासके लिए दास बननेके लिये मजबूर है। आहार और कपड़ा केवल खेतके जोतने और रेशम-कीट पालनेसे मिलता है। वैयक्तिक सुरक्षाके लिये प्राकार-बद्ध नगर बनाना पड़ता है। संकटके समय तुम्हारे यहां कोई नहीं जानता, कि कैसे लड़ना चाहिये, और शांतिके समय तुम्हारा हर एक आदमी ऐड़ीसे चोटी तक खून पसीनेको एक करते जीता है। अपने ढकोसलोंकी बढ़-बढ़कर बात मेरे सामने मत करो।"...फिर उसने कहा—"चीनी दूत, तुम्हें बोलना कम चाहिये और अपनेको इतने ही तक सीमित रखना चाहिये, जिसमें अच्छे किसम और अच्छे नापका रेशम, चावल, शराब आदि हमारी वार्षिक भेंटें भेजी जायें। यदि भेंटकी चीजें संतोषजनक हों, तो बात करना बेकार है। हम लोग बात बिल्कुल नहीं करेंगे। यदि हमें संतुष्ट नहीं करोगे, तो हम तुम्हारी सीमाओं पर आक्रमण करेंगे।"

७ साल राज करनेके बाद चीयूको चीनके ऊपर आक्रमण करनेकी अवश्यकता पड़ी। वह १ लाख ४० हजार हूण सेनाके साथ लूटपाट करता वर्तमान सियान्-फू तक चला आया और बड़ी भारी संख्यामें लोगों, पशुओं और धन-सम्पत्तिको अपने साथ ले गया। चीनी बड़ी तैयारी करनेमें लगे थे, किंतु तब तक चीयू अपना काम करके लौट चुका था। कई साल तक यह आतंक छाया रहा, फिर इस बात पर सुलह हुई—"महा-दीवारसे उत्तरकी सारी भूमि धनुर्धरों (हूणों) की है, और उससे दक्षिणकी भूमि टोपी और कमरबन्द वालोंकी।"

यूची-पलायन—चीयूकी सबसे बड़ी विजय थी, कान्सूसे यूची शकोंको भगाना। माउदुन उन्हें सिर्फ परास्तभर कर पाया था। उस समय लोबनोरसे ह्वाङहोके मुड़ाव तक यूचियोंकी विचरण-भूमि थी। लोबनोरसे उत्तर-पूरब सइवाङ (शक) रहते थे। चीयूने अपनी सुसंगठित सेनासे यूचियों पर लगातार ऐसे जबर्दस्त आक्रमण किये, जिसके कारण यूचियोंकी भारी क्षति हुई और १७६ या १७४ ई० पू० में वह अपनी भूमि छोड़कर पश्चिमकी ओर भागनेके लिये मजबूर हुए। सइवाङकी भूमिमें थोड़ा जानेके बाद उनका एक भाग तरिम-उपत्यकाकी ओर चला गया और दूसरा इली-उपत्यकाके रास्ते आगे बढ़ा—पहले भागको लघु-यूची कहते हैं और दूसरेको महायूची। लघु यूचियोंके आनेसे पहले तरिम-उपत्यका उन्हीं खसों (कशों) की थी, जो कि उस समय भी कश्मीर

और पश्चिमी हिमालय तक फैले हुए थे। अब कुछ शताब्दियोंके लिये तरिम-उपत्यका लघु-यूचियों की हो गई। महायूचियोंने सइवङको खदेड़ कर उनकी जगह अपने हाथमें ले ली। सइवाङ अपने पश्चिमी पड़ोसी तथा त्यानशान और सप्तनद के निवासी वूसुन पर पड़े। महायूचियोंको हूणोंने यहां भी चैनसे नहीं रहने दिया और वह बराबर पश्चिमकी ओर बढ़ते हुए सिर-दरिया और अराल समुद्र तक फैल गये। फिर वहांसे दक्षिणकी ओर घूमे। कुछ समय तक उनका केन्द्र वक्षु नदीके उत्तरमें था। इसी समय ग्रीको-बाख्त्री राजा हेलियोक मरा था। कास्पियन तटवासी पार्थियों और सोग्द-उपत्यकामें पहुंचे यूचियोंने उसके राज्यको आपसमें बांटकर इस यवन-राजवंशको खतम कर दिया। आगे १२८ ई० पू० में, जब चाङक्यान् बाख्तरमें पहुंचा, तो उस समय वह यूचियोंका केन्द्र बन चुका था। आगे हम बतलायेंगे, कि कैसे यूची अपनी शक्तिको आगे बढ़ाते हुए भारत तक पहुंचे।

§३. पीछेके हूण शासक

(४) चूचेन=**चीयू** (१७२-१२७ ई० पू०)—अपने बापके स्थान पर शान्-यू बना। चीनी हिजड़ा अब भी प्रभावशाली मंत्री था। चीयू के पास भी चीनसे नई राजकुमारी आई। तत्कालीन चीन सम्राट् वू-तीने उसे धोखेसे पकड़ना चाहा, भारी युद्ध हुआ, अन्तमें शान्यू जालमें एक बार आकर भी निकल भागनेमें समर्थ हुआ। अब चीन और हूणोंके निरंतर संघर्ष होने लगे और चीनी सीमांत हूणोंकी आक्रमण-भूमि बना रहा।

(५) ईचिसे[१] (१२७-११७ ई० पू०)—यह ५वां शान्-यू चौथेका भाई था। इसने भी चीन सीमांत पर लूटमार जारी रक्खी, लेकिन वह बहुत दिनों तक चल नहीं सकी। वूती बड़ा शक्तिशाली सम्राट् था। उसने हूणोंका बल तोड़नेके लिये बहुत भारी तैयारी की। इसकी बड़ी बड़ी सेनाओंने एकके बाद हूण-भूमिपर लगातार आक्रमण किये, लाखों हूणोंको बेदर्दीसे मारा और उनकी भेड़ोंको बड़ी संख्यामें पकड़ लिया। इस प्रकार हूण उत्तरकी ओर भगाये जाते रहे। यूचियोंकी भूमि (कान्सू) हूणोंसे खाली करा ली गई। कान्सूमें ही एक नगर चाङ-ये था, जहां कोई हूण सरदार रहता था। इस नगरके विजयके समय चीनी सेनाको एक सोनेकी मूर्ति मिली, जिसकी हूण पूजा किया करते थे। अंदाज लगाया जाता है, कि यह "सुवर्ण-पुरुष" बुद्धकी प्रतिमा थी। तरिम-उपत्यकामें बुद्ध-धर्म अशोकके समयमें पहुंचा बतलाया जाता है, हो सकता है, वहांसे यूचियोंमें होते वह हूणोंमें पहुंचा हो। यूचियोंकी पुरानी भूमिके विजयके बाद चीनको भारतका परिचय वहां प्रचलित बौद्ध-धर्मके कारण ही मिला। लेकिन बौद्ध-धर्मके चीन में पहुंचनेका प्रमाण अभी और पीछे मिलता है।

यद्यपि चीनी सेना हूणोंको उत्तरमें ढकेलने में सफल हुई थी, किंतु वह उसे सदाकी विजय नहीं समझती थी। इसीलिए सम्राट् वूतीने अपने सेनापति चाङ-क्यान्को अपने शत्रु हूणोंके शत्रु यूचियोंके पास भेजा, कि पश्चिमसे यूची भी उनके ऊपर आक्रमण करें। सम्राट्ने यूचियोंको उनकी पुरानी भूमिमें आकर बसनेका निमंत्रण दिया। चाङ-क्यान् १३८ ई० पू० में अपनी यात्रा पर चला। यह चीनका प्रथम महान् यात्री है, जिसका यात्रा-विवरण

---

[१] A thousand years of Tatar, p. 349

बड़ा ज्ञानवर्धक है। चाङ-क्यान् दस साल हूणोंका बंदी रहा। जब वू-सूनोंने अपनेको हूणोंसे स्वतंत्र कर लिया, तो यह वह हूणोंकी नजरबन्दीसे भागकर वूसुन-भूमिमें होते हुए खोकन्द पहुंचा। वहांके निवासी घुमंतू नहीं, बल्कि नगरों और ग्रामोंके निवासी थे। वहांसे समरकन्द होते वह यूचियोंके केन्द्र बाख्तरमें पहुंचा। चाङ-क्यानने यूचियोंको बहुत समझाने की कोशिश की, कि सम्राट् वू-तीने तुम्हारी जन्मभूमि खाली करा ली है, वह चाहते हैं कि तुम लौटकर उसे सम्हाल लो। लेकिन यूची भली प्रकार जानते थे, कि घुमन्तुओंका जीतना वैसा ही अचिरस्थायी है, जैसा कि डेला फेंकने पर काईका फटना। वह बाख्तरके विशाल राज्यके स्वामी हो आनन्दसे जीवन बिता रहे थे, इसलिये हूणोंसे झगड़ा मोल लेनेके लिये तैयार नहीं थे। चाङ क्यान्को वदख्शां, पामीर और सिङ-क्यिाङ होकर लौटना था, जहां वह हूणोंकी पहुंचसे बाहर नहीं रह सकता था। उसे फिर उनकी कैदमें रहना पड़ा और बारह वर्ष (१३८-१२६ ई० पू०) के बाद चीन लौटनेका मौका मिला। ११५ ई० पू० में फिर उसे वूसुनोंके पास भेजा गया, जो इसिकुल महासरोवरके पास त्यान्शान्में रहा करते थे। चीन पश्चिम जानेवाले रेशम पथको सुरक्षित तौरसे अपने हाथमें रखना चाहता था, इसलिये चाङक्यान्को दूसरी बार भेजा गया था। उसने पार्थिया आदि दूसरे देशोंमें पता लगानेके लिये अपने दूत भेजे। लौटकर उसने सम्राट्को पश्चिमी देशोंके बारेमें रिपोर्ट दी। मूल रिपोर्ट प्राप्य नहीं है, लेकिन सूमा-च्याङने ९९ ई० पू० में अपनी पुस्तक "शी-की" और पाङकीने ९२ ई०में "च्यान्-ग्यान्-शूकी" में (अपूर्ण पुस्तक जिसे पीछे उसकी बहिनने पूरा किया) उपयोग किया है। पिछली पुस्तकमें २०६ ई० पू०—२४ ई० तकका वर्णन है। चाङ क्यान् पश्चिमसे लौटनेके बाद ११४ ई० पू० में मर गया। उसके विवरणके जो अंश मिलते हैं, उससे बहुत सी बातोंका पता लगता है। पार्थियन लोग चर्मपत्र पर आड़ी लाइनमें लिखते थे। फर्गानासे पर्थिया तक शक-भाषा बोली जाती थी।

इशी-ज्या (१२७-११७ ई० पू०), अच्वी (११७-१०७ ई० पू०), चान्-सी-लू (१०७-१०४ ई० पू०), शूली-हू (१०४-१०३ ई० पू०), शू-ती-हू (१०३-९८ ई० पू०), हू-लू-हू (९८-८७ ई० पू०) ये हूणोंके ५वेंके बादके शान्-यू हैं, जिनका समकालीन हान्वंशी सम्राट् वू-ती (१४०-८६ ई० पू०) था। चिन्-वंशने हूणोंकी शक्तिको तोड़नेके लिये जो प्रयत्न किया था, उसकी समाप्ति हान्वंश ने की।

(क) वूती और हूण

वू-तीका ५४ वर्ष का शासन हूणों के पराजय, चीन के शक्ति के चरम उत्कर्ष और रेशम-पथ को सुरक्षित करने के लिये बहुत महत्त्व रखता है। १२९ ई० पू०, ११९ ई० पू० और ९९ ई० पू० में चीन ने हूणों के ऊपर तीन जबर्दस्त आक्रमण करके उनके उर्दू को छिन्न-भिन्न कर दिया। जेनरल वेइ-सिन् के आक्रमण १२९ और ११९ ई० पू० में हुये थे। इन आक्रमणों के फलस्वरूप हूणों की सैनिक शक्ति ही नहीं तोड़ दी गई, बल्कि तीन सालों के भीतर चीन को १९ हजार, ७० हजार और १० हजार हूण बंदी मिल गये, जिन्होंने दास बनकर चीन के आर्थिक विकास में भारी काम किया। इधर फर्गाना तकका वणिक्-पथ भी चीन के हाथ में आ गया, इसलिये रोम के साथ खूब व्यापार होने लगा। इससे पहले ही

अल्ताई के उत्तर-पूरब के घुमन्तू तिङली और सप्तनद तथा त्यानशान के वू-सुन हूणों के अधीन थे। वह समय पड़ने पर सैनिक सहायता भी देते थे।

वूती की सफलता का एक कारण यह भी था, कि धीरे धीरे हूण सरदार विलासी होते जा रहे थे और उनमें शक्ति हथियाने के लिये आपस में घोर वैमनस्य था। चीयूने १७६ या १७४ ई० पू० में यूचियों को देश छोड़ने के लिये मजबूर किया। यह हूण-शक्ति के चरम उत्कर्ष का समय था। अब जबकि वू-तीकी शक्तिसे मुकाबला करना था, तो हूणोंका संगठन बहुत खोखला था। चीनके भीतर घुसकर लूटपाट करना हूणों की आजीविका का एक प्रधान साधन था और इसी वजह से कितने ही समय भिन्न-भिन्न सामन्तों के ओर्दू एक हो जाया करते थे। यह एकता स्थायी नहीं होती थी। इसीसे लाभ उठाकर ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी के अन्त तक फर्गाना तक का सारा मध्यएसिया चीन के हाथ में चला गया। १० वें शान्-यू हू-लू-कू (९८-८७ ई० पू०) के समय इस वैमनस्य ने हूणों में गृह-युद्ध का रूप ले लिया। ९० ई० पू० में चीन ने हूणों पर एक बहुत बड़ा सैनिक अभियान भेजा। इस समय सिङक्याङ के कराखोजा और पीजाम् के इलाके चीनियों के हाथ में थे। इतिहास के आरंभ से ही तरिम-उपत्यका में कराशर से काशगर और काशगर से खोतन तक बहुत से समृद्ध नगर बसे हुये थे, जिनमें खस और शक जातीय लोग रहा करते थे। चीनियों ने हूणों को बहुत दूर उत्तर भगा दिया था, किंतु इतने पर भी हूणों की शक्ति बिल्कुल खतम नहीं हुई थी। यह उस जवाब से मालूम होता है, जिसे कि संधि करने के लिये भेजे गये दूत को उन्होंने दिया था—"दक्षिण हान के महान् वंश का है और उत्तर हूणों का। हूण प्रकृति के स्वच्छन्द पुत्र हैं। वह कठिनाइयों तथा छोटी मोटी बातों की परवाह नहीं करते। चीन के साथ एक बड़े पैमाने पर सीमान्ती व्यापार करने के लिये हमारा प्रस्ताव है, कि एक चीन राजकुमारी ब्याह करने के लिये आये, प्रति वर्ष १० हजार समूरी चमड़े, उच्च श्रेणी के रेशम के १० हजार थान और इनके अतिरिक्त पहले संधि-पत्रों से मिलने वाली भेंट भी, हमारे पास भेजी जाय। यदि यह कर दिया जाय, तो हम फिर सीमांत पर लूट पाट नहीं करेंगे।"

शान्-यू की मां बीमार थी। शकुन-शास्त्रियों ने बतलाया, कि देवता बलि चाहते हैं। खोकन्द के विजेता तथा चीन का सर्वश्रेष्ठ सेनापति स्यन्-बी दरबारी षड्यन्त्र के कारण भाग कर हूणों की शरण में चला आया था, उसी की बलि देवता को दी गई। जान पड़ता है, देवता इससे और रुष्ट हो गये। कई महीने तक लगातार हिम-वर्षा हुई। पशु और उनके बच्चे मर गये, लोगों में महामारी फैल गई। अन्न की फसल जहां होती थी, वहां पकने नहीं पाई। इसके साथ युद्ध-क्षेत्र में भारी पराजय हुई, जिसमें बड़े-बड़े सेनापति मारे गये। इससे हूणों की कमर क्यों न टूट जाती?

(ख) हूण-पराभव

खूखन, हू-हून्-ये या खू-गन्-जा (५९-३१ ई० पू०) १४ वां शान्-यू था। इस समय मंचूरिया से लेकर इस्सीकुल तक की हूण-भूमि में प्रचंड गृह-कलह चल रहा था। एक नहीं पांच-पांच शान्-यू बन गये थे, जिनमें हू-हन्-ये का अपना बड़ा भाई ची-ची उसका जबर्दस्त प्रतिद्वंद्वी था। आपसी संघर्ष तथा चीन के प्रहार के कारण [illegible] चीन की अधीनता स्वीकार करने में ही कल्याण समझते थे। कराकोरम (मंगोलिया) प्रदेश में हू-हान्-ये ने ची-ची को जबर्दस्त हार दी। हू-हान्-ये का दूसरा प्रतिद्वन्द्वी बो-यान था, जिस पर उसने ५० हजार सेना के साथ आक्र-

१२

मण किया। अन्त में वो-यान को निराश होकर आत्महत्या कर लेनी पड़ी। हू-हान्-ये का शासन बहुत मजबूत हो चला। इतने प्रतिद्वन्द्वियों के खिलाफ हू-हान्-ये के विजय का एक कारण यह भी था, कि सरदारों के प्रभाव के बढ़ने के बाद भी हूणों से अभी सामरिक जनतंत्रता का लोप नहीं हुआ था और वह जननिर्वाचित था। किंतु, भोग और सम्पत्ति ने हूणों में भेद अवश्य प्रकट कर दिया था।

हू-हान्-येने परिषदके सामने चीन की अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव रक्खा। बहुत से सरदारों ने असहमति प्रकट की। उनका कहना था—"हमारा प्राकृतिक जीवन है केवल पशुबल और क्रियापरायणता। अपमानपूर्ण अधीनता तथा सुखी जीवन हमारे लिये उपयुक्त नहीं है, बल्कि उसके प्रति हम घृणा करते है। घोड़े की पीठ पर चढ़कर लड़ना यही हमारी राजनीतिक शक्ति का मूलमंत्र है। यही वह चीज है, जिससे कि हम सदा बर्बर जातियों में अपनी प्रधानता कायम रखते आये है। युद्ध में मरना हमारे हरेक वीर योद्धा की कामना रहती है। चाहे हम आपस में कभी लड़ भी पड़ें, तो भी कोई परवाह नहीं; क्योंकि यदि एक भाई सफल नहीं होगा, तो दूसरा सफल होगा और इस प्रकार राज्य सदा अपने वंश में रहेगा। असफल भाई भी कमसे कम बहुत सम्मानजनक मृत्यु को प्राप्त करेगा। [illegible] बहुत राजदृत है, किंतु वह न हमको जीतने की और न अपने में पचा लेने की शक्ति रखता है। हम लोग क्यों अपने पुराने रास्ते को छोड़कर चीनियों के सामने नतमस्तक हों, और अपने पूर्वज शान्-युओं के नाम पर बट्टा लगायें, अपने को दास बनायें और दूसरे लोगों के सामने उपहासास्पद बनें। चाहे ऐसा करने से हमें शान्ति मिल जाय, किंतु दूसरों पर प्रभुत्व करने का हमारा हक सदा के लिये खतम हो जायगा।"

समर्पण के पक्षपाती एक राजकुमार ने कहा—"ऐसा नहीं है। सभी जातियों के सामने कुअवसर और सुअवसर आते रहते हैं। चीन की शक्ति इस समय बहुत उत्कर्ष पर है। कुलजा को लेकर उन्होंने दुर्गबद्ध कर लिया है। उत्तर के सभी राज्य चीन के विनम्र सेवक है। शू-ती-हू (१०३-९८ ई० पू०) के समय से ही हम जो खो रहे है, उसे फिर प्राप्त नहीं कर सके। इस सारे समय में हम पिटे हैं। निश्चय ही इस समय हमारे लिये यही इच्छा है, कि थोड़ा सा अपने अभिमान को कम करें, न कि बराबर लड़ते जायँ। यदि चीन की अधीनता स्वीकार करते है, तो शांतिपूर्वक हम अपने प्राणों की रक्षा कर सकते है। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो बहुत भयंकर तौर से नष्ट होते जायेंगे। ऐसी अवस्था में हमारे लिये कौन रास्ता अच्छा है यह स्पष्ट है।"

चीन ने संधि की शर्तों में यह भी रखी थी, कि शान्-यू का एक पुत्र प्रतिभूति (अमानत) के तौर पर भेजा जाये। हू-हान्-ये ने इसे स्वीकार किया। उसके जेठे भाई ची-ची ने भी वैसा ही किया।

अगले साल (५१ ई० पू० में) हू-हान्-ये ने चीनी दरबार में आने के लिये प्रार्थना की। हूण पराजित होते भी चीनकी जितनी क्षति कर बैठते थे, उससे यह सौदा सस्ता मालूम हुआ। सम्राट् स्वेन्-ती (७३-४८ ई० पू०) ने उसकी अगवानी के लिये एक मजबूत और बड़ा शानदार दस्ता भेजा, हू-हान्-ये के आने पर स्वयं बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत किया। सम्राट् के सभी राजकुमारों तथा दूसरे सामन्तों के ऊपर शान्-यू को माना गया और उसे धरती मे सिर छुवा कर कोरनिश करने को नही कहा गया। सम्बोधन में भी शान्-यू का नाम लिये विना "आप मित्र" कहा गया। उसे बहुत मूल्यवान् भेंट दी गई, जिसमें एक सोने की मोहर, एक राजकीय

खड्ग और कितने ही राजकीय रथ, घोड़े, जीन और दूसरी चीजें थीं। सम्राट् से मुलाकात करने के बाद विशेष दूत ने ले जाकर शान्-यू को निवास-स्थान पर पहुंचाया। कुछ समय बाद शान्-यू को लौटने की अनुमति मिली।[१]

ची-ची ने भी अधीनता स्वीकार करते हुये प्रार्थना की थी, कि उसे महादीवार के बाहर ओर्डुस प्रदेश में रहने की आज्ञा दी जाये, जिसमें कि खतरे के समय वह उधर के दुर्गबद्ध नगरों की रक्षा कर सके। ची-ची के दूत की भी सम्राट् ने बड़ी खातिर की। अगले साल फिर दोनों भाई शान्-युओं के पास दूत आये, जिनमें हू-हान्-ये के दूत की ज्यादा आवभगत की गई। उससे अगले साल (४६ ई० पू० में) हू-हान्-ये जब दरबार में गया, तो उसका पहले ही की तरह सम्मान हुआ, और ज्यादा भेंट भी प्राप्त हुई। इससे ची-ची की ईर्ष्या और भड़क उठी। उसने हू-हान्-ये को निर्बल समझा और अपने सारे ओर्दू को लेकर पश्चिम की विजय पर चल पड़ा। कुलजा के घुमन्तू वू-सूनों को अपनी ओर करने के लिये उसने दूत भेजा। वूसून राजा ने दूत का सिर काटकर युद्ध घोषित कर दिया। वह जानता था, कि चीन उसकी पीठ पर है। ची-ची ने उसे हराया, फिर उत्तर में तरबगतई, वू-चे, च्याङ-कुन्, तिङ-ली आदि घुमन्तूओं को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिये मजबूर किया। चाङ-कुन् से ७ हजार ली दक्षिण-पूरब इस समय ची-ची के ओर्दू का केन्द्र था। उस समय तक वू-सूनों की प्रमुखता में यहां के घुमन्तू बहुत कुछ स्वायत्त शासन कर रहे थे। चीची शान्-यू या उत्तरी हूण-ओर्दू का मुख्य-स्थान कराकोरम (उलान्बातोर) के पास था, जहाँ से किरगिजों का केंद्र २३०० मील और आज का तुर्फान तथा पीजाम २००० मील थे। ४८ ई० पू० में सम्राट् य्वेनती गद्दी पर बैठा। उसने हू-हान्-ये की प्रार्थना पर २० हजार नाप अनाज भेजा। ची-ची इस पर जल मरा। उसका लड़का सम्राट् का प्रतिहार था। उसे उसने बुला भेजा और पहुंचाने के लिये आये हुए दूत को भी मार डाला। दरबार को सूचना मिली थी, कि हू-हान्-ये का ओर्दू बहुत शक्तिशाली और समृद्ध है, वह ची-ची का मुकाबला अच्छी तरह कर सकता है।

४८ ई० पू० से हूण ओर्दू दो भागों में बंट गया—हू-हान्-येका दक्षिणी ओर्दू अब चीन के अधीन था और ची ची का उत्तरी ओर्दू बिलकुल स्वतंत्र था। हू-हान्-ये और चीन में जो संधि हुई थी, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"चीन और हूण में सदा के लिये शांति रहेगी। उनमे एक परिवार जैसा मेल रहेगा। दोनों में से कोई पक्ष एक दूसरे पर न आक्रमण करेगा न धोखा देगा। अगर कोई लूटपाट करे, तो उसकी दूसरे पक्ष के सामने शिकायत की जाय। वह दोषियों को दण्ड दे और क्षति-पूर्ति दिलवाये। अगर कोई चढाई हो, तो प्रत्येक पक्ष उसे अच्छी तरह दबाने का प्रयत्न करेगा। जो पक्ष इस संधि को तोड़े, उसके और उत्तराधिकारियों के साथ दैव वैसा ही करे, जैसा कि उसने इस संधि पत्र के साथ किया।"

संधि हो जाने के बाद शान्-यू और चीनी राजदूत एक पहाड़ के ऊपर गये, जहाँ अपनी रत्नजटित तलवार से शान्-यू ने एक सफेद घोड़े की बलि दी, और यूचियों के राजा की खोपड़ी में—जिसे कि विजय के चिन्ह के तौर पर हूणों ने अपने पास रख रखा था—घोड़े के खून में सोना मिला कर चीनी राजदूत के साथ एक एक घूंट पिया।

---

[१] वहीं p. 357

चीनी दरबारी ऐसी शपथ से बहुत नाराज थे। उन्होंने जोर डाला, कि शपथ को लौटा लिया जाय, लेकिन सम्राट् ने इसे पसन्द नहीं किया।

उधर ची-ची चीन के दूत को मार डालने के लिये परेशान था। समरकन्द का (शक) राजा कुलजा के वूसूनों के अत्याचार से उत्पीडित था। उसने किरगिज-प्रान्त में स्थित ची-ची को मदद के लिये बुलाया, और हूणों की अधीनता को फिर से स्वीकार किया। ची-ची उनकी मदद के लिये चला, लेकिन वूसूनों की मदद के लिये चीनी सेना भी आ पहुंची। शान्-यू ची-ची तलस् (तुलाई) नदी के किनारे लड़ते हुये मारा गया, जिसके कारण उत्तर की बर्बर जातियों की एकता खतम हो गई।

३. उत्तरी और दक्षिणी शान्-यू[1]

ची-ची और हू-हान्-येके द्वारा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हूण जन दो भागों में विभक्त हो गया, जिसमें दक्षिणी हूण चीन के साथ रहना चाहते थे। महादीवार से दूर उत्तर गोबी के रेगिस्तान से परे वर्तमान मंगोलिया और बाइकाल के पास घूमने वाले हूण चीन की पहुंच से अपने को दूर समझते परवाह नहीं करते थे, कि चीन रुष्ट होगा, तो हमारी हानि होगी। चीन की अधीनता स्वीकार करने की मनोवृत्ति ५२ ई० पू० में हू-हान्-ये ने जो प्रकट की थी, जान पड़ता है, वह ची-ची के मरने के बाद बिल्कुल लुप्त नहीं हुई। हू-हान्-ये बराबर अपने को चीन का अनन्य-भक्त साबित करना चाहता था, यद्यपि चीन-सम्राट् उसपर पूर्णतया विश्वास नहीं कर सकता था। वह समझता था, ये घुमन्तू हूण—जिनका न किसी खेत से नाता है और न घर से—बे-नकेल के ऊंट हैं। लेकिन साथ ही उसको विश्वास था, कि जबतक उनकी अच्छी तरह भेंट-पूजा होती रहेगी, तब तक वह विरोधी नहीं बनेंगे। उसे यह पता लग गया था, कि हूणों को "आदमी" बनाने के लिये सबसे अच्छा तरीका यही है, कि उनके पास सामन्ती भोग की वस्तुयें पहुंचाई जायं और उनके अन्तःपुर में सुन्दर-सुन्दर चीनी राजकुमारियां प्रवेश करें। ३३ ई० पू० में (मरने से दो साल पहले) हू-हान्-ये फिर दरबार में आया। अबकी भी ४९ ई०पू० की तरह ही उसका स्वागत हुआ। शान्यूको सम्राट् युवेन्-ती (४८-३२ ई० पू०) ने अपने अन्तःपुर की सबसे सुन्दरी तरुणी चाउ-चुन् (प्रभावती) प्रदान की। सम्राट् के हरम में हजारों सुन्दरियां रहती थीं, जिनमें से चाउ-चुन् की तरह कितनी ही ऐसी भी थीं, जिन्हें सम्राट् ने कभी देखा भी नहीं था। कायदा था: दरबारी चित्रकार सुन्दरियों का चित्र अंकित करता। सम्राट् चित्र देखकर उनमें से किसी को पसन्द कर अपने पास बुलाता। चित्रकारों को इसके लिये खूब रिश्वत मिलती थी। उस समय माउ नामक एक दरबारी चित्रकार था, जो इस काम पर नियुक्त था। अन्तः-पुरिकायें अपने सौन्दर्य को बढ़ा-चढ़ाकर चित्रित कराने के लिये खूब पैसा देतीं थीं। चाउ-चुन् सर्व-सुन्दरी थी, किन्तु वह इस बात के लिये राजी नहीं हुई। माउ ने नाराज होकर उसका बहुत भद्दा चित्र बनाया, इसीलिये सम्राट् ने उसे कभी नहीं बुलाया। चीन के विशाल प्रासाद के एकांत कोने में उसका जीवन बीतने लगा। शरद आता, पत्ते पीले होकर गिरने लगते। वह [illegible] तारुण्य और सौन्दर्य भी इसी तरह खतम हो जायगा। इसी समय हू-हान्-ये ने सम्राट्

---

[1] वहीं p. 431

से एक राजकुमारी मांगी। राजकुमारियां अपने प्रासाद को छोड़कर बर्बर हूणों के तम्बू में जानेके लिये तैयार नहीं हो रही थीं। लेकिन हूण राजा को एक राजकुमारी अवश्य देनी थी, यदि चीन के जन-धन की रक्षा करनी थी। चाउ-चुनने जाना पसंद किया। सम्राट् ने समझा, कि वह कोई साधारण सी तरुणी होगी, और प्रसन्नतापूर्वक देना स्वीकार किया। लेकिन, जब वह शान्यू के साथ भेजने के लिये सम्राट् के सामने लायी गई और उसकी दृष्टि इस निसर्ग सुन्दरी पर पड़ी, तो वह अपनी बातसे उलट तो नहीं सकता था, लेकिन उसने उसी वक्त चित्रकार माउ को प्राण-दण्ड का हुकुम दिया। चीन के बहुत से कवियों और नाट्यकारों ने चाउ-चुन् के स्वदेश छोड़ने के करुण दृश्य और रेगिस्तान तथा जंगली पश्चिमी देश के भयानक चित्र अंकित किये हैं। हूण-प्रतिहारियां सितार के साथ मधुर संगीत द्वारा उसके मन को बहलाने का बेकार प्रयत्न करती थीं। निर्जन रेगिस्तान में सदाहरित समाधि को खड़ी देख चाउ-चुन सोचती, एक दिन मुझे भी यहीं दफन कर दिया जायगा। कहते हैं इसी समय हूणों का संगीत यंत्र चीन में प्रचलित हुआ।

हू-हान्-ये चीन सम्राट् का बहुत कृतज्ञ हुआ। इसको प्रकट करने के लिय उसने सम्राट् से प्रार्थना की, कि ह्वाङहो से लोबनोर तक की सारी सीमा की रक्षा का भार मैं लेने के लिये तैयार हूं, वहाँ छावनी रखकर व्यर्थ धन खर्च करने की अवश्यकता नहीं। लेकिन एक बूढ़े मंत्री ने सम्राट् को सावधान किया—"शांसी से कोरिया तक जंगलों से आच्छादित पर्वत-श्रेणियाँ खड़ी थीं, तो भी विजेता माउदुन और उसके उत्तराधिकारी भीतर घुसने में सफल होते रहे। वह जहाँ चाहते थे, वहाँ से अपनी इच्छानुसार चीन पर आक्रमण करते थे। वह तब तक ऐसा करते रहे, जब तक कि वू-ती (१४०-८६ ई० पू०) ने उन्हें रेगिस्तान के उत्तर में भगा नहीं दिया और सारी महादीवारको दुर्गबद्ध नहीं कर दिया।...सीमांत की छावनियाँ इसीलिये है, कि देशद्रोही चीनी भागकर हूणों के देश में न चले जायँ, साथ ही यह भी कि हूण चीन के ऊपर आक्रमण न कर सकें। यह कहने की अवश्यकता नहीं, कि हमारे सीमांत के निवासियों में भारी संख्या हूण-वंशियों की है, जिन्हें कि हम [illegible]। हाल में हमने च्याङ (तिब्बत-वंशियों) से संबंध जोड़ना शुरू किया है, जो कि हमारे अफसरों की लोलुपता और लूट-खसूट से बहुत रुष्ट हैं। यदि च्याङ और हूण दोनों घुमन्तू आपस में मिल गये, तो हमारे लिये भारी खतरा पैदा हो जायगा।...एक शताब्दी से थोड़ा अधिक हुआ, जबकि महादीवार बनाई गई। यह केवल मिट्टी का ढूह नहीं है। पहाड़ के ऊपर और नीचे पृथिवी के स्वाभाविक उतार-चढाव पर यह बनाई गई है। इसमें मधु-छत्र की तरह बहुत से गुप्त मार्ग और तहखाने तैयार किये गये हैं, स्थान-स्थान पर दुर्ग बनाये गये हैं। क्या यह सारा विशाल श्रम नष्ट होने के लिये छोड़ दिया जायगा।"

सम्राट् के दूत ने मीठी मीठी बातें करके शान्-यू को समझाने की कोशिश की। क्या रहस्य है, इसे वह भली भाँति समझता था। इसके एक ही साल बाद सम्राट् युवेन्-ती और दूसरे साल शान्-यू हू-हान्-ये भी मर गये।

चाहे उत्तर और दक्षिण का मत भेद भीतर-भीतर रहा हो, लेकिन वह बीसवें शान्-यू हू-तू-एल-शी-ताउ-कू (१८-४६ ई०) की मृत्यु तक प्रकट नहीं हो सका। हूणों में यह नियम नहीं था, कि शान्-यू का बड़ा बेटा उसका उत्तराधिकारी हो। कभी कभी बड़े बेटे की तो बात अलग सारे बेटों को छोड़ कोई सगा या चचेरा भाई शान्-यू बना

दिया जाता था। हू-हान्-येके के बाद उसके पांच बेटे एक के बाद एक शान्-यू बने। २०वें शान्-यू का भतीजा द्वितीय हू-हान ये उत्तराधिकारी समझा जाता था, लेकिन गैनिक जनतंत्रता उसमें बाधक हुई। बहुत संघर्ष के बाद हू-हान् ये द्वितीय (४८ ५७ ईस्वी) यद्यपि शान्-यू चुन लिया गया, किंतु २०वें शान्-यू के पुत्र ने भी अपने को शान्-यू घोषित कर दिया। वह एक तरह अपने चचा ची-ची के अपूर्ण काम को पूरा करना चाहता था।

अब दोनों हूण ओर्दुओं में संघर्ष शुरू हो गया। ४९ ईस्वी में दक्षिणी शान्-यू के भाई ने उत्तरी शान्-यू के भाई को हराकर बंदी बनाया। उत्तरी शान्-यू जानता था, कि चीन के कृपा-पात्र अपने प्रतिद्वंद्वी से मैं सीधे मुकाबला नहीं कर सकता, इसलिये दक्षिण की अपनी चरभूमि से ३०० मील दूर चला गया। भविष्यवाणी थी, कि घुमन्तुओं को अपनी नवीं पुश्त में ३०० मील दूर भागना पड़ेगा। थोड़े समय बाद पाँच असन्तुष्ट सरदारों तथा ३० हजार परिवारों को लिये उत्तरी शान्-यू का भाई बागी हो निकल भागा। सारे दल ने उत्तरी हूण-केंद्र से ७५ मील पर डेरा डाला, जहाँ दोनोंमें लड़ाई हुई। पांचों सरदार मारे गये। उनके पुत्रों ने अपने बचे-खुचे आदमियों के साथ दक्षिणी हूणों के पास जाना चाहा, किंतु उत्तरियों ने उन्हें पकड़ लिया और उनके बचाने के लिये आये दक्षिणियोंको हराकर खदेड़ दिया। सम्राट्ने दक्षिणी शान्-यू को और दक्षिण जानेके लिये कहा और वह लिन्-चाऊ (लू-यूयेन) के इलाके में चला गया। यहीं के रहने वाले हूणों ने तीन शताब्दी बाद चीन के एक राजवंश की स्थापना की।

उत्तरी शान्-यू चीन से झगड़ा मोल नहीं लेना चाहता था। उसने बहुत से चीनी युद्ध-बंदियों को लौटा दिया। लूट-पाट करने के लिये उसका बहाना था: "हम चीन की भूमि पर लूट पाट नहीं करते, हम तो अपने विश्वासघाती सरदारों का पीछा कर रहे हैं।" ५२ ईस्वी में उत्तरी शान्-यू ने संधि के लिये अपना दूत भेजा, लेकिन उस समय दरबार में इस पर मतभेद रहा। अगले साल [illegible] लों की भेंट भेजकर फिर उसने सुलह करने का प्रयत्न किया, और गायकों की एक मंडली मांगी तथा अपने शी-यू (तुर्किस्तान) के अनुगामी राजाओं को साथ ले आकर अधीनता तथा सम्मान प्रदर्शित करने के लिये आज्ञा माँगी। चीन चाहता था, कि दोनों में से कोई नाराज न हो। बहुत नरमी के साथ स्वीकृति देते हुये चीन दरबार ने उसे लिखा "...अतीत्-काल में हू-हान्-ये और ची-ची गृह-कलह में लगे हुए थे। उस समय देवपुत्र ने अपना कृपापूर्ण संरक्षण दोनों को दिया और उनके पुत्रों को राजसेवा में स्वीकार किया।...हाल के वर्षों में दक्षिणी शान्-यू ने दक्षिण की ओर मुँह फेर कर हमारी अधीनता स्वीकार की। चूंकि वह हू-हान्-ये की अविच्छिन्न संतान में सर्वज्येष्ठ है, इसलिये हमने उसको उचित [illegible]। लेकिन जब वह अपने अधिकार से बाहर जा हमारी मदद से उत्तरी ओर्दू को नष्ट करना चाहता है, तो हमारे लिये आवश्यक हो जाता है, कि उत्तरी शान-यू की उचित अभिलाषा पर भी ध्यान रखें, क्योंकि उसने भी कई बार हमारे प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।...इसलिये कोई कारण नहीं है, कि क्यों न उत्तरी शान्-यू सी-यू राजाओं को उनका कर्त्तव्य-पथ दिखलाने के लिये उनके साथ आकर अपनी स्वामि-भक्ति का प्रमाण हमारे सामने दें।..."

प्रथम उत्तरी शान्-यू ५२ ईस्वी के बाद किसी समय मर गया। उसका उत्तराधिकारी द्वितीय शान्-यू ५९ ईस्वी में स्वयं महादीवार के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये आया।

तो भी वह ३ साल तक बराबर चीन में लूटपाट करता रहा,जिसको हटाने के लिये दक्षिणी ओर्दू ने बड़ा काम किया। ६३ ईस्वी में उत्तरियों ने चीन से व्यापारिक सुविधा प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की। दरबार ने अनुमति दे दी, समझा, लूटपाट बंद हो जायगी। दो साल बाद ६६५ ईस्वी में उत्तरी शान्-यू के पास चीन का दूतमंडल गया। दक्षिण ओर्दू को यह पसंद नहीं आया और उनमें से कुछ उत्तरियों में जा मिले। चीन बराबर भेट भेजता रहा, लेकिन हूण अतिरिक्त लाभ के बिना संतुष्ट नहीं रह सकते थे, इसलिये उनकी लूटपाट नहीं बंद होती थी। सम्राट् मिङ-ती (५८-७६ ई०) ने मजबूर होकर उत्तरियों के ऊपर ७३ ईस्वी में बहुत भारी सेना भेजी, लेकिन हूण अपनी सनातन युद्ध-नीति के अनुसार गोबी रेगिस्तान के पार भाग गये। ८४ ईस्वी में फिर उत्तरी शान्-यू को हम व्यापारी सुविधा पाते देखते है, जिस पर दक्षिणियों ने उनके कुछ आदमियों और पशुओं को पकड़ कर अपना असंतोष प्रकट किया।

ईसवी प्रथम शताब्दी का अन्त होते होते उत्तरी हूणों में आपस का वैमनस्य ज्यादा हो गया। साथ ही उनके प्रतिद्वन्द्वियों की शक्ति और संख्या भी बढ़ गई। उनके पूरब (मंचूरिया) के घुमन्तू स्यान्-पी (हु-ह्वान्), जो तुंगूपों की एक शाखा थे, तेजी से शक्ति संचय कर रहे थे और वह समय दूर नहीं था, जब कि वह चीन को एक राजवंश देनेवाले थे। [illegible] स्यान्-पी पूर्व से उत्तरी ओर्दू पर आक्रमण कर रहे थे। दक्षिण में उनके दक्षिणी भाई-बंद जान छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे, पश्चिम में सी-यू तुर्कीस्तानी कबीले चोट-पर-चोट कर रहे थे, उत्तर में तिङ-लिङ (कंकाली) भी अपना प्रभुत्व दिखला रहे थे। चारों ओरों के प्रहारों से छिन्न-भिन्न होकर उत्तरी हूण ओर्दू विलुप्त होने लगा। उनमें से कुछ उत्तर की ओर भागे, और कुछ सेलंगा के उपरी धार से होते इलिदा नदी, इस्सीकुल (सरोवर) की तरफ बढ़कर वूसुनों की भूमि को हथियाने लगे। इतने ही तक संतोष न कर वह कंगों की भूमि अराल-समुद्र से उत्तर-उत्तर शक-वंशीय सर्मातों के उत्तराधिकारी अलानों को कास्पियन के उत्तर से हटाते [illegible] और दुनाइ(डैन्यूब)के किनारे पहुँच गये। अतिला (एत्-ज़ेल) बड़े अभिमान से कहता था: मैं शान्-युओं का वंशज हूँ। मातृभूमि से भगाने के लिये उत्तरी हूणों पर अन्तिम प्रहार स्यान्-पी ने ७७ ईस्वी में किया। उन्होंने शान्-यू को पकड़ लिया और उसके चमड़े को विजय-स्मारक के तौर पर अपने पास सुरक्षित रखा। उत्तरियों के बचे-खुचे आदमियों में से २ लाख ने कई टुकड़ियों में हो महा-प्राकार के भिन्न-भिन्न स्थानों में आकर चीन की अधीनता स्वीकार की। तब से स्वतन्त्र हूण जाति का नाम समाप्त हो गया।

दक्षिणी शान्-यू ४८-१६० ईस्वी तक चीन के सामन्त के तौर पर चीनी जन-समुद्र के [illegible] कोने में रहे। वह अधिक और अधिक चीनी बनते गये, और अब भी चीन के लिये काफी सैनिक सहायता देते थे। कभी कभी उनमें अपने पूर्वजों का खून जोश मारता, लेकिन उसका परिणाम हजारों के प्राणहानि के सिवा और कुछ नहीं होता था। १७७ ईस्वी में तत्कालीन शान्-यू ने चीन के लिये स्यान्-पी विजेता दर्जे-ग्वेसे लड़ाई की। चीनी हारे। मरने वालों में हूणों का शान्-यू भी था। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र हुआ, जिसे मारकर एक चीनी जेनरल शान्-यू बना। पीछे हूण राजवंश का नाम भी लुप्त हो गया। तुङ-हू (सुअरवाले आदमी) स्यान्-पी के रूप में आगे आये और उनके नेता दर्जे-ग्वेने १६५ ईस्वी के आसपास स्यान्-पी वंश की स्थापना की। हूणों की तरह ये भी सैनिक जनतंत्रता और घुमन्तू जीवन के अनुगामी थे। इस वंश ने

उत्तरी चीन पर ४ थी शताब्दी के अन्त तक अपने शासन को कायम रक्खा। स्यान्-पी के उत्तराधिकारी उन्हींके वंश के तोबा थे, जिनका तृतीय राजा ताउ-वू-ती (३८६-४०९ ई०) बहुत बड़ा विजेता तथा उत्तरी वेई वंश का संस्थापक था। तोबा की एक शाखा उनकुरन ने ज्वेन्-ज्वेन् साम्राज्य को ३५४ ईस्वी के आसपास स्थापित कर उसका विस्तार त्यानशान् से कोरिया तक किया। इन्हींके लौह कमकर तथा उत्तराधिकारी तुर्कों ने तुर्क-वंश और तुर्क-संगार की स्थापना की, जिसका वर्णन आगे आयेगा।

स्रोत-ग्रंथ :

1. A Thousand years of Tatars (E. H. Parker, Shanghai 1895)

२. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिजिइ (अ. न. वेर्न्श्ताम्, फ्रुन्जे १९४१)

३. हुन्नु इ गुन्नी (क. इनस्त्रान्त्सेफ़, लेनिनग्राद १९२६)

४. इज़ इस्तोरिइ गुन्नोफ़ १ वेका दो नाशे एरा (अ. न. वेर्न्श्ताम्), सोव्येत् वोस्तोकोवेदेनिये II (1941) पृष्ठ ५१-५७

५. सिरिइस्किये इस्तोच्निकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ (न. पिगुलेव्स्काया, लेनिनग्राद १९४१)

6. Histoire des Huns (Desqugue, Paris 1756)

७. पेर्वोनचाल्निख क्रसोफ कोव्रा इज़ नोइन-उला (लेनिनग्राद १९४७)

8. Excavation in Northern Mongolia (C. Trever, Leningrad)

9. The Story of Chang Kien (J. of American Oniental Society, Sep. 1917 p. 77)

१०. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्य (वरतोल्द, १८९८)

11. Histoire d' Attila et de ses successsures (Am. Thierry, Paris 1856)

12. History of the Hing-nu in their Relations with China (Wylie, Journal of Anthropological institute, London, vol. III 1892, 3)

13. Sur l'origine des Hiung-nu (Shiratori, Journal Asiatigus CC II no. I, 1923)

अध्याय ३

१. वू-सुन (३००-१०० ई० पू०) अवार

§ १. वू-सुन्

हम शकों के इतिहास के बारे में कह चुके हैं। वू-सुनों के इतिहास के विशेषज्ञ डाक्टर अ० न० बेर्नश्तामका कहना है[1] "वू-सुनों की संस्कृति वही है, जो कि शकों की, अन्तर है केवल उसमें पीतल का अभाव"। इससे साफ है, कि कारपेथियन से कोकोनोर तक फैली हुई पित्तल-युग के आरंभ से चली आती, महान् शक-जाति की बहुत सी शाखाओं में वू-सुन् भी एक थे। वू-सुनों के शरीर-लक्षण के बारे में चीनी कहते हैं "नीली आंखें, लाल दाढी और बानर जैसा साधारण चेहरा।" कू-चा (सिङकियाङ) के पीछे के निवासी भी नीली आंखों और लाल बालवाले थे। ओरेल स्टाइन् तथा लेकाक को तरिम उपत्यका में नीली आंखों और लाल बालों वाले नर-नारियों के चित्रपट भी मिले हैं, जिससे मालूम होता है, ईसा की ४थी ५वीं शताब्दी में अब भी तरिम-उपत्यका में इस तरह के लोग निवास करते थे।

[illegible]

ईसापूर्व तीसरी और दूसरी शताब्दी में वू-सुन जाति बहुत शक्तिशाली थी, यद्यपि यही समय था, जब कि हूण एक विजेता के तौर पर प्रकट हुये थे, जिनका शिकार कभी कभी वू-सुनों को भी होना पड़ता था। इन शताब्दियों में भी चीन के रेशम को पश्चिम देशों की

[1] आर्खे० ओचे० (बेर्नश्ताम) पृष्ठ ३७

ओर पहुंचानेवाला मध्य-एसिया का वाणिज्य-मार्ग वू-सुनों की भूमि में इस्सीकुल के किनारे से जाता था। यहीं उनका केन्द्र ची-गू था। हूण और चीन दोनों वू-सुनों को अपनी अपनी ओर खींचना चाहते थे। इली-उपत्यका, चू-उपत्यका और त्यान्शान् पर्वतस्थली वू-सुन भूमि थी, जो कि उन्हें अपने शक-पूर्वजों से मिली थी। उनके दक्षिण में पहाड़ों से उतरते ही तरिम-उपत्यका थी, जहां बसनेवाली हू-मा जाति से उनका [illegible] था। पश्चिम में [illegible] में कंग जाति का सीमांत उनके साथ आ मिलता था। पश्चिम और दक्षिण में फर्गाना (तावान) की सुन्दर उपत्यका का राज्य उनका पड़ोसी था, जो कि रेशम-पथ के कारण बहुत समृद्ध तथा अपनी उत्तम जाति के घोड़ों के लिये अति प्रसिद्ध था। १२६ ई० पू० में चाङ-क्यान् ने लौटकर जब तावान के घोड़ों की प्रशंसा की, तो राजी खुशी से काम न निकलते देख सम्राट् वू-ती को वहां सैनिक अभियान भेजना पड़ा, जिसके कारण चीनी साम्राज्य की सीमा वहां तक पहुंच गई। वू-सुन लोग घुमन्तू पशुपाल थे। चीनी लेखक उनके बारे में कहते हैं—"वू-सुन् न खेती जानते है न बागबानी। वह अपने पशुओं के साथ तृणजल सुलभ एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं। धनी वू-सुनों के पास चार-चार पांच-पांच हजार घोड़े रहते हैं।"

१. संस्कृति

वू-सुन यद्यपि अपने पूर्वज शकों की तरह अब पीतल नहीं लोह युग में आ गये थे, किंतु अभी उनकी अवस्था आदिम समाज जैसी थी। १६२६ ईस्वी में [illegible] जो पुरातात्विक खुदाई हुई थी, उससे पता लगता है, कि मृत्पात्र कला में वह बड़े चतुर थे। धातु, काष्ठ, चर्म और मृत्पात्र का हस्तशिल्प उनके यहां अच्छा विकसित था। उनके काष्ठ या मिट्टी के वर्तन तीन प्रकार के मिले हैं—अन्न रखने के, खाने के और भोजन पकाने के। सोने का आभूषण भी उनके यहां प्रचलित था। हथियारों में भारी वजन का धनुष, बाण, लम्बी तथा सीधी तलवार प्रधान थी। वाण तीन धारा होता था। चाङ-क्यान् अपनी यात्रा (१३८-१२६ ई० पू०) में दो बार आकर वू-सुनों के देश में रहा था। उसीने इस घुमन्तू जाति को चीन की ओर खींचा। आगे बहुत से वू-सुन सामन्तों ने चीन की राजकुमारियां व्याहीं। एक चीनी राजकुमारी के मुह से किसी जन-कवि ने घुमन्तुओं के नीरस जीवन का गीत गवाया है[1]—

> बन्धुओं ने मुझे दिया, दूर देश में,
> वू-सुन के राजा को देकर, भेजा पराये राज्य में।
> रहते नमदा ढँकी गोल कुटिया में,
> खाते मांस और पीते दूध।

२. इतिहास

वू-सुनों के तीन विभाग थे, जिनके अवशेष निम्न स्थानों में मिले हैं—(१) चू उपत्यका में कराबलती, (२) त्यानशान् में कराकोल, त्युप और कोचकोर तथा (३) इली-उपत्यका में अल्माअता जिले के कई स्थान। २०६ और २०१ ईसा पूर्व में हूणों ने वु-सुनोंको बुरी तरह से

---

[1] क्रित्कि० सोओब्० xIII, 112 (वेर्नूश्तमका लेख)

ध्वस्त किया था। माउदुन और ची-उचु ने जब (१७४ ई० पू०) यूचियों को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट करके उन्हें मातृभूमि छोड़ने के लिये मजबूर किया, तो तरिम-उपत्यका में आकर लघु-यूची वू-सुनों के पड़ोसी बन गये और महा-यूची इली और चू-उपत्यकाओं के वू-सुनों का भारी नुक्सान करते एसिया, वक्षु-उपत्यकाकी ओर गये। इस समय वू-सुनोंने हूणोंकी अधीनता स्वीकार की, जिसका अन्त चाङ-क्यान्के आनेके बाद चीनका पक्षपाती होनेके साथ हुआ।

वू-सुन्के पश्चिममें कंक (कंग) और फर्गानाके शासक थे, दक्षिणमें उनके नये पड़ोसी लघु-यूची (तुषार) थे, किंतु इनसे उनको डर नहीं था। इनकी अपेक्षा वू-सुन् कहीं सबल थे। उनके भयका कारण पूर्व और पूर्वोत्तरमें था। वहां पूरबसे आते अन्तर्राष्ट्रीय वणिक्-पथको हाथमें रखनेके लिये चीन अपनी सारी शक्ति लगा रहा था, और पूर्वोत्तरसें हूणोंका शान्-यू यह देखनेके लिये तैयार नहीं था, कि उसकी अधीनता स्वीकार करनेवाले वू-सुन् चीन को अपना स्वामी मानें। वू-सुन् समझते थे, कि उनकी भलाई चीनके साथ रहनेमें है। हूणोंका जीवन वू-सुनों जैसा ही था। दोनों ही घुमन्तू पशुपाल थे, और कृषि-जीवनसे उनको कोई मतलब नहीं था। हूणोंके आनेका मतलब था, उनकी चरभूमियोंका छिन जाना और हूणोंकी गुलामी स्वीकार करना। चीनकी कूटनीतिक चालोंमें अपनी राजकुमारियोंसे दूसरे शासकोंके साथ व्याह करना भी सम्मिलित था। माउदुन्के समयसे ही हूण शान्-यू राजकुमारियां पाते रहे। तिब्बती शासक ८वीं-९वीं शताब्दी तक चीन-राजवंशके दामाद होते थे। राजकुमारीका यह मतलब नहीं, कि वह सम्राट्की अपनी लड़की या बहिन हो। मालूम होता है, जैसे भेंट-इनाम देनेके लिये और बहुत सी चीजें राजकीय भंडारमें रक्खी जाती थीं, वैसे ही अन्तःपुरमें जहां तहांसे जमा की हुई सुन्दरियां भी रहती थीं। चाऊ-चुन्की घटना हम कह चुके है। इससे कितने ही वर्षो पहले ७३ ई० पू० में चीनी राजकुमारीका बहाना लेकर हूणोंने वूसुनोंके ऊपर आक्रमण किया। एक चीन राजकुमारी वू-सुन् सरदारसे व्याही थी। उत्तरी शान्-यू देख रहा था, कि चीनके साथ मिलकर ये नीली आंखों, लाल दाढ़ी वाले वानर हमारे जूयेको उठा फेंकना चाहते हैं। शान्-यूने क्रोधांध होकर मांगकी "अपनी हान-राजकुमारीको हमारे पास भेज दो, नहीं तो हम तुमसे लड़ाई करेंगे।" वू-सुनोंने हान सम्राट् स्वेन्-ती (७३-४८ ई० पू०)से सहायता मांगी और तुरन्त एक बड़ी चीनी सेना आ भी गई। चीनियों और वू-सुनोंने मिलकर हूणोंको बहुत बुरी तरहसे हराया। कितने ही राजकुमारों और मशहूर सेना-पतियोंके साथ ४० हजार हूण मारे गये, ७ लाख घोड़े, गायें, भेड़ें, खच्चर और ऊंट विजेताओंके हाथ लगे। ११वां शान्-यू हू-यन्-ती (७७-६८ ई० पू०) उस समय उत्तरी और दक्षिणी ओर्दूका भेद न होनेके कारण सभी हूणोंका संयुक्त शासक था। यह संघर्ष इली-उपत्यकामें हुआ था। चीन की एक लाख सेना ६०० मील पश्चिम चलकर मददके लिये आई थी। कुलजाके वू-सुन् राजाने ५० हजार सेना लेकर पश्चिमसे आक्रमण किया था। चीनी सेना हामी और बर्कुल तक पहुंची, लेकिन घुमन्तू हूणोंको पहले ही से पता लग गया था, इसलिये उन्होंने अपने परिवारों तथा बहुतसे पशुओंको उत्तरमें दूर भेज दिया था। पराजयके साथ शान्-यूका चचा, दामाद आदि विजेताओंके बंदी बने थे। जैसा कि अभी हमने कहा, उसी जाड़ेमें हूणोंने वू-सुनोंसे बदला लेना चाहा, लेकिन उस साल बर्फ इतनी पड़ी, कि आक्रमण करनेवाली हूण सेनामेंसे दशांश ही मरनेसे बच पाये। इसी समय हूणोंके उत्तरी पड़ोसी तिङ-लिङ (किरगिज या प्राग्-उइगुर) ने भी उनकी और उन पर धावा बोल दिया। मंचूरियाके वू-ह्वान् भी चुप नहीं

बैठे रहे। इस प्रकार हूण चीन राजकुमारीको वू-सुनोंसे कहां छीनते, स्वयं उनके शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई। चीनी इतिहासकार लिखते हैं, कि इस मानवीय और प्राकृतिक संघर्षमें एक तिहाई हूण जन मारा गया, जिनमें युद्धमें भूखसे मरे भी शामिल थे, उनके पशुओंमेंसे भी आधे खतम हो गये ।

१९२९ में वू-सुनोंकी भूमिसे एक बड़ा महत्वपूर्ण आविष्कार हुआ था । अल्ताई के ध्वंसावशेषकी खुदाईमें भी एक वूसुन् राजाकी कब्र निकल आई, जिसको ईसा पूर्व ३री शताब्दीका बतलाया जाता है। हूण सरदारोंकी जैसी कब्रें उत्तरी काकेशसमें मिली है, वैसी ही यह कब्र भी बड़ी वैभवपूर्ण थी। लेकिन जान पड़ता है, कब्र बननेके थोड़े ही समय बाद कबर-चोरोंको पता लग गया, इसलिये इसका बहुमूल्य सामान उसी समय निकाल लिया गया। यह स्थान अल्ताईके ऐसे भागमें है, जहां नीचे धरती सदा हिमीभूत रहती है। जिस छेदके द्वारा चोर भीतर घुसे, उसी छेदसे पीछे पानी भी भीतर घुस कर बर्फ बन गया । इसलिये २२ शताब्दियों तक हिमके नीचे सभी चीजें दबकर सुरक्षित रह गईं। १० हाथ (४ मीतर) गहरे गड्ढे में पुराने चमड़े, लकड़ी और १० घोड़े सुरक्षित मिले। घोड़े बड़ी जातिके और सुन्दर थे । जान पड़ता है, वह मृत सरदारकी अपनी सवारीके घोड़े थे । घोड़ोंके सजानेके कुछ जेवर और दूसरी चीजें भी मिलीं। भरसक चोरोंने किसी मूल्यवान् चीजको न छोड़ना चाहा, लेकिन तब भी पुरातत्वकी कितनी ही महत्वपूर्ण चीजें प्राप्त हुईं। उरसुला नदीके किनारे चिकेमें भी दो शव मिले, जिनमें १४ घोड़े, ५०० भिन्न-भिन्न प्रकारके सोने और दूसरी तरहके आभूषण , घोड़ों और आदमियोंके ओढ़ने, पहननेकी कितनी ही चीजें मिलीं। अल्ताईका अर्थ ही है सुवर्णगिरि, जिस समयकी यह कब्र है, उस समयका सारा एसिया अल्ताईके सोनेसे सोनेवाला बनता था। पाजिरेक्सकी कब्र के बारे में हम लिख चुके हैं ।

३. वू-सुनोंके पड़ोसी

उत्तरापथमें वू-सुन् अल्ताईसे त्यान्शान और तलस-नदी तकके स्वामी थे, जिनके भीतर धीरे धीरे हूण प्रवेश करने लगे और ईसवी प्रथम सदीमें केवल त्यान्शान (इस्सीकुल) का पहाड़ी इलाका वू-सुनोंका रह गया। इली और चूकी उपत्यकायें जब हूणोंकी चरभूमि हो गईं, तब भी वहां कोई कोई शक-वंशीय कबीला उनकी कृपा से रहने पाता था। ४३६ ई० में वू-सुन राजाने चीनको भेंट भेजी थी, जिससे उस समय तक वू-सुन जातिके बने रहनेका पता लगता है। उत्तरके यह घुमन्तू हिम-कन्दुककी तरह दूसरे कबीलोंको अपनेमें हजम कर बढ़ते जानेकी क्षमता रखते थे। हूणोंकी प्रभुताके दिनोंमें हू-ह्वान्, तिङ-लिङ, तुङ-गुस् आदि कबीले उनमें हजम हो गये। यह सभी मंगोलायित जातिके थे, इसलिये चेहरेमोहरेमें कोई अन्तर नहीं था, हां भाषा-भेदको वह भूलते गये। दक्षिणी हूण ओर्दू किस तरह अन्तमें चीनियोंमें हजम हुआ, इसे हम अभी कह चुके हैं। वू-सुन भाषा ही नहीं आकृतिमें भी दूसरी जातिके थे, उनके हजम होने में कुछ अधिक समय जरूर लगा, किंतु वह अन्तमें हजम होकर ही रहे। आज भी इस भूमिके निवासी कज्जाकोंमें सरी-उइ-शुन् नामका एक वंश मिलता हैं, जो शायद वूसुन् वंशका परिचायक है।

वू-सुनोंके पश्चिम उत्तरापथ (सिरदरिया और अराल समुद्रके उत्तर) में कंग जाति रहती थी, जिसका नाम महाभारत और संस्कृतके और कितने ही ग्रंथोंमें मिलता है । इसको

पुराने शकों का [illegible] चाहिये, किंतु कितने ही ऐतिहासिक इनका संबंध सोग्दोंसे बतलाते हैं। कंगोंको कङ-ली (गाड़ीवाले) मंगोलायित जातिसे मिला नहीं देना चाहिये। दोनों का एक समय पता लगता है और आगे चलकर कंगोंका स्थान कंङ्ली और उनके दूसरे हूण-वंशज साथी कबीले लेते हैं, इसलिये इस तरहका भ्रम होना बहुत सम्भव है। कंग दक्षिणापथके इतिहासमें [illegible] और उनका विनाश ५वीं ६ठीं सदीमें ही हो पाता है, अथवा यह कहिये, कि अन्तमें वह तुर्कों तथा सोग्दियोंमें विलीन हो जाते हैं।

कंगोंके पश्चिममें शकोंकी सरमात् जाति दोनके तट तक फैली हुई थी, यह हम बतला चुके हैं। इन्हींके उत्तराधिकारी आगे आलानके नामसे प्रसिद्ध हुए। डाक्टर बेनादस्कीने अलानों और अन्तोंको एक बतलाया है। उन्होंने पुराने [illegible] का मत देते हुए सिद्ध किया है, कि "स्क्लाव (शकलाव या शकराव) और अन्ती पहले एक ही नामधारी थे तथा यह दोनों बर्बर जातियां प्राचीनकालसे एक ही तरह की जीवन-चर्या और रीतिरवाज रखती थीं।...दोनों ही जातियोंकी एक ही भाषा थी, जो एक अत्यन्त बर्बर बोली थी। वह शकल-सूरतमें भी एक दूसरेसे भेद नहीं रखते हैं। बिना किसी अपवादके दोनों ही जातियोंके पुरुष दीर्घकाय और हट्टे-कट्टे होते। उनके शरीर और केश बहुत साफ या पाण्डु-श्वेत नहीं बल्कि वह कुछ कुछ मैले रंगके होते थ। उनका जीवन बड़ा कठोर था, मसागेतों (महाशकों) की तरह वह भी शारीरिक आरामकी परवाह नहीं करते।"[१] वर्नादि्स्कीने अन्तोंको सरमतियोंसे जोड़ते हुए कहा है, कि सरमात वर्तमान कजाकस्तानसे पश्चिमकी ओर चलकर दक्षिणी रूसमें ईसा-पूर्व दूसरी या प्रथम शताब्दीमें आये। उधरसे आनेवालोंमें यही आलान सरमाती कबीलोंमें अत्यन्त शक्तिशाली थे। इन्होंने ईसाकी प्रथम शताब्दीमें निम्न दोन-उपत्यका और उत्तरी काकेशस्को अपना निवास-स्थान बनाया। अन्तके लिखनेमें चीनी लिपिमें जो संकेत है, उसका उच्चारण अन्-चै होता है। यह भी बतलाते हैं कि अन्तीसे ही अस् या असी शब्द निकला है। १२४६-४८ ई० में पोपके दूत प्लानो कार्पिनीने भी मंगोलोंके द्वारा पराजितोंको "अलानी सिवे अस्सी" बतलाया है, और यह भी कि अलानी और आस् एक ही जाति थी। १२५३-५४ ई० में फ्रेंच राजाने रुकरुकको अपना दूत बनाकर मंगोल खानके पास भेजा था। वह भी कार्पिनीके शब्दोंको दुहराता है। अन्तमें वर्नादि्स्की इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि अन्त, असु या यासु एक ही जाति है, जिसके वंशज काकेशस्के आधुनिक ओस्सेती हैं और पूर्वी स्लावों (आधुनिक रूसियों) के निर्माणमें इस अस् जातिका बहुत हाथ है। घुमन्तू होनेकी वजहसे यदि इनका पता अराल समुद्रसे निम्न दन्यूब (दुनाई) के पास तक मिले, तो कोई आश्चर्य नही। कालासागरके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित अज़ोफ या असोफ सागरका नाम वस्तुतः इन्हींके नामसे पड़ा, जिसका अर्थ है अस-सागर। जान पड़ता है, पूरबसे हूणोंका जैसे-जैसे धक्का इनपर लगता गया, वैसे वैसे आगे बढ़ते हुए वह या तो काकेशस् और रूसमें भगे अथवा उनका बहुत सा भाग हूणों में हज़म हो गया।

---

[१] प्रोकोपियस्

वूसून्-राजा (सेन्-चू)

गुन्-मो	१०५ ई० पू०
ग्युन्-च्युइ-मी-के	
नीमी	
क्वान्-वान्	६० ई० पू०
चुइ-ली-मी	
इ-ची-मी	११ ई० पू०-८ ई०

चीनी अभिलेखोंमें उपरोक्त वू-सुन् राजाओंका पता लगता है। उनके नामका उच्चारण समान चीनी शब्दोंके उच्चारणमें लिखा गया है, इसलिये मूल उच्चारण क्या था, इसका समझना आसान नहीं है। सप्तनद उनकी मुख्य भूमि थी, यह उसी समयसे चीनी ग्रंथोंमें लिखा जाने लगा, जबकि ईसापूर्व २री शताब्दीके मध्यमें हूणोंके विरुद्ध शकोंको उभाड़नेके लिये चाङ-क्यान् दूत बनाकर भेजा गया। हूणों द्वारा जो वू-सुन् राजा मारा गया, उसके पुत्रको हूण राजा पकड़कर अपने साथ ले गया। पीछे उसे वू-सुन् जनमें लाकर बापकी जगह पर बैठाया। अपनी मूल भूमिसे भागते हुए महायूची वू-सुनोंकी सप्तनद भूमिसे गुजरे थे, यह हम बतला आये हैं। हूणोंके प्रहारसे त्यानशानमें अपनेको सिकोड़ लेनेसे पहले वूसुन् जन सप्तनदकी समतल सी भूमिमें रहा करता था। ईसापूर्व २री शताब्दीमें वू-सुन् जनमें १२००० परिवार या ६३०००० व्यक्ति थे। वह युद्धमें १८८८०० सैनिक जमा कर सकता था। इनकी राजधानी चि-गु इस्सीकुलके दक्षिण-पूर्वी तट पर थी, जो अक्सू (सिङ क्याङ) से ६१० ली उत्तर-पश्चिम, फर्गाना की राजधानी (खोजन्द) से २००० ली उत्तर-पूर्व और कंग-भूमि की सीमासे ५००० ली पूर्व, कंगोंकी राजधानी फर्गाना (तावङ) से २००० ली उत्तर-पश्चिम थी। रूसी इतिहासकार अरिस्तोफके अनुसार चि-गू इस्सीकुलके तट पर नहीं, बल्कि किजिल्-सू (लोहित नदी) के तट पर था। वू सुन राजाओंके बारेमें निम्न बातोंका पता लगा है :—

गुन्-मो—(१०५ ई० पू०)—इसे ही वह चीनी राजकुमारी मिली थी, जिसके नीरस जीवन-गीतको हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। फर्गानाके राजाके श्रेष्ठ घोड़ोंकी बात सुनकर चीन-सम्राट् ने जब माँग की, तो राजाने देना नहीं चाहा, जिसका परिणाम हुआ १०२ ई० पू० में फर्गाना पर चीनकी चढ़ाई। इस चढ़ाईमें गुन्-मो ने २००० सैनिक सहायताके लिये दिये थे, लेकिन उन्होंने युद्धमे भाग नही लिया।

ग्युन्-च्युइ-मी— [illegible] का पोता था। इसके समय चीनी रानीके कारण चीनी अफसरोंका प्रभाव ज्यादा बढ़ा था।

उङ-गुइ—पिछले सेन-चू के बाद हूण राजकन्यासे उत्पन्न उसका एक छोटा पुत्र नी-मी वच रहा था, जो थोड़े समय तक ही गद्दी पर वैठ सका, और जल्दी ही उसे हटाकर सौतेले भाई उङ-गुइ-मी ने राज्यको अपने हाथमें कर अपने पूर्वके राजाकी रानी (चीनी राजकुमारी) को व्याहा। पूर्व राजाकी पूर्वोक्त विधवा रानी पहले मर गई थी, और यह दूसरी चीन राजकुमारी थी, जिसे उङ-गुइ-मीने अपनी रानी बनाया। उङ-गुइ-मीकी मृत्यु ६० ई० पू० के आसपास हुई थी। व-सुनोंका यह बड़ा शक्तिशाली और प्रतिभाशाली राजा था। देशके भीतर और बाहर सभी

जगह इसने अपने प्रतापका प्रदर्शन किया। ७१ ई० पू० में इसने चीनकी [illegible] खिलाफ अभियान किया, और ४० हजार हूणों को मार कर ७० हजार पशुओंको छीना। अपने पूर्वी और पूर्व-दक्षिणी पड़ोसी तरिम-उपत्यकाके लोगोंके साथ भी इसने छेड़-छाड़ की और अपने [illegible] शासक नियुक्त किया। कूचा के राजा पर भी इसका प्रभाव था, जिसमें इसने अपनी बड़ी लड़की व्याही थी। इसके मरने पर गद्दीमें उतारा भाई नीमी, क्वान्-वान् की उपाधिके साथ गद्दी पर बैठा।

क्वान्-वान् (६० ई० पू०)—अपनी रानी (चीनी राजकुमारी) और प्रजासे इसका विवाद खड़ा हो गया। इसने अपने भाईकी विधवा (चीन राजकुमारी) को अपनी रानी बनाया था। चीनी राजदूतने मारनेका षड्यन्त्र किया। राजा घायल होकर बच गया। इसके लिये जब शिकायत की गई, तो चीनने अपने दूतको बुलाकर उसे दण्ड दिया। अन्तमें हूणोंने वू-सुनों पर आक्रमण किया, जिसमें क्वान्-वान् मारा गया और चीन उसकी कुछ मदद नहीं कर सका।

चुइ-ली-मी—उसकी जगह वू-च्यू-तूने कनिष्ठ गुन-मो की उपाधि धारण करके राज सम्हालना चाहा। उङ-गुइ-मीके पुत्र य्वान-गुइ-मी भी महागुन्-मो की उपाधिसे अलग राजा बना। ज्येष्ठ गुन्-मो के हाथमें ७०००० वू-सुन परिवार थे, जब कि कनिष्ठ गुन्-मोके पास ४०००० थे। कनिष्ठ गुन्-मो (ऊ-च्यू-तू) ने चीनकी सहायतासे हूणोंके साथ लड़ाई की।

(ज्येष्ठ गुन-मो) य्वान-गुइ-मीका पोता था। इसका समय अपेक्षाकृत शांतिका था। पर यह स्वाभाविक मृत्युसे नहीं मरा।

इ-ची-मी—(११ ई० पू० और ८ ई०)—यह पिछले राजाका पोता तथा एक चीन राजकन्या का पुत्र था। ज्येष्ठ और कनिष्ठ गुन्-मो के संघर्षके समय चीनियोंने ज्येष्ठ गुन्-मोका पक्ष लिया था। कनिष्ठ गुन्-मो अन्-लि-मी चीनकी शहसे गद्दीसे उतार दिया गया। हूणोंने जब उसे मार डाला, तो उसकी जगह इ-ची-मी को चीनने राजा बनाया। ११ ई० पू० में इसका चचा बी-क्वान्-ची ८०००० आदमियोंके साथ उत्तरकी ओर चला गया और वहाँसे दोनों ही गुन्-मोके ऊपर आक्रमण करने लगा। १ ई०पू० में इसने चीनके साथ अच्छा संबंध स्थापित किया। इ-ची-मी चीन दरबारमें गया, राजधानीमें उसका अच्छा स्वागत हुआ। अन्तमें बी-क्वान्-ची चीनियों द्वारा मारा गया।

प्रायः ८ ई० मे तरिम-उपत्यका हूणोंके हाथमें चली गई और चीनसे वू-सुनोंका संबंध विछिन्न हो गया, जो ७३ ई० में ही पुनः स्थापित किया जा सका। इस समय भारत और मध्य-एसियामे कुषाण राजा कनिष्क का शासन था। तरिम-उपत्यका भी कनिष्कके हाथमें थी, लेकिन उसने चीनको अपना अधिराज मान लिया था। ९७ ई० में पश्चिमी वणिक्पथको पूरी तौरसे अपने हाथमें करनेके लिये वाङ्चाऊके नेतृत्वमें एक बड़ी सेना पश्चिमकी ओर चली, जो विजय करती कास्पियन समुद्र तक पहुँच गई। इस समय वू-सुन राजा, फर्गानाके राजा और कंगोंने भी चीनकी अधीनता स्वीकार की थी, यह स्पष्ट ही है। ईसाकी २री शताब्दीके चतुर्थ पादमें उत्तरी चीनमें स्यान्-पी वंशका दृढ़ शासन था। स्यान्-पी तुंगुस् जातिके थे, यह कह आये हैं। १८१ ई० में स्यान्-पी राजा ता-शी-हुईने पश्चिममें वू-सुन भूमि तक अपने राज्यका विस्तार किया। ४थी

शताब्दीके आरंभमें एक दूसरे स्यान्-पी वंशने पुरानी वू-सुन भूमिके कुछ भागको अपने हाथमें किया। ४थी शताब्दीके अन्तमें से ६ठी शताब्दीके मध्य तक मध्य-एसिया पर तू-तान् वंशकी प्रभुता थी, जिन्हें भी तुंगुस् जातिका बतलाया जाता है। इन्हींके आक्रमणके समय वू-सुनोंका सप्तनदकी समतल भूमि परसे अधिकार उठ गया और वह त्यान्‌शान्‌के पहाड़ोंमें ही रह गये। ४२५ ई० में पश्चिमक बहुतसे शासकोंने अपने अपने दूत स्यान्-पी सम्राट्‌के दरबार (उत्तरी चीन) में भेजे थे, इस वक्त उत्तर चीनमें य्वान्-वेई और वेई-वेई (उत्तरी वेई और पश्चिमी वेई) दो राज्य थे। इन दूतोंमें एक वू-सुनों का भी था। ४३६ ई० में वू-सुनोंके पास चीनका दूत आया। अबतक वू-सुन प्रतिवर्ष भेंट भेजते रहे। इसके बादसे वू-सुनोंका नाम चीनी अभिलेखोंमें नहीं मिलता। आज केवल किर्गिज-कज़ाक के महा-ओर्दूमें ही उइ-सुन् नामका एक कबीला मिलता है।

§ २. अवार (४००-५८२ ई०)

हूण फैलते फैलते एक युरेसियाई जाति के रूप में परिणत हो गये। इनके वंशधर हुंगरीके मग्यार आज भी मौजूद है। प्रागैतिहासिक कालमें हिंदी-युरोपीय जाति भी इसी तरहकी एक युरेसियाई जाति बनी थी। ऐतिहासिक कालमें हूणोंके बाद तुर्क युरेसियाई जातिके रूपमें परिणत होकर, एक समय मंचुरियासे काकेशश् और क्रिमिया तक फैले, बादमें यद्यपि उनके पूर्वी भूभागको दूसरी मंगोलायित जातियोंने ले लिया, किंतु तब भी वह पूर्वी युरोप तक छाये रहे। आज भी पूर्वी मध्य-एसिया, पश्चिमी मध्य-एसिया, आजुबाईजान और तुर्कीमें किसी न किसी रूपमें तुर्की-भाषी जाति ही निवास करती है।

१. अवार (जू-जुन्, ज्वान-ज्वान)

तुर्कोंके इतिहासमें पदार्पण करनेसे पहिले अवार हूण देशके अधिकारी थे, जिनका ही स्थान तुर्कों ने लिया है पहले हमने संकेत किया था, कि हूणोंके ध्वंसके बाद स्यान्-पी (तुङ-हू कबीले) ने मंचुरिया, मंगोलिया और चीनके कुछ भागों पर अपना साम्राज्य स्थापित किया। [illegible] राजवंश तो-बा था, जिसका स्थापना ३१५ ई० के आसपास और समाप्ति ५वीं सदीमें हुई। इसी तोबा वंशसे अवारोंका संबंध था, जिन्हें मुकुरु-तोबा भी कहते हैं। इस हूण-जनका निवासस्थान तिङ-लिङ (कंकाली) के निवास बैकाल सरोवरके नजदीक तथा गोबीके रेगिस्तानसे उत्तर था। तातुङके तोबा राजकुमार इलू को एक बच्चा दास मिला, जो अपना नाम भूल गया था और उसके स्वामीने उसे मुकुरु नाम दे दिया। युद्धमें बहादुरीका काम करनेके लिये मुकुरु को दासता से मुक्त हो स्वतंत्र सैनिकका अधिकार प्राप्त हुआ। पर, किसी सैनिक सेवाके समय उपस्थित न हो सकने के कारण उसे मृत्यु-दण्ड मिलनेवाला था, इसलिये वह गोबी के उत्तरकी ओर भाग गया। वहाँ धीरे धीरे लोगोंको जमा करके वह लुटेरोंका सरदार बन गया। इसके पुत्र शरुकने अपने पिताकी जमातको और बढ़ाकर एक छोटा-मोटा ओर्दू कायम कर लिया, जिसका नाम अवार पड़ा। पहले चीनीमें अवार कबीलेका नाम जू-जुन था, जिसे तोबा सम्राट् ताई-हू-ती (४२४-४५२ ई०) ने ४५१ ई० में बदल कर ज्वान-ज्वान कर दिया। मुकुरुकी ७वीं पीढ़ीमें शक्तिशाली नेता शे-लून् हुआ। इसने काउ-शे (कंकाली) कबीलेको जीता और अपनी सैनिक शक्तिको मजबूत और सुसंगठित करके कगान (खान) की उपाधि धारण की।

कोरियासे अल्ताई तक फैले इसके राज्य में कुछ चीनका भाग भी था। शे-लून् मध्य-एसियाके वणिक्-पथके कुछ भागका भी स्वामी था। जहाँ तक चीन-साम्राज्यका संबंध था, अवारोंने अब अपने पूर्वज हूणोंका स्थान लिया था। उन्हींकी तरह यह भी कभी चीनको लूटते और कभी अवश्यकता पड़ने पर उसे सैनिक सहायता देते थे। अवारोंकी शक्तिकी समाप्ति ५४६ ई० के आसपास तुर्कोंने की। इनके एक राजाका नाम ब्रामन भी था।
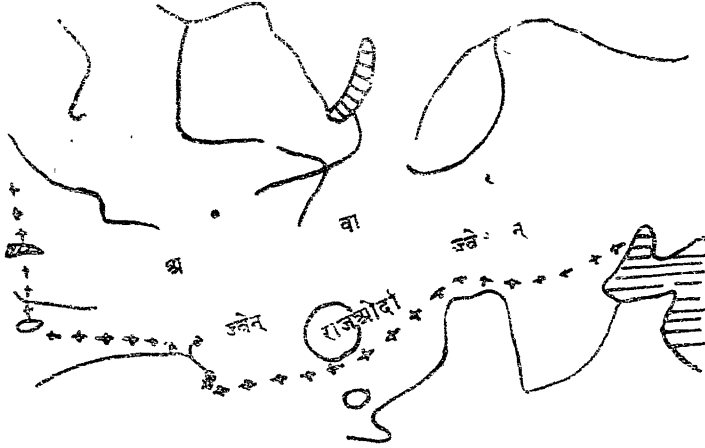
१४ अवार साम्राज्य (४२० ई०)

अवारो पर चीनी संस्कृतिका प्रभाव पड़ा था, साथ ही बौद्ध धर्म भी उनमें बहुत फैला था। तोबा भी बौद्ध सम्राट् थे। अन्तमें अवारोंमें आपसी फूटने भयंकर रूप धारण किया, जिसका लाभ उनके अधीनस्थ तुर्क लोहकारोंने उठाया। अल्ताईके दक्षिणी सानू पर तुर्क अपनी खुशीसे लोहेका काम नहीं कर रहे थे। वह इस गुलामीसे निकलना चाहते थे और इस वक्त उन्हें ऐसा मौका मिल गया।

स्रोत-ग्रंथ :

१. क्रत्कि० सोओब्० XIIIpp ११२ (बेर्नश्ताम् का लेख)
२. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोई किर्गिजिया (वेर्नश्ताम्, फ्रुन्जे १९४१)
३. वोस्तोको वेदेनिये II (१९४१) p. 2।

अध्याय ४

तुर्क (५४६-७०४ ई०)

हूण कालमे काउ-शे (कंकाली, तिङ-लिङ तिकालिक) नामकी एक जाति रहती थी। काउ-शे का अर्थ है बड़ी गाड़ी। बहुत बड़ी पहियोंवाली गाड़ियोंमें अपना सामान लादे यह एक जगहसे दूसरी जगह घूमा करते थे, जिसके कारण उनका यह नाम पड़ा। ऐसी गाड़ियोंका रवाज तुर्कों और मंगोलोंके काल तक पाया जाता है। काउ-शे का पता पहले पहल ईसाकी ५वीं सदीमें मिलता है। इनका ज्वान-ज्वानसे बराबर संघर्ष होता रहा। अवार (ज्वान-ज्वान) को पराजित करते समय एक बार तोबा सम्राट् ताइ-वू-ती (४२४-५२ ई०)ने इनके ऊपर भी आक्रमण किया और ५० हजार नरनारियोंको बंदी बनाया। लूटके मालमें कई हजार बड़ी गाड़ियाँ तथा १० लाखसे ऊपर पशु उसके हाथ आये। अवारों (ज्वान-ज्वान) की तरह काउ-शे भी चीनको हैरान करते थे। जब सीधे चीन पर आक्रमण नहीं कर पाते, तो उसके अत्यन्त मूल्यवान वणिक्पथको अपना शिकार बनाते। एक समय तोबा सम्राट्ने इन्हें गोबी रेगिस्तानके दक्षिणमें लाकर बसा दिया। वह समझता था, इस प्रकार हम उन पर काबू रख सकेंगे। लेकिन जल्दी ही वह फिर विद्रोह करके उत्तरकी ओर चले गये। तोबा वंश घुमन्तूओंके दबानेमें अधिक सफल हुआ था। उसकी [illegible] थी, कि ज्वान-ज्वानको दूसरे घुमन्तूओंके साथ संबंध जोड़नेका मौका न मिले। तिङ लिङ सरदार पीछे ऊरुम्चीके पास छोटे छोटे राजा या सरदार बनकर रहने लगे। तिङ-लिङ भी अपना बड़ा राज्य कायम करनेमें सफल होते, लेकिन उनमें कभी इस तरहका संगठन नहीं हो पाया। हाँ, खतरेके समय सब एक हो जाते थे। युद्ध करनेकी कोई सुसंगठित व्यवस्था नहीं थी, हर एक व्यक्ति अपना हथियार ले जहाँ चाहता, वहाँ आक्रमण कर देता। अपना पल्ला भारी रहने पर तो कोई हरज नहीं था, किंतु इस व्यवस्थाके कारण न वह डट कर लड़ सकते थे, और न पराजयके समय अपनेको अच्छी तरह सम्हाल सकते थे। व्याहमें इनके यहाँ ढोरों और घोड़ोंका दहेज दिया जाता, अनाजका कोई उपयोग नहीं था और न किसी तरहका नशेवाला पेय ही इस्तेमाल होता था। चमड़ा पहनना, मांस खाना तथा अत्यन्त ठण्डी जगहमें रहना उन्हें और भी गंदा बनाये हुए था। घोड़ों और ढोरोंका पालना यही उनकी जीविका थी। आगे चलकर तिङ-ली तुर्कोंमें हजम हो गये।

१. तुर्क साम्राज्यकी स्थापना

चीनी स्रोतसे[1] पता लगता है, कि तुर्क हूणोंका ही एक कबीला था, जिसका पुराना नाम अस्सेना था। ४३३ ई० में तोबा-सम्राट्ने इनके स्थानको छीनकर इन्हें अपने भीतर हजम

---

[1] A Thousand years of Tatars, pp. 365,

कर लेना चाहा। इसी समय ५०० असेना परिवार भागकर ज्वान-ज्वानके राज्यमें चले गये, जहाँ उन्हें अल्ताई (अल्तुनइइश) के दक्षिणी सानू पर लोहा बनानेका काम मिला,[1] इसे हम कह चुके हैं। ये लोग शिरत्राण जैसी नेकीली टोपी पहना करते थे, जिसके कारण इनका नाम दुर्-पो (तू-पू, टोपी) पड़ा, जिसका ही अपभ्रंश तिर्कू (तुर्कू, तुर्क, त्युरोक या तुरुष्क) है।[2] इससे पहले तुर्क ल्याङ जैसे चीनके अत्यन्त सुसंस्कृत क्षेत्रमें काफी समय तक रह चुके थे, किंतु जान पड़ता है, उससे इनको बहुत लाभ नहीं हुआ। ज्वान-ज्वानकी शक्तिके निर्बल होते ही अपनी दासताका अन्त कर जल्दी ही इनके सरदार तुमिनने अपनेको स्वतंत्र घोषित किया। ५४६ई० के आसपास तू-मिनने अपनेको इल्-खाकान घोषित किया। ज्वा-ज्वानके राजा अनाक्वेने व्याहके लिये कन्या देनेसे इन्कार करने पर इनके हाथों प्राणोंसे हाथ धोया। इल्-खान, एल-खान या एल-खाकानसे बना है। खाकान, खगान, खआन, खान वस्तुतः शान्-यूका ही पर्याय है। पहले हम लिख चुके हैं, कि 'शान्-यू' चीनी शब्दानुकरण है। मूल हूण शब्द शायद चिङ-गिस् या जिङ-गिस् रहा हो, जिसे किसी किसी ने जंगी बना देनेकी भी कोशिश की है। पहले ज्वान-ज्वानने खान या खकानकी उपाधि धारण की थी, पीछे तो राजाके लिये तुर्कोंमें यही शब्द बहु प्रचलित हो गया। मंगोल-वंशने भी इसी उपाधिको अपनाया और उन्हींका अनुसरण करते मध्य-एसियामें १९१७ ई० तक खानकी उपाधि केवल राजाके लिये ही सुरक्षित थी और साधारण कुलीन परिवारका मुखिया भी अपने नामके [illegible] था। लेकिन, मुगलोंके समयसे हिन्दुस्तानमें यह पदवी टके सेर हो गई। यद्यपि आरंभही में इसका मोल इतना नीचे नहीं गिराया गया था, बल्कि खान-खानां (खानोंका खान) तो मुगल दरबारकी एक बड़ी उपाधि थी। अकबरका संरक्षक और प्रधान-मंत्री बैरम खां खाने-खानाँ कहा जाता था। मुगलोंने ज़ब राजाके लिये शाह, शाहंशाह या पादशाह की उपाधि स्वीकार कर ली, तो उन्हें खानकी क्या परवाह हो सकती थी? बाबरके पूर्वज तैमूरने इस पदवीको इतना उच्च समझा, कि उसे चंगेज-वंशज अपने गुड़िया राजाके लिये ही सुरक्षित रहने दिया, और अपने लिये 'अमीर' (सामन्त) की उपाधिको पर्याप्त समझा।[3]

[illegible] तू-मिन कहा जाता है। इलि या एल जनका परियाय है, इल-खान, (एल-खान) का अर्थ है, जनोंका राजा। पहले पहल इसका ओर्दू हाइ-ह्वाङके उत्तरमें था। अपने को एल्-खान घोषित करनेके साथ इसने और भी कई उपाधियां प्रारंभ कीं। हूणोंके समय रानीको येङ-ची कहा जाता था, अब उसे उसने खो-हो-तुन् की उपाधि प्रदानकी, जो पीछे खो-तुन या खा-तुन बन गया। आज भारत और बाहरके मुसलमानोंमें कुलीन महिलाओंके साथ खातूनकी उपाधि आम तौरसे लगायी जाती है। तू-मिनने अपने जीवनमें ही तुर्क-शक्तिको बहुत बढ़ा दिया था। जब मार्च ५५३ ई० में वह मरा, तो उसका शक्तिशाली वंश और कबीला, जिसे चीनी पुस्तकोंमें तू-क्यु या तुइकू कहा जाता है, बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। तुर्कोंमें प्रचलित कुछ पद थे—

---

[1] त्युरोक पृष्ठ ६

[2] वहीं पृ० ३६५

[3] त्युरोक (वेर्नश्ताम) पृ० ८२-८३

दे-ले (ते-ले)-मंगोल देरे,	राजकुमार
कुइ-लुइं-चुइ (किलिच या खिलिज)	एक उच्च-पदाधिकारी
अ-पो (अ-पा)	" " "
घे-रे-फा (श्या-लि-फा)	"
तू-तुन्	" " "
जि-गिन् (सू-चिन्)	" " "

नाम रखनेमें तुर्कोंमें वैयक्तिक गुणका ध्यान रक्खा जाता था। जैसे शा-वौ-लि-यो (शा-पो-रो) का अर्थ है विक्रम या पराक्रमी, सन्-द-लो का अर्थ है मोटा, द-लो-बियान = बहुत पीनेवाला। कुछ पुराने तुर्की शब्द हैं—

को-ली (कारी)—वृद्ध
घो-रन्—घोड़ा (यह भारतमें बहु प्रचलित शब्द तुर्की है)
घो-रन्-सुनी—सैनिक अफसर
करा—काला (कृष्ण) इसे काल या (मृत्यु)से मिलाकर भारतीय बना दिया गया।
करा-शू—अति उच्च अधिकारी
सो-को—केश
तू-दुन्—उच्च अधिकारी, राज्यपाल
सो-को तू-दुन— प्रदेशिक राज्यपाल
जे-खान्—एक उच्च अधिकारी
अन्-जन्—मांस
अन्-जन्-कुनी—राज्य-प्रतिहार
लिन्—भेड़िया
लिन्-खाकान—उपराज
यब-गू (जे-गू)—राजकुमार
ई-खकान—गृह-राजा (ई = घर)

२. शव-क्रिया[1]

बहुत जल्दी ही तुर्क घुमन्तू बौद्ध धर्ममें दीक्षित हो गये, जिसका उनके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा और मुसलमान होनेसे पहले तक बौद्ध धर्म आजके मंगोलोंकी तरह तुर्कोंका भी जातीय धर्म रहा। उनके कितने ही जातीय रीति-रिवाज थे, जिनमें अपनी साधारण नीतिके अनुसार बौद्ध धर्मने हस्तक्षेप करना पसंद नहीं किया। मरनेके बाद आदमीकी लाश उसके तम्बूके सामने रक्खी जाती थी। मृत सरदारके बेटे-पोते तथा उसके दूसरे संबंधी एक एक घोड़ा या भेड़ तम्बूके सामने खड़ा करते थे। परिवारके लोग शोक प्रकट करनेके लिये छुरीसे अपने चेहरेको घायल करते, जिसमें रोते समय आंसुओंके साथ रुधिर भी मिश्रित हो जाये। वसंत और पतझड़के समय

[1] A Tthousand years of Tatars

कब्रमें मुर्दे दफनाये जाते। कब्रके ऊपर पत्थरोंको खड़ाकर उनपर शोक-प्रकाशक चिह्न लगा दिये जाते। मृत योद्धाने अपने जीवनमें जितने शत्रुओंको मारा, उतने ही पत्थर गिनकर कब्रके ऊपर खड़े किये जाते। उस दिन कुटुम्बके सारे स्त्री-पुरुष सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूपणसे सज्जित हो, उसी तरह कब्रपर एकत्रित होते, जैसे तिङ-लिङ लोगोंमें। जमा हुओंमें यदि कोई पुरुष वहां उपस्थित किसी लड़कीको पसन्द करता, तो घर लौटने पर मांगनेके लिये संदेश भेजता, और आमतौरसे लड़कीके माता-पिता उसे स्वीकार करते। यह रवाज स्यान्-पी लोगोंमें भी था।

तुर्क घुमन्तू पशुपाल थे। हूणों की तरह इनकी भी अपनी चरभूमि होती थी। खाकान की चरभूमि तू-चिन पर्वत था। हूणों ही की तरह प्रतिवर्ष वहाँ वह अवश्य जाता और देव-पितर के लिये बलि और श्राद्ध करता। चान्द्र पंचमी (शुक्ल पक्ष) को देव और प्रेतात्माओं के लिये बलि देने के समय ओर्दू के दूसरे लोगों को भी वहां जमा होना पड़ता। तू-चिन् से १५० मील पश्चिम पू-तेङ्ग्वी (पृथिवी-आत्मा) नामक वृक्ष-वनस्पतिहीन पहाड़ था। चीनी लेखकों के अनुसार तुर्कों की लिपि हू (सुरियानी) थी। उनका अपना कोई पंचांग नहीं था। तुर्क पुरुष पाशा खेलने के बड़े प्रेमी थे और स्त्रियाँ पादकंदुक (फुटबाल) खेलने की। वह कूमिग (घोड़ी के दूध से बनी शराब) पीने और पीते-पीते मस्त होकर गीत गाते।

३ तुर्क-राजावलि—[1]

१. तू-मिन इलिखान	मृ. मार्च ५५३ ई०
२. इसि-गी, तत्पुत्र	५५३
३. यू-यू	५५३-६४ "
४. तोबा, तत्पुत्र	५६९-८० "
५. शेतू शबोलियो, तत्पुत्र	५८२-८७ "
६. दूलन, तत्पुत्र	५८८-६०० "
७. दातू बुगा	६००- "
८. खेली	
९. तुली, तद्भ्रातृव्य	९२८-३१ "
१०. सिबिुली तत्पुत्र	६३१-४७ "
११. चेबी	६४७-८२ "
(१) गुदुलू	६८२-९३ "
(२) मोचो	६९३-७१६ "
(३) मोगिल्यान	७१६-३५ "
(४) ईजान्या	७३५-३९ "
(५) बिग्या गुदुलू	७३९-४२ "
(६) ओज़मिशि	७४२-४४ "
(७) वाइमेइ	७४४-४७ "

[1] A Thousand years of Tatars, pp. 365

(१) इल-खान तू-मिन[1] (मार्च ५५३ ई०)

(मृ-मार्च ५५३ ई०)—६ठीं शताब्दी में घुमन्तू तुर्कों का नया साम्राज्य अल्ताई से आरंभ होकर थोड़े ही समयमें प्रशान्त महासागर से काला सागर तक पहुँच गया। पश्चिमी तुर्क साम्राज्य का केन्द्र वू-सुनों की पुरानी भूमि सप्तनद थी। उसमें मध्य-एसिया भी शामिल था। चीन से पश्चिमी एसिया और युरोप की ओर जानेवाला वणिक्पथ इनके राज्य से होकर जाता था। यह वणिक्पथ ताशकन्द, औलिया-अता होते सप्तनद में चू-नदी के तट पर पहुँच, वहाँ से इस्सिकुल के दक्षिणी तट से होते वेदेल डाँडे को पारकर अकसू (तरिम-उपत्यका) में पहुँचता था। स्वेन्-चाङ अक्सूसे इसी रास्ते पश्चिमी मध्य-एसिया में पहुँचा। चू-उपत्यका उस समय कृषि-प्रधान थी, जिसके अग्रदूत खोजन्द (फर्गाना राज्य) से आये सोग्दी थे। स्वेन्-चाङ के पहले वक्षु से चू-नदी तक की सारी भूमि संस्कृति, वस्त्राभूषण, निवास, लिपि और भाषा में एक थी। इनकी लिपि सुरियानी से निकली हुई ३२ अक्षरों की थी। यह मंगोली की तरह ऊपर से नीचे की ओर लिखी जाती थी। सोग्दियों में मानी के धर्म के मानने वाले बहुत थे। निवासियों में आधे कृषक और आधे व्यापारी थे। सुई नदी के तट पर अवस्थित कास्तेक डांडे से दक्षिण में अवस्थित सुयाव नगर उनका बड़ा वाणिज्य-केन्द्र था। ७ वीं शताब्दी में भी इस नगर में बहुत से विदेशी व्यापारी रहते थे। सुयाब के दक्षिण बहुत से नगर थे, जिनके अपने अपने शासक थे, किंतु सभी तुर्क-कगान को अपना अधिपति मानते थे।

पीछे पश्चिमी कगान का ओर्दू सुयाब के पास ही रहता था।

(२) इसि-गी या इस-ते

वंश-स्थापनक तू-मिनका पुत्र था, किंतु तुर्क घुमन्तू जन अपने पूर्वज हूणों और दूसरे घुमन्तूओं की तरह उत्तराधिकारी चुनने में जनतंत्रता का अधिक ख्याल करता था। इसीलिये इसिगी ज्यादा दिनों तक नहीं रह सका और तू-मिनका छोटा भाई कि-गिन मू-यू-खानके नाम से तुर्कों का खाकान बना। इसि-गी की संतान ने आगे चलकर पश्चिमी तुर्क राजवंश को स्थापित करने में सफलता पाई, इसलिये इसिगी खान को तुर्क-इतिहास से भुलाया नहीं जा सकता।

(३) मू-यू-खान (५५३-६४ ई०)—

इसने तुर्क साम्राज्य को काफी मजबूत किया। विशाल राज्य की समृद्धि से लाभ उठानेवाले तुर्क-सामन्तो में अब नागरिक विलासिता जड पकड़ने लगी। महान् वणिक्पथ इनके राज्य के भीतर से जाता था, और अपने हूण पूर्वजों की तरह यह हरदम चीन के भीतर घुसकर लूटपाट करने के लिये तैयार थे। अपनी पुरानी नीति के अनुसार चीन बराबर भेंट और राजकन्या देकर इन्हें शांत रखना चाहता था।[1]

---

[1] वहीं पृष्ठ १६७

(४) तोबा खान[1] (५६९-८० ई०)—

मू-यु-खान के मरने के बाद इसका पुत्र दालो-ब्यान नहीं बल्कि भाई तोबा तुर्कों का खाकान बना। दालोब्यान ने चचा के राज करते समय छेड़छाड़ नहीं की। तोबा के मरने के बाद ५८० ई० में उत्तराधिकार को लेकर जो झगड़ा हुआ, उसमें तुर्क साम्राज्य पूर्वी और पश्चिमी दो भागों में विभक्त हो गया। पश्चिमी तुर्क-साम्राज्य का संस्थापक दालोब्यान था। हमारे विषय से यद्यपि दालोब्यान और उसके उत्तराधिकारियों का ही विशेष संबंध है, लेकिन हम पूर्वी तुर्कों को छोड़ नहीं सकते, क्योंकि वह भी अप्रत्यक्ष रूप मे पश्चिमी मध्य-एसिया की संस्कृति और इतिहास को प्रभावित करते थे।

तोबा पहले साम्राज्य के पूर्वी भाग का लघु-खाकान तथा लाखों सेनाओं का नायक था। वह स्यान-पी सम्राट् की नाक में दम किये रहता था, जो भय के मारे प्रतिवर्ष एक लाख रेशमी थान और दूसरी भेंटें भेजता था। चीन की पश्चिमी राजधानी में तुर्कों की बड़ी आवभगत होती थी। कभी कभी तीन-तीन हजार तुर्क रेशम पहने मांस की दावत उडाते वहाँ डटे रहते थे। लेकिन तोबा इसके लिये चीन का कृतज्ञ न होकर कहता था—"जब तक मेरे दो पुत्र (चीन के राजा) अपने कर्तव्य का पालन करते रहेंगे, तब तक मुझे किसी चीज की कमी नहीं रहेगी।"

(बौद्ध धर्म का प्रवेश)—

चाङ-क्यान् की यात्रा के समय (१३८-१२६ ई० पू०) तरिम-उपत्यका में बौद्ध धर्म पहुंच चुका था। उसके बाद उत्तर के घुमन्तू यद्यपि इस भूमि पर विजयी होते रहे, किंतु बौद्ध धर्म उनके ऊपर धर्म-विजयी होता रहता था। कहा जाता है, बौद्ध धर्म पहले ईसापूर्व २ री ही शताब्दी में चीन पहुँच चुका था, किंतु इस का ठीक प्रमाण पूर्वी हान वंश के सम्राट् मिङ (५८-७५ ई०) के समय में मिलता है। इस सम्राट् ने बौद्ध पुस्तकों और बौद्ध भिक्षुओं को लाने के लिये अपने दूत भारत भेजे, जिसके साथ काश्यप मातङ और धर्मरत्न दो भिक्षु बहुत सी धर्म-पुस्तकों और मूर्त्तियों के साथ चीन-राजधानी लोयाङ पहुंचे। काश्यप मातङ द्वारा अनुवादित "द्वाचत्वारिंशत्-सूत्र" चीनी भाषा में अब भी मौजूद है। हान्-वंश के बाद चीनी राजवंशों तथा उनके पड़ोसी घुमन्तूओं पर बौद्ध धर्म बराबर प्रभाव डालता रहा। जहाँ चीन अपने रेशम और विलास सामग्रियों को देकर घुमन्तू सामन्तों को चाल-व्यवहार में सभ्य बनाता, वहां उनकी अध्यात्मिक भूख को तृप्त करने के लिये बौद्ध धर्म आगे बढ़ता। ५७० ई० में तोबा खाकान ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। उसके बाद क्रूर घुमन्तुओं को बौद्ध धर्म ने कोमल बनाना शुरू किया। कहते हैं युद्ध-बंदियों में एक बौद्ध भिक्षु था, जिसने खाकान को उपदेश करते हुये बतलाया, कि स्यान्-पी राजवंश की समृद्धि का कारण धर्म है। तोबा को बौद्ध धर्म बहुत अच्छा लगा। उसने एक विहार बनवाया। यह स्पष्ट है ही, कि विहार घुमन्तू शिविर नहीं हो सकता था। यह भी याद रखने की बात है, कि इसी समय से कुछ पहले कोरिया के रास्ते बौद्ध धर्म जापान में पहुँचकर फैलने लगा। तोबा ने बौद्ध ग्रंथों को लाने के लिये ची-वंश की राजधानी (वर्तमान होनान्) में

---

[1] वहीं पृ० ३६७

दूत भेजा। तोबा ने अपने को बहुत शीलवान् बौद्ध उपासक बनाने की कोशिश की। उसने कितने ही स्तूप बनवाये, बहुत से धार्मिक अनुष्ठान कराये। उसको इस बात का बहुत अफसोस था, कि मैं चीन जैसे बौद्ध देश में नहीं पैदा हुआ। चि-वंश का नाश होने लगा, तो वहां का राजा तोबा की शरण में आया। उसकी ओर से तोबा आधुनिक पेकिङ पर आक्रमण करना चाहता था, किंतु चीके प्रतिद्वन्दी चाउ-वंश ने जब अपनी कन्या प्रदान की, तोबा ने उसे उसके शत्रु के हाथ में दे देने में भी आनाकानी नहीं की।

तोबा के मरने पर मू-यू खान का पुत्र दालोब्यान अपने को उत्तराधिकारी समझता था, लेकिन पलड़ा तोबा के पुत्र ने-तू (शे-तू) का भारी हुआ, जो शाबो-लियो की उपाधि के साथ तुर्कों का खाकान बना। अबसे संयुक्त तुर्क साम्राज्य नष्ट हो गया और तोबा की संतान ने पूर्वी साम्राज्य को अपने हाथ में ले लिया। तोबा के दूसरे भाइयों तू-मिन और मू-यू खान की संतानों ने दालोब्यान के नेतृत्व में पश्चिमी तुर्क-साम्राज्य स्थापित किया।

तू-मिन् राजा का पुत्र नहीं था। उसने अपने तुर्क ओर्दू और भाइयों की मदद से राज्य कायम किया था। तुर्क ओर्दू अभी जन-जातीय अवस्था में था, इसलिये एकतंत्रता को पसन्द नहीं कर सकता था। सभी घुमन्तूओं की तरह तुर्क भी नेता या खाकान को चुनने का अधिकार रखते थे। इसीलिये तुर्कों में पहले कितने ही समय तक उत्तराधिकारी पुत्र नहीं बल्कि वह व्यक्ति होता था, जिसे ओर्दू निर्वाचित करता था। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि खाकान की इच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इतनी जनतांत्रिकता रखते हुये भी उत्तर के यह घुमन्तू यह मानने के लिये तैयार थे, कि जिस परिवार में उनके खाकान पैदा होते आये हैं, वह कुलीन है। तू-मिन् के कार्य में उसके भाइयों ने सहायता की थी, इसलिये नेपाल के राणा जंगबहादुर की तरह एक के बाद एक उसके भाइयों को उत्तराधिकारी माना गया। तू-मिन् का पुत्र इसिगी कुछ महीनों ही के लिये खाकान रहा और अन्त में जन (ओर्दू) की राय सर्व-मान्य हुई और भाई मू-यू को खाकान बनाया गया। उसके बाद भी उसका भाई तोबा उत्तराधिकारी चुना गया। तोबा ने अपने मरने के समय (५८० ई०) से पहले अपने पुत्र यन्-लो को कहा था—"वस्तुतः सबसे नजदीक का संबंध पिता-पुत्र का होता है, किंतु मेरे बड़े भाई ने अपनी संतान को गद्दी नहीं देना चाहा और गद्दी मुझे मिली। मेरे मरने पर तू दालोब्यान की अधीनता स्वीकार करना।" लेकिन तोबा के पुत्र इसे क्यों मानने लगे?

(५) शेतू शबोलियो[1] (५८२-८७ ई०)—

अपने मृत खाकान की इच्छा के अनुसार जन (ओर्दू) ने दलोबियान को खाकान बनाना चाहा, लेकिन आपत्ति उठाई गई, कि उसकी मां उच्च-वंश की नहीं है। तो भी तोबा का पुत्र यन्-लो उत्तराधिकारी नहीं माना गया और तोबा का दूसरा पुत्र इलि-मुई-लू से-मोखे शबोलियों के नाम से खाकान हुआ, इसे ही ने-तू या शे-तू शबोलियो भी कहते हैं। इसका शिविर तूकिन् पर्वत के पास रहा करता था। हूणों की तरह तुर्कों में भी राजवंशिक उप-खाकान हुआ करते थे। वह अपने प्रदेश के प्रधान सेनापति और प्रधान शासक माने जाते थे। तोबा का दूसरा

[1] वहीं पृ० ३६७

पुत्र अमरो तुला-उपत्यका (मंगोलिया) में द्वितीय खाकान था। दलोबियान यद्यपि खाकान पद से वंचित कर दिया गया था, और उसे अ-पो-खाकान बनाके शांत रखने की कोशिश की गई, लेकिन इसमें सफलता नहीं हुई। शबोलियो के शासन के आरंभ के साथ-साथ तुर्क साम्राज्य दो भागों में बँट गया, और शबोलियो पूर्वी तुर्क साम्राज्य का खाकान रह गया। शबोलियो वीर और अपने ओर्दू का बहुत प्रिय नेता था। सुदूर उत्तर के सभी कबीले उसको मानते थे। शबोलियो का अपने सौतेले चचा दातूसे झगड़ा हो गया। उसे मारकर दातू ने बूगा-खां के नाम से अपने को स्वतंत्र खाकान घोषित किया।

शबोलियो के खून में भी अपने पूर्वजों की स्वातंत्र्य-प्रियता भरी हुई थी, लेकिन वह मानता था, कि जिस तरह आकाश में दो सूर्य नहीं हो सकते, उसी तरह दुनिया में दो सम्राट् (चक्रवर्ती) नहीं हो सकते। इसीलिये शिष्टाचार के नाते वह चीन के देवपुत्र को अपना सम्राट् मानने के लिये तैयार था। चीन सम्राट् विन्-ती (५८१-६०५ ई०) ने गलती की। उसने यू इ-किङ-ज़े को अपना दूत बनाकर भेजा, कि खाकान को अधीनता स्वीकार करने के लिये कहे। शबोलियो ने पूछा, अधीन किसे कहते हैं? किसी सरदार ने कह दिया—"जिसे हमारे यहाँ दास कहते हैं।" तुर्क खाकान का खून गरम हो गया। उसने कहा—"क्या जैसा हम अपने दास के साथ करते हैं, वैसा ही सुइ-कुल के देवपुत्र भी मेरे साथ करेंगे?" उसने अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। सुइ-वंश ने कुल ३७ वर्ष राज्य किया, किंतु चीन की शक्ति और समृद्धि बढ़ाने में जितना काम इस वंश के पिता-पुत्र दो सम्राटों विन्-ती और याङ-ती ने किया, वैसा किसी एक वंश ने नहीं कर पाया। इसकी बनवाई विशाल नहरों और मार्गों द्वारा देश कृषि और व्यापार से मालामाल होने लगा, जिसका कि पूरा फायदा सुइ के उत्तराधिकारी थाङ-वंश (६१८-६६० ई०) ने उठाया। सुइ जैसे शक्तिशाली राजवंश को नाराज करके शबोलियो कैसे सुखसे रह सकता था? उसके विरुद्ध चीनी सेना (६८० ई०) भेजी गई। तुर्क-खाकान को अपनी समृद्ध चर-भूमि को छोड़ कर उत्तर की ओर भागना पड़ा। इसी वक्त तुर्कोंमें अकाल पड़ा। लोग खाकर फेंकी पशुओं [illegible] पीस पीसकर खाने लगे। चीन दलोबियान की सरकशी को सहन नहीं कर सकता था। उसे चढ़ा आते देख दलोबियान भागकर पश्चिमी तुर्कों के स्वनिर्वाचित खाकान दातू-बुगा-खान के पास चला गया। बुगा खान के पक्ष में तुर्कों [illegible], जिनमें से तिङ-लिङ एक था। तिङलिङ ने शबोलियो के परिवार को पकड़ कर चीन-सम्राट् के पास भेज दिया था, लेकिन विन्-ती क्षुद्र हृदय नहीं था। वह स्वयं अपनी वीरता से एक राजवंश का संस्थापक बना था, और वीरों की कदर करना जानता था। उसने परिवार को सम्मान-सहित शबोलियो के पास भेज दिया। शबोलिया उसके लिये बहुत कृतज्ञ हुआ और उसने मरुभूमि को चीन और तुर्क साम्राज्य की सीमा मान लिया। शबोलियो की पूरी उपाधि थी "महातुर्कके इलिकु-इ-लू ओर्दू के मो-गो खाकान शे-तू शबोलियो।"

मू-यू खान से रोमन-सम्राट् का दूत ५६८ ई० में मिला था। उस समय खाकान का शिविर अल्ताई पहाड़ में था। यह दलोबियान की फूट से १२ वर्ष पहले की बात है। रोमन इतिहासकार उस समय के तुर्क-साम्राज्य के बारे में लिखते हैं, "अपने शस्त्र-बल तथा हेप्ताल सरदार कतुल-फुस के विश्वासघात के कारण हेपताली महाराज्य को लेते तुर्क नये (सासानी) साम्राज्य की

सीमा की ओर बढ़ रहे हैं। पहले के हेफ्तालों (श्वेत हूणों) के अधीन वक्षु अन्तर्वेद के कबीलों ने तुर्कों की अधीनता स्वीकार कर ली है।"[1]

शबोलियो को चीन-सम्राट् विन्-ती कितनी आदर की दृष्टि से देखता था, इसका पता इसीसे मिलेगा, कि उसकी मृत्यु पर सम्राट् ने तीन दिन दरबार बन्द करके मातम मनाया।

६. दूलन खान[1] (५८८–६०० ई०)

शबोलियो के बाद उसका पुत्र दुलन खानके नाम से गद्दी पर बैठा। उसने ५८८ ई० में १० हजार घोड़े, २० हजार भेड़ें, ५०० ऊंट सम्राट् के पास भेंट के रूप में भेजे। घुमन्तू तुर्कों की पशु ही सम्पत्ति थे। भेंट के बदले चीन-सम्राट् की ओर से लाखों थान रेशम और दूसरी बहु-मूल्य चीजें मिलती थीं, इसलिये यह कोई घाटे का सौदा नहीं था। विलासिता की चीजों को भेजकर तुर्क सामन्तों को नरम और विलासी बनाने का भी अवसर मिलता था। दूलन खानने भेंट भेजकर सम्राट् से प्रार्थना की, कि सीमांत पर हमारी चीजों के बेंचने के लिये हाट लगाई जाय। सम्राट् ने इसे स्वीकार किया और पुरानी प्रथा के अनुसार नये खाकान के पास एक राजकन्या भी भेजी। दूलन का शिविर उत्तरी शान्शी से नातिदूर तू-किन् की पहाड़ियो में था। प्रतापी हूण शान्-यू मा-दुन का भी शिविर यहीं रहा करता था। दूलन के खाकान बनने में शेतू का दूसरा पुत्र अपने अधिकार की हानि समझता था। उसने दातू बूगा खान से मिलकर भाई के ऊपर आक्रमण किया। दूलन को भागकर चीन में आश्रय लेना पड़ा। सम्राट् विन्-ती ने उसके लिये शान्सी में एक नगर बसा दिया **और** पहली स्त्री के मर जाने पर उसके लिये दूसरी राजकुमारी भेजी। दूलन को यह स्थान पसन्द नहीं आया, **तब** उसे ओर्दुस् प्रदेश (हवाङहो मुडाव) में रहने के लिये स्थान मिला, जहां लाखों आदमियों को बेगार में लगाकर एक बड़ी नहर बनवा दी गई। चीन ने दूलन का पूरा पक्ष लिया और शे-तू शबोलियो के पुत्र के विरुद्ध एक विशाल चीनी सेना भेजी। अपनी सारी विपत्तियों का उसे ही कारण समझ कर शे-तू-पुत्र को उसके अपने कबीलेवालों ने मार डाला। दूलन के दूसरे शत्रु तू-मिुन्-पुत्र और शे-तू-भ्राता इन दोनों सामन्तों को चिङलिङ ने बुरी तरह हराया और तिङ-लिङ तथा दूसरे कितने ही स्यान्-पी कबीले दूलन के झंडे के नीचे चले गये। सम्राट् विन्-तीने दूलन को ची-ज़ेन् की उपाधि दी। उसके उत्तराधिकारी सम्राट् याङ-ती (६०५-१७ ई०) ने दूलन का सम्मान और भी बढ़ाया। उत्तर शान्सी प्रदेश में दूलन ने सम्राट् से भेंट की। उसे सभी सामन्तों के ऊपर स्थान मिला और माउदुनकी बात को स्मरण करके याङ-ती ने भी दूलन को कोर्निश करने से ही मुक्त नहीं कर दिया, बल्कि जूता पहने तलवार लटकाये दरबार में आने की भी स्वतंत्रता दी। उसका वैयक्तिक नाम भी दरबार में नहीं लिया जाता था। सम्राट् ने दूलन के २५०० सरदारों में २ लाख रेशमी थान बंटवाये। यही नहीं, सम्मान-प्रदर्शन में अति करते हुये यह सनकी सम्राट् स्वयं दूलन के शिविर में गया। दूलन ने मद्य चषक हाथ में ले घुटने टेककर सम्राट्-भक्ति की शपथ ली। दूसरे साल जब दूलन दरबार में आया, तो उसका स्वागत पहले साल से भी अधिक हुआ। दूलन ६०० ई० में मरा।

---

[1] वही ३६७

७. दा-तू बुगा खान (६००-)—

दा-तू के खान बनने के साथ तुर्कों में जनतंत्रता का अन्त हो गया। दातू को जनने निर्वाचित करके खाकान नहीं बनाया था। यही परिपाटी आगे भी चल पड़ी। तुर्क अब जनशाही से सामन्तशाही जीवन में प्रविष्ट हो गये। शबोलियो का एक पुत्र दातूसे विद्रोह करके ७ वर्ष (६००-६०७ ई०) तक लड़ता रहा। इस खान के शासन में कई महत्त्वपूर्ण घटनायें घटीं। इसीके समय (६१८-१९ ई०) सुइ-वंश को हटाकर ६१८-१९ ई० में चीन का सबसे प्रतापी थाङ-वंश (६१८-९०७ ई०) स्थापित हुआ, जिसका संस्थापक काउ-चू एक बड़ा दूरदर्शी पुरुष था। थाङ सम्राटों के समय चीनी साहित्य और कला की बड़ी उन्नति हुई। इन सम्राटों में कितने ही स्वयं लेखक और कवियों के संरक्षक थे। साथ ही उनकी राजनीतिक शक्ति भी खूब बढ़ी। थाङ-वंश की राजधानी छाङअन् (सियान्) अपने समय की दुनिया की सबसे समृद्ध नगरी थी। थाङ-वंश ने सुइ-वंश के निर्माण-कार्य तथा चीन की एकता को सुरक्षित रखा। बूगा खानने कतलूक-देले (आनंद कुमार) को दूत बनाकर चीन दरबार में भेजा।

अंतिम ७५ वर्षों में खे-ली खान दू-बी, तूली खान, इमी-नीश सि-बि-ली खान सिक-मो (६४१ ई०) और चे-बी खान (६४७-८२ ई०) पूर्वी तुर्कों के शासक हुये। यद्यपि इनके समय में चीन थाङ-वंश के नेतृत्व में बहुत शक्तिशाली था, किंतु तुर्क घुमन्तू लड़ाकू थे, इसलिये उन्हें दानसे संतुष्ट रखने की कोशिश की जाती थी। खे-ली से पहले के चूलो खान की एक घटना है। चू-लोने थाङ सम्राट् ताइ-सुङ (६२७-५० ई०) की सहायता के लिये २००० सैनिक भेजे थे। वह किसी प्रतिद्वंदी से उस समय लड़ रहा था। चू-लो सीमांत नगर पर गया, तो सम्राट् की ओर से उसकी बड़ी आवभगत हुई, जिसका प्रतिदान उसने सड़क पर मिलने वाली सभी सुन्दरियों का अपहरण करके किया।

८. ख-ली खान

यह पिछले सम्राट् का भाई था, जिसकी पटरानी चीन राजकन्या थी। पटरानी ने स्वयं अपने पुत्र को अत्यन्त दुर्बल और कुरूप कहकर गद्दी से वंचित कर दिया और उसके समर्थन तथा प्रभाव से देवर खे-ली खान के नाम से गद्दी पर बैठा। भाभी नये खान की भी पटरानी बनी। पहले खे-लीने कुछ स्वतंत्र नीति बरतनी चाही, किंतु जल्दी ही उसे थाङ-वंश के फौलादी पंजे का पता लग गया। उसकी भूलों को माफ करके खे-ली को बहुत सत्कृत किया गया। बड़ी बड़ी भेंट और सम्मान को तुर्क खाकान अपना हक समझते थे। वह इसके लिये क्यों कृतज्ञ होने लगे? थाङ के प्रतिद्वद्वियों की कमी नहीं थी। एक प्रतिद्वंदी के ६००० सैनिकों के साथ अपने १० हजार सवारों को लेकर खे-लीने उत्तरी शान्शी में लूटपाट मचानी चाही। थाङ सेनाने उसे बुरी तरह हराया और "नई मित्रता को दृढ़तापूर्वक जोड़ने" के संकेत के रूप में खानने गोंद का एक टुकड़ा भेज कर शांति की प्रार्थना की। लेकिन चीनी तुर्कों की बात पर इतनी जल्दी विश्वास करने के लिये तैयार नहीं थे। कभी न कभी छोटी बड़ी छेड़-छाड़ होती रहती। ६२२ ई०में तुर्क जनों मं अकाल पड़ा हुआ था। इसी समय चीनियों ने धोके से उनपर आक्रमण कर दिया, किंतु वह हार गये। अब खे-ली तु-ली खान को ले कई सालों तक चीन के सीमांत-प्रदेश पर लूटपाट मचाता रहा।

एक बार थाङ राजकुमार ताइ-सुङ ने तुर्क सेना के सामने जाकर खे-ली को ललकारा और कहा, कि लूटपाट करके लोगों को सताने की जगह आओ हम द्वन्द्व-युद्ध या डटकर युद्ध करके फैसला करलें। खे-ली मुस्कुरा कर चुप रह गया। [illegible]ाइ-सुङ (थाङ-युवराज) ने अपने सामन्तको भेजकर तुली खान (उपखाकान) को भी ललकारा, किंतु वह भी चुप रहा। इस तरह काम बनते न देख उसने भेद-नीतिसे काम लेना चाहा और तुलीको फोड़ लिया। इसकी वजहसे खे-ली कुछ झुका, किंतु फिर दो साल (६२३-२४ ई०) तक कितनी ही बार चीनमें घुसकर लूटपाट मचाता रहा, जिससे राजधानी छाङ-आन् खतरेमें पड़ गई। खे-लीके दूतने चीन दरबारमें जाकर अपने खानकी शेखी बघाड़ते हुए खरी-खोटी कहनी शुरू की। थाङ कुमारने डाटकर कहा—"शायद मुझे सबसे पहले तुझे मारना पड़ेगा" इसपर वह ठंडा हो गया। राजकुमार घोड़े पर सवार हो बिना अधिक शरीर-रक्षकके चल पड़ा। राजधानीके पास छोटी सी छिछिली नदी वेई बहती है, वहीं थाङ राजा और तुर्क सेनाके बीचमें व्यवधान थी। राजकुमारने खे-लीसे सीधे बात की। तुर्क सेनापति राज-कुमारकी हिम्मत से इतना रोबमें आ गये, कि उन्होंने घोड़ेसे उतर कर उसका अभिवादन किया। इसी बीच चीनी सेना आगे बढ़ आई। खे-ली घबड़ाया। लोगोंके मना करने पर भी राजकुमारने आगे बढ़कर खे-लीसे बातचीत की। दोनों सेनायें देखती रहीं। इस प्रकार ६२६ ई० में खे-लीने संधिका प्रस्ताव किया। अब राजकुमार ताइ-सुङके नामसे सम्राट् बन चुका था। सम्राट्ने तुर्कोंकी हिम्मत बढ़नेका कारण बतलाते हुए कहा था—"तुर्क जो अपनी सारी सेना के साथ वेईके तटपर बढ़ते चले आये, उसका कारण यही था, कि वह जानते थे, हमारा वंश भीतरी कलहके कारण इस समय कठिनाइयोंमें है, और मैं अभी अभी मुकुटका अधिकारी हुआ था। प्रश्न था, आजकी परिस्थिति पर कैसे काबू पाया जाय। मैंने सोचा, मेरा अकेले आगे जाना उन्हें आश्चर्यमें डाल देगा, और यह सोचकर उन्हें बड़ी परेशानी होगी, कि वह अपने अड्डेसे बहुत दूर हैं। यदि हमको अवश्य लड़ना ही है, तो अवश्य जीतना भी चाहिये। यदि हमारी घुड़की काम कर गई, तो हमारी स्थिति बहुत मजबूत हो जायेगी।"

हूण शान्-यूके समयका अनुकरण करते कुछ दिनों बाद सम्राट् खे-लीको लिये नगरके पश्चिम वाले एक पुल पर गया, जहां एक सफेद घोड़ेकी बलि दी गई। खे-ली और सम्राट्ने संधि न तोड़नेके लिये शपथ ली। छाङ-आन् बाल-बाल बच गया, खे-लीकी सेना लौट गई। कुछ सप्ताह बाद खे-लीने बहुत से घोड़ों और भेड़ोंकी भेंट भेजी। सम्राट् ताइ-सुङने उसे न स्वीकार कर राजाज्ञा निकालकर लौट जानेका हुक्म दिया।

६२७ ई० में खे-लीको उत्तरमें भी हानि उठानी पड़ी। तिङ-लिङ [illegible]-दा, वैकाल और उइगुर्—ने खे-लीके अत्याचारसे तंग आकर तुर्क अफसरोंको मार भगाया। हूणोंके पतनके बाद ईसाकी २री शताब्दीसे ही यह कबीले दूसरे कितने ही हूण-कबीलोंके साथ बैकाल-सरोवर, बल्काश-सरोवरसे कास्पियन तक फैल कर शकों और उनके उत्तराधिकारियोंका स्थान ले चुके थे। उइगुर् और बैकाल तुला नदीके उत्तरमें रहते थे, और से-यन्-दा केरुलोन नदीके दक्षिणमें। उक्त तीनों कबीलोंके विद्रोहको दबानेके लिये खे-लीने अपने उप-खाकान तुलीको भेजा। तु-लीकी सेना पूर्णतया पराजित हुई और उसने किसी तरह घोड़े पर भागकर जान बचाई। खे-ली ने उसकी कायरतासे नाराज होकर उसे गिरफ्तार कराया। तु-लीने सम्राट्के पास संदेश भेजा।

वह तो ऐसे अवसरसे फायदा उठानेके लिये तुला बैठा ही था। चीनी सेना खे-लीके विरुद्ध भेज दी गई। मरुभूमिके उत्तरमें से-यन्-दाने बिगा खाकानको अपना खाकान बनाया। इसके बाद उसके पुत्र और भतीजोंने खान-पद संभाला। इन तीनोंने कुछ साल तक खे-लीको बहुत दिक किया। बैकाल सरोवरके पूर्वके ८ तिङ-लिङ कबीलों—बैकाल, उइगुर, ची-का-ज (किर्गिज) आदि—ने से-येन्-दाके इस कामको पसन्द नहीं किया और उन्होंने ६२८ ई० में चीन सम्राट्की अधीनता स्वीकार की।

खे-लीके राज्यका एक ओर अंग-भंग हो रहा था, दूसरी ओर वह तड़क-भड़कमें चीनी और ईरानी सम्राटोंका कान काटना चाहता था। उसके कितने ही मंत्री और राज्यपाल हू (अ-तुर्क) थे, जो अपनी स्वेच्छाचारिता और विलासितासे तुर्क जनको नाराज कर बैठे थे। यही समय था, जब कि पश्चिमी तुर्क साम्राज्य अपने यौवन पर था। कई सालसे देशमें हिमवर्षा अधिक हुई थी, जिसके कारण भोजनका अभाव सा हो गया था, ऊपरसे विलासी शासकोंने करको दुगुन-तिगुना बढ़ा दिया था। तुर्क प्रजामें आम विद्रोह हो रहा था। इसी वक्त हान् सिंहासनके किसी दावेदारको उसने सहायता भी करनी चाही। तू-ली और कितने ही दूसरे दे-ले (राजकुमार) हान्की ओर थे ही। जेनरल ली-चिङकी अधीनतामें एक बड़ी सेना चढ़ी और उसने अचानक ही तिङ-स्यान् पर आक्रमण करके खे-लीको घेरना चाहा। वह किसी तरह मरुभूमिको पार कर केरुलोन-उपत्यकामें लोह-पर्वतकी ओर भागा और वहाँसे अपना सारा राज्य सम्राट् को भेंट करना चाहा। सम्राट्ने अपने जेरनलको २० दिनकी रसद ले खे-लीका पीछा करनेके लिये हुकुम दिया, और खे-लीको भी दिलाशा देता रहा। अन्तमें खे-ली करीब-करीब अकेले ही एक तेज घोड़े पर सवार हो, अपने भतीजे शबोलियों सू-नी-सिर की ओर भागा, लेकिन उसे पहले ही पकड़ लिया गया। हान् (चीन) सम्राट्ने उसे क्षमा करके साम्राजीय महलमें रक्खा—यह ६२८ ई० की बात है। खे-लीको यह राजसी जीवन पसन्द नहीं आया, इस पर उसे एक प्रदेशका राज्यपाल बना दिया गया, जिसे भी नापसन्द करने पर उसे प्रतिहारोंका सेनापति बना दिया गया। वहीं ६२४ ई० में खे-ली मरा। राजधानीके पास वेई-नदीके किनारे उसका शव जलाया गया। खे-लीकी मांके दहेजमें आये एक दा-क्वान्ने अपना गला काटकर स्वामीका अनुगमन किया, जिसको सम्राट्की आज्ञासे खे-लीकी समाधिके पास ही दफनाया गया और दोनोंकी प्रशंसामें स्मारक वाक्य पत्थर पर खुदवा दिये गये।

९. तु-ली खान[1] (६२८-३१ ई०)

खे-लीकी हारके बाद ६२८ ई० में उसका भतीजा तू-ली अथवा शबोलियो सिरा गद्दी पर बैठा। पहले वह सिरा-मूरेन् नदीसे उत्तरका शासक और खे-लीके चीन पर आक्रमणोंके समय उसका दाहिना हाथ था। सिरा-मुरेनसे दक्षिण [illegible] खिताई जनका स्वतंत्र राज्य था। इन्हीं खिताइयोंने आगे चलकर चीन विजय किया, जिसके कारण चीनका दूसरा प्रसिद्ध नाम खिताई पड़ा, जिसे कि हम नान-खिताई (चीनी रोटी) के रूपमें आज भी स्मरण करते हैं। तु-लीके अधीन उस समय स्यान्-पीके दो कबीले कुमुक खे-ली और सिब् भी थे। इनमेंसे कुमुक् खे-ली जु-जोन् (अवारों) की पूर्वी शाखाकी संतान थे। सिव् शायद पीछे अपनी संतानको सिवो-मंगोलके रूपमें छोड़ गये। मु-जुङ वंशने कुमुक् खे-ली और खिताइयोंको जुङगारिया और

गोबीके बीच भगा दिया था। प्रथम तोबा सम्राट् अपनी विजय-यात्रा (३८८ ई०) में आमूर नदी तक पहुँचा था, जिसके विजयोपहारके लाख जानवरोंमें सुअरोंका भी वर्णन आता है। अगली दो शताब्दियों तक शिर्-वी और मत्स्य-चर्म जातियोंके साथ कुमुक् खे-ली (कुमुक् घेई) चीन दरबारमें अपनी भेंट लाते थे। चीनी लेखानुसार उस समय यह सभी जातियाँ "गंदे सूअर पालनेवाले शिकारी जंगली" थी और उनका सांस्कृतिक तल तुर्कों और खिताइयोंसे बहुत नीचा था। ५वीं सदीके बाद कुमुक्-खेलियोंने अपने नामसे कुमुक् शब्द हटा दिया और हर बातमें वह तुर्कों जैसे हो गये, लेकिन वे अपने मुर्दोंको लपेटकर पेड़ोंके ऊपर खिताइयोंके भाँति अब भी टांगते थे। खेली और खिताई सरदार खाकान उपाधि धारण करनेने पहिले तुलीके अधीन थे। तुलीको एक सैनिक राज्यपालका दर्जा मिला था। वह आधुनिक पेकिङके पास सुन्-चान्में रहता था, जहाँ उसकी मृत्यु २९ सालकी उम्रमें ६३१ ई० में हुई। चीन-सम्राट्ने उसे अपना रक्तभाई बनाया था, और उसपर बहुत स्नेह रखता था। सम्राट्ने उसकी समाधि पर स्मृति-वाक्य लगवाये। सिव् और खेली (घेई) कबीले अब खिताइयोंके साथ जुट गये और उन्हींके साथ चीन दरबारमें अपना कर भेजा करते थे।

१०. सि-बु-ली खान (६३१-४७)

इ-वि-नी-शू (तुलीका पुत्र) सु-बि-ली खान[1] सीमा (हो-लो-हू) के नामसे पूर्वी तुर्कोंका खाकान बना। ६३४ ई० में अपने छोटे चचा और दूसरे सरदारोंके साथ षड्यंत्र करके सम्राट्के शिविर पर धावा बोलकर वह स्वतंत्र खाकान बननेमें करीब-करीब सफल हो गया था। किंतु इसी समय चीनी सेना आ गई और सब पकड़े गये। चीनसे स्वतंत्र होनेका प्रयास विफल हुआ। चचा और दूसरोंको प्राण दण्ड हुआ और सि-बि-ली खानको ह्वाङहोके उत्तर निर्वासित कर दिया गया।

चीनसे महापराजयके बाद खानके कुछ आदमी तुर्किस्तान भाग गये, कुछ से-येन्-दाके पास चले गये और कितने ही चीनमें ही रह गये। चीनके लिये तुर्क एक बड़ी समस्या थे। नष्ट कर दिये जानेपर भी कुछ सालोंमें ही वह लाख-दो-लाख हो जाते। उन पर नियंत्रण नहीं रक्खा जा सकता था। विश्वासघातको वह नीति समझते थे। वह घुड़की देने तथा पूंछ हिलाने दोनोंके लिये तैयार रहते थे। चीनके उस समयके अत्यन्त प्रभावशाली राजनीतिज्ञ वेइ-चाङ ने इस समस्याको हल करनेके लिये सलाह दी, कि उन्हें ह्वाङहोके उत्तर भेज दिया जाय। बहुतोंने इसका समर्थन किया। लेकिन ताइ-सुङ चीनका असाधारण सम्राट् था। इतिहासकार उसके बारेमें कहते हैं, कि सभी त्रुटियोंके रहते हुए भी वह चीनके सभी सम्राटोंमें सबसे अधिक उदार और न्यायप्रेमी था। उसने इस सलाहको नहीं स्वीकार किया और कहा[2], "तुर्क चाहे जैसे भी हों, किंतु मानव-अधिकार और सत्यके सिद्धांत सार्वदेशिक हैं, उनमें जाति और वर्णका भेद नहीं डाला जा सकता। एक पराजित जातिके अवशेष यह बेचारे अभागे अपनी चरम विपदावस्थामें हमारे पास प्रार्थना कर रहे हैं। अगर हम उन्हें शरण दें और उचित तथा उपयुक्त मानसिक स्थिति रखनेकी शिक्षा देनेका प्रयत्न करें, तो वे कभी हमारे लिये खतरनाक नहीं हो सकते। ५० ई० में चीनके सीमांत पर हमने हूणोंको स्थान दिया, किंतु उससे हमें कोई हानि नहीं हुई। इसी तरह यदि हम

---

[1] वही पृ० ३६६, [2] वही पृ० ३६८

उन्हें अपने रीति-रवाजोंको कायम रखनेकी इजाजत दें और उनकी सैनिक सेवाओंका उपयोग करें, तो कोई हरज नहीं होगा। इसके विरुद्ध यदि हम तुर्कोंको वास्तविक चीनी पुरुष बनादें या बनाने की कोशिश करें, तो यह भूल होगी, क्योंकि इस तरहका दबाव उनके मन में संदेह पैदा करेगा।"

११. चे-बी खान (६४७-८२ ई०)

खेलीके बाद तुर्क साम्राज्य उच्छिन्न हो गया। उस समय चे-बी ईतिश्-उपत्यकाका एक स्थानीय खाकान था। इसके राज्यमें ईतिश् नदीके उत्तर और दक्षिणके किरगिज सम्मिलित थे। चे-बीने अपने पुत्र दे-ले (कुमार) शबोलियोको चीन दरबारमें भेजा और स्वयं भी सलामी देनेके लिये आनेकी बात कही, लेकिन वह खुद नहीं गया। इसपर चीनने नाराज होकर ६४९ ई० में उसके विरुद्ध सेना भेजी। वह पकड़कर दरबारमें लाया गया। तीनो करलोक कबीलोंने तर्बगताई प्रदेश पर अधिकार कर लिया। कभी वह पूर्वी तुर्कोंको अपना अधिराज मानते थे और कभी उत्तरी तुर्कोंको। अब उन्होंने चीन की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इसी साल ताइ-सुङ मर गया और उसके स्थान पर कौ-सुङ थाङ सम्राट् हुआ। कौ-सुङ नाबालिग था, इसलिये राज्यकी बागडोर भूतपूर्व भिक्षुणी तथा ताइ-सुङ की प्रेयसी वूके हाथोंमें चली गई। २० साल तक चीनमें शांति रही। ६७९ ई० में तुर्कोंने चीनके विरुद्ध जबर्दस्त विद्रोह किये।

तुर्क राजकुमार हू-पेइ ने अपनेको सि-बि-ली खानका उत्तराधिकारी घोषित किया। यद्यपि वह खेली खानके रक्तका था, मगर उसका रंग और तुर्कोंकी भाँति साफ न होकर श्याम था, इसीलिए ओर्दू (उर्त) ने उसे सच्चा असेना न स्वीकार कर हू (सुरियानी, ईरानी या हिंदू) जातिका माना। उसे ह्वाङ-हो नदीके उत्तरी मुड़ाव और गोबीके बीचकी जगह मिली। हूपेइके उर्तकी संख्या एक लाख बतलाई जाती है, जिसमें ४० हजार सैनिकोंका काम कर सकते थे। भीतरी विद्रोह अब भी दबा नहीं था। थाङ वंश कोरियाको जीतनेकी कोशिश कर रहा था। उसके प्रति अपनी भक्ति दिखलानेके लिये हू-पेइ स्वयं युद्धमें शामिल हुआ। कोरिया पर यह चीनकी पहली विजय थी। हू-पेइ घायल हुआ। ताइ-सुङने स्वयं उसके घावसे खून चूसकर फेंका, लेकिन तुर्क सरदारके प्राण बच नहीं सके। सम्राट्ने अपने बापकी समाधिके पास उसकी समाधि बनवाई और उसके पहलेके राज्यमे पे-ताउ नदीके किनारे एक स्मारक निर्मित कराया। हू-पेइ तोबा खाकानके वंशजोंका अंतिम खाकान था।

यह सारे पूर्वी तुर्कोंका खाकान नहीं माना जाता था, बल्कि जैसा कि ऊपर बतलाया, ईतिश उपत्यकाका एक स्थानीय खाकान था।[1]

४. अशेना-निशी

इस समय तुर्कोंकी हालत कहाँ तक पहुँच गई थी, इसका कुछ पता हमें अशिना वंशकी नई शाखा [illegible]-गि-ल्यान् और उसके भाई क्युल-तेगिनके शिलालेखसे लगता है, जिसमें तुर्क जातिकी हीनावस्थाका चित्र खींचा गया है—

---

[1] वही पृ० ३७०

"उस (तुमिन)के बाद उसके छोटे भाई (मू-यू और तोबा) कगान हुए, फिर उसके पुत्र। (तुर्कोमें) चूंकि हरेक छोटा भाई बड़ेको पसंद नहीं था, पुत्र पिताके अनुकूल नहीं था और सभी कगान बेसमझ थे, सभी कगान भीरु थे, उनके सभी बू-यू-रुख बेसमझ थे, भीरु थे; जिसका परिणाम हुआ बेगों और जनताका कगान पर अविश्वास। परिणाम हुआ चीनी लोगोंको भड़काने और भेद लगानेका सुभीता, तथा परिणाम हुआ संदेहमें पड़ना, तथा उसका परिणाम यह हुआ, कि उन्हों(चीनियों)ने छोटे भाइयोंको बड़ेसे लड़वाया और जनता तथा बेगों से एक दूसरेके खिलाफ हथियार उठवाया। तुर्क जनताने अपने जन-जातीय संघकी वर्तमान अव्यवस्थाका स्वागत किया, जिसके द्वारा अपने ऊपर तथा तत्कालीन कगानोंके राज्यके ऊपर महानाशको बुलाया। वे (तुर्क) अपने सुदृढ़ पुत्रों और विशुद्ध पुत्रियोंके साथ चीनियोंके दास हो गये। तुर्क बेगोंने अपना तुर्क नाम छोड़ चीनी बेगोंका नाम अपनाया, तथा चीनी कगान (सम्राट्) की अधीनता स्वीकार की। ७५ वर्षो तक उन्होंने चीनियोंको अपना श्रम और बल प्रदान किया।...

"ऐसा हो गया था हमारा जनजातीय संघ और ऐसी दिखाई देती थी हमारी शक्ति। ओ तुर्की बेगों और जनता! सुनो तुम्हें ऊपरके आकाशने क्यों दाब नहीं दिया, नीचेकी भूमि तुम्हारे लिये फट क्यों नहीं गई? ओ तुर्क लोगों, किसने तुम्हारे शासन और कानूनको नष्ट किया? तुमने स्वयं अपराध किया। ऊपर उठानेवाले गुणों और कामोंमें अपने मनीषी कगानोंके साथ तुमने मूर्खता की। कहाँसे आये वे शस्त्रधारी, जिन्होंने तुम्हें छिन्न-भिन्न किया? कहाँसे आये भालादार, जिन्होंने तुम्हारा अपहरण किया? हे जनता...तू पूर्व गई, पश्चिम गई और ऐसे देशोंमें जहाँ भी गई, तेरा भला क्या हुआ? तेरा खून पानीकी तरह बहा, तेरी हड्डियाँ पहाड़की तरह पड़कर खड़ी दिखाई पड़ीं, तेरे बेगों सामन्तोंके पुरुष-संतान दास बने, तेरी कुलीन स्त्री-संतानें दासियाँ बनीं। तेरी बेसमझी और तेरी नीचतासे मेरा चचा (मो-चो) खाकान उड़ (मर) गया।"

१२. गु-दु-लू कगान (६८२-९३ ई०)

इलतेरेस अशेना वंशी राजकुमार था। खाकानों (कगानों)के वंश अशेनाका होनेके कारण उसकी कुलीनतामें क्या संदेह हो सकता था? वह खेलीका दूरका संबंधी और एक बहुत बड़ा सरदार था। तुर्कोंके असंतोषसे उसने फायदा उठाया। चीनके प्रति जहां रोष था, वहां तोबा-वंशके खाकानोंके प्रति भी लोगोंकी आस्था नहीं रह गई थी, जैसा कि ऊपर उद्धृत अभिलेखके वाक्योंसे मालूम होता है। इलतेरेस गरम दलका नेता बन कर, रिश्वत और अपनी राजनीतिक चालोंके कारण कई तुर्क कबीलोंको अपने साथ मिलानेमें सफल हुआ। तुर्क घुमन्तू दुनियाके अन्य लड़ाकू घुमन्तूओंकी तरह लूटको अपना उचित पेशा समझते थे। इलतेरेसने अपने उर्तके साथ कई सफल अभियान किये। तुर्कोंके तम्बुओंमें लक्ष्मी आकर फिर वास करने लगी। जल्दी ही उसने अपनेको कगान घोषित कर एक भाईको शाह, दूसरेको जेब्-गूकी उपाधि दे उप-कगान बना दिया। इलतेरेसका नाम अब गु-दु-लू (कुतुलुक) कगान हुआ। गु-दु-लूकी बढ़ती हुई शक्ति खतरेकी बात थी। सम्राज्ञी वूने उसके विरुद्ध १३ हजारकी सेना भेजी, गुदुलूने सबको नष्ट कर दिया। फिर पश्चिमी तुर्कोंकी एक शाखा तुर्‌गिसकी ओर उसने मुंह किया, जो कि सूजिया, इली और इस्‌सिकुलमें रहती थी। इन्हींके साथ लड़ते हुए वह मारा गया। उस समय पश्चिमी तुर्कोंकी राजधानी चू नदीके किनारे जू-जी थी। गुदुलू कगानका विश्वस्त सलाहकार तोन्-यू-कुक्

तुर्कोंके पुराने दिनके लौटा लानेका स्वप्न देख रहा था। चीनियोंने शर्तके साथ उसे जेलसे मुक्त करके आशा रक्खी थी, कि अब वह तुर्कोंके खिलाफ जाकर अपना पराक्रम दिखलायेगा। लेकिन तोन्-यू-कुक्ने वहां जाकर चीनको छोड़ गुदुलूका साथ दिया। [illegible] प्रभाव गुदुलूके उत्तराधिकारीके समय नहीं रहा।

(१)मो-चो (६९३-७१६ ई०)

गुदुलूके भाई मो-चोके शासनमें तुर्क-साम्राज्य फिर एक बार उन्नतिके शिखर पर पहुंचा। गुदुलूने तुर्कोंकी सैनिक जनतंत्रताके सहारे सफलता प्राप्त की थी, लेकिन मो-चोको जनतंत्रता नहीं तानाशाही पसंद थी। नये कगानने उसी साल शान्सीमें घुसकर लूटपाट की। सम्राज्ञी वूने मो-चोके खिलाफ एक, बौद्ध भिक्षुको सेनापति और उसके अधीन १८ सेनापतियोंको भेजा। अभियान असफल रहा। बहुतसे सैनिक और सेनापति पकड़े गये, । मो-चोने भिक्षुको कोड़े मरवाते मरवाते मौतके घाट उतारा। चीनियोंको बहुत आश्चर्य हुआ, जब ६९४ ई० में मो-चो स्वयं दरबारमें पहुंचा। सम्राज्ञी बहुत प्रसन्न हुई। उसने कुङ (ड्यूक) बना, उसे ५ हजार बहु-मूल्य रेशमी थान देकर विदा किया। इसके बाद मो-चोने संधि करनेके लिये अपने दूत भेजे। इस प्रकार अब थाङवंशको एक सबल सहायक मिला। ६९६ ई० में खिताई शासकने विद्रोह कर अपनेको "सर्वोपरि कगान" घोषित किया। उसके विरुद्ध भेजी गई चीनी सेनायें हार कर लौट आईं। मो-चोने बीड़ा उठाया। उसने चीनके शत्रु खिताइयोंको पूरी तौरसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और उनके राज्यको—जो कि भयंकर बनता जा रहा था—अपने राज्यमें मिला लिया। उइगुरोंके अधिकांश कबीले मो-चोके अधीन थे। जिन्हें यह स्वीकार नहीं था, वह उससे बचनेके लिये गोबीके दक्षिणमें चले गये। मो-चोके प्रहारसे पश्चिमी तुर्क साम्राज्य खतम हो गया। उनका अंतिम खाकान असिन्-सिन् ७०८ ई० में कुलान (आधुनिक तर्मी स्टेशन के पास) मारा गया। आगे उनका स्थान तुरगिस् शाखाने लिया। चीन में मोचोका बड़ा सम्मान और रोबदाब था। दरबारमें उसके दूतको सबसे ऊपर स्थान मिलता था। उसके उत्तराधिकारी मोगिल्यानके दूतने झगड़ा किया, जब तुरगिस कगानके दूतको उससे प्रथम रखनेकी कोशिशकी गई। मो-चोको साम्राज्ञीने "महा शान्-यू, धार्मिक कगान" की उपाधि दी थी[1]।

७९८ ई० में राजमाताके पास मोचोने प्रार्थनाकी, कि मुझे अपनी कन्या प्रदान कर अपना दत्तक पुत्र स्वीकृत करें, चीनमें जितने तुर्क रह गये है, उन्हें मेरे पास भेज दे और खेती करनेके लिये बीज और हथियार देनेकी कृपा करें। तुर्क अभी तक घुमन्तू जीवन ही पसन्द करते थे। मोचोकी दूरदर्शिता उसे बतला रही थी, कि बिना खेतसे चिपकाये इन बेनकेलके ऊंटोंको काबूमें नहीं रक्खा जा सकता। राजमाताने अपना दूत भेजा। हिचकिचाहटकी बात जानकर मो-चो आग-बगूला हो गया और चीनी दूतको मारनेकी भी धमकी देने लगा। सम्राज्ञीको मजबूर होकर मो-चोकी बातें माननी पड़ी। उसके पास कई हजार तुर्की परिवारोंको जबर्दस्ती भेजा गया और बीजके लिये एक लाख मन अनाज तथा तीन हजार खेतीके हथियार भेजे गये; जिनके कारण मो-चोकी शक्ति और संपत्ति और बढ़ गई। मो-चोने अपनी कन्या किसी थाङ-राजकुमारसे व्याहनेकी

---

[1] वही पृ० ३७०

इच्छा प्रकट की। साम्राज्ञीने अपने सौतेले भतीजेको व्याह करनेके लिये भेजा । मोचो उसे देखकर जल भुन गया और साथ आये [illegible] कहा—"मैंने ली-कुलके थाङ-सम्राट् वंशज राज-[illegible], और तुम मेरे पास लाये हो वू-परिवारकी पौधको। हम तुर्कोंने कुछ पीढ़ियोंसे ली-कुलकी श्रेष्ठताको स्वीकार किया है और मुझे मालूम है, कि ली सम्राट्का कोई पुत्र अब भी जीवित है। इसलिये मैं अब अपनी सेनाके साथ कूच करके ऐसे राजकुमारको ढूंढ़नेमें सहायता कर उसके उचित सिंहासन पर बैठाऊँगा।" उसने वू-कुमारको गिरफ्तार करा लिया और कलगन तथा पेकिङ प्रदेश पर चढ़ाई कर दी। उसके विरुद्ध साढ़े ४ लाख चीनी सेना भेजी गई, लेकिन सब बेकार। मो-चोने शान्सीके कितने ही नगरोंको जला डाला और बिना दया-मायाके अपने रास्तेमें आई हरेक वस्तु हरेक जीवित प्राणीको नष्ट किया या लूटा। साम्राज्ञीने धार्मिक खाकानकी जगह उसका नाम चन्-चुच (कसाई, रक्त-चूषक) रख दिया। लेकिन इससे मो-चोकी आंधी थोड़े ही रुक सकती थी ? उसने और भी नगर लूटे, और भी अफसर मारे। राजमाताने अपने बकलोल सौतेले पुत्रको—जिसे राजकुमारका दर्जा देकर नीचे गिरा दिया गया था—सेना देकर लड़नेके लिये भेजा, किंतु नये प्रधानसेनापतिके अभियानके पूर्व ही मो-चो ९० हजार बूढ़े जवान, नर-नारियोंको मौतके घाट उतार चुका था। वह सेनाके सामनेसे साफ निकल गया। जाते वक्त भी रास्तेमें सभी लोगोंको बड़ी निर्दयतापूर्वक मारता गया। अगले साल मो-चोने अपने दो पुत्रों तथा गुदुलूके एक पुत्रको उच्च सेनापति बना ८० हजार सेना दे लगातार चीनमें लूटपाट करनेका हुक्म दिया। वह पूर्वी कान्सूकी [illegible] १० घोड़े लूटकर ले गया। तुरगिसोंके भीतर घुसकर मो-चोने पश्चिममें भी अपने राज्यको बढ़ाया।

७३० ई० में मो-चोने दूत भेजकर राजमातासे अपनी लड़कीसे व्याह करनेके लिये फिर एक थाङ राजपुत्र मांगा। राजमाता भीगी बिल्ली बन गई। उसने दोनों राजकुमारोंको दूतके सामने खड़ा कर दिया, जिनमेंसे एक मो-चोका दामाद बना। राजमाताके दिन अब खतम हो रहे थे। उसके विरुद्ध षड़यंत्र हुआ, जिसके फलस्वरूप सम्राट् कौउ-चुङ (६५०-८४ ई०) ने सीधे राजशासन संभाला। मो-चो इसी समय चीनी सेनाको हराकर लिङ-चाउ (आधुनिक निङ-ह्या) को लूटता, शाही चरभूमिसे १० हजार घोड़े छीन ले गया। ७११ ई० में तुर्गिसोंको हराकर उसके कगान सकाको उसने मारा। अब उसका राज्य कोरियासे मध्य-एसिया तक ३००० मील लम्बा था। उनके पूर्वज स्यान्-पी जिस तरह तुर्कोंके पूर्वज हूणोंको कर देते थे, उसी तरह खिताई और घेई (खे-ली) मो-चोको कर देने लगे। ८वीं शताब्दीके आरंभमें मो-चोकी शक्ति अद्वितीय थी, चीन उसकी दयाका पात्र था। अरबोंकी शक्ति अवश्य इसी वक्त बड़ी तेजीसे बढ़ी थी, जिस साल मो-चोने सकाको मारा, उसी समय अरब साम्राज्य सिंधसे स्पेन तक एसिया, अफ्रीका और यूरोपके तीन महाद्वीपोंमें फैला हुआ था। लेकिन इन दोनों महाशक्तियोंको कभी बल-परीक्षाकी अवश्यकता नहीं पड़ी। दोनोंके अतिरिक्त इस समय कोई उतनी बड़ी राज्यशक्ति युरोप और एसियामें नहीं थी। मो-चोकी सेनामें ४ लाख घोड़सवार धनुर्धर सदा तैयार रहते थे। ७१४ ई० में उसे उरुम्-ची (सिङक्याङ) पर सेना भेजनी पड़ी थी। आजकी तरह उरुम्ची (पी-तिङ) उस समय भी सिङक्याङका शासन-केन्द्र था, जहां चीनी महा-आयुक्तक रहता था। उरुम्ची उत्तरके घुमन्तुओंके केन्द्रमें पड़ती थी, जिनपर नियंत्रण रखने और रेशम-पथको सुरक्षित करनेके लिये

चीनने उसे शासन-केन्द्र बनाया था। यहांसे तुर्गिस् राजधानी सू-जि-या ७०० मील पश्चिम थी, किरगिज ओर्दू १२०० मील उत्तर, उइगुर ओर्दू १००० (४० दिन ऊंटकी यात्रा) उत्तर-पूरब था। हामी यहांसे ३०० मील दक्षिण-पूरब और कराशर ४०० मील दक्षिण-पश्चिम था।

मो-चो अंत तक अपराजित रहा। घर और बाहर सब जगह वह पहले ही सा उद्दण्ड था। लगातारकी विजयोंने उसके दिमागको फिरा दिया, जिससे पहलेके कई हित-मित्र उसे छोड़कर भाग गये, जिनमें स्वयं उसका एक दामाद भी था। चीन ऐसे भगोड़ोंको अपनी शरणमें लेके ओर्दुस्-प्रदेशमें बसाता रहा। ७१५ ई० में मो-चोका सफल अभियान गोबीके उत्तर नौ-भाई (नौ कबीले) तिङ-लिङके विरुद्ध हुआ था। साइबेरियाके पास रहनेवाले यह दुर्धर्ष कबीले मो-चोके लिये भी समस्या थे। ७१६ ई० में बैकाल घुमन्तूओंके साथ लड़नेके लिये उसने उत्तरकी यात्राकी और उन्हें करारी हार दी। विजयके नशेमें मत्त उसे आत्मरक्षाकी भी परवाह नहीं रहती थी। कुछ ऐतिहासिकोंका कहना है, कि जब उन पर विजय प्राप्त करके मो-चो लौट रहा था, तो एक जंगलमें बैकालोंने उसे घेर लिया और उसका शिर काटकर चीन-राजधानीमें भेज दिया। दूसरे स्रोतोंसे पता लगता है, कि उसके भतीजे बैगूने उसे मारा। मोगिल्यानके अभिलेखमें चचाके मारे जानेका कारण तुर्क जनकी पारस्परिक इर्ष्या मालूम होती है। शायद बैकालोंने ही मारा हो, और उसमें मो-चोके भतीजे बै-गूका भी हाथ रहा हो। मो-चोके पुत्र वो-गू (वी-गा) के गद्दी न पानेकी बात भी कही जाती है और कोई कोई इतिहासकार मो-चोके बाद वी-गाको तुर्कोंका कगान मानते हैं।

क्युल-तेगिन्ने चचाको मार या मरवाकर अपने बड़े भाई गुदुलूके पुत्र को मोगिल्यानके नामसे ७१६ ई० में तुर्कोंका कगान बनाया। गु-दु-लूके कालमें सैनिक जनतंत्रताका मान था। बल्कि, इसीका जो अभिमान तुर्कोंमें पाया जाता था, उसको उभाड़कर गुदुलूने सफलता पाई थी। मो-चो इस तरहकी जन-तंत्रताके साथ सहानुभूति नहीं रखता था। वस्तुतः तुर्क समाज जनयुगसे सामन्त-युगकी ओर बढ़नेके लिये परिपक्व हो गया था और मो-चोके महान् साम्राज्यकी स्थापनाके बाद तो शासन-संबंधी कठिनाइयां और बढ़ गई, जब कि हर एक तुर्क जनतंत्रताकी दुहाई देनेके लिये तैयार हो जाता था। सेनामें भले ही तुर्कोंका प्राधान्य हो, किंतु शासनमें समुन्नत शासित जातियोंमेंसे योग्य व्यक्तियोंको आगे बढ़ानेके लिये मो-चो मजबूर था। उनपर वह जितना विश्वास कर सकता था, उतना स्वच्छन्दता-प्रेमी तुर्कोंपर नहीं कर सकता था। तुर्क जनका घुमन्तू जीवन बिताना खतरे का कारण था, इसीलिए मो-चो उन्हे कृषिजीवी बनाकर बसा देना चाहता था। लेकिन सैनिक जीवन सैनिक लूटके सामने कृषि जीवन कैसे किसी तुर्कको पसन्द आता? साधारण लोगोंमेंसे कितने ही इसे पसन्द भी करते, किंतु बेगों (सरदारों) को क्यों यह पसन्द आने लगा? इन सैनिक लूटोंमें लाखोंकी तादादमें दास-दासी भी हाथ आते थे, जो जहां तुर्कोंके पशुपालन और दूसरे कामोंमें सहायता देते, वहां खेती में भी काम करते थे। तुर्कोंकी सुख [illegible] ये युद्ध-बंदी दास थे। मो-चोके २३ सालके तूफानी शासनमें फिर सैनिक जनतंत्रता दब गई, फिर तुर्क बेग [illegible] रूपमें परिणत होते देख रहे थे। मो-चोके भतीजे गुदुलू-पुत्र, क्युल-तेगिन् ने फिर उसी हथियारको अपने चचाके विरुद्ध उठाया, जिसे की उसके पिताने तोबा-कुलके विरुद्ध उठाया था।

(२) मो-गि-ल्यान्[1] (७१६-३५ ई०)

मो-चोकी हत्याके बाद राज-विधाता क्युल्-तगिन्ने तुर्क ओर्दू (तुर्क सरदारोंकी सभा) बुलाया, उसमें मो-चोके सभी अपराधोंको बढ़ा चढ़ाकर कहते हुए लोगोंको उसके खानदानके विरुद्ध कर दिया। इस प्रकार वह मो-चोके पुत्रों, उसकी पुत्र-वधुओं, बहुतसे संबंधियों तथा अनुचरोंको मरवानेमें सफल हुआ। क्युल-तेगिन्का बड़ा भाई मोगिल्यान (मेरकिन) "छोटा शाह"के नामसे एक प्रदेश-शासक था। वह बहुत नरम स्वभावका आदमी था। वह अपने भाईके पक्षमें कगान-पदको छोड़ उप-कगान ही रहना चाहता था, लेकिन परिस्थितियां ऐसी थीं, जिनके कारण क्युल-तेगिन् स्वयं गद्दी संभालना नहीं चाहता था। लाचार हो मोगिल्यान्को खान बनना पड़ा। इसी समय पश्चिमी तुर्कोंकी शाखा तुरगिसके सुलू कगानने अपनेको मो-चो के कुलसे स्वतंत्र घोषित किया। मो-चोका सबल हस्त न रहनेके कारण पूरब (मंचूरिया)के खिताइयों और घेरियोंने भी तुर्कोंकी अधीनता छोड़ चीनको कर देना शुरू किया। यही नहीं तुर्गिसकी शक्ति इतनी आगे बढ़ गई थी, कि उसके दूतको चीन दरबारमें प्रथम स्थान दिया गया, मोगिल्यानके दूतने जिसका विरोध किया। इसके बाद तुर्क फिर कभी पूर्वकी जातियोंके ऊपर अपना आधिपत्य नहीं जमा सके।

गुदुलूके पहले तुर्कोंकी जो भारी हत्या चीनियोंने की थी, उस समय एक तुर्क राजकुमार तोन-यू-कुक् (तुर्ुंगू) बच गया, किंतु वह चीनका बंदी बना। चीनने उसे गुदुलूसे लड़नेके लिये जेलसे निकालकर भेजा था, और उसने पक्ष परिवर्तनकर गुदुलूका प्रभावशाली सलाहकार बननेमें सफलता पाई थी, यह बात हम कह आये हैं और यह भी, कि मो-चोके जमानेमें उनकी कुछ नहीं रह गई थी। मोगिल्यान्के शासनारंभके समय वह ७० वर्षका बूढ़ा था। वह नये कगानका ससुर भी था। मोचोके समय भागकर उसने चीनमें शरण ली थी। लोगोंने उसे बुलानेकी मांग की। भागे हुए तुर्कोंको ओर्दूस् प्रदेशमें बसाया गया था। अब चीनने हथियार छीनकर उन्हें ह्वाङ्हो (ह्वु इइ) पार भेज दिया। हथियार बिना वह बेचारे न शिकार करके जीविका पैदा कर सकते थे, न आत्मरक्षा ही। जब उन्होंने विरोध प्रदर्शित करना चाहा, तो चीनी सैनिकोंने उनमेंसे बहुतोंको मार डाला। उनमेंसे कुछ मोगिल्यानके राज्यमें भाग जानेमें सफल हुए। मोगिल्यान (छोटे शाह)ने इस अत्याचारका बदला चीनमें लूट मार मचाकर लेना चाहा, लेकिन वृद्ध तोन्-यू-कुकने उसे समझाया "फसल इस साल अच्छी है। चीन महाबलशाली राज्य है। हमारे नये एकत्रित हुए ओर्दूको विश्रामकी अवश्यकता है।" वह मोगिल्यानको रोकनेमें सफल हुआ। मोगिल्यान (बुद्धके प्रधान शिष्य) नाम ही बतलाता है, कि नये कगान पर बौद्ध धर्मका बहुत प्रभाव था। शायद उसी कारण उसका स्वभाव इतना नरम था। कगानने कुछ दुर्गबद्ध नगर और बौद्ध विहार बनानेकी इच्छा प्रकट की, तो तोन्-यू-कुकने कहा—"नहीं, तुर्कोंकी जनसंख्या बहुत कम है, वह चीनकी जन-संख्याकी शतांश भी नहीं है। हम चीनके मुकाबिले जो अभी तक अपनेको दृढ़ साबित कर सके, उसका एक ही कारण है, कि हम सब घुमन्तू हैं, हम अपनी रसदको अपने साथ अपने पैरोंपर ले जा सकते हैं, और हमारे सभी लोग युद्धकलामें निपुण हैं। जब हम अपनेमें क्षमता

---

[1] वही पृ० ३७२

देखते हैं, तो लूट मार मचाते हैं, जब नहीं देखते, तो ऐसी जगह भागकर छिप जाते हैं, जहां चीन हमें पकड़ नहीं सकता। यदि हम नगर बसाने लगे और जीवनके पुराने ढर्रेको हमने बदल दिया, तो एक समय हम अपनेको बिलकुल पराधीन पायेंगे। विशेष कर इन बौद्ध विहारों और मंदिरोंका मुख्य सार है आदमीके स्वभावको नरम बनाना। लेकिन मनुष्य जातिपर वही आधिपत्य कर सकता है, जो भयंकर और लड़ाकू है।" तोन्-यू-कुकके इस भाषणकी सारी तुर्क राजसभा और स्वयं छोटे शाहने बहुत तारीफ की। [illegible] तुर्कोंकी [illegible] जनतंत्रता और बर्बरता—का परम पक्षपाती था।

मोगिल्यान चाहे कितना ही शांति-प्रेमी हो, लेकिन वह उन तुर्कोंका कगान (राजा) था, जिनके खूनमें युद्धकी भावना बसी हुई थी। उनके कारण चीनको नींद हराम हो गई थी। ओर्दूस्के चीनी महा[illegible]ने ७२० ई० में सलाह दी, कि हामी नगरके नजदीक केरा नदी ([illegible]ला हो) के तटपर अवस्थित तुर्क ओर्दूपर आक्रमण किया जाय। इस अभियानमें पूरबके खिताई और घेई तथा [illegible] (पशिमी) ने भी सहयोग दिया। बसिमिर नजदीक थे, इसलिये वह पहले पहुंचे। उधर उरुमचीसे ७५ मील पर पहुंच कर तुर्कोंने अपनी सेनाके एक भागको शहर पर अधिकार करनेके लिये भेजा और दूसरेको बसिमिर पर आक्रमण करनेके लिये। लेकिन परिणाम प्रतिकूल निकला। शत्रुके ओर्दूके नर-नारी बंदी बने। उन्होंने ल्याङ चौको भी लूटा। इस सफलतासे मोगिल्यान् मो-चोके राज्यके बहुतसे भागको लौटानेमें सफल हुआ। उसने थाङ दरबारमें दूत भेजा, कि मुझे सम्राट् अपना पुत्र स्वीकार करें तथा शाहके लिये एक राजकन्या दें। दरबारने पहली बात स्वीकार की, दूसरी बातका कोई जवाब नहीं दिया।

स्वेन्-चाङकी भारत-यात्रा इससे प्रायः एक शताब्दी पहले हुई थी, जब कि खे-ली खकान (मृत्यु ६२८ ई०) पदच्युत हो चुका था और उसके साथ ही पूर्वी तुर्कोंकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। पश्चिमी तुर्कोंके संबंध में कहते हुए हम स्वेन-चाङकी यात्राके बारेमें आगे लिखेंगे। स्वेन्-चाङकी यात्राकी भूमिका चीनके एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और लेखकने लिखी थी। उसने ७५५ ई० में सलाह दी, कि तुर्कोंसे खबरदार रहनेके लिये सेना बढ़ानी चाहिये और यह भी कि गुदुलूका स्वार्थहीन लड़ाकू ज्येष्ठ पुत्र, बुद्धिमान तोन-यू-कुक और उदाराशय छोटा शाह, इन तीनोंकी गुट चीनके लिये बड़े [illegible] है। ऐसे समय सम्राट् स्वेन्-चुङ (७१३-५६ ई०) को थाई-शान् शिखरपर बलि-पूजाके लिये पूरबकी ओर जाना अच्छा नहीं है। दूसरे मंत्रियोंने सलाह दी, कि प्रमुख तुर्क नेताओंको भी इस यात्रामें सम्मिलित करके उन्हें फंसा लिया जाय, तो सब ठीक होगा। चीनी राजदूत उनके पास संदेश लेके गया। उसके साथ बातचीत करते छोटे शाह मोगिल्यान, उसकी खातून (रानी), ससुर, गुदुलू-पुत्र सब तम्बूमें बैठे थे। उन्होंने चीनको उलाहना देते हुए कहना शुरू किया—"चीनने उन दुष्ट तिब्बतियोंके साथ विवाह संबंध किया है। घेई और खिताई एक समय तुर्कोंके आज्ञाकारी सेवक थे, उन्हें भी चीनी राजकुमारियोंसे व्याह करने दिया जाता है। क्या बात है, कि बारबार प्रार्थना करने पर भी हमारे साथ व्याह संबंध नहीं करने दिया जाता।" चीनी दूतने जवाब दिया—"खाकानने सम्राट्से पुत्र बननेकी प्रार्थना की थी। भला पिता और पुत्र कैसे एक दूसरेके परिवारमें शादी कर सकते हैं?" इसका उत्तर था "घेइयों और खिताइयोंके लिये भी तो यही बात है। फिर हम यह भी जानते हैं, कि व्याह में सम्राट्की अपनी पुत्रियां नहीं दी जातीं।"

यहां तिब्बत[1] (थुबुत) के साथ चीनी राजकन्याके व्याह ७१० ई० का जो संकेत है, वह चीन-सम्राट् जुइ-सुङकी एक पोष्य पुत्री थी, जिसे तिब्बतके राजाको देना था। उसीका उत्तराधिकारी यही स्वेन्-चुङ था, जिसके दूतसे बात हो रही थी और जिसने अपने वंशकी कन्यायें घेई और खिताई राजाओंको दी थीं।

दूतने विश्वास दिलाया कि, मैं सम्राट्से जाकर सब बातें कहूँगा। लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला।

तिब्बतवाले भी चीनकी दोहरी चालसे संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने तुर्कोंके सामने प्रस्ताव रक्खा, कि दोनों मिलकर चीनपर आक्रमण करें, लेकिन मोगिल्यानने इस प्रस्तावको ठुकरा ही नहीं दिया, बल्कि तिब्बती पत्रको सम्राट्के पास भेज दिया। यह याद रखना चाहिये, कि इस समय तरिम-उपत्यका (सिङक्याङ) पर तिब्बतवालोंका दृढ़ अधिकार था। सम्राट्ने बहुत प्रसन्नता प्रकट करते हुए व्यापार-संबंध स्थापित करनेका हुक्म दिया और वार्षिक पैसा भी देना स्वीकार किया। इसी समयके अभिलेखमें पहले पहल घोड़ोंके बदले चाय देनेकी बात लिखी मिलती है, अर्थात् ८वीं शताब्दीके प्रथम पादमें चाय पीनेका रवाज चीनसे बाहर इन घुमन्तू तुर्कोंमें भी हो चुका था।

सब तरहसे देखनेपर मोगिल्यानका शासनकाल तुर्कोंके लिये बुरा नहीं कहा जा सकता। मो-चोके साम्राज्यकी पूर्वकी मंचूरिया और पश्चिमकी इलि-चू उपत्यका तुर्कोंके हाथसे निकल गई थी, तो भी अभी तुर्क-शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। छोटे शाहके मरनेके बाद उसका बहुत शीघ्रतासे ह्रास होने लगा। उसके बाद साम्राज्यके पतनके काल में निम्न खाकान हुए—

(४) ईज़ान्या (७३५-३९ ई०) मोगिल्यानका पुत्र।
(५) विग्य गुदुलू (७३९-४२ ई०) इजान्याका भाई।
(६) ओज़मिश (७४२-४४ ई०) पूर्वी शाहका पुत्र।
(७) वाइमेइ खान खूतुन्-फू (७४४-४७ ई०)

जैसा कि शीघ्र पतिष्णु राजवंशमें [illegible] है, यह समय खानोंकी हत्याओं और षड्यंत्रोंसे भरा था। विलासी सामन्तशाहीके खिलाफ "सीधे सादे, काले लोगों" (जनसाधारण) को फिर उभाड़ा जाने लगा। उइगुर, करलोक और बसिमिर कबीले एक साथ उठ खड़े हुए, जिनका नेतृत्व एक उइगुर सरदार मोयुन्-च्राने किया। उइगुरोंने वाइमेइको मार डाला। कुतुलुक-पुत्र जो इतने दिनों तक पीछे रहकर खानोंको बनाता बिगाड़ता रहा, अब भी तुर्कोंके अंतिम दिनोंके देखने और संघर्षमें भाग लेनेके लिये बचा था। बसिमिरके कगानकी कुछ ही समय तक प्रधानता रही, उसके बाद उइगुरोंका पलड़ा भारी हुआ। मोगिल्यानकी खातूनने भागकर चीनमें शरण ली।

इस प्रकार अपने स्वामी आवारों (जूजूनों)से स्वतंत्र हो, तुर्कोंने दो शताब्दियों तक एक विशाल साम्राज्यपर शासन किया। ७४३ ई० में उनके पतनके बाद उइगुरोंने उनका स्थान लिया, किंतु इससे जहां तक जनसाधारणका संबंध है, कोई भेद नहीं हुआ, बल्कि वही ओर्दू, जो पहले तुर्क कहा जाता था, अब उइगुर-ओर्दू के नाम से पुकारा जाने लगा। वस्तुतः भाषा और जातिके तौरपर तुर्कों और उइगुरोंमें बहुत भेद नहीं था।

तुर्क एल (कबीले)का संगठन निम्न प्रकार था—
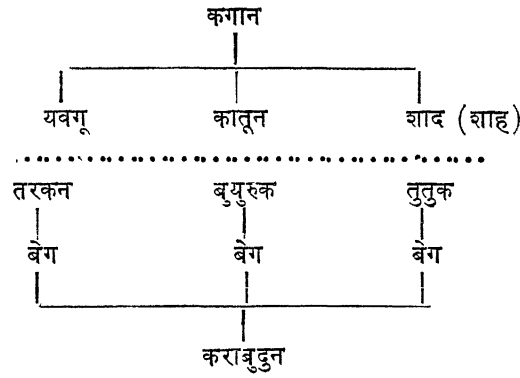
स्रोत-ग्रंथ :

१. मोल्गिअल्नो एकोनोमिचेस्किइ स्त्रोइ ओर्खोनो-येनिसेइकिख त्युरोक VI-VIII वेकोफ (अ. बेर्नश्ताम्, लेनिनग्राद १९६४)

2. A Thousand years of Tatars (Parker)

3. Inscription de l'Orkhon recueillies par l' expedition Finnoise. 1890. S. F. O,, Helsingfors 1892.

4. Dechiiferment des inscription de l' Orkhon et de l'lenissei. Bull. de l' Acad. Royal des sciences et de lettre de Dannemark, No. 3, Copenhague, 18, pp. 285-299. (V. Thomsen)

५. पाम्यात्निक व् चेस्त् क्वुल्-तेगिना, ज़ावाओ, XII, 2-4

6. Die Kokturkischen Grabins chriften aus dem Tale des Talas in Turkistan. ZfΓFuVGKCsA, Bd. II, Lief. 12, Budapest, 1926(J. Nemeth)

७. द्रेव्ने तुरेत्स्किये नाद्ग्रोबिया स् नाद्पिस्यामि बास्सेइना र. तलस् (स० ये० मालोफ़ इ० अ० न० १९२९)

८. किर्गिज़ी (व० बर्तोल्द, फ्रुन्ज़े १९२७)

9. Histoire générale des Huns, des Turcs, des Mongoles et de Autre Tartares Occidentaux (J. De. Guignes, Paris 1756-1758)

10. Migration des Peoples et Perticulerement celles Touraniens. (Ujfaly, Paris 1873)

अध्याय ५

पश्चिमी तुर्क (५८०-७०४ ई०)

पश्चिमी मध्य-एसिया (उत्तरापथ और दक्षिणापथ दोनों) का सीधा संबंध पश्चिमी तुर्कोंसे रहा। दक्षिणापथमें शकोंकी शक्तिको खतम करनेवाले श्वेतहूण (हेफ्ताल) थे, जो अराल समुद्रके उत्तरसे आये थे। इन्होंने प्रायः एक शताब्दी तक पश्चिमी अरालसे नर्मदा तट तक शासन किया। मध्य-एसिया और अफ़गानिस्तानमें श्वेत-हूणोंकी शक्तिको तुर्कोंने खतम किया, तो भी भारतमें वह श्वेत-हूणोंके उत्तराधिकारी नहीं हो सके। इस्लाम (अरबों) से लोहा लेनेवाले यही पश्चिमी तुर्क थे। इन्होंने ईरानकी तरह जल्दी हथियार नहीं रख उनके छक्के ही नहीं छुड़ाये, बल्कि अरबोंके अधीन हो जाने पर इस्लाम धर्म स्वीकार करके वह फिर तुर्क शासकोंके रूपमें प्रकट हुए। महमूद गजनवी तुर्क था। भारतके प्रथम मुस्लिम राजवंश (गुलाम, खलजी और तुगलक) भी पश्चिमी तुर्क थे, इस प्रकार पश्चिमी तुर्कोंका महत्व मध्य-एसियाके ही नहीं भारतके इतिहासके लिये भी बहुत है। कगान पदके लिये शबोलियों और दालोब्यानका जो झगड़ा हुआ, उसमें दालोब्यानको एक स्थानीय कगानका पद देकर फुसलानेका प्रयत्न किया गया, पर दालोब्यानने पश्चिमी तुर्क साम्राज्यकी नींव डाली।

१. दालोब्यान (५८०-...ई०)

दालोब्यान निम्न-कुलीन माताका पुत्र होनेके कारण कगान निर्वाचित नहीं हो सका, यह बतला चुके हैं। वह अन्तमें उस प्रदेशमें चला गया, जहाँ पहले वू-सुन् रहा करते थे। वहां उसने एक राज्यकी नींव डाली, जिसे पश्चिमी तुर्कोंका साम्राज्य कहा जाता है। दालोब्यानके शासन-कालमें उसकी पश्चिमी या पश्चिमोत्तरी सीमा बल्काश सरोवर था। उत्तरमें अल्ताईके परेका रेगिस्तान सीमापर पड़ता था। हराशर् (कराशर)से उत्तर-पश्चिम सात दिनके रास्तेपर कुल्जाके आसपास उसका दक्षिणी ओर्दू रहता था और उत्तरी ओर्दू आगे आठ दिनके रास्तेपर एमिलके पास था। काशगर उसके राज्यमें था और संभवतः चाच (आधुनिक ताशकन्द) का इलाका उसीका था। उसके अधीन तिङ-लिङ, करलोक, तुर्किस कबीले थे। हामीके उत्तर-पश्चिमके रेगिस्तानी तुर्क [illegible] थे। इनके अतिरिक्त कू-चा (तरिम-उपत्यका) के तुखार और चू, तलस आदिके उपत्यकाओंके सोग्दी भी इसके राज्यमें थे। कूचा और सोग्दकी जातियोंको छोड़ बाकी सभी जातियाँ भाषामें थोड़े भेदके साथ रीति-रवाज और समाजमें तुर्कों जैसी थीं।

तुर्क कगान—

१.	दालोब्यान	५८०...ई०
२.	नीली	
३.	चुलो कगान	—६०५-१८ ,,
४.	शेगुइ	६१८-१० ,,
५.	तुन् शेखू, तद्भ्रात	६१०...,,
६.	क्युली, तत्पुत्र	
७.	सि शेखू, तुनशेखू-पुत्र	
८.	निशू दुलू	
९.	शबोलो खिलिश, तद्भ्रात	६३४-३८ ,,
१०.	इबी दुलू	—६४१ ,,
११.	इबी शबोलो शेखू	६५१—
१२.	अशिका शिन्	७०८ ,,
१३.	शोगे	७०८-९ ,,
१४.	सुलू	७१६-३८

कगानके नीचे जेब्गू (यब्गू, सेखू, उप-कगान या उपराज) होता था। राजपुत्रोंको "देरे" और "शाह"की उपाधियाँ भी दी जाती थीं। बाकी उपाधियाँ उस समय प्रचलित पूर्वी तुर्कों जैसी ही थीं। चूला खेऊ (शबोलियो कगानका भाई तथा प्रथम दूलन का बाप) दलोब्यानके विरुद्ध भेजा गया था। युद्धमें दलोब्यान बन्दी बनाया गया।

२. नीली

प्रथम तुर्क कगान तू-मिन्का पुत्र इस्सिगी थोड़े ही समय कगान रह सका था। उसका पुत्र यान्-सो दे-ले अब दालोब्यानकी जगह नीली नामसे पश्चिमी तुर्कोंका कगान बना। नीलीके समय पश्चिमी तुर्कोंकी अवस्थामें कोई भेद नहीं हुआ। उसके मरनेपर उसका पुत्र दामो (धर्म) कगान बना।

३. चुलो कगान[1] (६०५ ई०)

पहले इसका नाम दमन नेग्यू था, लेकिन कगान बननेपर चूलो खानके नामसे प्रसिद्ध हुआ। चुलो कगानके शासनारंभके समय ही उसकी विधवा माँ (जो चीनी राजकुमारी थी) अपने देवरकी पत्नी बन उसके साथ चीन राजधानी छाङआन्में रहने लगी। उस समय चूलो कगान अग्निकनर इलि-उपत्यका में कुल्जाके आसपास रहता था। उसके कितने ही और उप-कगान या यब्गू थे, जैसे (१) चाच (ताशकन्द) का यब्गू हू (सोग्द) लोगों पर शासन करता था। (२) दूसरा कूचामें रहता था। तुकू-हुन (पश्चिमी तुर्कों) पर सम्राट् यङती आक्रमण करना चाहता

[1] A Thousand Years of Tatars पृ० ३७५

था, जिसमें तिङ लिङ सहायता देनेके लिये आये, किंतु चूलो तैयार नहीं हुआ। यही कारण था, जो याङतीने ६०५ ई० में चूलोको परास्त करनेकी कोशिश की। तलसमें तुर्कोंकी भारी पराजय हुई। चुलो कगानने चीनकी अधीनता स्वीकार की और आगेका अपना जीवन चीनमें बिताया, जहाँ कोरियाके साथ चीनकी ओरसे लड़ते हुए मारा गया। उसकी अनुपस्थितिमें शे-गुइ (शे-क्वी) स्थानापन्न कगान था। शेगुइने यब्गू रहते चीनसे राजकन्या माँगी थी। कहते हैं, चीनने इस शर्तपर इसे स्वीकार किया, कि वह चूलोको दबाये। शेगुइने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया और उसे अपने परिवारके साथ कराहोजाकी ओर भागना पड़ा। सेनापति जूमेनके साथ जो तीन लाख सेना भेजी गई थी, उसमें चूलोने भी शामिल होकर अच्छा काम किया। वहीं पूर्वी तुर्कोंके सिविर (सूबिली) कगानके भेजे हुए हत्यारे ने चूलोको मार डाला। चूलोके साथ चीन दरबारमें देरे दमो और होस्सना उप-कगान भी आये थे। इन दोनोंने भी कोरियामें चीनकी सैनिक सेवा की। सुई वंशके समाप्तिके बाद सेनापति को-सू द्वारा थाङ-वंशकी स्थापनामें भी इन दोनोंका काफी हाथ था। देरे दमो ६३८ ई० में मरा, लेकिन होस्सनाको सनकी सम्राट् याङतीने जाने नहीं दिया, इसलिये पश्चिमी तुर्कोंने शेगुइको अपना कगान चुना।

४. शे-गुइ (...६१८-१९ ई०)

शे-गुइ पश्चिमी तुर्कोंका पहला कगान था, जिसने साम्राज्यके विस्तारमें भारी काम किया। इसके समयमें राज्यकी उत्तरी सीमा अल्ताई-ताग और पश्चिमी सीमा कास्पियन समुद्रसे मिलने लगी। पूरबमें चीनकी महादीवारके पश्चिमी छोरपर अवस्थित प्रसिद्ध सीहाउ-घाटी तक उसका साम्राज्य फैल गया। पश्चिमकी सारी घुमन्तू जातियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं। शे-गुइका ओर्दू कूचासे उत्तर शायद कुल्जा प्रदेश की सन्मी पर्वतमालामें रहता था। वह अधिक समय तक राज नहीं कर पाया।

५. तुन्-शे-खू[1] (६१९-...ई०)

शे-गुइका छोटा भाई तथा पहले का एक महा-यब्गू अपने बड़े भाईकी जगह गद्दीपर बैठा। इसने पश्चिमी तुर्क-साम्राज्यके विस्तारमें अपने बड़े भाईसे भी ज्यादा काम किया। ६१८ ई० में सुइ-वंश खतम होकर थाङ-वंशकी स्थापना हुई, जिससे यह कभी सुलह और कभी लड़ाई करता रहा। इसके बारेमे इतिहासकारोंने लिखा है, कि वह बड़ा बहादुर महान् सेनासंचालक था। इसका शिर बहुत लम्बा था। उसने उत्तरमें तिङ-लिङोंको अधीनता स्वीकार करनेके लिये मजबूर किया, पश्चिममें ईरानियोंको मार भगाया और श्वेत-हूणों (हेफतालों) के विस्तृत राज्यको लेकर अपने राज्यकी सीमा काबुल (अफगानिस्तान) तक पहुँचा दी। ईरानमें इसका समकालीन शाह खुसरो द्वितीय था, जो अरबोंके कगानसे मेल करके पतनोन्मुख सासानी साम्राज्यकी रक्षाका जबर्दस्त प्रयत्न कर रहा था। ईरानके प्रतिद्वन्द्वी बिजन्तीय (ग्रीको-रोमक) सम्राट् हेराक्लियस खजारोंके शक्तिशाली कगानसे सांठ-गांठ करके ईरानको परास्त करनेकी कोशिश कर रहा था। हूणोंके वंशज अबार और खजार उस वक्त बोल्गा और कास्पियनके पश्चिम तटके शक्तिशाली शासक थे। तुन्शेखूसे पहले ही ५८९-५९९ ई० में बलख और हिरातके कुषाण और श्वेत-हूण शासकों ने तुर्कोंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी और वह तुर्कोंकी सहायतासे अर्मनियों और-

ईरानियों पर आक्रमण करते थे। ६४२ ई० में ईरानका अरबोंके हाथों पतन अब नजदीक था। पहिले शेखू कुल्जामें रहकर पश्चिमी प्रदेशका शासन करता था। पीछे उसने शी-कू (ताशकंद) से ३०० मील उत्तर (तरस नदी पर) अपना केन्द्र बनाया। तुर्किस्तानके सारे राजा उसके अधीन थे। पश्चिमी तुर्कोंका इतना उत्कर्ष कभी नहीं हुआ। थाङ वंशकी स्थापना होने पर उसने मसोपोतामिया (ताउ-ची) से शुतुरमुर्गका अंडा मंगवाकर चीनके पास भेंटके रूपमें भेजा था, जैसा कि उससे ८०० साल पहले पार्थियोंने किया था। सम्राट्ने खेली खाकानके विरुद्ध उसकी सहायता चाही। तुन् शेखूने ६२२ ई० के जाड़ोंमें सेना तैयार करनेका बचन दिया। खेलीने घबड़ाकर तुन्शेखूको अनुनय विनय करके तटस्थ रखा। पूर्बी तुर्कोंके कगान खेली और थाङ-सम्राट् सुङसे जिस वक्त घोर संघर्ष हो रहा था, उस समय तुन्शेखूका संबंध चीनसे टूट गया था। ६२७ ई० में थाङ-सुङके अभिषेकका निमंत्रण देनेके लिये आये चीनी दूतके साथ तुन्-शेखूका अधिकारी महाजिगिन सम्राट्के लिये १० हजार सुवर्ण मेखोंसे जटित कटिबंध और ५ हजार घोड़े ले गया। खेली नहीं चाहता था, कि [illegible] चीनी राजवंशसे विवाह-संबंध हो। उसने रास्ता काट देनेकी धमकी दी।

स्वेन-चाङ[1] (६००-६४ ई०)—इस महान् पर्यटकने अपनी यात्रा ६२९ ई० में आरंभकी थी और ६४५ई० में १६ वर्ष बाद वह चीन लौटा। अपने यात्रा-विवरणका पहला मसौदा उसने ६४६ई० में लिखा, ६४८ ई० में वह तैयार हुआ। संभवतः इस सारे समयमें तुन्शेखू जीवित रहा। स्वेन्-चाङ अपनी यात्रामें उसके राज्यसे गुजरा था। कराशर (अग्निनी) में वह ६३० ई० के आसपास पहुँचा था। अभी वह चीनके हाथमें नहीं था और ६४३-४४ई०में ही चीनका उसपर अधिकार हो सका। कराशरसे २०० ली दक्षिण-पश्चिम कूचा (कूची) का प्रसिद्ध नगर था, जो कि तुन्शेखूके राज्यमें था। स्वेन्-चाङ लिखता है : वहां गेहूं, चावल, अंगूर और अनार बहुत होते हैं। नास्पाती और खूबानी भी काफी होती है। इस प्रदेशमें सोने, तांबे, लोहे, सीसे और रांगेकी खानें हैं। कुछ परिवर्तनके साथ भारतीय (गुप्त-ब्राह्मी) लिपि यहां प्रचलित थी। कूचाके लोग वीणा, वेणु जैसे वाद्य-यंत्रोंमें बड़े चतुर थे। उनके चोगे ऊनी कपड़ोंके होते थे। शिरपर वह पगड़ी बांधते थे। वहां सोने, चांदी और तांबेके सिक्के चलते थे। कूचाके लोगोंमें अपने बच्चोंके शिरको चिपटा करनेका रवाज था। स्वेन्-चाङके समय कूचा प्रदेशके सौ बौद्ध बिहारोंमें ५ हजार सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते थे, जो त्रिकोटि-परिशुद्ध मांस खानेमें परहेज नहीं करते थे। तुन्शेखू शासित कूचाके बारे में बतलाते हुए स्वेन्-चाङने लिखा है—"राजधानीके पश्चिमी द्वारके बाहर ९० फुट ऊंची दो खड़ी बुद्ध-मूर्तियां सड़ककी दोनों बगलमें अवस्थित हैं। यह इसी स्थानपर स्थापित हैं, जहां बौद्ध अपना पंचवर्षीय समागम करते हैं। यहीं पर भिक्षु और उपासक शरदके अंतमें महाप्रवारणा की वार्षिक सभा किया करते हैं। यह महाप्रवारणाका मेला दस दिनोंतक रहता है, जबकि देशके सभी भागोंके भिक्षु उपस्थित होते हैं। जिस वक्त भिक्षु अपना संघ-सन्निपात करते हैं, उसी वक्त राजा-प्रजा उत्सव मनाते हैं। इस समय वह काम नहीं करते, उपोसथ रखकर धर्मोपदेश श्रवण करते हैं। उत्सवके समय सभी बिहार अपनी अपनी बुद्ध-मूर्तियोंको मोती और

---

[1] वही पृ० ३७५

[1] On Yuan Chwang's Travel in India (Thomes Watters,)

रेशमी कमखाबसे सजाकर जलूस निकालते हैं। मूर्त्तियाँ रथोंपर रखी रहती हैं। पहले जो जलूस हजारसे शुरू होता है, वह मिलन स्थानपर पहुंच कर भारी मेलेमें बदल जाता है। इस मिलनस्थानसे उत्तर पश्चिम तथा नदीके दूसरी पार 'अद्भुत विहार' है। इस विहारमें कई विशाल शालायें और बहुत ही कलापूर्ण बुद्ध मूर्तियां हैं। यहांके भिक्षु विनय-नियमोंको बड़ी दृढ़ताके साथ पालन करते तथा शिक्षा और बौद्धिक योग्यतामें बहुत बढ़-चढ़कर होते हैं। इस विहारमें दूर-दूर देशोंके प्रसिद्ध विद्वान् आकर रहते हैं, जिनका राजा उसके अधिकारी तथा जनता बहुत स्वागत-सत्कार करते हैं।"

स्वेन्-चाङ यहांसे पामीर (चुङलिङ, पलाण्डुगरि) की ओर चला। वह लिखता है "पो-लू-का (अक्सू) से ३०० ली उत्तर-पश्चिम लिङशान् (हिमगिरि) है। यहाँसे चुङलिङ (पामीर) का उत्तरी भाग आरंभ होता है।...यहाँकी अधिकांश नदियाँ पूरबकी ओर बहती हैं। मार्ग खतरनाक है। बड़े जोरकी ठंडी हवा बहती है। ..४००ली जानेपर महासरोवर तप्तसागर (इस्सिकुल) मिला, जिसका घिरावा १००० ली है। यह पूरबसे पश्चिम लम्बा है और इसके चारों ओर पहाड़ खड़े हैं। सरोवरका पानी खारा है।...इसमें मछलियाँ बहुत है।"

यहाँसे स्वेन्-चाङ संभवतः चू-नदी (शू-न्से) की उपत्यकासे होकर आगे बढ़ा। ५०० ली उत्तर-पश्चिम जाने पर उसे शू-से नगर मिला (शूसे नगर ६७९ ई० से पहले नहीं था, जान पड़ता है, यात्राके सम्पादकने इसे पीछेसे जोड़ दिया)। यहांके निवासी अधिकांश भिन्न-भिन्न देशोंके व्यापारी थे। पैदावार गेहूँ, अंगूर आदि होती है। वृक्ष कम और हवा सर्द है। लोगोंकी पोशाक ऊनी होती है। इससे पश्चिम दसियों नगरियाँ हैं, जिनके अपने-अपने राजा हैं, किंतु सभी तुर्कोंके आधीन हैं।

"शूसे (चू नदी) तट से कासन्ना देश तकके लोग सूली (सोग्दी) कहे जाते है। इनकी लिपिमें २० अक्षर होते हैं, और वह ऊपरसे नीचेकी ओर पढ़ी जाती है। इनके चोगे पट्टू या जमाऊ ऊनी कपड़ोंके होते हैं, जिसके भीतरकी ओर चमड़ा या कपास रहता है। (सोग्दी लोग) बाल कटाकर शिरके ऊपरी भागको नंगाकरदेते हैं, कोई कोई सारे बाल मुंड़ा लेते हैं। अपने ललाटपर वह एक रेशमी पट्टी बाँधते हैं। क़दमें लम्बे होते हैं, किंतु वह कायर, विश्वासघाती, धोखेबाज होते हैं। वह बड़े झगड़ालू बड़े लोभी होते हैं। लोभके पीछे पिता और पुत्र एक दूसरेको ठगनेकी कोशिश करते हैं।" धन ही यहाँ बड़प्पनका चिह्न है, इनमें कुलीन और नीच-वंशिकका कोई भेद नहीं। इन लोगोंमें आधे व्यापारी और आधे खेतीपर गुजारा करते हैं। अत्यन्त धनी होनेपर भी वह बिल्कुल साधारण भोजन खाते तथा मोटे-झोटे कपड़े पहनते हैं।

वहाँसे ४०० ली पश्चिम जानेपर पिङ-यू (बिङगुल) सरोवर मिला। यहाँ केवल दक्षिण की ओर हिम-पर्वतमाला (अलेक्-सान्दरगिरि) है, बाकी तरफ मैदानी भूमि है। वसंतमें यहाँ तरह-तरहके फूल खिले हुए थे। "यहाँकी भूमि बड़ी उर्वर है, चारों तरफ वृक्ष ही वृक्ष दिखाई देते हैं। वसंतके अंतिम भागमें यह स्थान, मालूम होता था, जैसे फूलोंका कसीदा काढ़ा हुआ है। यहाँ १००० चश्मे और पुष्करिणियाँ हैं, इसीलिए इसका नाम लिङ-यू (सहस्रधारा) पड़ा।" तुर्कोंका खाकान गर्मी से बचनेके लिये हर साल गर्मियोंमें यहाँ आया करता था। घण्टी और छल्ला पहने पालतू हिरन कगानको बहुत प्रिय थे, जिनको मारनेवाले अपराधी को प्राणदण्ड मिलता था।

गद्दीपर बैठते ही तुन्शेखू अपना शासन-केंद्र यहाँ लाया। स्वेन्-चाङ उससे ६३१-३२ ई० में मिला था। मुलाकातके बारेमें चीनी पर्यटकने अपने यात्रा-वर्णनमें लिखा है—"शेहू-कगान

उस समय शिकारमें जा रहा था। उसके सैनिक सामान बहुत ही विशाल थे। कगान हरे शाटनका चोगा पहने हुए था। उसके बाल खुले हुए थे। उसके ललाटपर चारों ओर बँधी सफेद रेशमकी पट्टी पीछेकी ओर लटकी हुई थी। उसके २०० से अधिक अमात्य वहाँ उपस्थित थे। सबके ही चोगे कसीदेदार और बाल पट्टेदार थे। वह कगानके दाहिने बायें खड़े थे। बाकी सैनिक अनुचर समूर, पट्टू या बारीक ऊनी कपड़े पहने हुए हाथोंमें भाले, ध्वजा और धनुष लिये ऊंटों या घोड़ों पर सवार हो वह बहुत दूर तक फैले हुए थे। कगान चाङसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपनी अनुपस्थितिमें—जो कि दो तीन दिन ही की थी—अपने शिविरमें रहनेको निमंत्रित किया। उसने अपने हजूरी-मंत्री [illegible] स्वेन्-चाङकी सेवाका काम सौंपा। तीन दिन बाद खाकान लौटा और स्वेन्-चाङ उसके तम्बूमें ले जाया गया। विशाल तम्बूपर कढ़े सोनेके कसीदेको देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती थीं। [illegible] दो लम्बी पांतियोंमे कालीनपर बैठे हुए थे। सबके चोगे बड़े सुन्दर कमखॉबके थे। बाकी परिचारक पीछेकी ओर [illegible] खड़े थे।...खाकान अपने तम्बूसे निकल ३० कदम आगे बढ़कर स्वेन्-चाङ से मिलने आया। (पर्यटक) लगातार प्रणाम करते हुए तम्बूके भीतर गया। चूंकि तुर्क अग्निपूजक (जर्थुस्त्री या मानी धर्मी) थे, इसलिए काष्ठका आसन नहीं इस्तेमाल करते, क्योंकि काष्ठ अग्निका आधार है। उसकी जगह वह दोहरे कालीन या दरीको आसनके तौरपर इस्तेमाल करते हैं। लेकिन तीर्थाटकके लिये कगानने लोहेके ढांचेवाले बेंचपर कालीन बिछवा रक्खा था। उसने अपने लिये मद्य और संगीतकी आज्ञा दी और यात्रीके लिये द्राक्षारस मँगवाया। इसके बाद सभी परस्पर मद्य चषक भरने, आगे बढ़ाने और उड़ेलनेमें व्यस्त हो कोलाहल मचाने लगे। इसी समय भिन्न-भिन्न यंत्रोंके स्वरसे मिश्रित संगीत ध्वनित होने लगा। दूसरोंके लिये भुना हुआ ढेरका ढेर गोमांस और मेषमांस परोसा जा रहा था, और यात्रीके सामने रोटी, दूध, मिश्री, मधु और अंगूर परोसे गये।" कगानकी भारतके प्रति अच्छी धारणा नहीं थी। उसने स्वेन्-चाङ को काले असभ्य घृणास्पद लोगोंके देशमें जानेसे मना किया। उसकी सेनामें घोड़सवार ही नहीं बल्कि हाथीसवार सैनिक भी थे।

कुछ इतिहासकारोंने शेहू खानको तुली खानका संबंधी बतलाया है; जिसकी मृत्यु ६३५ ई० में हुई थी, लेकिन शेहू तुनशेखूका ही नाम मालूम होता है।

अन्तमें तुनशेखू भी प्रभुता पाकर बौराये बिना नहीं रहा, इसपर करलोक जैसे कितने ही घुमन्तू कबीले उसके विद्रोही हो गये। स्वयं उसके अपने चचा मो-खे-दूने ही उसे मार डाला।

६. क्यू-ली सि-बि खान[1]

चचाको तुर्क ओर्दू कगान माननेके लिये तैयार नहीं हुआ और जिसको वह कगान बनाना चाहता था, वह कांटोंका ताज लेनेके लिये तैयार नहीं था; इसलिये तुनशेखूके पुत्रको कगान बनाया गया, जिसने कि समरकन्द में भागकर शरण ली थी। उसे बुलाकर क्यू-ली सि-बि-खान (अथवा इल्वी शापोरो चतुर्थ जेबगू खकान) के नामसे गद्दीपर बैठाया गया। फिर भी गृह-युद्ध नही रुका।

[1] A Thousand years of Tatars p. 376

तिङलिङों और तुर्किस्तानकी रियासतोंने विद्रोह किया। सेयेन्द्रा और तिङ लिङों (कंकालियों) से हार खानी पड़ी। इसीके समय किप्चक (अराल समुद्रसे उत्तरका प्रदेश), अफगानिस्तान तथा ईरानी इलाके पश्चिमी तुर्कोंके हाथसे निकल गये। निशूमोखे खान (शाद)? और तुनशेखूका पुत्र शिली देले (तेगिन्) [illegible] विरोध करने लगे, जिसमें उसके प्रतिद्वंद्वी सिुशेखूको सफलता मिली और क्रोधी, क्रूर, हठी सि-बि खानको फिर समरकन्द भागना पड़ा।

७. सि शे-खू

सि शेखू तुन् शे-खूका पुत्र था। इसके समय तलसके सेयन्दोंमे युद्ध हुआ। इसके घरू प्रतिद्वंद्वियोंकी कमी नहीं थी, जिनमें सेनि-शूके साथ जबर्दस्त संघर्ष हुआ। उसने कराशरकी हरितावलीमें जाकर पनाह ली थी, लेकिन अन्तमें उसीकी विजय हुई।

८. निशू दुलु-खान, ९. शबोलो खिलिश खान (६३४-३७ ई०)

निशू दुलू खानके राज्यशासन-कालका निश्चय नहीं है। ६३४ ई०के आसपास यह रहा होगा। इसका छोटा भाई तुन्-बो-शे उसके बाद (६३४-३८ ई० में) शबोलो खिलिश् खानके नामसे गद्दीपर बैठा। उसने अपने शासित प्रदेशमें कुछ शासन संबंधी सुधार किये, और चू-नदीसे पूर्वमें पांच और पश्चिममें पांच—दस ऐमकोंमें अपने राज्यको विभक्त किया। इसे ही "दस शे और दस वाण" कहते हैं। चीनी लेखकोंके अनुसार दुलू-खान जनप्रिय नहीं था, उसके शासनमें बहुत गड़बड़ी रही। पारस्परिक कलहके कारण अवस्था अनिश्चित थी। दुलू खानके अनंतर एकके बाद एक तीन कगान हुए।

१०. इबी दुलू-खान (६४१ ई०)

इसे अराल समुद्रके पासके कंगोंसे कई लड़ाइयां लड़नी पड़ी, पर यह उनकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करनेमें सफल हुआ। पराजित कंग बहुत भारी संख्यामें दास बने। दास जंगम संपत्ति थे। घरमें रखकर उनसे काम लिया जा सकता था, बाहर या घरके खरीदारोंके हाथ उन्हें अच्छे दामोंमें बेचा जा सकता था। दुलूने सभी दासोंको अपने लिये रखना चाहा, जिससे उसका सेनापति निशू-चो नाराज हो गया और उसने अपना हिस्सा ले लिया। इसपर इबीने सबके सामने उसका शिर कटवाकर लोगोंके देखनेके लिये टांग दिया। इबीका सारा समय भीतरी कलहमें बीता।

११. इबी शबोलो शे-खू[1] (६५१- ई०)

शायद इसे ही खे-लू शबोलियो या अशिना खे-लू (शे-गुइ) कहते हैं। चीनकी सहायतासे यह खान बना था, इसलिये चीनकी हर एक मांगको पूरा किये बिना कैसे रह सकता था? पहिले ही ६४६ ई० में इसने कूचा, काशगर, खोतन, चू-जुई-बो और चुङ-लिङ (पामीर) को चीनको दे दिया था। ६५१ ई० में बाइ-सुन्-खू सहित दुली खानकी सारी भूमिको हस्तगत कर यह

---

[1] वही पृ० ३७८

[illegible] नाम से तुर्कोंका कगान बना। थाङ-सम्राट्की राज्यविस्तार लिप्सा कम नहीं हो रही थी। वह चाहता था, कि शबोलो एक छोटा सा सामन्त होकर रहे, लेकिन तुर्क अभी भी घुमन्तू थे, अतः सैनिक जीवनको छोड़ नहीं सकते थे। उनका कगान कितने दिनों तक दबता रहता? शबोलोका चीनसे संघर्ष छिड़ गया, जिसका परिणाम चीनके अनुकूल हुआ और कुछ समयके लिए तुर्कोंका राज्य चीनका प्रदेश बन गया। जो प्रदेश अवशिष्ट रहा, वह भी गरलोक (गेलोलू), खुबू और सुनिशी इन तीन वंशोंमें विभक्त हो गया।

१२. अशिना-शिन् (-७०७ ई०)

यही तुमिन वंशका अंतिम कगान था। यह मालूम ही है कि पश्चिमी और पूर्वी दोनों तुर्क राजवंशोंका मूल कुल अशिना था। इस वंशके कगानोंने इधर अपनेको बिल्कुल अयोग्य साबित किया था, इसलिये वंश अन्तमें देर नहीं हो सकती थी। ७०८ ई० में कुलान (तर्ती स्टेशन) में अशिना-शिन मारा गया और उसके प्रतिद्वंद्वी सोगेने तुर्गिस शाखा की स्थापना की।

१३. सोगे (७०८-७०९ ई०)

एक तरफ तुर्कोंकी शक्ति इस तरह क्षीण हो रही थी, दूसरी तरफ अरबोंकी शक्ति बढ़ती जा रही थी। कुछ ही समय पहले पश्चिमी तुर्कोंके राज्यमें सारा अफगानिस्तान और ईरानके कितने ही भाग सम्मिलित थे, जिनमें अब अरब घुस रहे थे। ६८९ ई० में बक्षु (आमू-दरिया) से उत्तर बढ़कर अरब सेनापति मूसा बिन्-अब्दुला बिन्-हाज़िम्ने तिरमिज़को अपना शासन-केंद्र बनाया, जहाँ ७०४ ई० तक वह सर्वेसर्वा रहा। ७०५ ई० में पामीरके पहाड़ोंसे आनेवाली सुर्खान नदीकी उपत्यका पर भी अरबोंका अधिकार हो गया। ७१२ ई० में उसके पासके प्रदेश शगानियानको ही अरबों ने नहीं ले लिया, बल्कि ख़्वारेज़्मके प्राचीन देश पर भी इस्लामकी ध्वजा फहराने लगी। ७१२ ई० में समरकन्दपर तुर्गिस वंशका अधिकार था, किंतु अगले साल सोग्द् देश छोड़कर वह चले गये। अरब सेनापति कुतैबने और आगे बढ़ उनके प्रदेश शाश (ताशकंद) और फर्गाना पर आक्रमण किया। इसी साल बुखारामें उसने पहली मस्जिद बनवाई।

तुर्गिस् (त्युर्गेस्) पूर्वी तुर्कोंका ही एक कबीला था, जो पहले दुलूके ओर्दू (उर्त)में शामिल था। इसकी चरभूमि चू और इली नदियोंके बीचमें थी—बड़ा कबीला सुयाबमें और छोटा इलीके किनारे रहता था। पहले इसका सरदार बू-चिन्-पुत्र था, जिसके अत्याचारोंसे तंग आकर इन्होंने उसे छोड़ दिया। बूचिन्-पुत्र अपने पुत्र सोगाके साथ चीन दरबारमें चला गया। बीचमें कबीलेने अपना एक और सरदार बना लिया। इनके उत्तर-पूरबमें उत्तरी तुर्क, पश्चिममें दूसरे बहुतसे तुर्क-कबीले और उत्तरमें किर्गिज रहते थे। पश्चिमी प्रदेशका चीनी राज्यपाल उरूम्चीमें रहता था, सोगाने चीन दरबारमें रहकर अपनी शक्तिको बिल्कुल खो नहीं दिया था। उसने काश्गर प्रदेशको लौटा देनेके लिये कहा। चीन दरबार शायद इसे मान लेता, लेकिन तुर्गिसोंके भाईबंद ओचिर् कबीलेवालोंने चीनके युद्ध मंत्रीको १७०० तोला सोना रिश्वत देकर सोगाको काश्गरसे बंचित करना चाहा। सोगाको जब यह भनक लगी, तो उसने ओचिर्के आदमीको मरवा दिया। सोगाने अशिना-शिन्को पराजित कर अब पश्चिमी तुर्कोंका स्थान लिया। लेकिन अधिक

दिनों तक शासन नहीं कर पाया, और अगले ही साल ७०९ ई० में पूर्वी कगान मो-चो द्वारा मारा गया, जिसमें उसके भाईका भी हाथ था।

१४. सू-लू (७१६-३८ ई०)

इसे तुर्कोंका अंतिम तथा बहुत शक्तिशाली कगान कहना चाहिये। अरबोंने इसे अबू-मुज़ाहिम् (झगड़ेका बाबा)नाम दिया था। सू-लूको अपनी शक्तिके अतिरिक्त एक और अच्छा मौका यह मिला था, कि ईरान और मध्य-एसियाके स्वामी अरब उत्तरी-दक्षिणी दो दलोंमें विभक्त होकर आपसमें लड़ने लगे थे। ७२४ ई० में बरूकानमे उनका घोर संघर्ष हुआ। उमैया वंश (६७३-७४८ ई०) की शक्ति पहले जैसी मजबूत नहीं थी। वह अपने अनुयायियोंको खुलकर लड़नेसे मना न कर सका। इतना अच्छा मौका सु-लूको कब मिल सकता था? लेकिन उससे जितना फायदा उठाना चाहिये, उतना उसने नहीं उठाया।

सुलू जानता था, कि उसके पूरबमें चीनकी प्रबल शक्ति है और दक्षिणमें अरब कालकी तरह बढ़ते चले आ रहे है। उसके पूर्वके भाईबंध मो-चो और बगू खानके नेतृत्वमें अपने पुराने प्रतिद्वंद्वी पश्चिमी तुर्कोंको फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहते। ऐसी अवस्थामें उसे बड़ी सावधानीसे कदम रखना था। उसने चीनके साथ मित्रताका हाथ बढ़ाया। सम्राट् स्वेन्-चुङ (७१३-५६ ई०) ने प्रसन्न होकर उसे "चुङ-सुङ"की उपाधि (राजकुमारका पद) दे बू-चिन्की प्रपौत्रीको वधूके लिये भेजा। बधू चीन राजवंशका अभिमान रखती थी और साथ ही अपने पतिके बलका भी उसे कम गर्व नहीं था। उसने अपने एक अफसरके साथ हजार घोड़े दूसरी चीजोंसे बदलनेके लिये कूचाके वार्षिक मेलेमें भेजे। किसी बातमें बिगड़कर चीनी महाआयुक्तको "संबोधित करते समय अशिना स्त्रीने जो भाव दिखलाया" उसे वह बर्दाश्त नहीं कर सका। उसने अफसरको बहुतसे कोड़े लगवा राजकुमारीके घोड़ोंको भूखे रखवाया। जब यह समाचार सुलूको मिला, तो वह अपनी सेना ले आ धमका और चतुर्‌हट्ट नगर (शू-चेन्)—काश्गर, खोतन, कूचा और सू-ज्या (शायद कराशर)—में जो भी आदमी या वस्तु हाथ लगी, सबको लूटकर ले गया। ये चारों शहर पिछले कगान अशिना खेलूने चीनको दे दिये थे। चीनमें इतनी ताकत नहीं थी, कि सूलूसे बदला लेता। सूलू अपने लोगोंमें बड़ा प्रिय था। उसे चीजोंका लोभ नही था। युद्धकी लूटमें जो कुछ मिलता, उसे ठीक तौरसे लोगोंमें बांट देता। जनतासे बहुत अच्छा संबंध होनेके कारण वह पूरी तौरसे उसकी सहायता करती थी। अरबोंके खतरेको समझता था। तिब्बतियों और पूर्वी तुर्कोंसे मिलकर उसने अरबोंके विरुद्ध समरकन्द पर आक्रमण किया। तिब्बत, पूर्वी तुर्क और चीनकी राजकुमारियोंसे उसने व्याह किया था। यह बड़ा महंगा सौदा था, क्योंकि तीन रनि-वासोंके ठाटबाटको कायम रखनेके लिये बहुत धनकी आवश्यकता थी। सुलू कितने दिनों तक उदारता दिखलाता? उधर उसका एक हाथ भी बेकार हो गया था, जिससे युद्धमे पहले जैसी क्षमता नही रखता था। हूण जाति कमजोरोंके लिये दया नहीं दिखलाती, इसलिये धीरे-धीरे वह अपनी जनप्रियता खोता गया। तो भी ७३० ई० में अभी उसका प्रताप सूर्य ढला नहीं था, जब कि उसका दूत चीन दरबारमे प्रथम स्थान पानेके लिये झगड़ पड़ा। दरबारने पूर्वी तुर्कोंके प्रतिनिधिको पूर्वी महलमें और तुर्गिस दूतको पश्चिमी महलमें स्थान दे कर झगड़ा निप-टाया। पीत (तुर्क) और कृष्ण (किर्गिज) कबीलोंकी लड़ाईमें सुलू (७३८ ई० में) मारा गया।

उसके पुत्रों (१५) तुखो-सुन-गेचो और (१६) मोखे दगानके साथ तुर्गिस (अशिना) वंशकी ७६६ ई० में समाप्ति होगई।

७४२ ई० में फिर तुर्गिस् और किर्गिज ओर्दू उरुम्चीके क्षत्रपके आधीन हो गये, तो भी कृष्णों (किर्गिजों) और पीतों (तुर्कों) का झगड़ा रुका नहीं। चीन इस वक्त एक विशाल साम्राज्य था, जिसकी सीमा दक्षिणमें इन्दोचीन और पश्चिममें पामीर तक फैली हुई थी। लेकिन उसके सीमांतोंपर तिब्बत और शान (प्राचीन स्यामी) जैसी शक्तिशाली जातियाँ रहती थीं, जिन्होंने खास चीनकी शांतिको खतरेमें डालकर उसे परेशान कर रक्खा था। ऐसी अवस्थामें चीन कहाँ तक अपने पश्चिमी सीमांतकी जातियोंमें शांति स्थापित करनेका प्रयत्न करता?

७८० ई० तक किर्गिजों और तुर्कोंको पीछे छोड़कर कर्लोक आगे बढ़ गये और उन्होंने तुर्कोंको अपने अधीन बना लिया। बूकिन् (सुलूके पूर्वज) के ओर्दूके अवशेषको उइगुरोंने हज़म कर लिया। उइगुर राज्यके छिन्न-भिन्न होनेपर बूकिन्के अवशेषोंने हराशरको दखल किया और थाङ-वंश को अंतिम समय (९०७ ई०) तक आराम नहीं लेने दिया।

(तुर्क जातियां[1])—

७६६ ई० में पश्चिमी तुर्कोंका स्थान कर्लोक और ७४७ ई० में पूर्वी तुर्कोंका स्थान उइगुरोंने लिया, इस प्रकार ८वीं सदीके उत्तरार्धमें सारा तुर्क-साम्राज्य लुप्त हो गया। वैसे पश्चिमी तुर्क साम्राज्यकी स्वतंत्र सत्ता ७५७ ई० में ही खतम हो गई, जब कि उन्होंने चीनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

बुक्कू, पुकू, तरङकल (तोलङको), तुङलो, बैकाल, गुसेर, अदिर, किबिर (चिपियू), कुक (चू), उगइ (यूबी), सिब्, घेइ, खिताई कबीले तुर्किसोंसे संबंध रखते थे, जिनका अस्तित्व पीछे भी रहा। इनके बारेमें निम्न बातें मालूम हैं—

बुक्कू—यह सबसे उत्तरमें रहते थे। एक समय ये १० हजार सैनिक प्रस्तुत कर सकते थे। सामाजिक स्थितिमें बहुत पिछड़े हुए थे। पहले घेरीके अधीन रहे, फिर सेयेन्दाके, अन्तमें ७२५ ई० के करीब चीन राज्यमें मिल गये।

तरङकल—बुक्कूसे पश्चिममें रहते थे। इनके पास भी १० हजार जवान तैयार रहते थे। ६४८ ई० से पहिले ये चीन दरबारमें कभी नही आये थे।

थुङलो—सेयेन्दाके उत्तर पूरबमें रहते तथा १५००० भटोंकी शक्ति रखते थे। पहले घेरीके आधीन थे, अन्तमें उइगुरोंने इन्हें अपनेमें मिला लिया। तुला-उपत्यका इनकी विचरण भूमि थी।

बैकाल—इन्हींके नामपर साइबेरियाका प्रसिद्ध महासरोवर है, किंतु उस समय वह बुक्कूसे पूरब शायद अंगारा नदीके आसपास रहते थे। इनकी ३०० मील लम्बी भूमिके बारेमें यह चमत्कार देखा जाता था, कि वहां लकड़ी दो वर्षमें पथरा जाती थी। इनकी भाषा दूसरे तिङलिङोंसे बहुत कम अन्तर रखती थी।

गुसेर् और अदिर् तरङकलसे उत्तरमें रहते थे और किबिरस तरङकलके दक्षिणमें। कुक

---

[1] वही ३८२

बैकालोंसे १७० मील उत्तर-पूरबमें रहते बारहसिंगे पालते तथा काई-सेवार खाते थे। इनके मकान लकड़ीके बे सूलसाल बनाये जाते थे।

उ-गइ कुकोंसे १५ दिनके रास्तेपर पूरबमें रहते थे।

सिब्, घेई और खिताई इनसे और भी पूरब (आधुनिक मंचूरिया) में रहते थे।

उपसंहार—

उत्तरापथके ऐतिहासिक रंगमंचपर किस तरह शक, हूण और चीन इन तीन जातियोंके संघर्ष द्वारा इतिहासने प्रगतिकी, इसे हमने इस भागमें बतलाया। जहाँ तक उत्तरापथ और सिङ-कियाङका संबंध है, आरंभमें वहाँ शक जाति रहती थी। उन्हींके वंशज यूची, तुखार, सइवङ और बू-सुन् थे। कंग, अलान या उनके पूर्वज सरमात और मसागेत सभी शक-वंशी थे। ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें शकोंकी भूमिपर हूण फैलने लगे और जैसे-जैसे शताब्दियां बीतती गई, उनके वंशजों—अवारों, जूजुनों और तुर्कों—के अनेक कबीले शक-वंशजोंका स्थान ले इस विशाल भूमिको तुर्क-भूमिमें परिणत करने लगे। तो भी अभी उसे शुद्ध तुर्क-भूमि नहीं कह सकते थे। तरिम-उपत्यका अब भी शकवंशी तुखारों और भारतीय उपनिवेशिकोंकी भूमि थी। इस समयके बहुतसे अभिलेख तकला मकानकी मरुभूमिमें मिले हैं, जिनसे पता लगता है, कि अभी वहां तुखारी, प्राकृत भाषा तथा भारतीय लिपिकी प्रधानता थी। शताब्दियोंसे चला आया बौद्ध धर्म अब भी प्रधानता रखता था, यद्यपि वहां आकर बसे सोग्दियों तथा दूसरे व्यापारियोंमें नस्तोरी ईसाई और मानीके जर्थुस्ती धर्मोका भी प्रचार था। ये तीनों धर्म [illegible] हुए भी आपसमें बड़े प्रेमसे रहते थे, इसे लेकाक और ओरेल स्टाइनकी खोजोंने सिद्ध कर दिया है। इस्लामी तलवारके सामने इन भिन्न-भिन्न धर्मवाले साधुओंने एक जगह प्राण दिये, और जब तरिम-उपत्यकाका छोड़ना अनिवार्य हो गया, तो वहांके बौद्ध अपने साथ नेस्तोरी साधुओंको भी लिये लदाख पहुंचे।

लेकिन यह काफी पीछेकी बात है। तरिम-उपत्यकाके नगरोंको पहिले तुर्कोंके आधीन रहना पड़ा। ६९२ ई० में वह तिब्बतके आधीन हो गये। काश्गर, खोतन, अक्सू तक तरिम-उपत्यकाके सारे ही अष्ट नगरों पर तिब्बतका शासन था। इस समय अक्सू और काश्गरसे नेपाल और कश्मीर तक तिब्बतकी विजयध्वजा फहरा रही थी। आज जो तरिम-उपत्यकामें मंगोलायित मुख-मुद्राकी प्रधानता है, उसका आरंभ इसी कालमें हुआ।

सप्तनद—जो किसी समय शकों और उनकी संतानोंकी विचरण भूमि थी, अब पूरी तरह तुर्कोंके हाथमें चला आया था; यद्यपि वहाँकी जनतामें कृषि और व्यापारसे जीविका करनेवाले अब भी शकों-सोग्दियोंकी संतानें थीं। ७वीं शताब्दीके अन्त तक शक वहां वस्तुतः नामशेष हो गये थे। स्वेन्-चाङ ७वीं शताब्दीके मध्यमें सप्तनद और चू-उपत्यकासे आमू-उपत्यका तक एक ही सोग्दी भाषा और लिपिके प्रचारका उल्लेख करता है, जिसका यही अर्थ है, कि शक कोई अपना अलग अस्तित्व नहीं रखते थे। सप्तनदमें बौद्ध धर्म भी इस समय प्रचलित था और कुछ नेस्तोरी ईसाई भी रहे होंगे, किंतु जर्थुस्ती धर्म, उसमें भी मानी धर्मका प्रचार सबसे अधिक था। पश्चिमी तुर्क कगान भी अग्निपूजक थे। स्थिर-निवासवाले लोगोंमें शक-मिश्रित सोग्द जातिही अधिक थीं, किंतु तुर्कोंके घुमन्तू ओर्दू भी नगण्य नहीं थे, जोकि आगे चलकर इस भूमिको पूरी तौरसे मंगोलायित बनाकर यहांके लोगोंको आधुनिक क़ज़ाक और किर्गिज जातियोंमें परिणत करनेमें सफल हुए।

सप्तनदसे पश्चिमके उत्तरापथका भाग (पीछे किपचक भूमि) पहले मसागतों-सर मातोंकी भूमि थी, जहाँ उनके वंशज कंग और अलान रहते थे। आधुनिक पश्चिमी कजाक़-स्तान (किप्चक) भूमि भी हूणों तथा उनके वंशजों (अवारों और तुर्कों) के हाथमें चली गई। धीरे-धीरे वहाँके प्राचीन निवासी तुर्क जातियोंमें विलीन होने लगे। कंग और अलान हूणों और तुर्कोंकी तरह ही घुमन्तू थे, इसलिये उनमेंसे कितने ही चोट खा कर अन्यत्र भागनेके लिये भी तैयार हो गये। किप्चक-भूमि के निवासी तुर्कोंके साम्राज्यके अन्त होते समय बहुत कुछ मंगोलायित हो गये थे। तुर्क यहां इतने प्रवल हो गये, कि पहले के चले हूणिक ओर्दू और पश्चिम भागनेके लिये मजबूर हुये। किप्चककी पड़ोसी भूमिमें बुल्गार, अवार और खज़ार तीन हूण-जातियां रहती थीं। खज़ारोंने कास्पियन समुद्रको अपना नाम दिया, जिसे मुसलमान लेखकोंने पीछे खज़ार समुद्रकी जगह खिजिर समुद्र (बहीरा खिज्र) बना दिया। बुल्गारोंका नाम रूस की बड़ी नदी बोल्गासे जुड़ गया। प्रथम हूण लहर दन्यूब (इत्तिल) के किनारे ४थी सदी ही में पहुँच गई थी, जिसने सरमाती कबीलों (स्लावों) और गाथोंको कालासागर तटसे उत्तरकी ओर भागनेके लिये मजबूर किया। पीछे अवार भी अपने बंधुओंके पास हुंगरीमें जा पहुँचे।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि ७वीं सदीके मध्यमें तुर्क-साम्राज्यके अन्त होते समय तक सारा ऐसियाई शक द्वीप (प्राचीन शकस्तान) तुर्क द्विपी या तुर्किस्तान बनने के लिये तैयार हो गया।

स्रोत-ग्रन्थ :

1. A Thousand Years of Tatars (Parker)

2. Histoire générale des Huns, des Turcs......, (J. De-Guignes)

3. Altturkische Studien, IV. S. 310 (W. Radloff)

4. Introduction à l' Histoire de l'Asie. Turks et Mongols des origines à 1405 (L. Cahun, Paris 1896)

5. The Turks of Central Asia in History and at the Present Day (M. Czaplicka, Oxford 1918)

6. Oughous-Name (Riza Nour, Alexandrie, 1928)

7. Westturken, "Turcica" p. 9 (V. Thomsen)

8. Manuscripts in turkisch 'runic' Script from Miran and Tunhuang, J RAS, 1912 January (Dr. M. A. Stein)

9. Documents sur les Tou-Kiue (Turcs) Occidentaux सबत्तओए, सपब, १९०३

10. A Study on the titles Kaghan and Katun. (Shiratori Kurakichi, Memoirs of the research department, Tokyo 1926,)

अध्याय १

अखमनी (ई० पू० ५५०-३२६)

ई० पू० छठी शताब्दीसे हम मध्य-ऐसियाके दक्षिणापथ (हिंदूकुश पर्वतमालासे सिर-दरिया तथा पामीरसे कास्पियन समुद्र तकके भूभाग) के ऐतिहासिक कालमें आ जाते हैं, यद्यपि इसका यह अर्थ नही कि हमें इस समयकी ऐतिहासिक सामग्री काफी परिमाणमें मिलती है। इतना अवश्य है, कि जहाँ हम भारतके इतिहासपर प्रकाश डालनेवाले शिलालेख को ई० पू० ३री शताब्दी में अशोककी धर्मलिपियोंके रूपमें पाते हैं, वहाँ मध्य-ऐसिया के दक्षिणापथका प्रथम स्मरण बुद्धके समकालीन दारयवहुके [illegible] है। इस प्रकार यद्यपि जनश्रुति तथा [illegible] परिवर्तित परिबर्धित ग्रंथोंके आधारपर भारतके इतिहासको और पहिले ले जा सकते हैं, किंतु उसकी ठीक पुरातात्त्विक सामग्री ई० पू० तृतीय शताब्दी से ही निश्चित रूपसे मिलने लगती है, जबकि यहां उससे ढाई शताब्दी पूर्वके दक्षिणापथसे संबंध रखनेवाले अभिलेख मिलते हैं। दक्षिणापथ भारतकी तरह ही बराबर बाहरसे आनेवाले जातियोंका रणक्षेत्र और क्रीड़ाक्षेत्र रहा है। दोनोंमें फर्क इतना ही है, कि जहां भारतमें पुरानी संस्कृतियां तहपर तह जमनेके बाद भी ऐसी स्थितिमें पड़ी हैं, कि उनको पहचाना जा सकता, वहाँ मध्य-ऐसियाके इस भागमें संस्कृतियाँ इतनी मिल-जुल गई हैं, कि उनका अलग-अलग परिचय मिलना मुश्किल है। और स्पष्ट करते हुए कहना पड़ेगा, भारतमें पिछले ५००० वर्षों की संस्कृतियां, तिल-तंडुलकी तरह मिली-जुली मौजूद हैं, जब कि मध्य-ऐसिया में वह नीर-क्षीरकी तरह घुल-मिल गई। जातियोंका संम्मिश्रण भी वहां इसी तरह हुआ।

धातुयुगके आरंभसे हम देखते हैं: पहले सिर और वक्षु (आमू) [illegible] जातिका आर्योंके साथ समागम हुआ। दोनों जातियोंकी संस्कृतियाँ मिल गईं, पीछे उस समयकी भूमध्यीय जाति और उसकी संस्कृतिका वहाँ पता मुश्किलसे मिलता है। आर्योंने दो सहस्राब्दियों तक वहाँ अपनी प्रधानता रक्खी। आखामनी कालमें जिस सोग्द जातिकी यहाँ प्रधानता थी, वह ईरानी आर्योंकी ही एक शाखा थी। आगे ग्रीक और शक आये, किंतु अब पुरानी ईरानी जातिने अपने अस्तित्वको खो नहीं दिया, बल्कि इन दोनों हिन्दू-यूरोपीय जातियोंको वह अपनेमें हजम कर गई। ईसाकी ५वीं-६वीं शताब्दीमें हूण वंशज तुर्क आये। उन्होंने अपने मंगोलायित रक्तको देकर वंश-परिवर्तन करना शुरू किया, जो समयके साथ बढ़ता ही गया। यद्यपि द्राबेकी तुर्क जातिने ईरानी संस्कृतिको स्वीकार किया, किंतु उसने साथ ही स्थायी तौरसे लोगोंकी मुख-मुद्राको बदलना भी शुरू किया। तुर्कोंके दो शताब्दी बाद इस्लाम आया। उसने प्रयत्न किया, कि पुरानी संस्कृतिका चिह्न भी न रह जाये। हाँ, तुर्कोंके साथ उसने यह समझौता अवश्य किया, कि राजनीतिक शक्ति वह अपने हाथमें रख सकते हैं। आज मध्य-ऐसियामें इस्लामिक संस्कृति और मंगोलायित जाति ही देखनेमें आती है। पुराने अवशेषोंको ढूंढ़नेके लिये धरातलके भीतर

घुसनेकी अवश्यकता है। साम्यवादी होनेसे पहले मध्य-ऐसियाकी सभी तुर्क-जातियां (तुर्कमान, उज्बेक, किरगिज, कजाक) प्राग्-इस्लामिक जगतसे अगर कोई अपना संबंध स्वीकृत करती थीं, तो वह था तुर्की खून। सोवियतकालमें बड़े व्यापक परिमाणमें मध्य-ऐसियामें पुरातात्विक अनुसंधान हुए हैं। इसके कारण प्राग्-इस्लामिक कालके पुराने नगर, हस्तलेख तथा कलाके नमूने प्राप्त हुए हैं। अब वहाँकी जातियां अपने सारे लंबे इतिहासके लिये अभिमान करती हैं।

यहां ई० पू० छठी शताब्दीमें पड़ोसी जातियोंके सांस्कृतिक विकासपर एक दृष्टि डाल लेना अच्छा होगा। भारत और ईरानमें आर्योकी दो शाखायें करीब-करीब एक ही समय (ई० पू० २री सहस्राब्दीके मध्यमें) पहुंची थीं। घुमन्तू होते हुए भी कृषिका थोड़ा सा ज्ञान उनके पास था। भारतमें सिंधु-उपत्यकाकी पुरानी संस्कृति के घनिष्ठ संपर्क में आकर आर्योका सांस्कृतिक विकास तेजीसे हुआ। १२०० ई० पू० के आसपास की सप्त सिंधु उपत्यकाओं (पंजाब) में पहुँचकर एक समृद्ध जातिके रूपमें परिणत होते हुए उसने अपने जनयुगके अवशेषोंको छोड़कर सामन्त युगमें प्रवेश किया, गणतंत्रकी जगह राजतंत्रको अपना लिया। इसी समय राजा दिवोदास और सुदास्के समयमें वेदोंके प्राचीनतम ऋषियों (भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र,) ने वेदकी ऋचायें रचीं। आगे विकास होते-होते ई० पू० ७वीं-८वीं शताब्दीमें हम प्राचीन उपनिषद्के तत्वज्ञानियों (प्रवाहण, यज्ञवल्क्य आदि) को होते पाते हैं। इतने समयमें भारतीय आर्य प्राकृतिक शक्तियों तथा [illegible] देवता मानकर पूजनेकी अवस्थासे सर्वातर्यामी एक ब्रह्मकी ओर बढ़ते हैं, उसीके अनुसार गणोंकी बहुतंत्रतासे वह राजाकी एक-तंत्रताको भी स्वीकार करते हैं—वस्तुतः बाहरके राजनीतिक परिवर्तनका ही प्रतिविम्ब हम उनके धर्म और दर्शनमें पाते हैं।

कुरव[1] (कौरोश)ने जिस समय (ई० पू० ५५०ई० में) गद्दीपर बैठकर संसारके सर्वप्रथम महान् साम्राज्यकी स्थापना की, उस समय १३ वर्षके सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) शाक्योंके गणमें वाल्य बिता रहे थे। उस समय वर्तमान उत्तर-प्रदेश और बिहारकी सीमाओं और पंजावमें गणराज्योंकी प्रधानता थी। मध्य-एसियाके द्वाबोंमें किस तरहका शासन था, इसके बारेमें इतना ही कह सकते हैं, कि कुरवके शासन-कालमें वह बहुत कुछ राजतंत्रके प्रभावमें था। हो सकता है, तत्कालीन शकोंकी अथवा भारतीय गणोंकी भाँति वहाँ भी गण-शासन रहा हो। अगली दो शताब्दियोंमें मध्य-ऐसियाका जो इतिहास हमें मिलता है, वह अखामनी इतिहासके एक अंगके तौरपर ही। मध्य-ऐसियाई और ईरानी जातिके रूपमें उत्तरके विशाल शकद्वीपके मुकाबले हम भूमिको आर्यद्वीप कह सकते है। अवस्तामें आर्योकी प्रथम भूमिको ऐरयानम्वैजा कहा गया है। इसके बारेमें ऐतिहासिकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई उसे वक्षु और यक्सर्तके बीचकी भूमि मानते है, कितने ही पामीरको और कुछ ख्वारेज्मको ही ऐरयानम्वैजा कहते हैं। ईरानमें जो आर्योकी शाखा गई थी, भारतकी तरह धीरे-धीरे उसके कई जन हो गये, जिनके नामपर उनके अनेक जनपद बने। मद्र या मिद जाति काकेशसके पहाड़ोंसे दक्षिणकी ओर गई पर्वत श्रेणियोंमें बसी, जिससे उसका नाम मिदिया पड़ा। इस जातिका सीधा संबंध ववेरु (बाबुल) की संस्कृति और

---

[1] Histoire Ancienne (G. Maspero) pp. 649-95), इस्तोरिया द्रेव्नेओ वोस्तोका (व० व० स्त्रूवे, लेनिन ग्राद १९४१) पृ० ३६८-७५

साम्राज्यसे हुआ, जिसके कारण ईरानी आर्यों को जन-अवस्थासे सामन्तवादी अवस्थाकी ओर बढ़नेका अवसर मिला। अभी भी यह जाति पहाड़ी [illegible] थी। अपनी बिखरी हुई स्थितिमें यद्यपि उसने बवेरुके जुयेको मान लिया, किंतु धीरे-धीरे उसे पता लगने लगा, कि जब तक भिन्न-[illegible] नहीं हो जाते, तब तक हम स्वतंत्र नहीं हो सकते। अपनी एकताका परिचय उन्होंने ७८८ ई० पू० में बवेरु की राजधानी निनवेको पराजित करके दिया। इसी समय मद्र-राज्यकी स्थापना हुई। ७०८ ई० पू० में मिदिया और भी एकताबद्ध हो गई और जब कि फरवर्त-पुत्र देइओक् (देवक) मिदियाका राजा हुआ। उसने अपनी जाति को बबेरुओं से बिलकुल स्वतंत्र ही नहीं कर लिया, बल्कि सभी ईरानी जनों को मिलाकर एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना करने में सफलता पाई। देवकने अखवतन (वर्तमान हमदान) मिदियाकी राजधानी को विशाल प्रासादों और सुदृढ़ दुर्ग से सुसज्जित कर निनवे का प्रतिद्वन्दी बना दिया। देवक का शासन सोग्द (आमू और सिरदरिया के द्वाबे) तक था, इसका कोई प्रमाण नहीं है। ६५५ ई० पू० में उसके मरने के बाद फरवर्त उसका उत्तराधिकारी हुआ। मिदिया का राज्य ५५० ई० पू० तक कायम रहा, लेकिन आगे उसने कोई विशेष प्रगति नहीं की। इसी मिदियाका स्थान अखामनी (अखामनशी) वंश ने लिया।

१. कुरव (५५०-५२९ ई० पू०)

अखामन दक्षिणी ईरान (पारस) के कबीलोंमेंसे एक का मुखिया था, जिसके कारण उसका जन अखामनी या अखामनशी कहा जाने लगा। इसीकी ७वीं या ८वीं पीढी में कुरव पैदा हुआ। कुरव पिता की ओर से पारसीक था, किंतु माता की ओर से मद्रों का खून उसकी नसों में बह रहा था। देवक के उत्तराधिकारी धीरे धीरे विलासप्रिय होकर कमजोर होते गये। कुरव को अच्छा मौका मिला और उसने अंतिम मद्र राजा को हराकर ५५० ई० पू० में अपने को सारे मिदिया का राजा घोषित किया। इससे पहले कुरब अनशन का शासक था। यद्यपि अब मद्रों के स्थान पर पारसीकों की प्रधानता हो गई, किंतु कुरवने मद्रकुल को नीचे करना नहीं चाहा। कुरवके विशाल साम्राज्य में शासक जाति के तौर पर पारसीकों और मद्रों दोनों का स्थान था—मद्र पारसीकों से कुछ ही कम समझे जाते थे; दूसरी जातियों के सामने मद्रों और पारसीकों में कोई अंतर नहीं था। कुरवने अखवतन को ही अपनी राजधानी रखा। मिदिया के राज्य को हस्तगत करके कुरवने संतोषन कर ५४६ ई० में लिदिया (क्षुद्र-एसिया) को जीत अपनी पश्चिमी सीमा भूमध्यसागर तक पहुँचा दी। लिदिया बहुत ही समृद्धदेश था। वहाँ पर रहनेवाली जाति ईरानियों से कुछ समानता रखती थी। उसके मिल जाने पर कुरवकी शक्ति और बढ़ गई और उसने बबेरु पर हाथ फेरना चाहा। वह जानता था, कि बबेरु का जीतना उतना आसान नहीं होगा, इसलिये उसने बड़ी तैयारी के साथ आक्रमण का [illegible] तिग्रा तथा हुफ़ात की विशाल नदियों के वणिक्पथ को छेंक दिया। संघर्ष जबर्दस्त हुआ, लेकिन ५३८ ई० पू० में कुरवने बवेरु पर पूर्ण विजय प्राप्त की। कुरव और दारयबहु दोनों महान् विजेततों की नीति थी, कि हर एक विजित जाति की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये उसके धर्म, [illegible] संस्कृति को छेड़ा न जाय। यही नहीं, बल्कि कुरव अहुरमज्द का परमभक्त था, पर बबेरू जीतने के बाद वह वहाँ के देवता मर्दुक का भी पूजा सम्मान किये बिना नहीं रहा। उसके अभिलेख में लिखा

है[1]—"देवातिदेव मर्दुक ने मुझे यह राज्य प्रदान किया।" अपने दिग्विजय के बारे में वह लिखता है "मैं कुरव विश्वराज, बृहत् राज, महाराज, ववेरु, शुमेर, अक्कदका राजा, चतुर्दिशाओं का राजा हूँ। जब मैं शांति-पूर्वक ववेरू नगरी में पहुँचा, तो. . .वहाँ के राज्य-निवास पर अधिकार किया। उस समय महान् प्रभु मर्दुक ने . . .मेरे हाथ में बवेरू [illegible] कर दिया।" बबेरू जीतने के बाद कुरव का अगला कदम मिस्र (मुद्रिक) था। फिर उसने पूरब में अपनी सीमा बढ़ाते हुये सिंधु तटतक पहुँचायी। इसी समय सबमे पहले सप्तसिंधु (हफ़्त-हिंदू) का उल्लेख मिलता है। अब नील और भूमध्यसागर से सिंधु-तट तक कुरवका साम्राज्य विस्तृत हो चुका था, इसी समय सोग्द भी उसके हाथ में आ गया, लेकिन दन्यूब (दुनाई) से लेकर ह्वाङ्हो तक फैले उत्तर के घुमन्तू पशुपाल शक कुरवका रोब मानने के लिये तैयार नहीं थे। वह पशुपालन के साथ साथ पड़ोसी बस्तियों की लूट-पाट करना अपना अधिकार समझते थे। कुरवको शकों से लड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा, और इसी लड़ाई में महान् विजेता को अपना प्राण देना पड़ा। काकेशस के उत्तर के शकोंसे भी छेड़छाड़ होती रही। काकेशस पर्वतमाला जहाँ कास्पियन समुद्र के अति नजदीक पहुँच जाती है, उस जगह दरबंद (द्वारबंध) को दुर्गबद्ध करना पड़ा था, किंतु मुख्य संघर्ष अराल समुद्र से कास्पियन समुद्र तक के घुमन्तू मसागेत (महाशक) जातिसे हुआ। इसमें पहले ही कुरवने एक्सर्त तट पर कुरेखत नगर और दुर्ग बसाया। शकों के राजा अर्मोग ने जबर्दस्त मुकाबला किया, लेकिन अंत में वह मारा गया। उसकी रानी ने अधीनता नहीं स्वीकार की। शकों में स्त्रियोंका स्थान उतना नीचा नहीं था, यह हम कह आये हैं। शकरानीने हथियार नहीं रखा। ५२९ ई० में कुरवने मसागत की रानी तोमुरी ने व्याह करने की मांग की। उसने बनावटी स्वीकृति देदी। कुरव एक्सर्तकी ओर बढ़ा। संघर्ष आरंभ हुआ। रानीका लड़का बंदी बनाया गया, जिसे किसीकी असावधानी के कारण मार डाला गया। इसपर उसकी मां तोमुरीने अपने सारे कबीले के योद्धाओं को जमा कर कुरवकी सेना पर आक्रमण कर दिया। माँ बेटेका बदला लेनेके लिये तुली हुई थी, उसने अंत तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। शकों और हूणों की एक पुरानी युद्ध नीति थी, हार का बहाना करके भाग पड़ना और जब दुश्मन असावधानी के साथ पीछा करे, तो चुनी हुई सेना के साथ उसपर आक्रमण कर देना। तोमुरी की सेना ने ऐसा ही किया। ईरानी सेना ने पीछा किया और मसागेतों के हाथों बुरी तरह पराजित हुई। कुरव मारा गया।[2] रानी ने उसकी लाश को खुजवाया, लेकिन ईरानी सेना उसे पहले ही हटा चुकी थी।

इस प्रकार मिस्र और भारत तक विजय-पताका फहरानेवाले कुरव का अन्त हम मध्य-एसिया की इसी भूमि में होते देखते हैं। तो भी इसमें शक नहीं, कि ख्वारेज्म और कास्पियन तट के शक घुमन्तूओं को [illegible] के निवासी सोग्दियों पर कुरव की विजय ने स्थायी प्रभाव डाला। वह उसी नागरिक संस्कृति में आगे बढ़े और उसी कला-कौशल की वहाँ दृढ़ नींव पड़ी, जो महान् कुरवके विशाल साम्राज्य की देन थी। इस प्रभाव को पीछे तुर्क और अरब विजेता भी मिटा नहीं सके।

---

[1] इस्तोरिया देवनओ बोस्तोका पृ० ३७१

२. दारयबहु (५२९-४८५ ई० पू०)

कुरव का पुत्र कम्बुज (५२६-२१ ई० पू०) उसके विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। मिस्र में विद्रोह हो गया, जिसको दबाकर उसने फिर से मिस्र-विजय किया। उसने अपने पिता के विजयफल को कायम रखने का प्रयत्न किया। उसके मरने के बाद विरोधी शक्तियों ने जोर पकड़ा। मद्र अपने पुराने जमाने को भूले नहीं थे। उनके जातीय-धर्म के पुरोहित मग पसंद नहीं करते थे, कि उनका शाहंशाह दूसरी जातियों के धर्मों का सम्मान करें, और उनके देवताओं को अहुर-मज्द के बराबर माने। सबसे जबर्दस्त विरोध मद्रों की ओर से हुआ। उनका नेता गौमाता छ महीने तक कुरब के सिंहासन का स्वामी रहा। अखामनी खानदान के भी कितने ही राजकुमार झगड़ रहे थे, लेकिन अंत में सफलता हुर्कनिया के क्षत्रप तथा विस्तास्प के पुत्र दारयवहु को मिली। १० रगयादिस (मार्च-अप्रैल) ५२१ ई० पू० में अखबतन के सिख्यावती राजप्रासाद के भीतर उसने गौमाता को मारा। दारयबहु ने अपने बहिस्तून के शिलालेख में इसी घटना की ओर इशारा करते हुये लिखा है :

"अहुरमज्द ने मुझे शाह बनाया। हमारे वंश के हाथ से राज निकल गया था। मैंने लौटाकर उसे जैसा पहले था, वैसा स्थापित कर दिया। मगों द्वारा ध्वस्त पूजा-स्थानों को मैंने पुनः स्थापित किया। गौमाता द्वारा उत्पीड़ित जनता. . .को मैंने पूर्ववत् बनाया। उन्हें उसी पहली परिस्थिति में लौटाया, जिसमें कि वह पारस में थी, जिसमें मिदिया में थी, जो मेरे दूसरे देशों में थीं।. . . मैंने अहुरमज्द की इच्छापर चलने का इस तरह प्रयत्न किया, मानो गौमाता ने हमारे कुल को ध्वस्त ही नहीं किया हो।"

गौमाता के अतिरिक्त उसे और भी कितने ही प्रादेशिक क्षत्रपों से लड़ना पड़ा। मिदिया और अरमेनिया शासक फ्रावार्तस ने क्षत्रिय उपाधि धारण कर अपने को राजा घोषित किया। मरगिया (मर्ग या मेर्व) का फ्राद स्वतंत्र शासक बन गया। हुर्कानिया में भी स्वतंत्र शासन घोषित किया गया था। दारयबहु के पिता विस्तास्प ने जुलाई ५१९ ई० पू० में हुर्कानिया को अपने पुत्र की ओर से जीता। उससे अगले साल दारयबहु के क्षत्रप दादर्शिश (जो कि बाख्तरी का क्षत्रप था) ने फ्राद को परास्त कर मर्गपर अधिकार किया। ५१२ ई० पू० तक दारयबहु के साम्राज्य की सीमा थी—उत्तर में कालासागर, काकेशस, कास्पियन और चीन की सीमा तक फैला शक प्रदेश, पूर्व में हफ्त-हिंदू (सप्त-सिंधु), पश्चिम में भूमध्यसागर और मिस्र की पश्चिमी सीमा, दक्षिण में अरब और अफ्रीका का सहरा।

एसिया और अफ्रीका में अपने राज्य का विस्तार करके दारयबहु को यूरोप में ग्रीस की ओर ध्यान देने की लिये मजबूर होना पड़ा। शायद उसे इधर ध्यान देने की अवश्यकता न पड़ती किंतु यूनानी राजनीति इसके लिये मजबूर कर रही थी। एसिया के तटपर बसे यूनानी उपनिवेश ईरान के अधीन थे। आपसी झगड़ों के कारण अथेंस गणराज्य के भगोड़े इन बस्तियों में आकर शरण लेते थे। ईरान को उनके कारण एकका समर्थन करना था। उधर ईरानियोंके विरोधी एसिया से भागे यूनानियों की अथेंस में पीठ ठोकी जा रही थी। ईरानी क्षत्रप इसे यूनान के क्षुद्र गणराज्य की भारी गुस्ताखी और अपमान समझता था। वस्तुतः यूनान के साथ युद्ध की जिम्मेवारी शाहंशाह की अपेक्षा उसके क्षत्रप पर अधिक थी। दारयबहु थ्रेस (युरोप) को अवश्य अपने हाथ में

करना चाहता था। उसने थ्रेस पर आक्रमण किया। थ्रेसकी रक्षा के लिये उत्तर के लड़ाकू शकों को दबाना आवश्यक था, जिसके लिये वह उनकी ओर बढ़ा। ५०८ ई० पू० में उसने दन्यूब नदी को पार कर शकों के इलाके पर आक्रमण किया। ईरान की भारी सेना का वह डटकर मुकाबला नहीं कर सकते थे, इसलिये अपनी जिन चीजों को वह साथ नहीं ले जा सकते थे, उन्हें फूंक-जलाकर भीतर की ओर भागते गये। दारयबहु को इन भागते शकों के ऊपर आक्रमण करके कोई लाभ नहीं हुआ। यह वही प्रदेश है, जिसे बहुत पीछे रूस कहा जाने लगा। घर-फूंक युद्ध नीति रूसियों ने अपने पूर्वज इन्हीं शकों से सीखी। रूस की दुर्दम्य प्रकृति ने दारयोश के विजय को ही पराजय में नहीं परिणत कर दिया, बल्कि उसीने नवें चार्ल्स तथा नेपोलियन के विजय को भी घोर पराजय में परिणत किया। हिटलर की पराजय का आरंभ भी उसी भूमि में हुआ, यद्यपि उसमें केवल-घर-फूंक नीति ही नहीं, बल्कि रूसियों की अद्वितीय वीरता और युद्ध-कौशल का भी हाथ था। ५०६ ई० पू० में थ्रेस और मकदूनिया दारयबहु के करद राज्य थे।[1]

जैसा कि पहले बतलाया, यूनानियों की छेड़-छाड़ के कारण दारयबहु को उनकी ओर ध्यान देना पड़ा। पहले ईरान को कुछ सफलता मिली। ४९४ ई० पू० में लेदके सामुद्रिक युद्ध में यूनानी बुरी तरह से हारे। एसिया तट के यूनानी उपनिवेशों ने जो विद्रोह किया था, उसे भी दबा दिया गया। लेकिन मुख्य ग्रीस भूमि अपने पड़ोसी मकदूनिया की हालत को देखकर भी ईरान के सामने झुकने के लिये तैयार नहीं थी। ४९० ई० पू० में दारयबहु को उस ओर मुंह फेरने के लिये मजबूर होना पड़ा। छोटी-मोटी लड़ाइयों का कोई निर्णयात्मक फल नहीं मिला। अंत में सबसे बड़ी लड़ाई मराथोन में हुई, जिसमें ईरानी सेना हार गई। दारयबहु ने ४९० ई० पू० के बाद के अपने अंतिम पांच वर्षों को शासन और सुव्यवस्था में लगाया और ३६ साल के सुदीर्घ शासन के बाद अपने मरने के समय (४९५ ई० पू० में) उसने एक सुव्यवस्थित और समृद्ध साम्राज्य छोड़ा, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं, कि उसका सुफल सभी वर्गों और जातियों को समान मिला। दासों की दयनीय दशा के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं—यह ऐसा समय था, जब कि विश्व के सभी सभ्य देशों में दासता की क्रूर प्रथा का अकंटक राज्य था।

(१) शासन-व्यवस्था

दारयबहु को कुरव का महान् साम्राज्य प्राप्त हुआ था, जिसमें उसने भी वृद्धि की थी। सिंध से लेकर नील तट तक विस्तृत कुरवके साम्राज्य का प्रबंध पहले से भी केन्द्रित रूप में होता चला आया था, इसलिये यह कहना मुश्किल है, कि शासन-व्यवस्था में कितनी नई बातें कुरवने कीं और कितना दारयबहु ने उसमें सुधार किया था। ईरानी साम्राज्य से पहले भी बबेरू और मिस्र के विशाल बहुजातिक राज्य मौजूद थे। इतने बड़े राज्य के प्रबन्ध के लिये कितनी ही नई बातें अवश्य हुई होंगी। दारयबहु ने शासन का नये ढंग से केन्द्रीकरण किया। पहले के महाराज्यों में अधीन जातियों के ऊपर प्रायः उन्हीं में से वंश-परंपरा से चला आता कोई राजा (शासक) बना दिया जाता था, जो केंद्रीय शक्ति के निर्बल होते ही स्वतंत्र हो जाता था। दारयबहु ने खानदानी राजाओं को मांडलिक बनाना पसंद नहीं किया। उसने अपने क्षत्रप

---

[1] वही पृ० ६९७-७१०

नियुक्त किये, जो कि शाही या तत्संबंधी खानदानों के होते थे और शाह की इच्छा रहने तक अपने पद पर स्थित रहते थे। क्षत्रप के हाथ में बहुत ज्यादा ताकत न हो जाय, इसलिये हर एक प्रदेश का सेनापति क्षत्रप से अलग होता था, जिसकी नियुक्ति भी शाह करता था। इन दोनों के अतिरिक्त एक राजामात्य शाह की आंख था, जो कोश तथा दोनों के कामों को देखता रहता था। एक ही प्रांत में तीन-तीन स्वतंत्र अधिकारियों का रहना क्षत्रप को इस योग नहीं रहने देता था, कि वह केन्द्र के विरुद्ध स्वतंत्र होने की हिम्मत करे। इनके ऊपर भी केन्द्र से समय समय पर शाही महामात्य घूमा करते थे, जिनके अधिकार बहुत अधिक होते थे। शिकायत ही नहीं, बल्कि वह स्वयं प्रांतीय पदाधिकारी को पदच्युत कर सकते थे। शाही हुकुम के आने पर तुरंत क्षत्रप का शिर उतारा जा सकता था, यह पहले कह चुके हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के धार्मिक अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों में ईरानी शाह कोई दस्तंदाजी नहीं करते थे। वह प्रियदर्शी अशोक की तरह हर पाषंड (धर्म) की मान्यताओं को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। बल्कि अशोक की उदारता से भी ईरानी सम्राट् आगे बढ़ अहुरमज्द के भक्त होते भी बबेरू (बाबुल) वालों को खुश करने के लिये उनके महान् देवता मर्दुकको भी देवातिदेव कहते और अपने अपार वैभव को मर्दुकका का प्रसाद बतलाते थे।

दारयबहु के समय सारा राज्य निम्न २३ प्रदेशों में बँटा था, जिनके शासक क्षत्रप कहे जाते थे[१] —

१. पर्शा—दक्षिणी ईरान अर्थात् आधुनिक फारसका सूबा,
२. ऊवजा (एलम)—इसीमें दारयबहु की एक राजधानी सूसा थी,
३. बबीरु (कलदान)—उत्तरी मसोपोतामिया,
४. अथुर (असिरिया)—जिसमें जगरोस पर्वत और खबुर (दजला) थे
५. अरबया—मसोपोतामिया का वह भाग जो कि खबुर और हुफ़रात (फुरात) के बीच में पड़ता है,
६. मुद्र (मिस्र)—नील उपत्यका,
७. सागरजन—जिसमें सिलिसिया और विशरिओत जैसे द्वीप थे,
८. यवुना (यवन)—इनमें युनियन, एवलियन और दोरियन आदि जातियां शामिल थीं,
९. स्पर्दा—लिदिया और मुसिया आदि क्षुद्र-एसिया के प्रदेश,
१०. मिदिया—हमदान के पास का प्रदेश, जो ईरानी जाति का सर्वप्रथम नेता बना,
११. अरमेनिया,
१२. कत्पतूक—क्षुद्र-एसिया का मध्य भाग तौरस आदि,
१३. पार्थव—पार्थिया और हुर्कानिया,
१४. जरंगिया,
१५. हरेयव (आर्य),

---

[१] Historic Ancienne (G. Maspero) pp. 704-5

१६. उवर[illegible]—[illegible],
१७. बाख्त्रिया—वाह्लीक (बल्खका प्रदेश),
१८. सुग्दा—ज़रफ़शां-उपत्यका,
१९. गंदार—पेशावर और तक्षशिला का प्रदेश,
२०. शक—चीन की सीमा से काकेशस के उत्तर तक फैला शकद्वीप
२१. स[illegible]—[illegible] हेलमन्द उपत्यका का ऊपरी भाग,
२२. हरउवती—(ग्रीक अर्खोशिया),
२३. मक—ओर्मुज्द के पास का प्रदेश

दारयबहु विश्वका पहला शासक है, जिसने राजा की मूर्ति (रूप) के साथ सिक्के चलाये। इससे पहले भिन्न-भिन्न चिन्हों से अंकित धातु के टुकड़े सिक्के की तरह चलते थे। मुद्राकला को पराकाष्टा तक ग्रीक राजाओं ने पहुंचाया—चाहे सिकंदर के सिक्कों को ले लीजिये या ग्रीक-बाख्तरी राजाओंके सिक्कों को, सबमें ही बड़ी भावपूर्ण, सुन्दर वास्तविक आकृति मिलती है। मिनांदर आदि ग्रीक राजाओं ने भी अपने भारतीय राज्य के लिये रूपलांछित सुन्दर मुद्रायें चलाईं। शकों और पार्थियों ने ग्रीक-सिक्कों की नकल की। शकों की नकल हमार यहाँ गुप्तों और पीछे के राजवंशों ने की। गुप्तकालीन मूर्तिकला और चित्रकला बहुत उन्नत थी, लेकिन जब हम उस समय के सिक्कोंको ग्रीक सिक्कोंसे तुलना करते हैं, तो वह बहुत दरिद्र मालूम होते हैं। इसका कारण हमारे यहाँ पोर्त्रेत चित्रकलाका अभाव है। दारयबहुका सोनेका सिक्का दरिक कहा जाता था, जिसपर हाथ में हथियार लिये राजाकी मूर्ति होती थी। दरिकका सोना बिल्कुल खरा होता था। शुल्क या भूमिकरका हिसाब जहाँ दरिकमें होनेसे आसानी होती थी, वहां व्यापारमें भी इसके कारण बहुत सुभीता हुआ।

दारयबहुकी शासन-व्यवस्था इतनी अच्छी साबित हुई, कि उसकी बहुत सी बातोंको सिकंदर और उसके उत्तराधिकारियोंने अपनाया। पश्चिमी एसियामें तो वह आदर्श व्यवस्था मानी गई। भारतका मौर्य साम्राज्य उसके बाद स्थापित हुआ, जिसके पहले नंदोंका विशाल साम्राज्य स्थापित हो चुका था। उसने अपने केन्द्रीकृत शासनके लिये कितनी ही नई बातें बनाई होंगी। ईरानी साम्राज्यके उत्तराधिकारी ग्रीक-राज्योंसे सीधे संबंध रखनेवाले मौर्य साम्राज्य ने यदि दारयबहुकी शासन-प्रणालीसे कुछ बातें ली हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। शासनकी [illegible] लिए संचार और यातायातका अच्छा प्रबन्ध अनिवार्य है। मौर्यकालमें पटनासे तक्षशिला, उज्जयिनी और दूसरे शासन या व्यापार-केंद्रोंको राजपथ गये थे, जिनपर पांथशालायें तथा छायादार वृक्ष भी लगे हुए थे। सबसे पहले यह व्यवस्था बड़े विस्तृत रूपमें दारयबहुने की। उसके राजपथ राजधानी पर्शूपुरी (पर्सेपोलि) से मकदूनिया, मिस्र, भारत और मध्य-एसिया तक गये हुए थे, जिनमें डाकके घोड़े बराबर तैनात रहते थे। साधारण जनताको चाहे इस डाक-व्यवस्थासे लाभ न हो, किंतु केन्द्रको राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंमें क्या हो रहा है, इसका समाचार बहुत जल्द लग जाता था। ग्रीक लेखक बतलाते हैं, कि राजपथमें यातायातका बहुत सुभीता था, २५ किलोमीतर (चार योजन) पर अतिथिशालायें थीं, जहाँ ठहरनेका इंतिजाम था।

२. धर्म[1]

ईरानी शाह मज्दयस्नी अर्थात् भगवान् अहुरमज्दको माननेवाले थे। ज़र्थुस्त्रको कोई-कोई विद्वान् ६६० ई० पू० अर्थात् बुद्धसे प्रायः १०० वर्षपूर्व काकेशसके आज़ुरबाइजान प्रदेशमें पैदा हुआ मानते हैं और कुछ विद्वानोंका मत है कि [illegible] पिता विस्तास्प जर्थुस्त्रका संरक्षक और अनुयायी था। ऐसा होनेपर वह और बुद्ध समकालीन हो जाते हैं। ज़र्थुस्त्रसे पहलेके ईरानी धर्ममें क्या-क्या विशेषतायें थीं और उनमेंसे किन-किन बातोंको ज़र्थुस्त्रने छोड़ दिया, इसे बतलाना मुश्किल है। इतना तो कहा जा सकता है कि जर्थुस्त्रके सुधारके पहले का ईरानी धर्म, और उसके क्रियाकलाप ऋग्वेदिक धर्मके बहुत समीप थे। सारे शतम्-वंशमें ही नहीं, बल्कि हिंदू-यूरोपीय वाङमयमें 'देव' शब्द अच्छे अर्थोमें प्रयुक्त होता रहा। उसको राक्षसका पर्यायवाची बनाना ज़र्थुस्त्रका काम था। कितने ही अंशोंमें फर्क रखते हुए भी यज्ञ, सोम आदि कर्मकांडोंमें मज्दयस्नी और वैदिक धर्ममें समानता थी। अहुरमज्द और अंग्रमेन्यू (अह्रेमान) के नामसे येहोवा और शैतानकी तरहके भलाई और बुराईके दो स्रोतोंकी कल्पना शायद ज़र्थुस्त्रने यहूदियोंसे ली। ज़र्थुस्त्रके उपदेश पहले बहुत रहे होंगे, लेकिन उनमेंसे थोड़ी सी गाथायें ही आजकल अवेस्तामें मिलती हैं। सामीय पैगंबरोंकी तरह ज़र्थुस्त्रका भी दावा था, कि अहुरमज्दाने मुझे लोगोंका पथ-प्रदर्शक बनाकर भेजा है। जहां ज़र्थुस्त्रके (पार्सी) धर्मकी कुछ बातें सामीय धर्मसे मिलती हैं, वहां उसकी मुख्य शिक्षा हुमत (सुमत), हुख्त (सूक्त) और हूर्स्त (सुकृत) सम्यग ज्ञान, सम्यग्-वचन और सम्यक् कर्म अथवा मनसावाचा, कर्मणा सत्य पर कायम रहना पुरानी परंपराको ही बतलाती है। कहते हैं, ज़र्थुस्त्र को अपनी जन्मभूमि (आजुरबाइजान) में धर्मप्रचारमें सफलता नहीं मिली, तब वह पूर्वी ईरानके खुरासान प्रदेशमें चले गये, जहाँका राजा या क्षत्रप उस समय विस्तास्प (शाहनामाका गुस्तास्प) नये धर्ममें दीक्षित हुआ।

शाह, क्षत्रप, राजकर्मचारी और पुरोहित ये सब आरामका जीवन बिताते थे। साहित्य और कलाका आनंद वही ले सकते थे। साधारण जनता दास और कर्मकरके तौरपर पशुवत् जीनेका अधिकार रखती थी। दासताका तो उस वक्त सारे सभ्य जगत्में अखंड राज्य था।

३. क्षयार्श[2] (४८५-४६६ ई० पू०)

दारयबहुकी मृत्युके बाद उसका पुत्र क्षयार्श प्रथमने १६ वर्षो तक राज्य किया। वह अपने सुंदर रूप और सुपुष्ट शरीरके लिये बहुत प्रसिद्ध और प्रशंसित था, किंतु उसमें अपने पिता जैसी प्रतिभा और योग्यता न थी। तो भी उसकी महत्वाकांक्षा पितासे कम न थी। पिताने ग्रीक लोगोंसे पराजय प्राप्त की थी। क्षयार्श चाहता था कि उस कलंकको धो दिया जाय। वह उसके लिये तैयारी करने लगा। ग्रीसपर आक्रमण करनेसे पहले मिस्रनें बगावत हो गई और क्षयार्श उसे दबानेके लिये स्वयं वहाँ गया। उसको दबा देनेके बाद ४८१ ई० पू० में उसने ग्रीसपर अभियान किया। कहते हैं, इस अभियानमें १२०० जंगी जहाज तथा २३,१०,००० सैनिक (१७,००,००० पैदल १,००,

---

[1] इस्तोरिया (स्त्रूवे) पृ० ३८४-४५

[2] Historic Ancienne (G. Maspero) pp. 721

०००सवार बाकी नौसैनिक) थे। युरोपके भिन्न-भिन्न भागोंसे जो सहायता मिली थी,उसे शामिलकर लेने पर सेना-संख्या ५० लाख पहुँच जाती है। उस समय तक दुनियामें इतनी बड़ी सेना किसी अभियान में नहीं शामिल हुई। इतनी बड़ी सेना को रसद-पानी पहुँचाना और संचालन करना आसान काम नहीं था। जरूरतसे अधिक सेना भी अपनी कर्मण्यताको खो देती है, यह इस युद्धमें पता लगा। ग्रीस जातिने भी ईरानके आक्रमणको अपने जन्म-मरणका सवाल समझा और मुकाबला करनेके लिये सारी हेलेनिक (ग्रीक) जाति एक हो गई। अथेंसवालोंने जाना, हम अपने नगरकी रक्षा नहीं कर सकते, इसलिये उन्होंने अपने बाल-बच्चोंको दूसरी जगह भेज दिया और वह स्वयं भी नगरको खाली कर गये। शाही सेनाको मकदूनिया और थेसेली होकर गुजरनेमें कहीं बाधा नहीं हुई। उत्तर और मध्य ग्रीसके सभी हेलेनिक राज्योंने पहली ही मुठभेड़में ईरानकी अधीनता स्वीकार कर ली। थर्मापोलीमें पहला जबर्दस्त संघर्ष हुआ, जिसमें ग्रीक योद्धाओंने अपनी वीरताका अद्भुत परिचय दिया। ईरानी इस रास्ते पहाड़ी घाटीको पार कर नहीं बढ़ सके। लेकिन उन्हें दूसरे रास्तेका पता लग गया और वह उधरसे आगे बढ़ गये। कितने ही छोटे मोटे युद्धोंमें यूनानियोंको परास्त करते हुए ईरानी सेनाने अंतमें अथेंसको विजय कर लिया। अथेंसके काष्ठ प्राकार और उसकी मुट्ठी भर सेना ईरानियोंका क्या मुकाबला कर सकती थी? अत्तिका और अथेंसके विजयसे शाहने समझ लिया कि अंतिम विजय उसके हाथमें आना ही चाहती है; किंतु अथेंसवालोंने हथियार नहीं रखा। वह सलामी द्वीपमें लड़नेके लिये तैयार बैठे थे। अंतिम निर्णय सामुद्रिक युद्धमें होनेवाला था। सलामीकी तंग खाड़ीमें दोनों पक्षोंका युद्ध हुआ। यहाँ जगह बहुत कम थी, जिसमें ईरानके भारी भरकम सैनिक पोत फुर्तीसे काम नहीं कर सकते थे। यूनानी युद्धपोत हल्के और फुर्तीले थे। दिन भरकी लड़ाईमें ईरानके २०० जहाज डुबा दिये गये। ईरानियोंको विजयकी आशा नहीं रह गई। यूनानी शंकित हृदयसे सबेरे के वक्त आक्रमणकी प्रतीक्षा कर रहे थे, किंतु देखा, समुद्रमें शत्रुका एक भी पोत नहीं है। क्षयार्श खुद विजयका मुख देखे विना लौट गया। लेकिन अभी उसने आशा नहीं छोड़ी थी, और अपने सेनापति मर्दोनियसको [illegible] था। मर्दोनियसको एक दो सफलतायें मिलीं, जिनमें अथेंस पर फिर एक बार ईरानी ध्वजाका गड़ना था, किंतु वह स्थायी नहीं रही। अंतमें पलातियाके मैदानमें ग्रीक सेनाने ईरानी सेनाको बहुत बुरी तरह परास्त किया। मर्दोनियसको मरा देखकर शाही सेनामें भगदड़ मच गई।

इस असफलताके बाद १३ वर्ष और क्षयार्श जीता रहा, किंतु उसका वह जीवन बहुत ही जघन्य और विलासितापूर्ण था। अंतमें अपने महाप्रतिहार (शरीर-रक्षक अफसर) के हाथों उसे अपना प्राण खोना पड़ा। क्षयार्शके बाद और आठ अखामनी शाहंशाह हुए, जिन्होंने जैसे-तैसे नील तट तक फैले साम्राज्यको कायम रखनेकी कोशिश की। अखामनी शाहंशाहोंके नाम और काल निम्न प्रकार हैं :—

१७. दारयवहुका पारसीक साम्राज्य (४८५ ई० पू०)

१. कुरव ५५०-५२६ ई० पू०
२. कम्बुज ५२६-५२१ ई० पू०
३. गौमाता ५२१
४. दारयबहु (१) ५२१-४८५ ई० पू०
५. क्षयार्श (१) ४८५-४६६ ई० पू०
६. अर्तक्षथ्र (१) ४६६-४२५ ई० पू०
७. क्षयार्श (२) ४२५-४२४ ई० पू०
८. ... ...
९. दारयबहु (२) ४२४-४०५ ई० पू०
१०. अर्तक्षथ्र (२) ४०५-३५९ ई० पू०
११. अर्तक्षथ्र (३) ३५९-३३३ ई० पू०
१२. ... ...
१३. दारयबहु (३) ३३३-३३० ई० पू०

यद्यपि क्षयार्श (१) के बाद ही से आखामनी साम्राज्यकी वृद्धि रुक गई, किंतु अलिकसुन्दर से पहले उसका कोई सबल प्रतिद्वंदी नहीं हुआ। अर्तक्षथ्र (२) के समय (४०५-३५९ ई० पू०) मिस्रमें विद्रोह हुआ। ईरानके प्रतिद्वंद्वी ग्रीक मिस्रका समर्थन कर रहे थे, किंतु आपसी विरोधके कारण उतनी मदद नहीं कर सकते थे। मिस्रको दबना पड़ा, । अर्तक्षथ्र (३) (३५९-३३३ ई० पू०) ने राजवंशके सभी राजकुमारोंको मरवा डाला। इसके समय फिर मिस्रने स्पार्ता और अथेंसकी मददसे ईरानी जूयेको उतार फेंकना चाहा, किंतु फिर उसे दबना पड़ा। ईरानी शासन-केंद्रके एक छोरपर अवस्थित इस प्राचीन देशको यदि अभी भी ईरान दबा सकता था, तो सोग्दके भी ईरानी शासनसे स्वतंत्र होने की आशा नही करनी चाहिये, क्योंकि वह जातितः ईरानी था। संभवतः गंधार भी ईरानकी परतंत्रता किसी न किसी रूपमें स्वीकार करता रहा। ख्वारेज्म के लड़ाके अर्ध-घुमन्तू कभी ईरानकी शक्ति क्षीण होते ही स्वतंत्र हो गये—यही मसागेतोंके वंशज अब ख्वारेज्मके निवासी थे।

४. दारयबहु (३) (३३३-३३० ई० पू०)

यह [illegible] और १३ वां शाह था। कुलबध होते होते कुलोच्छेद सा हो गय था, जब कि इसे गद्दीपर बैठाया गया। इसे वीर और उदार बतलाया जाता है, लेकिन सवा दो सौ वर्षोंके पुराने राजवंशमे बहुत सी खराबियां आ गई थीं। शासनयंत्रमें ताजगी नहीं रह गई थी, उसके पुर्जे इतने निकम्मे हो गये थे, कि दारयबहुकी वीरता और उदारता बहुत मदद नही कर सकती थी और उसका मुकाबिला भी हुआ विजयी अलिकसुंदर से।

५. अलिकसुंदर (३३६-३२३ ई० पू०)

दारयबहु (१) ने थ्रेस और मकदूनिया जीत लिया था, यह हम पहले कह आये हैं। मकदूनिया कुछ समय पीछे तक ईरानी साम्राज्यका अंग रहा, किंतु ग्रीक के अभियानमें जो करारी

हार खानी पड़ी, उससे मकदूनियाको हाथमें रखना संभव नहीं हो सका। ३५६ ई० पू० में जब कि अर्तक्षथ्र (३) भागि कुलबश्चके बाद गद्दीपर बैठा, मकदूनियाका राजमुकुट फिलिपके शिरपर रक्खा गया। बड़े ही योग्य सेनानायक और अच्छा शासक होने के साथ ही वह बहुत महत्वाकांक्षी भी था। उसने राज्यशासन और सेना-संगठनमें ग्रीस और ईरान दोनोंसे बहुत सी बातें सीखीं। यद्यपि मकदूनीय भी ग्रीस जाति ही के थे, लेकिन अथेंस और स्पार्तावाले अपने इन उत्तरी भाइयोंको बर्बर और असभ्य समझते थे। फिलिपका २३ वर्षका शासन भारी तैयारीका था। ३३६ ई० में घरेलू झगड़ेके कारण उसे प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा, नहीं तो दो वर्ष बाद उसके पुत्रका ईरानपर महाभियान शायद पिता ही द्वारा होता। अथेंसको जीतते समय उसने ऐसे राजनीतिक कौशलका परिचय दिया, कि अभिमानी अथेनीय उसे हेलेनिक वीर मान उसके सहायक बन गये। अथेंस के महान विचारक अरिस्तातलको अपने साथ ला उसे उसने अपने पुत्र अलिकसुन्दरका शिक्षक बना दिया। ३३६ ई० पू० में पिताके मरनेके बाद २० वर्षकी उम्रमें अलिकसुन्दर मकदूनियाकी गद्दीपर बैठा। इस छोटी उम्रमें भी वह दो युद्धोंमें वीरता दिखा चुका था। ईरानी ढंगपर शिक्षित घुड़सवार सेना और अथेंसके ढंगपर शिक्षित पैदल सेना बापके दायभागमें उसे मिली थी।

पिताके बाद उसके उत्तर और दक्षिणके पड़ोसी शिर उठाने लगे, जिसके कारण अलिकसुन्दरको दो वर्ष तक उन्हें दबानेमें लगा रहना पड़ा और ३३४ ई० पू० में ही वह अपने महान् दिग्विजयके लिये प्रस्थान कर सका[1]। उसका लक्ष्य ईरानी साम्राज्य था, जो सिंध तक फैला हुआ था। अलिकसुन्दरकी सारी विजितभूमिको देखनेसे मालूम होगा, कि पंजाबमें थोड़ासा आगे बढ़ने की बात छोड़कर, उसने केवल ईरानी साम्राज्यको ही [illegible] इसलिये उसे कुरव और दारयबहुसे भारी विजेता नहीं कहा जा सकता। हां, यदि ईरानी साम्राज्यके जन-धनसे मुकाबिला किया जाय, तो प्रस्थानके समय वह ईरानके सामने कुछ नहीं था। एसियाके सारे यूनानी ईरानके साथ थे। ईरानका समुद्री बेड़ा भी बहुत विशाल और सुदृढ़ था। यद्यपि भीतरी कमजोरियोंके कारण ईरानको हारना पड़ा, किंतु ईरानी सेना जिस बहादुरीके साथ लड़ी, उससे उसकी प्रशंसा उसके शत्रु भी करते थे। ईरानकी सबसे बड़ी गलती यह थी, कि उसने अलिकसुन्दरके एसियामें घुसनेके समय ही मुकाबला नहीं किया। वह बिना रोकटोक समुद्र पार हो एसियाकी भूमिमें आ गया। प्रस्थानके समय अलिकसुन्दरके पास ३०,००० पैदल और ५००० सवार सेना थीं। ईरानने पहली लड़ाई ग्रनिकुसके तटपर की। ईरानी सेनाका सेनापति तथा शाहका दामाद मिथ्रदात अलिकसुन्दरके हाथों मारा गया। ईरानी सेनामें भगदड़ मच गई। पहली ही हारसे शाही सेनाकी हिम्मत इतनी टूट गई, कि सारे क्षत्र-पतियोंने अलिकसुन्दरको संगठित संघर्षका मुकाबला नहीं करना पड़ा। देशको उसके कायर क्षत्रपने बिना विरोधके अर्पण कर दिया। दारयबहुने जो तीन तीन प्रकारके अधिकारी क्षत्रप, सेनापति और राजामात्य हर प्रदेश में नियुक्त किये थे, केंद्रीय शासनके निर्बल होते ही बाकियोंको हटाकर क्षत्रपोंने दूसरे दोनों पद भी अपने हाथमें कर लिये। क्षत्रपके निर्बल होनेपर कोई दूसरा बचावका सहारा नहीं रह गया था। ईरानी साम्राज्यके प्रदेशोंको जीतनेके साथ अलिकसुन्दरके सामने भी शासनकी समस्या आई। उसने तीनकी जगह हर प्रदेशमें सैनिक और नागरिक दो प्रधान अधिकारी नियुक्त किये, साथ ही हर जगह सैनिक छावनियाँ

---

[1] वहीं पृ० ७५९-६१

कायम कीं, जिनमेंसे कितने ही उसीके नामपर अलिकसन्दरिया (अलमन्दा) नामसे विख्यात हुई। दिग्विजयका पहला साल अलिकसुन्दरने भूमध्यसागर-तटवर्ती प्रदेशोंको जीतने तथा क्षुद्र-एसियाको अकंटक बनानेमें लगाया। वह जानता था, अभी ईरानकी असली शक्तिसे मुकाबला नहीं हुआ है, इसलिये पृष्ठभूमिको मजबूत करके ही आगे बढ़ना उचित है। ३३३ ई० पू० में वह फिर आगे चला। दारयबहु (३) छ लाख सेनाके साथ इसुसमें उससे लड़नेके लिये तैयार था। युद्ध-क्षेत्र छ लाख सेनाके लड़नेके लिये पर्याप्त नहीं था, जिसके कारण ईरानी अपने संख्या बलका लाभ न उठा घाटेमें रहे। इसुसका युद्ध अलिकसुन्दरके लिये निर्णायक साबित हुआ। दोनों ओरकी सेनाओंमें भीषण संघर्ष हो रहा था। अभी यह नहीं कहा जा सकता था कि जीत किसकी होगी, इसी समय दारयबहु भयभीत हो युद्ध-क्षेत्रसे भगा। उसे भागते देख सेनाकी हिम्मत टूट गई और चारों तरफ भगदड़ मच गई। ग्रीक सेनाने भगोड़ोंके साथ जरा भी दया-माया नहीं दिखलाई। इस लड़ाईमें एक लाख ईरानी सैनिक काम आये। युद्ध-क्षेत्रमें भी अपनी शानके साथ ही ईरानका शाह जा सकता था। उसके साथ रनिवास और नौकर-चाकरोंकी भारी पलटन रहती थी। भागते वक्त शाहको इतना होश-हवास कहाँ था, कि अपने रनिवासको साथ ले जाता। यवनोंको दारयबहुके सारे हरमके साथ शाही खजाना भी हाथ लगा। अलिकसुन्दरने रनिवासके साथ बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव किया।

अलिकसुन्दरने इस विजयके बाद मिस्र और पश्चिमी एसियाके दूसरे प्रदेशोंको विजय करके आगे कदम बढ़ाया। अरवेला (मसोपोतामिया) में दारयबहुने फिर एकबार मुकाबला करना चाहा। यहाँ उसके साथ दस लाखसे ऊपर सेना थी। यहाँ भी निपटारा होनेसे पहले ही दारयबहु भाग खड़ा हुआ। उसे जमकर लड़नेकी फिर कभी हिम्मत नहीं हुई। अलिकसुन्दरने दो दिन उसका पीछा किया, किंतु उसे पकड़ नहीं सका। स्थान-स्थानपर अच्छी तरह नागरिक और सैनिक व्यवस्था करते वह राजधानी सूसामें दाखिल हुआ, जहां उसे शाही खजाना हाथ लगा। आगे अब ईरानके गर्भमें उसने प्रवेश किया। पहाड़ी इलाके के दर्रों और संकरे मार्गोंमें ईरानियोंने थोड़ा बहुत मुकाबिला किया, किंतु अब ग्रीकोंकी चारों ओर धाक जम गई थी। अपने दिग्विजयके चौथे साल (३३० ई० पू०) अलिकसुन्दर मुख्य राजधानी पर्शुपुरी (परसेपोलि) में दाखिल हुआ। यहाँ उसे अकूत खजाना हाथ लगा, जिसके ढोनेके लिये दस हजार खच्चर-गाड़ियों और पाँच हजार ऊँटोंकी जरूरत पड़ी। विजय मदोन्मत्त अलिकसुन्दरने राजधानीमें कत्लआम जारी कर दिया। दारयबहु (१) के बनाये विशाल स्तम्भोंवाले भव्य प्रासाद तथा दूसरी इमारतें जलने लगीं। क्षणभरमें वह वैभवपुरी अपनी अद्भुत कलाकृतियोंके साथ भस्मावशेष रह गई। पर्शुपुरीका यह निष्ठुर ध्वंस बतलाता है कि मकदूनिया सचमुच ही अभी बर्बर युगसे आगे नहीं बढ़ी थी। इस नृशंसताके ऊपर टिप्पणी करते हुए एक पश्चिमी इतिहासकारने लिखा है: "जो कलाके विरुद्ध युद्ध करता है, वह कुछ राष्ट्रोंके विरुद्ध ही नही, बल्कि सारी मानवताके विरुद्ध युद्ध करता है।"

अलिकसुन्दरको मालूम हुआ, कि दारयबहु हयतान (हम्दान) में युद्धकी तैयारी कर रहा है। वह तुरंत उधर दौड़ पड़ा। दारयबहु अपनी जान बचाता इधरसे उधर भागने लगा। अलिकसुन्दर जानता था, कि जब तक अखामनी शाह जिन्दा है, तब तक खतरा दूर नहीं होगा।

दारयबहुकी परित्यक्त ताजी लाश मिली। अलिकसुन्दरने शवको बड़े सत्कारके साथ पर्शुपुरीमें दफनाया, दारयबहुकी कन्या रोक्सानासे विवाह किया, जिससे एक पुत्र भी हुआ, किंतु जीते हुए देशोंको भोगनेका भाग्य उसके सेनापतियोंके संतानोंको प्राप्त हुआ।

स्रोत-ग्रंथ :

1. Persia (P. M. Sykes, 2 vols)

2. Histoire ancienne de peuples de l' Orient 3 vols. (G. Maspero Paris 1905)

3. The Ancient History of Near East (H. Hall, 1936)

4. Cambridge Ancient History (1928)

5. Histoire de l' Orient, 2 vols (A. Moret)

६. इस्तोरिया व् द्रेव्यानि किनगाख हेरोदोतस, अनुवादक फ० मिश्रेंको I, II (1885-1856), G. Rawlinson: Herodotus,

7. Ancient Empires of the East. (P. M. Syckes)

8. The Five great Monarchies (G. Rawlinson)

9. Eranische Alterthumskunde (Spiegel on the rock at Behistun)

10. Inscription of Darius, (H. Rawlinson,)

11. Le Peuple et la langue de Medes (Oppert)

अध्याय २

कंग[1] (ई० पू० ५वीं शती—ई० १ली शती)

[illegible] मध्य-एसिया विजय और वहांके ग्रीक शासनके बारेमें कहनेके पहले ख्वारेज्म पर एक दृष्टि डालनेकी आवश्यकता होगी। कुरव और दारयबहुके समय (५५०-४८५ ई० पू०) वहाँ मसागेत (महाशक) रहते थे, यह हम पहले कह आये हैं। यद्यपि सिर(एक्सर्त) दरिया, अराल समुद्र और कास्पियन समुद्र एक स्वाभाविक सीमा है, जिसके दक्षिण मध्य-एसियाका दक्षिणापथ है। लेकिन इस दक्षिणापथके पश्चिमी भागको भी रेगिस्तान ने स्वतंत्र प्राकृतिक प्रदेशका रूप दे दिया है। ख्वारेज्मके उत्तर तरफ सिरदरिया और अराल समुद्र प्राकृतिक सीमा हैं। उसके पूरबमें क़िजिलकुम (रक्तमरु) का महान् रेगिस्तान है, जो शत्रुके लिये किसी दुरारोह पर्वत-शृंखलासे कम कठिन नहीं है। ख्वारेज्मको दक्षिणमें कराकुम (कृष्ण मरु) मर्ग (मेर्व) प्रदेशसे अलग करता है। यद्यपि दक्षिणकी ओरसे वक्षु (आमूदरिया) ख्वारेज्ममें प्रवेश करती है, और जोही इसकी समृद्धिका कारण भी है, किंतु एक जगह नदीके दोनों किनारोंपर पहाड़ और रेगिस्तानके कारण मार्ग इतना संकरा हो जाता है, कि वहां शत्रुको आसानीसे रोका जा सकता है। इस प्रकार ख्वारेज्म राजनीतिक तौरसे ही नहीं बल्कि प्राकृतिक तौरसे भी एक अलग इकाई है, जिसे हम इसी रूपमें कुरवके राज्यारंभसे पहले भी पाते हैं। बहुत कम अपवादोंके साथ वह सोवियत क्रांतिके समय (१९१७ ई०) तक अपनी अलग सत्ता को कायम रक्खे रहा। आज वह उज्वेकिस्तान गणराज्यका एक भाग है।

१. केल्तमीनार संस्कृति (ई० पू० ४-३ सहस्राब्दी)

यदि हम ख्वारेज्मके पुराने इतिहासपर एक बार फिर दृष्टि डालें, तो नवपाषाण और अनवपाषाण युग (ई० पू० चौथी और तृतीय सहस्राब्दी) में यहाँ एक संस्कृतिको पाते हैं, जिसे सोवियत इतिहासवेत्ताओंने 'केल्त मीनार' संस्कृति नाम दिया है। केल्त मीनार निम्न वक्षु नदीसे उत्तरकी ओर जानेवाली पुरानी नहरोंमेंसे एक है, जिसके नाम पर इस संस्कृतिका नाम पड़ा। आजकल किजिलकुम (लाल रेगिस्तान) में इसी परित्यक्त नहरके उत्तरमें 'जाँबासकला' का ध्वंसावशेष है, जहाँ नवपाषाणयुगीन पाषाणास्त्र और मिट्टीके बर्तन मिले हैं। पुरातात्विक वस्तुओंसे तुलना करने के बाद सोवियत पुरातत्त्वज्ञ इस परिणामपर पहुँचे हैं, कि उस काल में जो संस्कृति यहाँ पर थी, उसके अन्दर दक्षिणी उराल, सिरदरियासे पूर्वी तुर्किस्तान से लेकर

---

[1] "नोवियै मतेरिअली पो इस्तोरिइ कुल्तुरि द्रेव्नओ खोरेज्मा" (स० प० ताल्स्तोफ) वेस्तुनिक द्रेव्नेइ इस्तोरिइ १९४६ (१) पृ० ६०-१००

दक्षिण में हिन्द महासागरके तट तक अेक ही प्रकारकी संस्कृति मौजूद थी। भाषाके विचारसे मुण्डा-द्रविड भाषा जहाँ एक ओर इस संस्कृतिवाले लोगोंकी भाषा रही, वहाँ दूसरी ओर उइगुर भाषाकी मातृस्थानीया प्राचीन बोली बोली जाती रही।
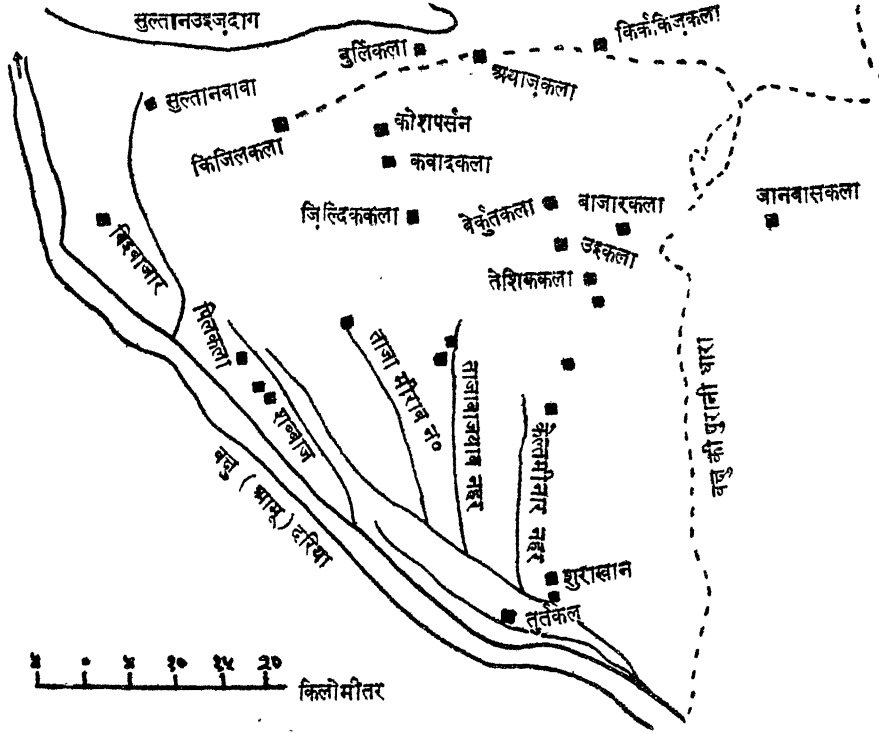
१८. ख्वारेज़्म मरुभूमि की पुरानी संस्कृतियाँ

२. ताजाबागयाब संस्कृति (ई० पू० २ सहस्राब्दी)

द्रविड या केल्तमीनार संस्कृतिके बाद ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी में ख्वारेज्ममें उसका स्थान एक दूसरी संस्कृति लेती है, जो उसी नामकी एक परित्यक्त नहरके पास होनेके कारण ताजाबागयाब संस्कृति कही जाती है। यह संस्कृति उसी तरह अपने पहलेकी द्रविड संस्कृतिका स्थान लेती है, जैसे सिंधु-उपत्यकामें पुरानी संस्कृतिवालों का स्थान आर्य लेते हैं। अेक तरह कहा जा सकता है, कि द्रविड संस्कृतिका स्थान-विनिमय पहलेपहल ख्वारेज्मकी भूमिमें आर्यों ने किया था। केवल हिंदू-आर्य और ईरानी-आर्य यही दो जातियां अपनेको आर्य कहती हैं, शक अपने लिये आर्य शब्द का प्रयोग करते थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हो सकता है, ख्वारेज्ममें शक नहीं उनके भाईबंध आर्य ही द्रविडोंका स्थान लेनेमें सफल हुए हों। पुरातात्त्विक अवशेषों की तुलना करनेसे पता लगा है, कि ताजाबागयाब संस्कृति [illegible] अंद्रोनोफ संस्कृतिसे घनिष्ठ संबंध रखती थी, जो कि सिबेरियाके दक्षिणमें वोल्गासे अल्ताई तक फैली हुई थी। इस संस्कृतिके लोग

कुछकुछ आदिम कृषि भी जानते तथा, अधिकतर नदीके किनारे रहते और तांबे के हथियारों का प्रयोग करते थे। मध्य-अेसियामें आया यह पहला हिंद-युरोपियन जन था। जिस वक्त यह लोग ख्वारेज्ममें रहते थे, उस वक्त कराकुम रेगिस्तानके पार दक्षिणमें अनौकी संस्कृति मौजूद थी। इसके लोग शिकारी, मछुवाही और कुछ आदिम ढंग की खेती करते थे। शायद उनका संबंध ताजाबा गयाब संस्कृतिके लोगोंसे न होकर भमध्यसागरीय जातियों अर्थात् केल्तमीनारसे अधिक था, जब कि ताजाबागयाब संस्कृतिके लोगोंका संबंध पूर्वी यूरोप में थ्रेस और किमेरी तथा क्षुद्रएसियामें हित्ताइत जातिसे था।

३. ताजामीराबाद संस्कृति (ई० पू० १ सहस्राब्दी)

ताज़ामीराबादकी परित्यक्त नहरके उत्तरमें [illegible] में इस संस्कृतिके अवशेष मिले हैं। पहले लोगोंके बारेमें हम नहीं कह सकते, कि वह शकोंसे संबंध रखते थे या आर्यों से, किंतु ताज़ामीराबाद संस्कृतिके लोगोंका संबंध शकोंसे था। इनकी संताने आगे आलान और फिर ओसेतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। ओसेती जाति आज भी अपनी भाषाके साथ काकेशसकी एक घाटीमें मौजूद है। ताजामीराबाद संस्कृति भी ताम्रयुगकी संस्कृति थी। यह लोग मिट्टीकी दीवारोंवाले लंबे घरोंमें रहते और आजीविकामें ताज़ाबागयाब संस्कृतिसे बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़े थे।

४. आदिम कंग (७००-५५० ई० पू०)

ई० पू० प्रथम सहस्राब्दीके प्रथम पादसे जब द्वितीय पादमें हम बढ़ते हैं, तो ख्वारेज्मकी भूमिमें नहरोंका एक जाल सा बिछा देखते हैं—यह नहरोंका युग था। छोटी-छोटी इकाइयोंमें बँ[illegible] थे। ५५० ई० पू० में कुरव अखामनी साम्राज्य कायम करने में सफल हुआ, लेकिन दो दशाब्दियों बाद उसे यहांके मसागेतोंको पराजित करने में आंशिक ही सफलता मिली और आगे भी शताब्दीसे अधिक अखामनी शासनको कंगोंने नहीं माँना। नहरोंके युगके प्रवर्तक कंगोंके पूर्वज मसागत (प्राचीन कंग) ही रहे होंगे। ई० पू० ७वीं सदीमें उनका केंद्रीय शासन स्थापित हो चुका था। नहरोंके युगमें बहुत से नगर बसे थे, जो कि आजकल किज़िलकुमकी मरुभूमिके पेटमें पड़े हुए हैं। केल्तमीनारसे उत्तर कुमवसनकला, तेशककिला, बेर्कुतकला और उइकला, तथा ताजाबागयाब के उत्तरमें [illegible] नारीजानबाबा भी उसी कालके नगरोंके ध्वंस हैं। जान पड़ता है, ताजाबागयाब नहरका पानी जिल्दिककला तक जाके खतम होता था।

पिछले १३-१४ वर्षोंसे लगातार सोवियतके पुरातात्विक अभियान हर साल किज़िलकुमके ध्वंसावशेषोंकी जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। वहां बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई हैं, लेकिन इसे अभी खोजका आरंभ ही समझना चाहिए।

५. कंग (५-१ सदी ई० पू०)

कुरबकी विजय ख्वारेज्मपर स्थायी नहीं हुई थी। वह यदि राजनीतिक विजय न भी हो, तो भी अखामनी युगकी ईरानी संस्कृतिकी विजय तो अवश्य हुई। यदि सोग्द किसी न किसी

रूपमें अलिकसुन्दरके मध्यऐसिया-विजय तक अखामनी साम्राज्यका अंग था, तो ख्वारेज्म ईरानके सांस्कृतिक साम्राज्यका भी अंग अवश्य रहा। ई० पू० चौथी सदीके आरंभमें उवारेज्म (ख्वारेज्म) के कंग स्वतंत्र हो गए, और कितने ही समय तक दुर्बल अखामनी साम्राज्यके प्रदेश पार्थिया (मेर्वसे कास्पियन तक), आरियन (हिरात प्रदेश) और सोग्द कंगोंके लूटमारके क्षेत्र बने रहे। आगे जब अखामनी साम्राज्यको अलिकसुन्दरने नष्ट करके विशाल यवन-राज्यकी स्थापना की, और बाख्त्रियाको लेते हुए सोग्दपर अपनी विजय-ध्वजा गाड़नी चाही, तो अपने वीर नेता स्पिता-माके नेतृत्वमें सोग्दियोंने ग्रीकोंके साथ संघर्ष किया। उस समय कंग उनके सहायक थे। ख्वारेज्म यवन-साम्राज्यके विरोधियोंका केन्द्र अलिकसुन्दरके समय ही नहीं रहा, बल्कि उसके उत्तरा-धिकारियों सेलूकियों और ग्रीक-बाख्त्रियोंके साथ भी कंगोंका संघर्ष बराबर जारी रहा। इन्हींके नेतृत्व और सहायतासे ई० पू० तृतीय शताब्दीके मध्यमें शकोंके एक जन पार्थियोंको आगे बढ़नेका मौका मिला। १६० ई० पू० के आसपास तो कंग इतने दृढ़ हो गये थे, कि उन्होंने सोग्दसे बाख्त्रिया-का प्रभाव हटा दिया। लेकिन उनकी सफलता देर तक नहीं रही, क्योंकि थोड़े ही समय बाद यूची शक अपनी जन्मभूमिसे भागते हुए इस ओर आये। यूची सैलाबमें सोग्द और बाख्त्रिया बह गये और १३० ई० पू० के बाद हम ग्रीको-बाख्त्री राज्यका पता नहीं पाते। इस कालमें ख्वारेज्म स्वतंत्र रहा। कंग भी उसी तरह शकोंकी एक शाखा थे, जैसे कि यूची और पार्थिय। साथ ही उनपर विजय प्राप्त करना आसान काम नहीं था, इसलिए ई० पू० प्रथम शताब्दीके अन्त तक वह स्वच्छन्द बने रहे।

कंग-कुषाण (ई० १-३ सदी)

ईसाकी प्रथम शताब्दीके आरम्भमें कुषाणोंने अपने भाई-बंधु यूचियोंके राज्यको ले जहाँ पूरबमें पंजाबसे पूर्वी भारत तक अपना राज्य विस्तार किया, वहाँ पश्चिममें वह कंगोंको लेते हुए अराल समुद्र तक पहुँच गये। इस समय ख्वारेज्मकी समृद्धि अक्षुण्ण रही, यह उस कालकी नहरों और बढ़े हुए नगरोंसे पता लगता है। कुषाण समय में शकवंशी होनेके कारण, जान पड़ता है, अधीन करनेके बाद भी कंगोंके साथ कुषाणोंका वर्ताव बहुत कुछ समानताका था। अखामनी साम्राज्यके कायम होनेपर मिदियावालोंके साथ जैसा वर्ताव अखामनियोंने किया, वही बात यहां भी मालूम होती है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि भारत के लोग भारतमें आये कंगोंको कुषाण-शासकोंमें ही गिनते हों। पोशाक, रीति-रवाज और खान-पान में सभी शक जातियाँ समानता रखती थीं। गोरा रंगरूप भी कंगोंका कुषाणों जैसा ही था, जिसे कि हमारे वैद्य उनके अधिक पलांडु-भक्षणके कारण बतलाते थे।

ईसा की ३-४थी शताब्दीमें कंग फिर स्वतंत्रसे हुए दीख पड़ते है। इस समय वह कुषाण और सासानी साम्राज्योंके मध्यवर्ती तटस्थ राज्यका पार्ट अदा करते है। पांचवीं शताब्दीमें हेफ़ताल (एफ़ताल, श्वेत हूण) कुषाण-राज्यको मध्य-एसिया और पंजाबसे खत्म करते है। इसी समय [illegible] पेइकंद कंगोंको दबानेमें सफल होता है। एफ़तालोंके लिये लड़ाकू कंग बड़े सहायक साबित हुए, इसलिए एफ़ताल घुमन्तुओंका—जिन्हें लोग शकोंका वंशज न समझ हूण कहनेकी गलती करते हैं—बर्ताव कंगोंके साथ अच्छा था। जान पड़ता है, कुषाणों और दूसरे शक

शासकोंका जब नेतृत्व बदला, तो एफ़तालों (हेफ़्तालों) ने उनका स्थान लिया। तभी उनको कुषाणों, कंगों और दूसरे शकोंकी भारी घुमन्तू सेना अनायास मिल सकी।

जानबासकला, कोई-क्रिलगानकला, लघुक्रिकिज़, वयूनेर्ली-कला, अकतेपे कंगोंके ई० पू० ४-५ सदी और प्रथम शताब्दीके बीचके ध्वंसावशेष हैं, जिनमें उनकी संस्कृतिका पता लगता है। कलल्लीगिरके ध्वंसावशेषोंमें बहुतसी मूर्तियाँ, सिक्के और तरह-तरहके मिट्टीके बर्तन मिले हैं। मिट्टीके बर्तनोंमें सिंहमुख वाले हत्थे लगे हुए हैं। जानवास-कलाके ध्वंसावशेषसे पता लगता है, कि ई० पू० चौथी सदीमें कंग संस्कृति बहुत उन्नत थी। ई० पू० तृतीय शताब्दीमें तो उनके सिक्कोंमें ग्रीक सिक्कोंकी नकल करनेकी कोशिश की गई और उनपर ग्रीक अक्षर अंकित किये गए। कुषाण-कालीन अयाजकला, जिल्दिक, तोप्रककला जैसे ध्वंसावशेष और भी अधिक समृद्ध हैं। कुषाणोंका शासन भारतमें भी था, और वहाँ उनके लेख तथा मूर्तियाँ भी मिली हैं, लेकिन कुषाण वास्तुकलाके अच्छे नमूने हमें हालकी ख्वारेज्मकी खुदाइयोंमें मिले हैं। ग्युरकला (चैमेनपाब नहरके ऊपर) और बाजारकला इस समयके बड़े सुन्दर नमूने हैं। अभी भी, जान पड़ता है, पीतलके तिकोने शर-फल कंग लोग इस्तेमाल करते थे। ई० पू० छठी शताब्दीमें अखामनी सेनामें होकर लड़नेवाले शक पीतलके हथियारोंको इस्तेमाल करते थे, यह हमें मालूम है।

६. कुषाण-अफ्रीग (ई० ३—५ सदी)

ईसाकी ३री से ५वीं शताब्दीकी ख्वारेज्मकी संस्कृति कुषाण-अफ्रीग संस्कृति कही जाती है। इस संस्कृतिके आरंभके साथ कंगोंका वैभव नष्ट हो जाता है। एक तरहसे इसे प्राचीन तथा अर्वाचीन ख्वारेज्मका संधिकाल कह सकते हैं। इस समय नहरें टूटने लगती हैं, नगरोंको रेगिस्तान निगलने लगता है और धीरे धीरे बालूमें अन्तर्धान होती सी उनकी मिट्टीकी मोटी दीवारें बनी रहती हैं। वर्षाके नाममात्र होनेके कारण डेढ़ हजार साल बाद भी क्रिजिलकुमकी मरुभूमिने इन नगरोंकी ऐतिहासिक महत्वकी बहुत सी चीजोंको सुरक्षित रक्खा, जिनसे उस समयके मानव-जीवनपर बहुत प्रकाश पड़ता है। इन पुराने नगरोंकी पिछली १३-१४ सालोंकी खुदाईमें बहुतसे सिक्के और मूर्तियां ही नहीं, बल्कि चर्मपत्रपर लिखे कंग भाषा के अभिलेख मिले हैं। अफ्रीग कालके आरंभिक समयके ध्वंसावशेषों—तोप्रककला, यक्केपर्सन और लघु-कवादकला—ने कितनी ही ऐतिहासिक महत्वकी चीजें दी हैं। कवादकलाके ध्वंसावशेषकी खुदाईसे ताल्स्तोफ़के सहायक पावलोफ़ने उसकी असली आकृतिका जो चित्र अंकित किया है,[१] उससे मालूम होता है, कि इस समय के ख्वारेज्मकी संस्कृति पिछड़ी नहीं कही जा सकती। यक्के-परसन[२] में एक पुराने अग्नि मंदिरका ध्वंसावशेष मिला है, जिससे प्राचीनकालकी जर्थुस्त्री अग्निशालाका परिचय मिलता है। तोप्रककलाके नगर को देखनेसे कुषाणकालीन नगरों का अच्छा ज्ञान होता है।

७. अफ्रीग संस्कृति (६—५ सदी)

अफ्रीग संस्कृतिके अवशेष बेर्कुत-कला तथा तेशिक-कलामें मिले हैं। ख्वारेज्मकी संस्कृति

---

[१] वेस्त० द्रे० १९४६ पृष्ठ० ८३;

[२] वहीं पृष्ठ ७७,

[३] वहीं ७३

अपने इसी रूपमें सबसे पहिले अरब विजेताओंके संपर्कमें आती है, लेकिन ख्वारेज्मका दुर्गम मार्ग सैन्य-विजयके बाद भी कितने ही समय तक अरबोंको अपने भीतर घुसने नहीं देता। इस्लामिक प्रभाव अंततः सामानी कालमें ही ख्वारेज्ममें पहुँच पाता है। दसवीं सदीके अंतमें ख्वारेज्मका प्रसिद्ध विद्वान् अबूरेहाँ अलबेरूनी पैदा हुआ। वह भारतकी विद्या और संस्कृतिका इतना सम्मान क्यों करता है? इसीलिए कि वह कंग और अफ़्रीग संस्कृतिका उत्तराधिकारी था। अरबों और बादमें गजनवियोंके हाथमें पराधीन होनेके बाद भी उसे ख्वारेज्मके प्राचीन वैभवका स्मरण था। ११वीं शताब्दीके आरंभ में भारतके नगरों और वैभवपूर्ण देवालयोंको ध्वस्त होते देखकर उसे प्राग्-इस्लामिक ख्वारेज्म याद आता था।

स्रोत-ग्रंथ :

१. खोरेज्म्स्कया एक्स्पेदित्सिया १९३९ (स० प० तालस्तोफ़)
२. नोविये मतेरिअली पो इस्तोरिइ कुल्तुरि द्रेव्नओ ख्वारेज्मा (स० प० ताल्स्तोफ़,
३. वेस्त० द्रे० इस्तोरि, १९४६ (१) पृ० ६०-१००
४. इस्तोरिया द्रेव्नओ वोस्तोका (व० व० स्त्रूवे, १९४१)
5. Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn, Cambridge 1938)
6. Les Scythes (F. G. Bergrmann)

अध्याय ३

ग्रीक-बाख्त्री (३३०-१३० ई० पू०)

यद्यपि अलिकसुंदर ने गंगमेला (अरबेला) के युद्ध में ईरानियों की कमर तोड़ दी, तो भी अखामनी साम्राज्य को पूर्णतया विजय करने में उसे तीन साल (३३४–३३१ ई० पू०) लगाने पडे। वह पर्शुपुरी और पसरगदै के भव्य नगरों की होली जलाकर अख्वतन की ओर होते दारयवहु (३) को पकड़ने के लिये उसका पीछा कर रहा था। इसी समय वाख्त्रिया का क्षत्रप-सेनापति वेस्सुस नामक एक राजवंशी पुरुष था। अभागा दारयवहु अपने भाईबंद के पास शरण लेने जा रहा था। वेस्सुस ने उसे भेंट दे अलिकसुंदर का कृपापात्र बनना चाहा। वह शाह को बांधकर एक ढंके रथ पर बैठा अखबतन की ओर चला। उस समय अलिकसुंदर कास्पियन के किनारे पहुँचा था। जब उसे खबर लगी, तो वह इस कारवां की ओर दौड़ पड़ा। रथ धीरे-धीरे चल रहा था, इसलिये वेस्सुस्ने दारयवहु को घोड़े पर चढ़ाकर जल्दी ले जाना चाहा। शाह ने उसकी बात मानने से इन्कार कर दिया। बेस्सुस् ने आखिर में उसे घायल करके मरता छोड़ दिया। मरने से कुछ ही क्षण पहले अलिकसुंदर वहां पहुँचा। उसने अपने शत्रु के दुर्भाग्य पर आंसू बहाया, और उसके शरीर को मोमियायी बना बड़े सम्मान-प्रदर्शन के साथ पर्शुपुरी में दफनाया। वेस्सुस् ने बाख्त्रिया लौट कर अर्तक्षथ्र चतुर्थ के नाम से अपने को प्राची का शाह घोषित कर चार वर्षो तक (३३३–३२९ ई० पू०) शासन किया।

१. अलिकसुंदर (३३४-२३ ई०पू०)

अलिकसुंदर ने क्रमशः आजकल के खुरासान, सीस्तान, बिलोचिस्तान, कंधार और काबुलिस्तान को जीता। काबुल से ३२९ ई० पू० में वह अन्दराप पर चढ़ा। फिर २५०० सवारों के साथ जा उसने ओरनो (गोरी या खुल्म) और बाख्तर (बलख) को ले लिया। बेस्सुस् के [illegible] से बाख्त्री लोग इतने चिढ़े हुए थे, कि उन्होंने उसका साथ छोड़ दिया। उसने वक्षु पार भागकर नदी की नौकायें नष्ट कर दीं, कि अलिकसुंदर पार न हो सके, लेकिन यवनोंने चमड़े की मशकों और बोरों में पुवाल भर कर उन्हें नावों की तरह इस्तेमाल किया और फिर अपने शत्रु का पीछा किया। बेस्सुस् ने अपने को बिल्कुल कायर साबित किया। पहले सोग्दीय नेता स्पितामा उसका प्रधान सहायक था, लेकिन जब उसकी कायरता देखी, तो उसे बांधकर

---

[1]Histoire Ancinne des Peoples de l'orient (G. Maspero) pp. 759-61
इस्तोरिया द्रेव्नेओ वोस्तोका (व० व० स्त्रूबे) पृ० ३८७-३८८

अलिकसुंदर के पास ले गया। अलिकसुंदर ने इस विश्वासघाती को दंड देने के लिये ईरानियों के पास अखबतन भेज दिया, जहां उसे कतल कर दिया गया।

अलिकसुंदर की विजयिनी सेना वक्षु के दाहिने तट से आगे बढ़ती गई। स्पितामा के भक्ति दिखलाने पर भी जब सोग्दों को यवनों की बुरी नीयत का पता लगा, तो उन्होंने भी तलवार म्यान से निकाल ली। अलिकसुंदर ने अपने घोर पशुरूपका परिचय दिया और आसपास के इलाकों को लूटमार कर बर्बाद कर दिया। ग्रीक सेना मरकंदा (समरकंद) को जीतती यक्सर्त (सिरदरिया) के किनारे पहुँची। उन्हें युरोप से ही मालूम था, कि शकों के देश में तनाई (दोन) नामक बड़ी नदी है। यहां उन्हें सोग्द से उत्तर शकों की भूमि का पता लगा, तो उन्होंने यक्सर्तको भी तनाई समझ लिया। सिरदरिया के तट पर शायद खोजन्द (वर्तमान लेनिनाबाद) के पास उसने अलिकसुंदरिया के नामसे नगर बसाना चाहा। सोग्दियों ने इसे अपनी चिर-दासताकी बेड़ी समझकर भीषण विद्रोह कर दिया, जिसमें वाह्लीक (बाख्तरी) भी उनके सहायक हुए। थोड़े ही दिनोंमें लोगोंने कुरवपुरी (किरोपोलिस) और दूसरी जगहकी ग्रीक छावनियोंपर अधिकार कर लिया, लेकिन अलिकसुंदरने बड़ी क्रूरता दिखलाते हुए कुछ ही दिनोंमें विद्रोहको दबा दिया। इसी समय उसने सुना, कि यक्सर्तके पार शक लोग आक्रमण करनेके लिये इकट्ठा हो रहे हैं और मरकंदाकी ग्रीक छावनीको स्पितामाने घेर लिया है। उसने एक बड़ी सेना मरकंदाके उद्धारके लिये भेजी और स्वयं यक्सर्त नदीके तटपर जा १७ दिनोंमें अलिकसुन्दरिया नगरी बसाई। नगरीका घेरा ६० स्तदिया (१२००० या ६.८२ मील) था। उस समय अलिकसुंदर शत्रुओंसे घिरा था, बीमारीने उसे दुर्बल बना दिया था, लेकिन तो भी उसने हिम्मत नहीं छोड़ी और नदी पार होकर शकोंसे लड़ना चाहा, किंतु ग्रीक सेना नदी पार जानेके लिये तैयार नहीं हुई। इसीलिये नदीके बायें तटपर अलिकसुन्दरिया नामक नये नगरको बसानेकी अवश्यकता पड़ी। नगरके बस जानेपर बेड़ेसे नदी पार हो ग्रीक सेनाने शकोंको पूर्ण पराजय दी और उन्होंने दूत भेजकर अधीनता स्वीकार की। ये शक कंग और वू-सुन रहे होंगे—इस समय फर्गाना और ताशकन्द इलाकेमें शकोंकी आबादी थी।

मरकंदाके उद्धारके लिये जो सेना भेजी गई थी, उसे स्पितामाने पोलितिमेनस् (बहु-रत्न) उपत्यकामें नष्ट कर दिया। खबर मिलते ही अलिकसुन्दर दौड़ा और चार दिनमें मरकंदा (समरकंद) पहुंच गया। स्पितामा बाख्तरकी ओर भगा। अलिकसुन्दरने खिसियानी बिल्ली की तरह सारे सोग्द देशको बर्बाद कर दिया। स्पितामाका पीछा करते हुए जारिअस्पा (हजारास्प, बैकंद) में उसने ई० पू० ३२९-३२८ का जाड़ा बिताया। स्पितामा के रक्षक ख्वारेज्मके शक्तिशाली कंग थे, इसलिये उसको परास्त करना आसान नहीं था। वसंतमें १९००० नई ग्रीक सेनाकी कुमक अलिकसुन्दरके पास पहुंच गई, जिसकी मददसे उसने ३२८ ई० पू० के वसंतमें मर्गियाना (मेर्व) प्रदेशको जीता। मध्यएसियामें अलिकसुन्दरको दुर्धर्ष शत्रुओंसे मुकाबला पड़ा था। पेत्रा-ओक्सियाना (मशहदसे उत्तर-पूरब कलानादरी,) इतना सुदृढ़ साबित हुआ कि उसे अलिकसुन्दर दो साल तक सर नहीं कर सका। यहांका सोग्दीय सेनापति अरिमज उसके लिये लोहेका चना साबित हुआ। अंतमें इस वीर दुर्गपालने आत्मसमर्पण किया। अलिकसुंदर वीरोंका कितना सम्मान करता था, इसका पता उसने अरिमजको नहीं बल्कि उसके संबंधियों तथा दूसरे प्रधान सरदारोंको दारपर खिचवा करके दिया। अलिकसुंदरकी रानी रोक्सानाको कोई कोई
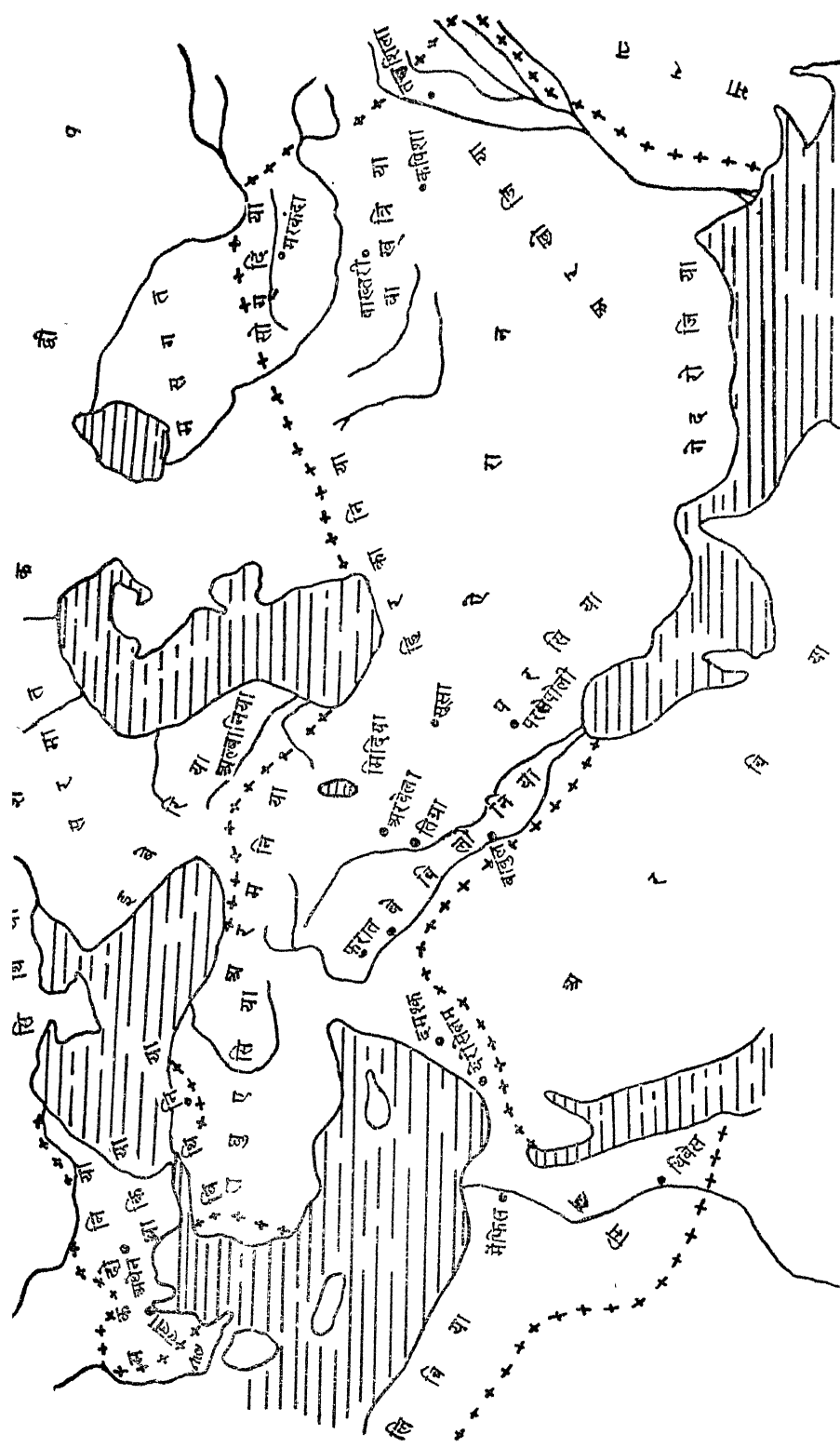
इतिहासकार दारयबहुकी कन्या बतलाते हैं और किसी किसीका कहना है कि वह सोग्दीय सामन्त ओक्सार्तकी दुहिता थी, जिसे यहींपर अलिकसुंदरने पाया। मरग्याना (मेर्व) नगरके दक्षिणमें उसने दो छावनिया या दुर्ग बनाकर वहां अपनी सेना रक्खी। शायद यह छावनियां सरक्स (हरी-रुदके किनारे) और मेरुचक (मुर्गाब तटपर) में थीं।

इस विजयके बाद अलिकसुंदर बाख्त्रिया पहुंचा। वहां उसने चार यवन छावनियां स्थापित कीं, जो संभवतः मेमना, अंदकुई, शाबुरगान और सरीपुलमें थी। वहांसे वह फिर मरकंदा लौट आया। स्पितामा अब भी बहादुरीसे लड रहा था, लेकिन धीरे धीरे यवनोंका पल्ला भारी हो रहा था। अलिकसुंदर भी अपने शत्रुको न पाकर देशवासियोंसे बदला ले रहा था, इसलिए घुमन्तुओंने स्पितामाका सिर काटकर अलिकसुदरके पास भेज दिया। ३२८-३२७ ई० पू० के जाड़ोंको [illegible] रहा था। इसी समय उसे अपने वीर तथा विश्वासपात्र सेनापति क्लेइतकी हत्याकी खबर मिली। ख्वारेज्मके सिवाय अलिकसुदर सारे पश्चिम मध्य-एसिया (यक्षर्तके दक्षिण) को जीत चुका था। अब उसका ख्याल भारत-विजयके लिये हुआ। ३२७ ई० के वसंतमे भारतकी ओर प्रयाण करते समय उसके साथ १०००० पैदल और ३०००सवार सेना थी। गंधार-विजय करते व्यास तटपर वह नंदसाम्राज्यके पास पहुंच रहा था, जब कि उसकी सेनाने आगे बढनेसे इन्कार कर दिया और ३२६ ई० पू० में उसे वहांसे लौटना पड़ा। उसने सेनाके एक भागको समुद्रपथसे बाबुल भेजा, और दूसरेको साथ लिये स्थल मार्गसे लौटा। ३२४ ई० पू० में वह ओपिस (बगदादके पास) पहुंचा। यूनानी वैसे भी अलिकसुंदरके शाहाना ठाटको पसंद नही करते थे, । पूर्वी लोगोंको यूनानियोंके बराबरका स्थान देनेसे वह और असन्तुष्ट हो गये। यहां सभी यूनानियोंने पंचायत कर घर जानेकी मांग पेश की। अलिकसुंदर सरगनोंको उसी समय प्राणदंड दिलवा सेनाको खूब फटकार कर महलमें चला गया। अब उसने खुलकर ईरानियोंको शरीररक्षक, दरबारी तथा दूसरे बड़े बड़े पद देने शुरू किये। यूनानियोंने अन्तमें उससे क्षमा मांगी। अलिकसुदर फिर विजययात्रा की धुनमें लगा, किंतु ३२३ ई० पू० में जब वह बबेरु (बाबुल) मे पहुंचा, तो बीमारीने धर दबाया और ३३ वर्षकी उमरमें उसका देहांत हो गया।

अलिकसुंदरकी मृत्युके समय बाख्तर और सोग्दका यवन राज्यपाल (स्त्रतेगोस) अमिन्तस था। मृत्युकी खबर बाख्तर पहुंची, तो यवन-सेनाने विद्रोह कर दिया, मगर उसे जल्दी दबा दिया गया। अमिन्तस्की जगह फिलिप (एलिमेयसीय) साल भर राज्यपाल रहा। फिर उसे पर्थियाका राज्यपाल बनाकर भेज दिया गया और उसकी जगह स्तपनोर आया, जिसने २१ साल (३२१-३०१ ई० पू०) तक बाख्तर-सोग्दका शासन किया।

द्वन्द्वितामें नाममात्रका शासक रहा। ३१२ ई० पू० के बाद तो दूसरोंकी तरह सेल्युक बिल्
स्वतंत्र शासक हो गया। अन्तिगोनकी सहायतासे उसने अपने पहलेके शासित प्रदेशमें सूसियाना
भी मिला लिया। अन्तिगोनसे झगड़ा होनेपर सेल्युकसको ३१६ ई० पू० में मिस्र भाग जाना प
लेकिन चार वर्ष बाद (३१२ ई० पू० में) वह फिर बाबुलका स्वामी बन गया। इस सफलत
उपलक्ष्यमें तभी (३१२ ई० पू०) उसने सेल्युकीय संवत चलाया। तो भी अभी तक उसने सेन
पतिकी उपाधि ही रक्खी और राजा (वसीलेउस्) की उपाधि ३०६ ई० पू० में हीं धारण कं
बख्त्रिया और सोग्दको उसने फिरसे जीतकर अपने राज्यमें मिलाया।अलिकसुदरकी मृत्युके ब
जो अव्यवस्था हुई, उसमें पंजाब और काबुल स्वतंत्र हो गये। सेल्युकसने फिरसे इस भागको जीत
चाहा, जिसके कारण ३०५ ई० पू० में चंद्रगुप्त मौर्यसे उसकी मुठभेड़ हो गई जिसमें "विजेत
राजा, सेल्युकस" को बुरी तरहसे हारना पड़ा। सिंधु और परोपनिसदै (हिंदूकुश) के बीच
सारा प्रदेश चंद्रगुप्तने ले लिया और सेल्युकसको अपनी लड़की देकर भीषण पराजयपर मोह
लगानी पड़ी। यवन विजेताओं की यह पहली भीषण पराजय थी। २८० ई० पू० में सेल्युक
अपने एक अफसरके हाथ मारा गया और उसका उत्तराधिकारी अंतियोक प्रथम (२८१-६२ ई
पू०) हुआ। सेल्युकसका तीसरा उत्तराधिकारी उसका पौत्र अंतियोक द्वितीय (२६२-३४
ई० पू०) था। सेल्युकी वंशकी राजधानी दजला (तिग्रा)नदीके किनारे थी, जिसे सेल्युकस
अपने नामपर बसाया था। यह पीछे सासानी (२२६-६४२ ई०) राजधानी तस्पोन का ए
भाग रही।

३. ग्रीको-बाख्तरी (२४५-१३० ई० पू०)

अंतियोक (२) के शासनकाल (२६२-२४७ ई० पू०) में बाख्तर सहस्रनगरीका राज्य
पाल दियोदोत था, जिसने केंद्रीय शक्तिको क्षीण देखते हुए २५६ ई० पू० में धीरे धीरे स्वतं
होना चाहा। मगर उसके सिक्कोंसे साबित नहीं होता, कि उसने वसेलियुसकी पदवी धार
की। उसके नामके सिक्के वस्तुतः उसके पुत्र दिवोदोत (२) (२३०-२२५ ई० पू०) न
चलाये।

तुलनात्मक बाख्तरी ग्रीक वंश

ई० पू०	भारत	चीन	दक्षिणापथ	उतरापथ
	(मौर्य)			
२५०	अशोक २७२-२३२	स्याउवेन् वेङ्	दिवोदात I २४५-२३०	१. तूमन २५०
२३०	दशरथ २२४		दिवोदात II २३०-२२५	
			एउथुदिम २२५-१८९	
२१०		(हान् वंश)		
		काउ-ती २०६		
१९०	वृहद्रथ १९१-१८५	हुइ-ति १९४	देमित्रि १८९-१६७	
	(शुंग) पुष्य मित्र १८५-१४८			
		वेङ् ती १७९		२. माउदुन १८३
१७०			एउक्रतिद १६७-१५९	३. चीयू १६२
			(मेनान्दर १६६-१४५)	४. चुनचेन १६२-१२७
		चिङ् ती १५६	हेलियोकल १५९-१३०	
१५०	अग्निमित्र १४८-१४०			
		बूती १४०		
१३०	वसुमित्र १२३-११३		अंतियालिकद १३०	५. इशीज्या १२७-१७
				६. अच्वी ११७-१०७
११०				७. चान्सीलू १०७-१०४
				८. शूतीहू १०४-१०३
				९. शूलीहु १०३-९८
				१०. हूलीहू ९८-८७
९०	देवभूति ८२-८७	चाउनी ८६	(मोग ७७-५८)	हूहान् ये ८२-५२
	(कण्व)			
७०	वसुदेव ७२—	स्वेन्-ती ७३	(मोग ७७-५८)	

१. दिवोदोत[1] प्रथम (२४५-२३० ई० पू०)

इसीको ग्रीको-बाख्तरी राज्यका संस्थापक माना जाता है, लेकिन इसमें संदेह है, कि दिवोदोतने अपनेको राजा सेल्युक (२) (२४७-८० ई० पू०) से स्वतंत्र राजा (बसीलेउस्) घोषित किया। इसका सिक्का मिलता है, लेकिन कुछ विद्वानोंका मत है, कि उसे इसके पुत्र दिवोदोत (२) ने बापके नामसे ढलवाया। दिवोदोत केवल सेल्यूकीय राज्यपाल (स्त्रतेगो) ही नहीं था, बल्कि अन्तियोक (२) (२६२-४७ ई० पू०) की पुत्री भी इसे व्याही थी, जिससे हुई पुत्रीको एउथुदिमने व्याहा था। पीछे बेटा-दामादका जो संघर्ष हुआ, उसमें दामादको सफलता मिली। अन्तियोक (२) के मरनेके बाद उसका पुत्र सेल्यूक (२) राजा बना। उसने अपनी बेटी दिवोदोत (१) के पुत्र दिवोदोत (२) को दी। बहन-बेटी देकर शक्तिशाली सामन्तोंको अपने पक्षमें करना कोई नई नीति नहीं है।

जिस वक्त यह ग्रीको-बाख्तरी नया वंश स्थापित हो रहा था, उसी समय शकोंकी एक शाखा दहै (ता-हि-या) भी अपना राज्य स्थापित करनेके प्रयत्नमें थी, जिसमें कंगोंका पूरा सहयोग था, यह हम कह आये हैं। मूलतः दहै यक्सर्त नदी (सिरदरिया) के पासके रहनेवाले थे। पीछे इन्होंने कास्पियन समुद्रके पास तक फैली दारयबहुकी पुरानी क्षत्रपी पार्थिया पर अधिकार कर लिया, इसीलिए आगे चलकर यह पार्थिव (पार्थियन) नामसे प्रसिद्ध हुए। २५६ ई० पू० में एक प्रदेशके शासक होनेके बाद धीरे धीरे १४१ ई० पू० में मिथ्रदात (१) ने सेल्युकीय वंशको खतम कर दिया। पार्थियोंने प्रायः ४०० वर्षों (२४६ ई० पू०—२२६ ई०) तक ईरान पर शासन किया। इस वंशका स्थापक अर्शक (१) (२४६-२४७ ई० पू०) दिवोदोत (१) (२४५-२३० ई० पू०) का समकालीन था। उसके बाद अर्शक (२) तीरदात (२४७-२१४ ई० पू०) शासक हुआ, जो कि दिवोदोत (२) (२३०-२२५ ई०पू०) और एउथुदिम (२२५-१८६ई० पू०) का समकालीन था। सेल्यूकीय सम्राट् यह आशा रखता था, कि दिवोदोत (१) तीरदातके पक्षमें नहीं जायेगा। दिवोदोत (१) ने [illegible]। पार्थिव वंशमें आगे अर्शक (३), अर्तबान (२१४-१८१ ई० पू०), फ्रात (१) (१८१-१७० ई० पू०) के बाद ५वां राजा मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०) बड़ा मनस्वी शासक था, इसीने सेल्युकीय वंशका उच्छेद किया। तबसे पार्थिव वंश ईरान और मसोपोतामियाका शासक तथा रोम और शक साम्राज्यका प्रतिद्वंद्वी बना।

२. दिवोदोत[2] द्वितीय (२३०-२२५ ई० पू०)

प्रथम दिवोदोतका पुत्र दिवोदोत (२) पिताका प्रतिनिधि बनकर सेल्युकीय दर्बारमें गया। सेल्युक (२) उससे इतना प्रभावित हुआ, कि उसने अपनी लड़की उसे व्याह दी। लेकिन दिवोदोत (२) अपने पिताके राज्यको अधिक दिनों तक नहीं संभाल सका। उसका बहनोई एउथुदिम उसका भारी प्रतिद्वंद्वी था। सेल्युक (२) ने अपनी स्थिति मजबूत करनेके लिये जहां

---

[1] Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn)

[2] वही; गाम्यान्तिकि ग्रेको-बाक्त्रिइस्कओ इस्कुस्स्त्वा (क० व त्रेवर) पृ० ५-७

एक लड़की दिवोदोत (२) को दी थी, वहां दूसरी दो लड़कियां पोन्त और कपादोकियाके राजाओंको दे रक्खी थीं। इन दोनों दामादोंसे वह आशा करता था, कि वह पश्चिमके सीमांतकी रक्षामें सहायता करेंगे। अलिकसुन्दरके साम्राज्यके भिन्न-भिन्न भागोंके उत्तराधिकारी एक दूसरेके राज्यकी छीना-झपटी करते ही रहते थे। मिस्रके राजा तालमी (तुरमाय) (३) ने २४६ ई० पू० में राजधानी सेलूकियाको छीन लिया और सेल्युक (२) को भाग जाना पड़ा। ऐसी डांवाडोल स्थितिमें बड़े सावधान रहनेकी अवश्यकता थी। दिवोदोत (१) ने उत्तरके दहै को मदद नहीं दी, लेकिन उसके पुत्रने इस नीतिको छोड़ दिया और सेल्यूकीय साम्राज्यपर आक्रमण करनेवाले तीर-दातके साथ मेल कर लिया। सेल्यूकीय विधवा रानीने अपने पक्षको मजबूत करनेके लिये अपने प्रभावशाली स्त्रतेगस (क्षत्रप) एउथुदिमको अपनी कन्या ब्याह दी। एउथुदिमने दिवोदोत (२) को मार डाला, जिसपर अन्तियोक (३) उससे बहुत प्रसन्न हुआ।

३. एउथुदिम[1] (२२५-१८९ ई० पू०)

एउथूदिम और उसके पुत्र दिमित्रियका शासन ग्रीको-बाख्तरी राजवंशके बड़े वैभवका समय है। उस समय राज्यमें बाख्त्रिया, सोग्दियाना, मर्गियाना, फर्गाना, द्रंगियाना, अरखोसिया, परोपनिसदैके प्रदेश तथा भारतके कितने ही भाग थे। आजकल ये प्रदेश ताजिकिस्तान, उज्बे-किस्तान, तुर्कमानिस्तान, किर्गिज़िस्तान और कजाकस्तानके सोवियत गणराज्यों, सीस्तान (पूर्वी ईरान), अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारतमें हैं। एउथुदिम मैन्दर नदीके तटपर अवस्थित मग्नेसिया महानगरीके युद्धमें १८९ ई० पू० में मारा गया। उसके मारे जानेके बाद बाख्त्रियाका राज्य दिवोदोत (२) के हाथमें आया। उसने भी अपने संरक्षक [illegible] साथ वही बर्ताव किया, जो कि उसके मृत प्रतिपक्षीने किया था। उत्तरके घुमन्तू दाहै से सेल्यूकीय राज्यको बड़ा खतरा था, जिससे रक्षा पानेके लिये एउथूदिमको प्रसन्न रखना आवश्यक था, लेकिन एउथुदिम अपने प्राप्त राज्यसे संतुष्ट रहनेवाला नहीं था। उसकी इस महत्वाकांक्षासे अन्तियोक (३) भी अपरिचित नहीं था। उसने इसे रोकनेके लिए २०८ ई० पू० में एउथुदिमपर आक्रमण किया। इस समय बाख्त्रिया राज्यकी सीमा पूर्वमें हिंदूकुश और पश्चिममें निम्न आर्यू (हरीरूद) नदी तक थी। अन्तियोकके आक्रमणको रोकनेके लिए एउथुदिम १०००० सवारोंके साथ आर्यू नदीपर गया, किंतु उसे हार खाकर लौट आना पड़ा। इसके बाद अन्तियोकसे एकके बाद एक हार खाते अंतमें उसे बाख्तर (बलख) की अपनी दुर्गबद्ध राजधानीमें शरण लेनी पड़ी। अन्तियोक (३) ने उसे दो साल तक घेरे रक्खा। दुर्ग बहुत दृढ़ था, तो भी अधिक काल तक डटे रहना संभव नही था। एउथुदिमने जब उत्तरके घुमन्तुओं (कंगों) को बुलानेकी धमकी दी, तब अन्तियोक उससे संधि करके लौट गया। एउथुदिमने कुछ हाथी प्रदान किये। अन्तियोकने अपने प्रतिद्वन्द्वीके पुत्र दिमित्रियको अपनी कन्या देनेका वचन दिया। अन्तियोकके लौट जानेपर एउथुदिमने सेना और कोश बढ़ाते अपने राज्यको शक्तिशाली बनाना चाहा। पश्चिममें अन्तियोक (३) के होनेसे वह उधर बढ़ नहीं सकता था। उत्तरमें उसका राज्य सोग्द

[1] Greeks in Bactria

और फर्गाना तक था। (यही फर्गानाकी उपत्यका पीछे बाबरकी जन्मभूमि हुई, जिसने १५वीं सदीके अन्तमें वहां की जो समृद्धि देखी थी, उसे भारतका सम्राट् होनेके बाद भी वह भूल नहीं सकता था।) फर्गाना उपत्यका फलों और खेतीके लिए बहुत प्रसिद्ध थी, लेकिन इससे भी अधिक उसकी समृद्धिका कारण चीनका रेशमपथ था, जो कि इसके भीतरसे गुजरता था।

बाख्त्रिया (बाल्हीक) [illegible] मरुकांतार जैसा देश नहीं था। अपनी उर्वरताके कारण इसे "[illegible]" (बहुमूल्यवान्) कहा जाता था। अपनी हजारों नहरों से सहस्रभुज और हजारों नगरोंके कारण सहस्र नगर भी इसका नाम था। राज्यके भीतर बदख्शांकी लाल (पद्मराग)की खानें, खुरासानमें फीरोजेकी खानें और यमगानमें वैडूर्य जैसी मूल्यवान् खानें थीं। बदख्शांमें तांबा और लोहा भी निकलता था।

चीनसे पश्चिमकी ओर आनेवाला रेशमपथ इसी राज्यसे होकर गुजरता था, इसके कारण भी एउथुदिम बहुत संपत्तिशाली था। रेशमपथ तरिम उपत्यकामें पामीर पार करनेके बाद ईकिश्तामसे एक रास्ता तेरक डांडा पार हो फर्गाना पहुंचता, और दूसरा अलई उपत्यका होते बाख्त्रिया में। फर्गाना और बाख्त्रियाका स्वामी तरिम-उपत्यकाकी ओर जानेवाले रास्तेका भी स्वामी था। हां, तब भी एक रास्ता [illegible] (सरोवर) रह जाता था, जिसके स्वामी वू-सुन (सेरेस) थे।

एउथुदिमके समय अभी हूण अपनी पुरानी भूमिमें थे, यूची शक भी कन्सूकी अपनी जन्मभूमिमें चीनके पड़ोसी थे। इस रास्ते होने वाला चीनका व्यापार आयका भारी स्रोत था। अफगानिस्तान (कपिशा-उपत्यका) होकर भारतका व्यापार भी बाख्तरसे बहुत होता था। चीनी दूतने १२८ ई० पू० में जहां भारतकी बहुत सी पण्य वस्तुयें वहां देखीं, वहां भारतके रास्ते आई चीनकी भी कितनी ही चीजें पाईं।

व्यापारके इतने विकाससे एउथुतिम सोनेके महत्वको समझता था। सोना प्राप्त करनेकी ओर उसका ध्यान गया। उसके राज्यके उत्तर-पूरबमें वूसुन (शक) रहते थे, जिनका प्रदेश अल्ताई तक फैला हुआ था। अल्ताई स्वयं अपने [illegible]। उसके उत्तरमें पुरानी सोनेकी खानोंमें आज भी काम होता है। उनके और उत्तरमें कई खानें हैं, जिनमें साइबेरियामें लेनाकी सोनेकी खानें दुनियामें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पहले अल्ताई और साइबेरियाकी खानोंका सोना ही मध्य-एसिया, भारत और ईरानमें जाता था। लेकिन, दारयवहु (५२१-४८५ ई० पू०) के समय और उसके बादसे वहांसे सोना आना बंद हो गया। एउथुदिमने चाहा, कि तीन शताब्दियोंसे रुके इस सुवर्णपथको फिरसे खोला जाय, जिसमें रेशमपथकी तरह सुवर्णपथ भी बाख्त्रियाकी समृद्धिको और बढ़ा सके। सिबेरियाके सुवर्णपथके ऊपर आकर किसी घुमन्तू जातिने रास्तेको काट दिया। ऐसी जाति हूणोंके कबीले ही हो सकते थे, जिनका संबंध चीनसे अधिक घनिष्ट था। उन्होंने सिबेरियाके सोनेकी धाराको उधर फेर दिया। ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दीमें लेना नहीं भी हो, तो भी अल्ताई और कजाकस्तानकी दूसरी सोनेकी खानोंमें शकोंके पूर्वज काम करते थे, लेकिन, अब शक-वंशज वूसुन—जो बिचवई होकर सोनेको मध्य-एसिया पहुंचा सकते थे—हूणोंके हस्तक्षेपके कारण असमर्थ थे। एउथुदिमने सोचा, यदि अपने इन उत्तर-पूर्वी पड़ोसियोंको अधीन कर लिया जाय, तो सोनेका रास्ता खुल जायेगा। रोमन इतिहासकार प्लीनीने

सिंहलवालोंसे सुनकर सेरेस (वूसुन) लोगोंके बारेमें लिखा है—"यह बड़ी कद्दावर जाति है। इनके बाल लाल और आंखें नीली होती हैं। यह हेमोदो (हिमवान्) पर्वतके उत्तरमें रहते हैं।" पीछे चीनियोंने भी इन्हें रक्त-केश और नील-नेत्र लिखा है। एउथूदिम फर्गानासे त्यानशान्की पहाड़ियोंमें घुसकर इस्सिकुल सरोवर तक गया, किंतु स्वर्णपथको खोल नहीं सका।

सेरेस् (वूसुन) स्वयं सुवर्णके उद्गमके साथ संबंध नहीं रखते थे। येनीसेईके ऊपरी भाग तथा दूसरी जगहोंकी सोनेकी खानोंके स्वामी हूण थे। उत्तरके घुमन्तुओंका विजय करना सदा टेढ़ी खीर थी, इसलिए एउथूदिमको खाली हाथ लौटना पड़ा। यह अभियान २०६ ई० पू० में हुआ था। यह याद रखनेकी बात है, कि ग्रीको-बाख्तरी राजाओंके सिक्के सोनेके नहीं थे। उनके बड़े ही सुन्दर तेत्राद्राख्म चांदीके होते थे। मुद्रामें सुदर रूप अंकित करना एउथूदिमके समय जहां पहुंचा, वहां फिर नहीं पहुंच सका। २०६ ई० पू० के बाद उत्तरसे लौटकर उसने पार्थियोंको परास्त कर उनके कुछ प्रदेश छीन लिये। मर्गियाना और निम्न आर्यू (हरी रुद) उपत्यकाका उपराज उसने अपने द्वितीय पुत्र अन्तिमाखूको बनाया, मर्ग (मेर्व) उसकी राजधानी बनी। अन्तिमाखू जिस तरह बापका उपराज रहा, उसी तरह अपने बड़े भाई दिमित्रिका भी था। सेल्युकियोंमें गद्दीके उत्तराधिकारीको उपराज कहते थे। उपराज बनानेकी यह प्रथा ग्रीको-बाख्त्रियोंने भी स्वीकार की। हमें मालूम है, कि हूणों और दूसरे घुमन्तू कबीलोंमें भी प्रदेशोंके राज्यपालोंको उपराजकी अधिक सम्मानित उपाधि दी जाती थी। दाहै (पार्थियों) में भी यह प्रथा थी। शायद उनसे ही एउथूदिमने इस को लिया। उपराज अपने सिक्के भी चलाते थे। बहुधा उनकी साधारण प्रजाको यह मालूम नहीं होता था, कि हमारे राजाके ऊपर और भी कोई राजा है। इस तरहका भ्रम ग्रीको-बाख्त्री राजाओंके ही संबंधमें नहीं, बल्कि यूची, कुषाण, एफ़्ताल (श्वेतहूण) और तुर्कोंके बारेमें भी देखा जाता है। हम यह निश्चित तौरसे नहीं बतला सकते, कि तोरमान अधिराज था, या उपराज। अन्तिमाखूने अपने सिक्कोंपर 'थेव' खुदवाया। थेव या देव राजाको कहते हैं, यह हमें संस्कृत साहित्यमें मालूम है। पार्थिव राजा अर्तबानु (२१४-२८१ ई० पू०) अपनेको थेव-पातुर (देवपुत्र) लिखता था।

इस कालमें उत्तरी घुमन्तू फिर जोर पकड़ने लगे। अलिकसुन्दरके समय बाख्त्रिया और सोग्दके गांव-नगर खुले होते थे, लेकिन ग्रीको-बाख्त्रिय शासनके अंतमें, जब चाङक्यान् (१२८ ई० पू०) इस प्रदेशमें आया तो उसे समरकंद और बाख्तर जैसे महानगर ही दुर्गबद्ध नहीं मिले, बल्कि वहांके गांव भी प्राकार-बद्ध थे। उत्तरके घुमन्तूओंका बहुत डर जो था।

४. दिमित्रि (१८९-१६७ ई० पू०)

यह एउथूदिमका ज्येष्ट पुत्र था। इसके दूसरे भाई अन्तिमाखूके बारेमें कह चुके हैं। शायद अपोलोदोत भी इसका छोटा भाई था। बापके अपूर्ण कामको इसने पूरा करना चाहा। इसकी भारत में विजय-यात्रा हमारे इतिहासके लिए विशेष महत्व रखती है। समकालीन व्याकारणकार पतंजलिने "अरुणद् यवनः साकेतं" (यवनने अयोध्याको घेर लिया) कहते हुए दिमित्रिकी ओर ही इशारा किया। बाख्त्रियाके ग्रीक शासकोंका भारतसे घनिष्ठ संबंध था। सेल्युक (१) (३२३-२८१ ई० पू०) ने चंद्रगुप्तको पुत्री देकर जो संबंध स्थापित किया था, उसे उसके वंशजोंने भी

कायम रक्खा। सेल्युक (१) का राजदूत मेगस्थनी मौर्य-राजधानी (पाटलिपुत्र) में वर्षो रहा, और उसने भारतका जो वर्णन छोड़ा, उसका उपलब्ध भाग आज भी हमारे इतिहासकी ठोस सामग्री है। सेल्युक (१) के पांचवें उत्तराधिकारी अन्तियोक (३)—ने एउथूदिमको
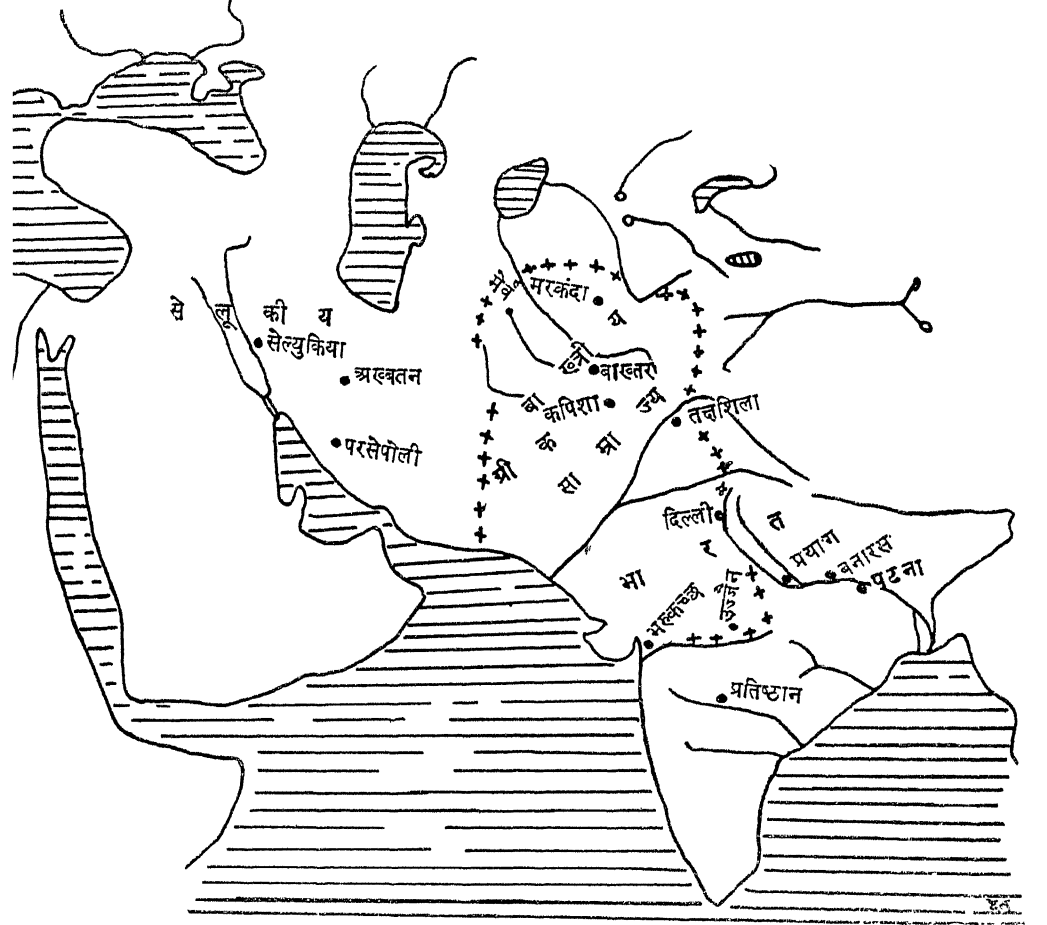
२१. देमित्रिका ग्रीक साम्राज्य (१६७ ई० पू०)

दो साल (२०८-२०६ ई० पू०) तक बलखमें घेरे रक्खा, और स्वयं मौर्य राजा सुभगसेन से परोपनिसदै कपिशा-उपत्यकामें आकर मिला तथा अपनी वंशागत मित्रताको फिरसे दृढ़ किया।

(भारत-विजय[1] १७३-१६७ ई० पू०)

कुरव और दारयबहु (१) के मिश्र-विजयकी बात हम कह चुके हैं। जान पड़ता है, अर्त्तक्षथ्र (२) (४०४-३५८ ई० पू०) के समय सिंध और गंधार अखामनी राज्यसे निकल गये।

[1] Greeks in Bactria, पाम्यात्निकि० पृ० ६

इसके बाद पंजाबमें छोटे-छोटे गणराज्य तबतक मौजूद रहे, जबतक कि अलिकसुन्दर कपिशा से पंजाबकी ओर बढ़ते व्यासके तट तक नहीं पहुँचा। अलिकसुन्दरकी विजययात्राका फल स्थायी नहीं हुआ। इसमें चंद्रगुप्त मौर्य (३२१-२९७ ई०पू०) भारी बाधक हुआ। अब मौर्यवंश खतम हो रहा था। अंतिम मौर्य राजा को मारकर सेनापति पुष्यमित्रने राज्य अपने हाथ में कर लिया। दिमित्रि उसी सेल्यूक के नाती का दामाद होने का अभिमान रखता था, जिसका संबंध मौर्य वंशसे भी था। अभी तक ग्रीक शासक स्थानीय लोगों से अलग रहकर अपना शासन करना चाहते थे। दिमित्रि ने स्थानीय सामन्तों को भी सहभागी बनाना चाहा। मौर्य वंश के उच्छेत्ता पुष्यमित्र के विरुद्ध जो भाव देश मे फैला हुआ था, उसने उससे लाभ उठाना चाहा और १८३—१८२ ई० पू० में हिन्दूकुश को पार किया। अन्तिमाख् अपने प्रदेश का उपराज था, दिमित्रिने अपने ज्येष्ठ पुत्र अेउथुदिम (२) को बाख्तर और सोग्दका शासन सौंपा, और अपने द्वितीय पुत्र दिमित्रि (२) छोटे भाई अपोलोदोत तथा सेनापति मेनान्दर के साथ भारत-विजय के लिये प्रस्थान किया। संभवतः परोपनिसदै (कपिशा) बाप के समय से ही उसके हाथ में था।

आगे बढ़ते गंधार (पेशावर और तक्षशिला) प्रदेश को विजय करना था। मौर्य साम्राज्य के उत्तरा-धिकारी पुष्यमित्र को अकंटक राज्य नहीं मिला था। कलिंगराज खारवेल उसके विरुद्ध पाटलि-पुत्र तक चढ़ आया और पुष्यमित्र को राजधानी छोड़कर मथुराकी ओर भागना पड़ा था। दक्षिण में शातवाहन भी उसके प्रतिद्वंदी थे। मौर्य साम्राज्य के पश्चिमी भाग को वह कभी अपने हाथ में नहीं कर सका। उस समय अभी दर्रा खैबर का रास्ता खुला नहीं था। इसके खोलनेवाले कुषाण थे, जिनके आने में अभी प्रायः दो शताब्दियों की देर थी। दिमित्रि को अलिकसुन्दरवाला रास्ता लेना पड़ा, जो कि कुनार-उपत्यका से होकर बाजोर, स्वात, बुनेर, युसुफजई और पेशावर होकर सिंधु तटपर पहुंचता था। सिंधु नदीके पश्चिम पुष्कलावती (आधुनिक चारसद्दा) एक प्रसिद्ध नगर था, जिसे ग्रीक राजाओंकी राजधानी बन-नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कश्मीर और गंधार अब तक बौद्ध देश बन चुके थे। तक्षशिलाका व्यापारिक और सांस्कृतिक गौरव अभी नष्ट नहीं हुआ था, बल्कि मौर्य उपराजकी राज-धानी रहनेसे उसका महत्व और भी बढ़ गया था। दिमित्रिने तक्षशिला में एक नये नगर की स्थापना की, जिसे आजकल सिरकपका ध्वंसावशेष कहते हैं। कपिशाका शासन उसने अपने पुत्र दिमित्रि (२) को दिया, शायद गंधार को भी उसीके हाथमें दिया। इसकी राजधानी अलक-सन्दारिया-कपिशा थी, जिसके ध्वंसावशेष आज भी काबुलसे थोड़ा पश्चिम कोहदामन-उपत्यकामें वेग्रामके नामसे मौजूद है। दिमित्रि के सिक्केपर उसका जो रूप अंकित है, उसमें शिरके ऊपर हाथीके सूंड़ और दांत जैसा मुकुट उसके भारत-विजेता होनेका सूचक है। उसने ही अपने सिक्के पर पहली बार ग्रीक भाषाके साथ प्राकृत भाषा और पश्चिमी भारतमें चालू खरोष्ठी लिपिको अपनाया। दिमित्रिने वर्तमान सिंध को जीता और वहांपर अपने नामकी नगरी बसाई, जिसे हमारे संस्कृत लेखकोंने दत्तामित्रि बना दिया। शायद इससे पहले वह वक्षुके किनारे भी अपने नामका नगर बसा चुका था, जो दिमित्रिसे तेरमिज बनकर आज भी मौजूद है। यवन सेना मेनान्दरके नेतृत्वमें गंधारसे सागल (स्यालकोट) लेते व्यास और सतलुज पार हो मथुरा पहुंची, वहांसे पंचालको लेते उसने साकेतको जा घेरा (अरुणद् यवनः साकेतं)। फिर जाकर राजधानी

पाटलिपुत्रपर भी आक्रमण किया। उधर दिमित्रिके भाई अपोलोदोतने सिंधके डेल्टा पाटलाको ले सौराष्ट्र-विजय किया, फिर भरुकक्षको अपनी राजधानी बना चित्तौड़के पास माध्यमिका नगरी को जा घेरा (अरुणद् यवनः माध्यमिकां)। शायद अपोलोदोतने उज्जैनको भी ले लिया। इस प्रकार दिमित्रिके दो सेनापतियोंमें मेनांदर पाटलिपुत्र तक विजय करनेमें सफल हुआ और अपोलोदोत अपनी विजय यात्रामें उज्जैन तक पहुंचा। दिमित्रि स्वयं तक्षशिलामें था। वह समझ रहा था, अब मैं फिर मौर्य साम्राज्यके वैभवको पुनर्जीवित कर सकता हूँ। अलिकसुन्दरके लिये---और वही बात अखामनी राजाओंके बारेमें भी है---वह इन्दु या हिंदु का अर्थ सिंधु-उपत्यकावाला देश समझते थे। ग्रीक राजाओंने उसे मौर्य साम्राज्यका पर्याय माना था। दिमित्रि जिस इन्दु या इन्दियाका राजा था, वह यक्सर्त नदी (सिरदरिया) से सौराष्ट्रके तट तक और ईरानी मरुभूमिसे पाटलिपुत्र तक फैली हुई थी। भारतमें दक्षिणी कश्मीर, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, मालवा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात, [illegible], कच्छ और सिंध उसके अधीन थे।

दिमित्रि केवल आक्रमण द्वारा धन जमा करनेके लिये नहीं आया था, बल्कि उसकी मनसा इस देशका स्थायी शासक बननेकी थी। मध्य-एसिया और मगध के बीचमें होनेसे तक्षशिलाको उसने अपनी राजधानी बनाया। प्रदेशोंमें उसके उपराज (राज्यपाल) शासन करते थे। उसका पुत्र अगथोकल परोपमिसदै (कपिशा) का उपराज था। इसने भारतके पुराने चौकोर (पंचमार्क) सिक्कोंकी नकलपर अपना सिक्का चलाया था, जिसमें ग्रीक लिपि और भाषाको बिल्कुल हटाकर केवल भारतीय (ब्राह्मी) लिपि और भारतीय भाषा (पाली) का प्रयोग किया। यही एकमात्र ग्रीक राजा है, जिसने अपने सिक्केका पूर्णतया भारतीकरण किया। उसके चौकोर सिक्केकी एक ओर मौर्य सिक्कोंकी तरह पर्वत बना रहता और दूसरी ओर पाषाण बंधनीके बीचमें खड़ा वृक्ष है, जो संभवतः बोधि वृक्षका संकेत है। साथ ही उसने अपने सिक्के पर "दिकइओस्" (धार्मिक) लिखा है। "धम्मिको धम्मराजा" पालीमें एक प्राचीन प्रशंसावाचक शब्द है। कपिशा (परोपमिसदै) उस वक्त बौद्ध प्रधान देश था। अगथोकलके बड़े भाई तथा अपने तृतीय पुत्र पन्तलेओनको दिमित्रिने सीस्तान और अरखोसिया (बलोचिस्तान) का उपराज बनाया था, और अपने छोटे भाई अपोलोदोतको गंधारका, जो साथ ही अपोलोदोत भरुकच्छ (गुजरात) का भी शासक था। जान पड़ता है, मेनान्दर-तक्षशिलाने सिंध डेल्टा (पाटला) होते गुजरात तक इसके हाथमें था। एक समय इसने उज्जैनको भी ले लिया था, लेकिन जल्दी ही पुष्यमित्रने उसे खाली करवा लिया। झेलम (बितस्ता) नदीके पूरबमें मिनान्दरका शासन था। गर्गसंहितामें दिमित्रिके विजयका वर्णन करते हुए लिखा है---

> ततः साकेतमाक्रम्य पंचालान् कुसुमध्वजम्।
> यवना दुष्ट-विक्रांताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्॥

ग्रीक राजाओंके सुन्दर सिक्कोंमें दिमित्रिके पिताका सिक्का और भी सुन्दर माना जाता है।[१] अनुमान किया जाता है, कि इसके पिताके समयका कलाकार इस वक्त भी मौजूद था। इसके तेत्राद्राख्म चांदी के सिक्कोंमें एक ओर गजमुख-मुकुट धारण किये गंभीर-आकृति दिमित्रिका

---

[१] पम्यात्निकि ग्रोको-बाक्त्रिइ इस्कओ इस्कुस्त्वा, फलक ३६

अर्धदेह है, और दूसरी ओर बाये हाथमें दण्ड और सिंह चर्म लिये दाहिने हाथ को कानके पास रखकर हेरकल खड़ा है। मूर्तिकी दाहिनी ओर "वसिलेउस्" अंकित है और दाहिनी तरफ पैरोंके पास "कॅ" तथा "दिमित्रिओस्" अंकित है। उसके भारत-विजयके उपलक्षमे निकाले सिक्कोंमे अंकित है "वसिलेउस् अनिकितोस् दिमित्रिओस्" (राजा अजेय दिमित्रि)। उसके तांबेके सिक्को पर भारतका प्रतीक गजमुण्ड वना रहता है, और दूसरी तरफ "बसीलेउस् दिमित्रिओस्"। यह उल्लेखनीय बात है कि यद्यपि ग्रीक राजाओंका शासन ईरान, बबेरु और मिश्रमे रहा, किंतु उन्होंने कहीं भी स्थानीय लिपि और भाषाका प्रयोग अपने सिक्कोंपर नहीं किया। भारतका संपर्क होते ही मुद्रा-नीतिमें यह परिवर्तन विशेष महत्व रखता है। दिमित्रि (२) ने अपने पिता दिमित्रि (१) के सिक्कोंपर ग्रीक अभिलेखके साथ खरोष्ट्री लिपिमे पाली भी लिखवाया।

ग्रीक और भारतीय दोनों उल्लिखित परंपराओंसे पता लगता है, कि पाटलिपुत्र और उज्जैन तक एक बार पहुंचकर, मथुरा और भरोच तक अपनी स्थिति को मजबूत करके भी स्वदेश पर संकट उपस्थित होनेके कारण दिमित्रिको भारतसे जाना पड़ा। जिस शत्रुके कारण दिमित्रि (धर्ममित्र) को भारत छोड़कर बाख्त्रियाकी ओर दौड़ना पड़ा, वह था सेल्यूकीय जे-नरल एउक्रतिद। इसकी मां लओदिका सेल्यूक (२) (२४७ ई० पू०) और सेल्यूक (३) (२२६-२२३ ई० पू०) की भी पुत्री थी। दिमित्रि और सेल्युकियोंका झगड़ा चला जा रहा था। सेल्यूकीय राजा अन्तियोक (४) बाख्त्रियाको अपनी क्षत्रपी मानता था, और बाख्त्रिया शासक अपनेको स्वतंत्र। [illegible] होना आवश्यक था। अन्तियोक (४) (१७५-६३ ई०पू०) का संघर्ष अपने पश्चिमी पडोसियोंके साथ भी था। उसके सेनापित [illegible] था। अब युरोप में एकऔर भी नई दुर्धर्ष शक्ति पैदा हो गई थी—रोमन साम्राज्यका विस्तार हो रहा था। १८९ ई०पू० मे रोमने धमकी दी, जिसपर सेल्यूकियों को जीते हुए मिस्रको छोड़कर चला आना पड़ा। उत्तरमे पार्थिव मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०) भी बडा ही प्रबल और महत्वाकांक्षी शासक था। तो भी उसने अन्तियोक (४) की मृत्यु तक अपनेको रोके रक्खा। सेल्युकीय राजपरिवारमे आपसी संघर्ष भी चल रहा था। अन्तियोक (४) के मरने के समय (१६३ ई०पू०) उसके पूर्वाधिकारी अन्तियोक (३) (मृत्यु १५३ ई० पू०) का तृतीय पुत्र रोम-दर्बारमें ज़ामिन के तौरपर रह रहा था। जब उसका भाई सेल्युक (४) १७५ ई० पू० मे मरा, तो उसने अन्तियोक (४) के नामसे प्रतिद्वंद्वियोंको हराकर स्वयं शासनसूत्र अपने हाथमें संभाला और अपने भतीजे बालक राजाकी मां अन्तियोक (३) की पत्नी लओदिका से ब्याह किया। लओदिकाने क्रमशः अपने तीनों भाइयोंसे शादी की थी—पहले ज्येष्ठ अन्तियोक (३) (मृत्यु १९३ ई० पू०) से, फिर द्वितीय भाई सेल्युक (४) से, फिर तीसरे भाई अन्तियोक (४) से। उस समय बहिन [illegible] ईरानियोंकी तरह ग्रीक राजाओंमे भी होता था। शायद यह अंतिम ब्याह उसने अपने पुत्रको गद्दीका हकदार बनाये रखनेके लिए किया। १७०-१६९ ई० पू० में उसके लड़केकी हत्या हो गई। अब तक अन्तियोक (४) राज का साझीदार भर था, अब वह अपने भतीजेके हत्यारेको प्राणदंड दे स्वयं एकाधिप राजा बन गया। १८९ ई० पू० में अन्तियोक (३) और रोमका [illegible] भीषण युद्ध हुआ, जिसमें रोमकी विजय हुई और क्षुद्र-एसियाके सभी राजा रोमके करद हो गए।

अन्तियोक (४) ने अपने आरंभिक जीवनके बहुत से वर्ष रोममें बिताये थे, इसलिए रोमकी शक्तिसे वह अच्छी तरह परिचित था और बड़े भाईकी गलतीको दोहराना नहीं चाहता था। उसके राज्यके उत्तरमें मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०) था, जिसे छेड़ा नहीं जा सकता था। ईरानी रेगिस्तानके पूर्वके भाग (सीस्तान और बलोचिस्तान) को दिमित्रिने ले लिया था। यदि अन्तियोक (४) राज्यविस्तार कर सकता था, तो इसी ओर। इस समय दिमित्रि भारत-विजयमें लगा अपने पश्चिमी सीमांतसे दूर था। यह मौका बड़ा अच्छा था। अन्तियोकने मिस्र-विजय करके १६९ ई० पू० में उसकी राजधानी मेम्फीमें अपना अभिषेक कराया था, लेकिन रोमकी लाल-लाल आंखोंको देखते ही (१६८ ई० पू०) उसे मिस्रको छोड़ देना पड़ा।

५. एउक्रतिद (१६६-१५९ ई० पू०)

एउक्रतिद[१] अन्तियोक (४) (१७५-१६३ ई० पू०) का फुफेरा भाई था। उसके जिम्मे अन्तियोकने दिमित्रिके राज्यको जीतने का काम सौंपा और स्वयं पश्चिमके विजयके लिये प्रस्थान किया। पश्चिममें उतनी सफलता नहीं मिली, लेकिन एउक्रतिदने १६७ ई० पू० तक हिंदूकुशके पश्चिमके प्रदेशको जीत लिया। सीस्तान, अरखोसिया (बलोचिस्तान), अरिया (हिरात), बाख्त्रिया और सोग्द एउक्रतिदके हाथमें चले गये। अब दिमित्रि कैसे तक्षशिलामें चैन के साथ बैठ सकता था? वह फौरन भारतसे अपनी सेना ले बाख्त्रियाकी ओर दौड़ा। उसने अपने सेनापति मिनान्दरको भी ऐसा करनेके लिये हुक्म दिया, जिसे उसने नहीं माना। एक जगह दिमित्रिने एउ-क्रतिदको घेर लिया था, लेकिन वह निकल भागनेमें सफल हुआ। हिंदूकुशके पास ही एक युद्ध में दिमित्रि मारा गया। [illegible] तरह दिमित्रिने भी ग्रीक और अग्रीक के भेदको अपने शासन और सेनासे मिटाना चाहा था। शायद इसीके कारण ग्रीक सैनिक उससे प्रसन्न नहीं थे। उधर सेल्यूकीय राजा शुरूसे ही ग्रीक रक्त के पक्षपाती थे।

१६६ ई० पू० में एउक्रतिदका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रह गया था। अन्तियोक (४) उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। १६६ ई० पू० में एउक्रतिदने अपनेको राजा (बसीलेउस्) ही नहीं, "महाराज" (बसीलेउस् मेगलोस्) घोषित किया। एउक्रतिदने बाख्त्रिया में अपने नामकी एक नगरी (एउक्रतिदेइया) बसाई। उसके पुत्र हेलिओकलने अपनी राजधानी बाख्त्रिया ही रक्खी। एक चांदीके सिक्केमें एउक्रतिदका एक तरफ हैट पहने चेहरा है। ग्रीक-बाख्त्री राजाओंमें इसे और उपराज [illegible] छोड़ किसीने हैट सहित चित्र नहीं बनवाया। उसके सिक्केकी दूसरी ओर ग्रीक लिपिमें दो दौड़ते घोड़ों पर हाथमें लंबे भाले और पत्तेवालीशाखा लिये दो सवार दौड़ रहे है। इसके ऊपरकी ओर अर्धगोलाकार पाँतीमें लिखा है—"बसीलेउस् मेगलोस्" और नीचे "एउक्रतिदोस्"। एक दूसरे सिक्के (चांदी के तेत्राद्राख्मा) पर एक ओर उसका फीता बंधा नग्नशिर है और दूसरी ओर ग्रीक देवता अपोलोन दाहिने हाथमें धनुष और बायेंमें बाण लिये खड़ा है। उसके तीन तरफ गोल पंक्तिमें लिखा है "बसीलेउस् सुतिरोस् [illegible]" (राजा त्राता एउक्रतिद)।

---

[१] Greeks in Bactria

एउक्रतिदने १६६ ई० पू० को बाख्त्रियामें बिताया, फिर १६५ या १६४ ई० पू० में उसने भारतकी ओर अभियान किया। एउक्रतिद जिस समय बाख्त्रियामें अपनी दिग्विजय कर रहा था, उसी समय ग्रीको-बाख्त्री शासनके उच्छेत्ता यू०ची० हूणोंके प्रहारके कारण अपनी मूल भूमि कान्सू को छोड़ बालबच्चों, घोड़ों-भेड़ों और तम्बुओंको लिये चल पड़े, शायद फर्गानामें वह तब तक पहुंच भी चुके थे। एउक्रतिद हिंदूकुश पारकर पहले कपिशा पहुंचा, जहां दिमित्रिके पुत्र अगथोकलने उसकी भिड़न्त हुई। अगथोकल युद्धमें मारा गया और कपिशा नये ग्रीक शासकके हाथोंमें आई। अगथोकलके निलट के सिक्केपर एक ओर राजाका शिर है और दूसरी ओर सामने वृक्षकी ओर मुंह किये एक सिंह खड़ा है। सिंहके ऊपरकी पांतीमें "वसीलेउस्" लिखा है और नीचे "अगथोक्लेओउस्"। जिस समय एउक्रतिद भारतकी दिग्विजयमें लगा था, उसी समय (१६३ ई० पू० में) अन्तियोक (४) अपने पश्चिमके अभियानमें क्षयरोगसे मर गया। अब एउक्रतिद सर्वस्वतंत्र था। एउक्रतिदकी विजयके बारेमें अनुमान किया जाता है, कि उसने गंधार जीता। उसी युद्धमें वहांका राजा अपलोदोत (१६३ या १६२ ई० पू० में) मारा गया। झेलम तक उसे बढ़नेमें रुकावट नहीं हुई। शायद अपलोदोतके प्रदेश सिंधको भी उसने ले लिया। झेलमसे मिनान्दरकी सीमा शुरू होती थी। मिनांदरने उसे आगे बढ़ने नहीं दिया। अपने भारतीय सिक्कों-पर एउक्रतिदने "रजतिरज" लिखवाया है[1]। १६० ई० पू० में दिमित्रिकी तरह एउक्रतिदको भी घरपर संकट आनेकी खबर पाकर भारत छोड़ना पड़ा।

अन्तियोक (४) के मरने (१६३ ई० पू०) के बाद उसका बड़ा भाई देमित्रि (१), जो रोममें जामिनके तौरपर रहता था, भागकर स्वदेश लौटा। इस बीच अन्तियोक (१) का पुत्र अन्तियोक (५) गद्दीपर बैठ गया था। चचाने उसे हटाकर स्वयं राजगद्दी संभाली। एउक्रतिदने उसे राजा स्वीकार नहीं किया। अब सेल्यूकीय साम्राज्यके नाशका समय आ गया। मिदियाका स्त्रतेगोस (राज्यपाल) तिमार्खुशने (१६२ई०पू० में) अपनेको "वसीलेउस् मेगलोस्" (महाराज) घोषित कर दिया, लेकिन पार्थिव राजा मिथ्रदात (१) ने १६१-१६० ई० पू० में उसे हराकर सारी मिदियाको अपने राज्यमें मिला लिया। इसके बाद मिथ्रदातने एउक्रतिदके राज्यके हिरात नदीके पश्चिमके भागको छीन लिया। यही खबर सुन कर एउक्रतिद भारतको छोड़कर लौटनेके लिये मजबूर हुआ। १५९ ई० पू० में मिथ्रदात तथा तत्सहायक दिमित्रि (२) से लड़ते हुए एउक्रतिद मारा गया। दिमित्रि (१) के पुत्र दिमित्रि (२)ने अपने पिताके शत्रुको मारकर बदला लिया, लेकिन इससे वह अपने वंशकी राजलक्ष्मीको लौटा नहीं सका। अब पार्थिवोंका सितारा ओज पर था।

६. हेलियोकल (१५९-१३० ई० पू०)

प्रतापी विजेता एउक्रतिदका पुत्र हेलियोकल अपने ही नहीं ग्रीको-बाख्त्रीय राजवंशके भाग्यसूर्यको डूबनेसे बचानेके लिए बाख्त्रियाका शासक बना। इस समय तक सोग्दका ऊपरी भाग यूचियोंके हाथ में चला जा चुका था। शायद उसका निचला भाग और मेर्व भी अभी हेलियोकलके हाथमें था। मिथ्रदातने सीस्तान, अरखोसिया और गेदरोसियाको यवनोंसे छीन लिया था। फ्रात

---

[1] वही

सीस्तानका गवर्नर था। पार्थिव शक-वंशी थे, इसलिए उन्होंने सीस्तानमें हेलमन्द नदीके निम्न भागमें शक घुमन्तुओंको ले जाकर बसा दिया। इसीके कारण इस प्रदेशका नाम ११५ ई० पू० के आसपास से शकस्तान (सीस्तान) पड़ गया। पीछे शकोंके भारतकी ओर बढ़नेके समय सीस्तान उनके अड्डेका काम करने लगा। थोड़े समय बाद ये शक पार्थिवोंसे स्वतंत्र हो गए। मिथ्रदात (२) (१२४-८८ ई० पू०) ने अपने सेनापति सूरेनको इन्हें दबानेके लिये भेजा। वह ११५ ई० पू० के आसपास सीस्तानको पार्थिव साम्राज्यमें मिलानेमें सफल हुआ। ११५ ई० पू० में पार्थिवोंसे स्वतंत्र होकर अपना राज्य स्थापित करनेके उपलक्षमें शकोंने अपना एक (पुराना) शक-संवत चलाया और प्रथम शक राजा ने "रजतिराज" (राजाधिराज) की पदवी धारण की।

हेलियोकल बाख्त्रियाका अंतिम ग्रीक राजा था। उसने भी पिताका अनुकरण करते हुए दिग्विजय करना चाहा। उसके राज्यमें शायद परोपमिसदै (कपिशा) थी। पिताको मिनांदरके सामने जिस तरह असफल होना पड़ा था, उसके कारण वह मिनांदरकी मृत्यु तक चुप रहा। इसके बाद उसने गंधार पर चढ़ाई की। मिनांदर-पुत्र स्त्रात (१) से संघर्ष हुआ। हेलियोक्लने झेलम तक ले लिया और अब स्त्रातके पास साग़ल (स्यालकोट) से मथुरा तकका राज्य बच रहा। हेलियोकलने अपने भाई एउक्रतिद (२) को अपने स्थानपर शासक नियुक्त किया था। उसने अपने सिक्केपर "बसीलेउस् सूतिरोस एउक्रतिदोस्" (राजा त्राता एउक्रतिद) उत्कीर्ण करवाया। जिस समय हेलियोकल भारतकी ओर दिग्विजयमें लगा हुआ था, इसी समय मिथ्रदात (१) ने अपना राज्य कास्पियन तटसे फारसकी खाड़ी तक फैला दिया। १४२ ई० पू० में वह बाबुलका स्वामी था। १४१ ई० पू० में सेल्यूकीय राजा देमित्रि (२) हेलियोकलसे मिलकर मिथ्रदातपर चढ़ाई करना चाहता था। शायद वह अभी भी हेलियोकलको अपना सामन्त समझता था। दोनोंका प्रयत्न विफल गया। मिथ्रदात ने दोनों पार्श्वोंपर लडनेकी नीतिको [illegible] और दिमित्रिके सेनापति को बबेरु ले लेने दिया, फिर भारतमें लौटकर पार्थियापर आक्रमण करने- [illegible] ओर बढ़ा और दिसंबर १४१ ई०पू० मे हुर्कानियामें उसे पराजित कर बबेरुकी ओर लौटा। १४०-१३९ ई०पू० में दिमित्रि पराजित होकर बन्दी बना और उसके ही साथ ईरान और मसोपोतामियामें सेल्युकी वंश का स्थान पार्थिव वंशने लिया। हेलियोकल राजा बाख्तरका अंतिम ग्रीक राजा था। उसके सिक्कोंकी नकल यूची-शकोंने की, इससे मालूम होता है, कि इसीसे यूचियोंने बाख्त्रियाको छीना था।

हेलियोकलका चतुष्कोण तांबेका सिक्का मिलता है, जिसकी एक तरफ ग्रीकमें "बसीलेउस दिकइओस एलिओक्लेओस" (राजा धार्मिक हेलियोकल) और, दूसरी तरफ हाथी है जिसके तीन पार्श्वों में खरोष्ठी लिपिमें "महरजस ध्रमिकस हेलियक्रेयस" लिखा हुआ है।

७. अन्तियलिकिद

यह कहना मुश्किल है, कि इसका हेलियोकेलसे क्या संबंध था। मालूम होता है, यह कपिशा और गंधार (हिंदु कुश)से झेलम तकका राजा था। शायद बाख्त्रियासे भी इसका कुछ संबंध रहा। इसके सिक्केपर लिखा रहता है "बसीलेउस निकिफोरस अन्तिअल्किदोस्" (राजा विजयी अन्तियलिकिद)।

१४१ ई०पू० में बाख्त्रियाके इतिहास पर जो अंधकार छा जाता है, वह १२८ ई०पू० में ही हटता है, जब कि चीनी जेनरल और पर्यटक चाङक्यान् बाख्तरमें पहुंच वहां यूचियोंको [illegible] पाता है।

४. भारतमें

१. मेनान्दर (१६६-१४५ ई० पू०)

अच्छा होगा यदि मेनान्दर और उसके उत्तराधिकारियोंके बारे में भी कुछ कह दिया जाय, क्योंकि वस्तुतः यह बाख्त्री राज्यके ही भारत-दिग्विजयके अवशेष थे। भिक्षु नागसेन और राजा मिलिन्दका जो प्रश्नोत्तर, "मिलिन्दप्रश्न" में मिलता है, वह यही राजा मेनान्दर है। इस ग्रंथ से पता लगता है, कि उस समय मेनान्दर की राजधानी सागला (स्यालकोट) थी। उससे यह भी मालूम होता है, कि मिलिन्दका जन्म अलसन्दामें हुआ था। अलसन्दा या अलेक-सन्दरिया बहुत सी थीं, इसका जन्म कौन सी अलकसन्दरियामें हुआ था, यह नहीं कहा जा सकता। यह तो निश्चित है, कि वह अलकसन्दरिया कपिशा नही हो सकती, क्योंकि सागल से उसकी जो दूरी बतलाई गई है, उतनी दूर कपिशा (कोहदामन-उपत्यका) नहीं है। मेनान्दर किसी प्रभावशाली कुलमें पैदा हुआ था, या अपने सैनिक कौशलसे ऊपर उठा, इसे भी जानने के लिये हमारे पास साधन नहीं है। उसने देमित्रि[1] की पुत्री अगथोक्लेइयाको व्याहा था और इस प्रकार [illegible] था। पहिले वह झेलमसे पूरबके ग्रीक-राज्यका शासक बनाया गया था, लेकिन एउक्र-तिदके देशकी ओर भागनेपर यह गांधार, सिंध और गुजरात तकका भी शासक बन गया। इसकी राजधानी सागला थी, लेकिन मथुरा और भरौच में भी उसके स्त्रेतोगोस (राज्यपाल) रहते थे। मेनान्दरने "सोतेरोस (त्राता)" और "दकिइओस्" (धार्मिक) की उपाधि धारण की थी।

२. स्त्रात (१)

मेनान्दरकी मृत्यु (१४५ ई०पू०) के बाद स्त्रात हिंसासनपर बैठा, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा, उसे हेलियोकलसे मुकाबला करना पडा, जिसके कारण गंधार (खैबर से झेलम) उसके हाथसे निकल गया। तो भी स्यालकोटसे मथुरा तक की भूमि अवभी उसकी थी। उसके आरंभिक शासनकालमें उसकी मा अगथोक्लेइया अभिभाविका रही, जिसका नाम सिक्कों पर भी मिलता है। स्त्रातका शासन दीर्घकाल-व्यापी था।

३. स्त्रात (२)

पौत्र सिंहासनपर बैठा। सिक्केपर यह एक दाढ़ीवाला मध्यवयस्क पुरुष दिखलाई पड़ता है। आगेके अपोलोदोत, फिलोपातोर, दियोनिसिलोउस्, जोइलुस् (२), सोतेर, और लिक्सेनुस इन पांच यूनानी राजाओंके सिक्के मिलते है, जिन के शासन काल, शासित भूभाग या राजधानीके बारेमें कहना मुश्किल है। यह ग्रीकराजा भारतीय हो गये थे, और शकोंसे भी इनका वैवाहिक संबंध था। उन्होंने अपोलोदोत (२) के सिक्कोकी नकल की है, शक

राजा अजेस्ने भी अपोलोदोत (२) के सिक्केपर अपना ठप्पा लगाया, जिससे अपोलोदोत (२)के तुरन्त बाद ही उसका होना मालूम होता है। अपोलोदोत (२) ३० ई०पू० के आसपास मौजूद था। हमें मालूम है, कि मिथ्रदात (२) (१२४-८८ ई०पू०) के सेनापति सोरेनने शकोंको सीस्तानसे भगाया था, जिसके कारण उनमेंसे कितने ही बोलन (मुल्ला) दर्रेसे भारतकी ओर आये। इन्होंने सिंध ,कच्छ और सौराष्ट्र ले लिया। सिंधका वह भाग अभीरिया कहा जाता था, जिसे शकों ने पहले लिया। आभीर भी यवन विजेताओंके साथ आये मध्य-एसियाके घुमन्तू शकोंकी ही एक शाखा थी। प्रथम शक मिंथ, गुजरातमें ११०-८० ई०पू० के बीच शासन करते थे।

५. राज्य-व्यवस्था[1]

वाख्त्रियाके ग्रीक शासनका ढांचा वही था, जो कि [illegible] दारयवहु (१) द्वारा निर्धारित ईरानी शासन व्यवस्थासे कुछ सुधार करके लिया था। दारयवहुने क्षत्रप, सेनापतिके अतिरिक्त उन्हींके समान राजामात्यका एक तीसरा पद भी क्षत्रपियोंमें स्थापित किया था, किंतु अलिकसुन्दरने राजामात्यका पद हटा दिया था। क्षत्रपीका शासक अब स्त्रतेगोस् कहलाता था दारयवहुकी क्षत्रपियां बहुत बड़ी थीं। सेल्यूकीय साम्राज्यसे कहीं बड़ा होनेपर भी दाराके साम्राज्य में वह तैंतीस ही थी, जबकि सेल्यूकीय राज्यमें उनकी संख्या ७२ हो गई। क्षत्रपीके नीचे एपारची थी और उसके नीचे हिपारची। एपारचीको जिला और हिपारचीको तहसील या सब-डिवीजन कह सकते हैं। वाख्त्रियाने एपारची ही को उपराज द्वारा शासित प्रदेश बना दिया। एपारचियां प्राय: प्राकृतिक विभाजनके आधारपर बनी थीं। इनके अतिरिक्त कितनी ही ग्रीक बस्तियां (पुरियां) थीं, जिनमें ग्रीस की पोलियोंके अनुकरण करनेकी कोशिश की जाती थी। अलिकसुन्दरने ७० के करीब पोलिस (पुरियां) बसाई थीं। सेल्यूकीय पोलिस सैनिक उपनिवेश जैसी थीं। ग्रीक पोलीका प्रबंध एक परिषद् और एक सभा द्वारा होता था। तिग्रा तटपर अवस्थित सेलूकियाकी परिषद्के ३०० सदस्य होते थे, सभामें और भी अधिक सदस्य होते थे। इनकी मासिक और वार्षिक बैठकें हुआ करती थीं। नगर सभाका काम केवल नगरकी व्यवस्था ही करना नहीं बल्कि नागरिकोंके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके विकासको भी देखना था। इसके लिए क्रीड़ा-क्षेत्र, अखाड़े, नाटचशालायें हुआ करती थीं। पोलियों तथा देशकी राजकीय भाषा ग्रीक थी। नगरके देवता भी ग्रीक देवावलीसे लिये गये होते थे। पोलीके मजिस्ट्रेटको एपसितल कहते थे। [illegible] नाम परिषद् पेश करती थी। नगरका एक जननिर्वाचित कोशाध्यक्ष भी होता था। निर्वाचन प्राय: तीन सालों बाद होता था। बाख्त्रिया (बलख) और पुष्पकलावती (गंधार) की गणना प्रधान ग्रीक पोलियोंमें थीं। सेल्यूकीय साम्राज्य में ग्रीक और अग्रीकका बहुत भेदभाव रक्खा जाता था, इसलिए वहांकी पोलियोंमें शासितों और शासकोंका संबंध कुछ कुछ वैसा ही था, जैसा कि अंग्रेजी शासनकालमें हमारी छावनियोंमें गोरों और कालोंका। इसका यह अर्थ नहीं, कि दोनों जातियोंमें विवाह-संबंध नहीं होता था। दिमित्रि (१) जैसे राजाओंने अनुभव किया, कि इस तरहका भेद-भाव अच्छा नहीं है। उसके समय

---

[1]Greeks in Bactria

पोलियोंके भेदभावमें कुछ कमी अवश्य हुई। दिमित्रिने अपने उच्च पदोंके लिये भी स्थानीय लोगों को लिया था और पार्थिवों (पह्लवों) और शकोंके लिये भी क्षत्रप बननेका रास्ता खोल दिया था। मौर्योंने विदेशियोंको अपना राज्यपाल तक बनाया था, जैसा कि सौराष्ट्रके मौर्य गवर्नर के उदाहरणसे मालूम होता है। सौराष्ट्र, अवन्ती, मथुरा और तक्षशिलाके शक (पल्लव) क्षत्रपोंकी परंपराका आरंभ ग्रीक राजाओंके समयमें हुआ। ग्रीक शासनके अवशेष के तौरपर दशपुर और दूसरे भारतीय नगरोंमें ग्रीकोंका होना ईसाकी पहली-दूसरी शताब्दियोंके उनके अभिलेखोंसे मालूम होता है, वही अवस्था बाख्त्रिया और सोग्दमें भी रही होगी। संभव है, ग्रीक लोगोंका भारतीकरण हमारे यहां जितनी तेजीसे हुआ, उतना मध्य-एसियामें न हुआ हो। वहांके घुमन्तू शक भी अपनी मूलभूमिके सभी समाजिक रीति-रवाजोंको कायम रखना चाहते थे। कुछ पश्चिमी विद्वानोंका विचार है, कि यवन (ग्रीक) के नामसे जिन दाताओंके अभिलेख नासिक, कार्ला आदिकी गुफाओंमें मिलते हैं, वह वस्तुतः यवन-जातिक नहीं, बल्कि यवन-नागरिक हो सकते हैं। हम देख चुके हैं, कि अपोलोदोत जैसे ग्रीक राजाने अपने सिक्कोंका इतना भारतीकरण किया, कि उनसे ग्रीक लिपि और भाषा तकको हटा केवल भारतीय लिपि और भारतीय भाषा ही को रहने दिया। ई० पू० द्वितीय शताब्दी में भारतीय ग्रीक राजाओंने भारतीय देवताओंको अपने सिक्कोंमें स्थान दिया। मिनान्दरने खुलकर भारतीय (बौद्ध) धर्मको अपनाया, दिमित्रि (१) (१८६-१६७ ई० पू०) से हीं बहुतसे ग्रीक राजाओंने "धार्मिक धर्मराजा" बननेका प्रयत्न किया, इसलिए जहां तक भारतका संबंध है, यहां यवन-जातिक और यवन-नागरिककी कल्पना निराधार मालूम होती है। यहांके यवन कहे जानेवाले नागरिक वस्तुतः यवन-जातीय थे। भारतमें भेदभाव हो भी नहीं सकता था, क्योंकि अलिकसुन्दरके मरनेके थोड़े ही दिनों बाद ग्रीक छावनियां नहीं रह गई थीं, और उसके बाद जब दिमित्रि (१) भारत में शासन करनेके लिये आया, तो उसकी नीति बदल चुकी थी।

ग्रीको-बाख्त्रीय राजाओंके सिक्कोंसे मालूम होता है, कि वहांकी पोलियोंके प्रधान देवता ग्रीक देवावलीमेंसे ही लिये गये थे। जिस तरह ग्रीस देशमें नगर देवता होते थे, वैसे ही ऐसियाई पोलियोंमें भी उन्होंने देवता स्थापित किये थे। ये ग्रीक देवता भारतमें भी आये थे, जिनकी कितनी ही मूर्तियां हमें गंधार कलाके सुन्दर नमूनोंके रूपमें मिली हैं। हेरेकल एक प्रधान ग्रीक देवता था। पौरुषको प्रकट करनेके लिये इस देवसेनानीका बहुत सम्मान था। एउतिदिमके सिक्कों पर इसकी सुंदर मूर्ति मिलती है। दूसरे ग्रीक देवताओंमें ज़ेउस् दिवोदात (१) और दिवोदात (२), हेलियाकेल के सिक्कों पर मिलता है। यह देवताओंका पिता (देउस्पितर) माना जाता था, लेकिन सैनिक प्रभुत्वपर अधिक श्रद्धा रखनेवाले ग्रीक शासकोंके सिक्कोंपर उसकी उतनी प्रधानता नहीं देखी जाती। पोलियोंमें इसकी पूजाका विशेष स्थान रहा होगा, इसमें संदेह नहीं। अपोलोन तीसरा ग्रीक देवता था, जिसका चित्र एउक्रतिदके सिक्के पर मिलता है। इस संगीत-प्रिय देवता की मिट्टीकी भी मूर्तियां मिली हैं। अथिना अथेन्सकी महान् देवी दिवोदात (२) के सिक्केपर मिलती है। दिमित्रि, अपोलोदोत, मेनान्दर और दूसरे ग्रीक राजाओंने भी अपने सिक्कोंपर स्थान देकर अथिना का सम्मान किया है। ग्रीस देशकी सबसे सम्माननीय पुरीकी अधिष्ठात्री का ज्यादा सत्कार होना ही चाहिये। पल्लदा अथिना ही का दूसरा नाम है।

विजय की [illegible], एउक्रतिद, मिनान्दर और दूसरे राजाओंके सिक्कोंपर मिलती है। दिवोनिस् देवताकी भी पूजा होती थी। बाख्त्रिया, फर्गाना और कपिशाकी द्राक्षावलय भूमिमें इस द्राक्षाके देवताको कैसे भूला जा सकता था ? कपिशामें दिवोनिस्का विशेष सम्मान था, यह अगथोकलके सिक्केसे मालूम होता है। मेगस्थेनके कथनानुसार भारतमें पहाड़ोंमें दिवोनिस और मैदानोंमें हेरेकलकी पूजा होती थी, किन्तु जान पड़ता है, मेगस्थेनने शिव और वासुदेवको दिवोनिस और हेरेक्ल समझ लिया। ई० पू० द्वितीय शताब्दीके आरंभमें भारतमें इतने ग्रीक लोग कहां थे, कि पहाड़ों और मैदानोंमें देवानिस और हेरेकलकी पूजा होती ?

ग्रीक देवताओंके अतिरिक्त ईरानी देवी अनाहिता भी ग्रीक पूजामें स्थान पा चुकी थी। कहा जाता है, मूलतः जिस तरह सोग्द (जरफशां) नदीकी अधिदेवता दइत्ई, यक्सर्त (सिर दरिया) की अधिदेवता तनइस् थी, उसी तरह वक्षुकी अनाहिता। अखामनी कालमें भी अनाहिता की महिमा थी। कुछ विद्वानोंका मत है, कि यह मूलतः बाबुली देवी थी, जिसे ईरानियोंने स्वीकार कर लिया। सासानी कालमें तो अनाहिता परमेश्वरी बन गई। रोमन इतिहासकार क्लेमेन्त अलेकसन्द्रीय (ईसाकी दूसरी-तीसरी शताब्दी) से पता लगता है, कि उसके समय बाख्त्रिया नगरीमें अफ्रोदिता तनइस्की पूजा होती थी। [illegible]ने तनइका ईरानी नामोच्चारण तनता बतलाया है। मित्रके नामसे सूर्यदेव ग्रीक भक्तोंको अपनी ओर ज्यादा खींचनेमें सफल हुए थे। कहा जाता है, ईसाकी आरंभिक सदियोंमें मित्र-सम्प्रदायने ग्रीसदेशपर इतना प्रभाव डाला था, कि वहां यह सवाल पैदा हो गया था कि ग्रीस और रोमका धर्म मित्रवाद होगा, या ईसाइयत। मित्र जान पड़ता है, शतम्-परिवारका एक जातीय देवता था। ईरानी-आर्य भी मित्रके नामसे सूर्यकी पूजा करते थे। यद्यपि जर्थुस्त्र के सुधारने अहुरमज्दको प्रथम स्थान दिया, लेकिन मिथ्र को वह पदच्युत नहीं कर पाया। भारतीय आर्य भी मित्र नामसे सूर्यकी पूजा-प्रार्थना करते थे। वह ऋग्वेदके प्रधान देवताओंमें हैं। आरंभिक समयमें ईरानी या भारतीय आर्य मूर्ति बनानेकी आवश्यकता न समझ प्रत्यक्ष सूर्यकी ही पूजा करते थे; लेकिन पीछे सूर्यकी मूर्तियां भी बनने लगीं। बाख्त्रियामें ई० पू० तृतीय और द्वितीय शताब्दीमें मिथ्र और अनाहिताका बहुत ऊंचा स्थान था। इसी समय उसकी मूर्ति बनी, जो सिक्कोंपर मिलती है। शकोंके समयसे मिथ्र (मिहिर) की पूजा भारतमें भी बहुत बढ़ी। शकोंने जल्दी ही भारतके धर्म और संस्कृतिको अपना लिया। एक दो शताब्दियों तक ही वेषभूषा, खानपान आदिमें अपने पृथक् अस्तित्वको कायम रखते पीछे भारतीय जनसमुद्रमें इतना घुल-मिल गये, कि उनका पता लगना तक मुश्किल हो गया, किंतु, अपनी सूर्यकी मूर्तियोंके रूपमें उन्होंने भारतमें अपना स्थायी चिन्ह छोड़ा। इनके सूर्य देवता द्विभुज और शकोंकी तरह ही घुटने तक बूट पहनते थे। वही बूट, जिसे आज भी रूसी लोग जाड़ोंमें पहनते है, और जिसे हम कनिष्ककी मूर्तिमें भी देख सकते हैं। ई० पू० ५वीं ६ठीं शताब्दीमें भी इसी तरहके बूट अल्ताईसे लेकर कार्पेथीय पर्वतमाला तकके शक पहना करते थे।

[illegible] धिषणा देवीको बाख्त्रिय-ग्रीक राजाओंके पूज्य देवताओंमें बतलाया जाता है। लेकिन धिषणा देवी भारतमें उतनी प्रसिद्ध नहीं थी। वैदिक देवी होते वह केवल किसी प्राकृतिक शक्तिकी प्रतिनिधित्व करती होगी, इसलिए उसकी मूर्तिका यहां पता नहीं लगता। धिषणा देवीकी द्विभज तथा अर्धनग्न मूर्ति एक धातुके कटोरेपर मिली है। इसके दोनों

तरफ दो पुरुष (अश्विनी कुमार द्वय) दिखलाये गये हैं। बुद्धकी मूर्ति गंधार-कलासे ही शुरू होती है, जिसका उद्गम ग्रीक और भारतीय कलाका संमिश्रण है। ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें अभी बुद्धकी मूर्तियां बन नहीं पाई थीं, इसलिए भरहुतकी तरह ग्रीक और मिनान्दर, अगथोकलके सिक्कों पर बौद्ध चिह्न, स्तूप या बोधिवृक्षको ही रखकर सन्तोष कर लिया गया। शिवको भी नादियाके संकेतसे चित्रोंपर प्रकट किया गया है। ग्रीक लोग अपने उत्तराधिकारी शकोंकी तरह धर्मके बारेमें बड़े उदार थे। वह ईरानी अहुर-मज्दको भी पूज सकते थे, और उसके विरोधी भारतीय इन्द्रको भी। जेउस, बुद्ध, अनाहिता, पल्ला, वृत्रेघ्न, हेरेकल सभीसे वह वरदान माँगनेके लिए तैयार थे।

६. कला[1]

ग्रीको-बाख्त्रीय कलाका एसियाकी कलामें बहुत ऊँचा स्थान है। ग्रीक कला सेल्यूकीय पोलियोंमें भी बहुत आदृत थी, किंतु वह वहाँ बँध्या ही रह गई। बाख्त्रियामें पहुँचकर उसने भारत, अफगानिस्तान और उभय मध्य-एसियाकी कलापर बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा। भारतके संपर्कमें आकर यही कला गंधार कलाके नामसे प्रसिद्ध हुई। हम बतला चुके हैं, कि एउथुदिम, दिमित्रि और एउक्रतिदके सिक्कोंके रूपमें पोर्त्रेत कला इतनी ऊँची उठी, जहाँ पीछे उसका प्रतिद्वंद्वी कोई नहीं हुआ। भारतमें उसके बाद मथुराकी कुषाणकला विकसित हुई, जिसकी उत्तराधिकारिणी गुप्त-कला है, जिसके रूपमें भारतीय कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची। यद्यपि मथुराकी कला गंधार कलाकी नकल नहीं है, किंतु उसकी उन्नतिमें उस कलाका हाथ अवश्य रहा है। मथुरा-कलाके पैदा होने और फलने-फूलनेका वही समय है, जब कि मथुरा ग्रीक और शक क्षत्रपोंकी राजधानी रही। ग्रीक और शक क्षत्रपोंकी छत्रछायामें ही उसकी उन्नति हुई, फिर वह गंधार-कलासे कैसे प्रेरणा लेनेसे रुकती? लेकिन ग्रीक कलाने भारतीय कलाके लिए जो कुछ किया, प्रेरणा देनेमें जितना हाथ बँटाया, वही बात मध्य-एसियाके बारेमें नहीं कही जा सकती। कंग लोगोंके सिक्कों और कलापर उसका कुछ प्रभाव ख्वारेज्ममें अवश्य देखा जाता है—ख्वारेज्ममें मिले कलाके नमूनोंपर उसका प्रभाव देखा जाता है, यद्यपि जहाँ तक राजनीतिक प्रभावका संबंध है, ख्वारेज्म न अलिकसुन्दरके अधीन हुआ, न उसके उत्तराधिकारियों—सेल्यूकीय तथा ग्रीको-बाख्त्रीय राजाओंके। मध्य-वक्षु-उपत्यकामें उसके अवशेष तेरमिज आदिकी खुदाइयोंमें मिले हैं, लेकिन उसका प्रसार जल्दी ही खतम हो गया। ७ वीं शताब्दीके अंतमें पहुंचते-पहुंचते इस्लामसे इस भूमिका संबंध होने लगा, ८ वीं, ९ वीं, १० वीं—इन तीन-शताब्दियोंमें तो मूर्ति-ध्वंसकोंका प्राधान्य हो जानेके कारण मूर्तिकलाके पनपनेकी गुंजाइश नहीं रही। अब वहां ही भारतकी गंधार कला और उसकी उत्तरवर्ती कलाओं की तरह मध्य-एसियामें कोई प्रवाह प्रचलित नहीं रह सका। तुर्फान और दूसरे स्थानोंसे मिले नमूनोंसे पता लगता है, कि ग्रीको-बाख्त्रीय कलाने पूर्वी मध्य-एसिया और चीनके पश्चिमी भागमें अपना प्रभाव फैलाया था।

---

[1]वहीं, पाम्यातिनकि० फलक १-५०, इस्कुस्स्त्वो स्रेद्निइ आजिइ (ब० व० वेइमार्न, मास्को १९४०) पृ० ९-१४।

स्रोत-ग्रंथ :

१. पाम्यत्निकि ग्रेको-बाक्त्रिइइस्कओ इस्कुस्स्त्वो (क० व० त्रेवर, लेनिनग्राद १९४

2. Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn, Cambridge 1938)

३. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्नेइ आजिइ (ब० व० वेइमार्न, मास्को १९४०)

4. Memoire Sur l' Asie Centrale (Girard de Rialle, Paris 1875)

५. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्की सेवेर्नोइ किर्गिजिइ (ब० न० बेर्नश्ताम्, फ्रुन्जे, १९४१)

6. L'Asie Ancienne Centrale et Sud-Orientale d'apre's Ptolome' (A. Berthelot, Paris 1930)

7. Catalogue of Coins in the British Museum (P. Gardner 1886 —Greek and Scythian Kings of Bactria and India

8. Coins of Ancient India (J. Allen, 1936)

9. The Story of Chang Kien (Fr. Hirth, J A O S. 1917 xxxvii). pp. 8

10. Hellenistic Civiliasation (W. W. Tarn, 1930)

11. Selucid-Parthian Studies (W. W. Tarn 1937 Proc. Brit. Acad 1930)

12. Heart of Asia (E. D. Ross, London 1899)

अध्याय ४

शक (ईसा पूर्व १३०–४२५ ईसवी)

१. यूची

१७६ (या १७४) ई० पू० में चीनके प्रहारके कारण भगे हूणोंने अपने पश्चिमी पड़ोसी यूचियोंके स्थानको छीननेके लिये उनपर आक्रमण किया[१], जिससे उन्हें अपनी भूमि छोड़ पश्चिमकी ओर भागना पड़ा। सइवाङ शकोंकी भूमिमें प्रवेश करनेपर उनका एक भाग—लघु-यूची —तरिम-उपत्यकामें जाके बस गया, और दूसरा—महायूची—सप्तनद और त्यानशानके वू-सुनोंको पीटता-पाटता पश्चिमकी ओर बढ़ते यक्सर्त (सिरदरिया) की उपत्यकामें पहुँचा। इस महाप्रवासमें उन्होंने अपने रास्तेमें पड़नेवाली सभी बाधाओंको कठोरतापूर्वक हटाया, यह वू-सुनोंके साथके उनके संघर्षसे मालूम होता है। त्यान्शान्के पहाड़ोंसे हो कर वह फर्गाना की भूमिमें पहुंचे, जहां उस समय ग्रीको-बाख्त्री राजा क्रमशः एउक्रितिद (१६६-१५६ ई० पू०) और हेलियोकल (१५६–१३०ई० पू०) का शासन रहा। संभव है, हेलियोकलके आरंभिक शासनमें उन्हें फर्गानाको हड़पनेका मौका मिला। १४१ ई० पू० में ग्रीको-बाख्त्री इतिहासपर परदा पड़ जाता है। १७४ ई० पू० के आसपास अपनी मूलभूमि कन्सूको छोड़नेके बाद वू-सुनोंके साथके संघर्षकी थोड़ी सी भनक मिलनेके सिवा यूची शकोंका अंतमें पता १२४ ई० पू० में ही लगता है जबकि चाङ क्यान् उन्हें यक्सर्त और वक्षु नदीकी उपत्यकाओंकी भूमिका स्वामी पाता है। चाङ-क्यान्को हान् सम्राट् वू-तीने १३८ ई० पू० में यूचियोंको इस बातके लिए राजी करनेको भेजा था, कि वह हूणोंको ध्वस्त करनेमें पश्चिमकी ओरसे आक्रमण करके चीनका हाथ बँटाये। चाङ-क्यान्की यात्राके बारेमें हम पहले बतला चुके हैं। जब वह फर्गाना (तावान) पहुँचा, तो वहां शकोंका शासन था। उन्होंने चाङ-क्यान्को अच्छी तरह यूची शासकोंके पास पहुंचा दिया, जो कि उस समय सोग्द (जरफ़शाँ) और वक्षु (आमूदरिया) के बीचमें रहते थे। चाङ-क्यान्के लेखसे मालूम होता है, कि काङ-किन् (यक्सर्त, सिरदरयिा) के उत्तरमें हूणोंका राज्य था और दक्षिणमें यूचियोंका। चाङ-क्यान्ने यूचियोंको उर्वर और समृद्ध ग्राम-नगरोंकी भूमिमें घुमन्तू जीवन बिताते देखा। यूची कृषि और वाणिज्यको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे और सैनिक तथा तदनुरूप घुमन्तू जीवनको ज्यादा पसंद करते थे। चाङ-क्यान्के पहुंचने तक वह बाख्त्रियाको जीत चुके थे। अपने पशुओं और तम्बुओंको लिए हुए यूची लोग ता-वान (फर्गाना), ताहिया (बाख्तर) और अन्-सी (पार्थिया) में घूमा करते थे।

---

[१] Greeks in Bactria and India (W. W. Tarn), Memoire sur l' Asie Centrale (Girard de Rialle, Paris 1875)

अपोलोदोतके बाख्त्रीय राज्यके विजेता यूचियोंके चार कबीलोंमें एक था असि-ई (यूची, अर्सी), जो किसी किसीके मतमें तोखारी (थोगुरोई) है। इनका केंद्रीय स्थान थोगोरा नगर रेशम-पथपर था। चीनी लेखकोंके अनुसार ई० पू० द्वितीय शताब्दीमें यूचियोंकी मूलभूमिमें तोगारा का अवशेष मौजूद था। बाख्त्रिया-विजयके समय चारों कबीलोंमें असिई अधिक शक्तिशाली थे। कुषाण इन्हीका एक प्रभुताशाली भाग बतलाया जाता है, यद्यपि इसकी भी संभावना है, कि कुषाण लघु-यूचीसे संबंध रखते हों। तरिम-उपत्यका का कूचा नगर उसी कुषाण नाम को बतलाता है। तोखारी भाषाके नमूने हमें मध्य-एसियाकी मरुभूमिसे मिले हैं, यद्यपि वह उस समयके नहीं है, जब कि यूची बाख्त्रियाके स्वामी थे। बाख्त्रियाका नाम पीछे जो तोखार पड़ा, वह इन्हीं तोखारियोंके प्रभुत्वके कारण ही। स्वेन्-चाङने भी दरबंदसे हिंदूकुश पर्वत-मालातक वक्षुके दोनों तरफकी भूमिको तुखार (तुषार) कहा। अरब इसके कितने ही भागको तुखारिस्तान कहते थे। पीछे तुर्कोंकी प्रधानताके कारण अफगानिस्तान और ईरानवाले इसे तुर्किस्तानका एक अंग मानने लगे। तोखारी भाषा, जो मध्य-एसियाके हस्तलेखोंमें मिली है, कुषाणोंकी भाषा थी, जिसका संबंध शक-भाषासे था। इसमें हिंदी-यूरोपीय भाषाके [illegible] (पश्चिमी यूरोपीय) भाषाका कुछ कुछ रूप मिलता है, जब कि ईरानी, संस्कृत और पुरानी शक भाषा शतम-परिवारसे संबंध रखती थी। कुछ यूरोपीय पुरातत्ववेत्ताओंने तो कूचाकी स्त्रियोंमें अपनी पुरानी नारियोंकी वेष-भूषा और चित्रोंमें उनकी नीली आंखोंको देखकर यह निर्णय कर डाला, कि यह यूरोपसे आई कोई जाति थी, जो एसियाटिक शक-समुद्र के भीतर एक द्वीपकी तरह कूचा और उसके आसपासमें बस गई। केंतम भाषाके लक्षण कितनी मात्रामें है, यह एक विचारणीय बात है, नही तो नीली आंखें और भूरे बाल शकोंमें ही नहीं, बल्कि वैदिक आर्योंमें भी पाये जाते थे। बुद्धकी आँखें अतिसी (अलसी) के फूलकी तरह नीली थीं। महाकवि अश्वघोषकी माँ सुवर्णाक्षी (पीली आंखोंवाली) थीं। मेनान्दरके समकालीन पतंजलि ब्राह्मणके शरीर लक्षण कपिल वर्ण और पिंगल केश बतलाते हैं। कूचाकी स्त्रियोंसे कुछ मिलता-जुलता कोट हिमालयमें जौनसार और जौनपुरकी स्त्रियोंमें आज भी देखा जाता है (यहाँ जौन शब्दका ग्रीक यवनोंसे कोई संबंध नहीं है, यह यमुनाकी उपत्यकाका परिचायक है)।

१२८ ई० पू० में चाङ-क्यान्ने[1] यूचियोंको समरकंद और वक्षु नदीके बीचमें डेरा लगाये देखा था। ता-वान् (फर्गाना) में उस समय शकोंका शासन था। संभव है, पहिलेसे ही यहाँ शक-शासन रहा हो, और उन्होंने यूचियोंको अपना अधिराज स्वीकृत कर लिया हो। यह हमें मालूम ही है, कि उनके पूरब और उत्तरके पर्वतोंमें वू-सुनोंका निवास था। हेलियोकल जिस समय भारत-विजयमें लगा हुआ था, उसी समय यूचियोंको मौका मिला और उन्होंने ग्रीको-बाख्त्रीय शासनका खातमा कर दिया। यूची शक-भाषा-भाषी थे। वू-सुन्, सङ्-वाङ, कंग और पार्थिव (पार्थियन या पह्लव) यह सभी भाषायें शक-भाषाकी ही भिन्न-भिन्न बोलियां थीं। इसीलिए चाङ-क्यान् लिखता है,[1] कि फर्गानासे पार्थिया तक एक सी ही भाषा बोली जाती है। रोमन इतिहासकार स्त्राबो जब शकोंके बाख्तर जीतनेकी बात करता है, तो उसका अभिप्राय यूचियोंसे है। ग्रीक लेखकोंने बाख्तर-विजेता चार घुमन्तू जातियोंका नाम लिया है—(१)

---

[1] The story of Chang Kien (Fr. Hirth, J A O S 1917, pp. 89)

असिई, (२) पसिउनी, (३) तोखारी और (४) सकरौली। इनमें असिई या अर्सी यूची मालूम होते हैं। कुछ लोग तोखारियोंको यूची बतलाते हैं। कुषाण-वंश तोखारी था, इसलिए लघु-यूचीके अन्तर्गत था। पीछे कदफिस् (१) के रूपमें पांच शक-जातियोंके संघर्षमें हम कुषाणोंको सफलता प्राप्त करते देखते हैं। हो सकता है, रोमन इतिहासकारोंकी चार शक जातियाँ भी इन्हींके अन्तर्गत हों। पूर्वी मध्य-एसियामें तुखारी भाषाकी ए और बी दो बोलियोंके अभिलेख मिले है, जिनमें ए बोली कराशर (तुर्फान) की थी और बी बोली कूचाकी। बी बोली के साथ कुषाणोंका संबंध स्थापित किया जा सकता है, लेकिन इन दोनों बोलियोंके कराशर और कूचाके जो नमूने मिले हैं, वह शकोंके बाख्तर-विजयके कई शताब्दी पीछेके है। कूचाकी भाषामें केन्तमका प्रभाव देख कर यहांके लोगोंको यूरोपसे आई जाति साबित करनेकी जो कोशिश की गई है, वह विचारणीय अवश्य है, किंतु हम यह भी जानते है, कि भाषा सर्वत्र रक्तकी परिचायिका नही होती।

यूची लोगोंमें शकोंकी परंपराके अनुसार स्त्रियोंका स्थान काफी ऊँचा था, पति घरसे बाहरके काम-काजमें भी पत्नीकी राय लिया करता था। हमें मालूम है, कि कुरव जिस लड़ाईमें मरा, उसकी संचालिका एक शक-स्त्री थी। ऐसे दुर्धर्ष शत्रुके सामने, जिसके घोड़सवार-धनुर्धरोंकी संख्या एक लाख बतलाई जाती है, यवनोंके लिये ठहरना मुश्किल था। तब भी उनमें दिग्-विजयकी एक सनक सवार थी। अपनी शक्तिको छिन्न-भिन्न होते देखकर भी हेलियोकल हिंदूकुश पार दिग्विजयके लिये जानेसे अपनेको नहीं रोक सका। उसके सामने जहाँ यूची उत्तरसे सैलाब की तरह बढ़ते चले आ रहे थे, वहाँ उत्तर-पूर्वमें पार्थिव शक्तिशाली हो गये थे। पार्थिव जैसी एक छोटी सी शक जाति सेल्यूकीय और बाख्त्रीय प्रतिद्वन्द्विता तथा कंगोंकी सहायतासे ईरानके उत्तरमें कास्पियन तटवर्ती (पार्थिया) प्रदेशको हाथमें करके अब एक विशाल राज्यका रूप ले चुकी थी। उसने सेल्यूत्रियोंको दबाते हुए एक और काम यह किया, कि यूची शकोंमेंसे कुछको ले जाकर पूर्वी ईरान (सीस्तान) में बसा दिया। लेकिन स्वच्छन्दता-प्रिय घुमन्तू शक भला किसके होते? छठें पार्थिव राजा फ्रात (२) (१३८-१२४ ई० पू०)—जो कि प्रतापी मिथ्रदात (१) (१७०-१३८ ई० पू०)का उत्तराधिकारी था—इन्हीं शकोंकी एक बड़ी सेना लेकर अन्तियोक (सेल्यूकी) से लड़ने गया था। किसी बात पर शकोंसे पार्थियोंका झगड़ा हो गया और युद्ध क्षेत्र हीमें शक बिगड़ उठे। फ्रात इसी लड़ाई में मारा गया और तब (१२६ ई० पू०) से शकों (यूचियों) और पार्थियों (पह्लवियों या पल्लवों) का झगड़ा स्थायी हो गया। फ्रातका उत्तराधिकारी अर्तवान मिथ्रदात (२) (१२४-८८ ई० पू०)भी इन्हीके कारण युद्धमें मारा गया। मिथ्रदात (२) ने अंतमें समझ लिया, कि शकोंसे मध्य-एसियाको छीना नहीं जा सकता, इसलिए मसोपोतामियासे बाख्त्रिया तक एक पार्थिव साम्राज्यको स्थापित करनेके स्वप्नको उसे छोड़ देना पड़ा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पार्थिवोंने अपने दो शाहोंकी मृत्युका बदला यूचियोंसे नहीं लिया। बाख्त्रियाके यूचियोंका वह बहुत बिगाड़ नहीं सके, किंतु सीस्तान के शकों पर मिथ्रदात (२) के सेनापति सोरेन ने १२४ ई० पू० से ११५ ई० पू० तक लगातार जबर्दस्त प्रहार किये और ११५ ई० पू० के आसपास अर्थात् जब कि यूची बाख्त्रिया पर अपने शासन को मजबूत कर चुके थे, शकों को शकस्तान छोड़कर भागने के लिये मजबूर किया। शक ११५ ई०पू० के आसपास वह बलोचिस्तान और सिंध की ओर भागे। वहाँ उन्होंने अपना शासन स्थापित किया। उनके पश्चिमी भाइयों की समृद्धि जिस समय बढ़ रही थी, उसी समय

इन शकों ने सिंध को लेकर सौराष्ट्र, अवन्ती और मथुरा तक अपने राज्य का विस्तार किया और इन्होंने क्षहरात वंशी अपने नेता मोग के नेतृत्व में ७७ ई०पू० के आसपास गंधार से कपिशा तक को भी विजय करने में सफलता पाई।

(१) क्षहरात वंश

यूची वाख्त्रिया के शासक थे, और मोग तथा उनका कबीला धीरे धीरे बलोचिस्तान, सिंध, सौराष्ट्र, अवन्ती, मथुरा, कपिशा और गंधार तक का शासक बन गया। इन दोनों का आपस में क्या संबंध था, इसका स्पष्ट पता नहीं लगता। बहुत से कबीले होने के कारण, हो सकता है, वह अलग अलग शासन करते हों। हूणों के समय में ही हम जानते हैं, इन कबीलों का संघ उतना मजबूत नहीं होता था। इनके उपराजों को यदि साधारण शासित प्रजा स्वतंत्र राजा समझती हो, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। वाख्त्रिया के यूची के शासकों के बारे में भी हमें मालूम नहीं है। पहिले आनेवाले यूचियों का पता उनके सिक्कों से कुछ स्पष्ट हो जाता है। तक्षशिला मोग की राजधानी थी और बाख्त्रिया की राजधानी शायद बामियान में थी। मोग क्षहरात वंश का था। अवन्ती सौराष्ट्र का शासक इपान भी क्षहरात-वंशी था। मथुरा का शक रजूबुल भी [illegible] था, इसलिये हम कह सकते हैं, कि यूचियों की जो शाखा भारत की ओर आई, उनके सामन्तों का वंश क्षहरात था।

(२) मोग (७७-५८ ई० पू०—

भारत में आये शकों (क्षहरातों), बल्कि सारे यूचियों में भी मोग प्रथम शक राजा था, जिसका हमें पता है। और जगहों में भी इसके उपराज रहते थे, मथुरा और उज्जैन में क्षहरात वंशी क्षत्रपों का होना इसी बात को साबित करता है। शायद मोग उनका प्रधान था। मोग ने सिंध से उत्तर की ओर बढ़कर गंधार (तक्षशिला) को जीत उसे अपनी राजधानी बनाया। इसके सिक्कों पर पहले राजा मोग लिखा रहता था, किंतु पीछे अधिक राज्यवृद्धि के कारण "रजति-रजस महतस मोअस" '(राजाधिराज महान् मोग) लिखा जाने लगा। "महत" का अलग प्रयोग केवल ग्रीक राजाओं के सिक्कों के 'मेगोलस' का ही अनुकरण जान पड़ता है। मोग झेलम तक ही ले सका। इसके आगे मिनान्दर के वंशज अब भी शासन करते रहे। मिनान्दर-पुत्र स्त्रात (१) उसका पौत्र स्त्रात (२) और तद्वंशी दूसरे राजा भी पंजाब की कुछ भूमि पर अपने अस्तित्व को कायम रक्खे रहें। हां, पश्चिमी सीमांत पर मोग जैसे प्रबल शत्रु को देखकर रावी से यमुना तक के भाग पर कुणींद्र, आर्जुनायन, यौधेय आदि जातियों ने स्वतंत्र हो गणराज्य कायम कर लिये। यवनों के शासन से पहले भी यहाँ की जातियों के अपने गणराज्य थे, जो कि मिनान्दर और उसके पुत्र के शासन में दब से गये थे। मथुरा ६० ई०पू० के आसपास शकों की हो गई। सौराष्ट्र और अवन्ती के विजय के बाद मोग ने मथुरा को जीता होगा। यहाँ के क्षत्रप पहले हगाम और हगान थे, जिनके बाद महाक्षत्रप रजुबुल (राजुल) हुआ। मोग के मर जाने

---

[१] Greeks in Bactria; प्राचीन भारत का इतिहास (भगवत शरण उपाध्याय) पृ० २०५।

के कारण शकराज्य छिन्न-भिन्न हो गया, इसी समय रजुबुलने महाक्षत्रप बनकर अपने को स्वतंत्र घोषित किया। क्षहरातवंशज हगाम का शासन ५८ ई०पू० अर्थात् विक्रम संवत का आरंभ समय था। हगाम ४० ई० पू० और रजुबुल ४० ई०पू० के बाद शासन करता रहा। उसके उत्तराधिकारी सोडास का शासन १० ई०पू० आसपास खतम हुआ।

मोग के सिक्कों पर ग्रीक लिपि में पहले "वसीलेउस् मउओस्" लिखा रहता था। जिस सिक्के पर मोगका नाम है, उसी पर हर्मेयस का भी नाम मिला है। हरमेयस् शायद ग्रीको-बाख्त्रीय राजा कपिशा (काबुल) का भी राजा था, जो कि गंधार (मोग के राज्य) के पश्चिममें थी। शायद गंधार लेने के बाद मोग ने इसे भी ले लिया। मोग की मृत्यु (५८ ई०पू०) के बाद भारत में शक राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। मध्य एसिया में स्थिति क्या थी, इसका पतानहीं लगता। भारत में विशेष कर कपिशा और गंधार में उनका स्थान पह्लवों ने लेलिया। बाख्त्रिया में संभवतः पह्लवों (पार्थियों) का बल उतना नहीं बढ़ा। यह हमें मालूम है, कि पह् लवों के साथ के संघर्ष के कारण सोरेन पह् लव ने शकों को सीस्तान से भगाया था। पह्लवों के बारे में याद रखना चाहिये कि ईसा की ३री से ७वी सदी तक यद्यपि शाही वंश ईरानी (सासानी) था, किन्तु कई शताब्दियों तक शासन करने में पह्लव (पार्थिव) इतने स्वदेशी और सम्मानित हो गये थे, कि सासानियों ने पार्थिवों के जिन सामन्त-वंशों की शक्ति और सम्मान को बनाये रक्खा। उनमें सोरेन पह्लव वंश प्रमुख था। सोरेन पह्लवों की भूमि रे (वर्तमान तेहरान) के आसपास थी। पह्लवों ने सीस्तान से शकों को भगाने में सफलता पाकर ही संतोष नहीं किया, बल्कि उन्होंने अपने प्रति-द्वंदियों को भारत में आके फूलते-फलते देख उनपर बराबर आंख रक्खी। घुमन्तू यूची अपने कितने ही वर्षों के पार्थिव संबंध तथा सीस्तान के निवास से पार्थिवों अर्थात् ईरानी संस्कृति और शासन व्यवस्था से इतने प्रभावित थे, कि उन्होंने अपने शासन में बहुत सी बातें ईरानियों से ले लीं, जिनमें क्षत्रप और महाक्षत्रप की उपाधि भी है। मोग के मरने के बाद क्षत्रप उपाधि के ही नहीं, बल्कि स्वयं पह्लवों को भारत में आने का मौका मिला और आगे करीब पौन शताब्दी (५८ ई०पू०-२५ ई०) तक हम पश्चिमोत्तर भारत पर पह्लवों का शासन देखते हैं।

(३) पह्लव[1] (४८ ई०पू०-२५ ई०)—

मोग और दूसरे शक राजाओं के शासन का पता जिस तरह उनके सिक्कों से ही लगता है, उसी तरह पह्लवों का पता भी हमें उनके सिक्के ही देते हैं। पह्लव, पल्लव, पार्थिव और पार्थियन एक ही जाति के वाचक शब्द हैं। पह्लव वंशने ईरानपर २४६ ई० पू० से २२६ ई०) तक शासन किया,। इसके राजाओं की संख्या २९ थी। ईरान में इन्होंने सेलूकीय (ग्रीक) राज्य का स्थान बड़े संघर्ष के बाद लिया। ईरानी संस्कृति के बाद जिस संस्कृति का सबसे अधिक प्रभाव पह्लवों पर पड़ा था, वह थी ग्रीक संस्कृति। शक, पह्लव, ग्रीक (यवन) आरंभिक काल में भारत और बाहर आपस में राजशक्ति के लिये चाहे कितने ही लड़े हों, किंतु वह शान्ति के समय अपने को भाई-भाई समझते रहे। ई० सन् के बाद इन्होंने भारत के बहुत से राजवंशों को

---

[1] यही हिन्दू-पार्थिव, श्री भा० शं० उपाध्याय के अनुसार (प्राचीनभारत का इतिहास पटना १९४९)

दिया, यहां के राजाओं के साथ विवाह संबंध किया, बड़े बड़े नागरिक और सैनिक पदों को प्राप्त किया और अंत में राजपूत बनकर भारत की पुरानी क्षत्रिय जाति में मिल गये। [illegible] के कारण पह्लव सातवाहनों के संबंधी बने। सातवाहनों की एक शाखा (इक्ष्वाकु) जो धान्य कटक ((जि. गुन्तूर) से शासन कर रही थी, जिसके बनवाये (ईसा की २री-३री शताब्दी के) स्तूप और विहार श्रीपर्वत (नागार्जुनी कोण्डा) और दूसरे स्थानों में अब भी मिलते हैं। इनके शिला-लेखों और मूर्त्तियों से पता लगता है, [illegible] वैवाहिक संबंध था। इन्हींके उत्तराधिकारी दक्खिन के पल्लव राजा थे, जो ३री शताब्दी में कांची में अपना एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करने में सफल हुये है। कांचीके पल्लव राज्यने चार शताब्दियों तक दक्षिण में एक सबल और समृद्ध शासन का ही रूप नहीं लिया, बल्कि भारतीय कला और साहित्य के विकास में उसने वही पार्ट अदा किया, जो कि उत्तर में गुप्तों ने किया। यही नहीं, जावा, कम्बोज आदि में भारतीय संस्कृति और कला के विस्तार में सबसे अधिक हाथ पल्लव संस्कृति का है। इस प्रकार हम जान सकते हैं, कि पौन शताब्दी का पह्लव शासन भारत के लिये कोई नगण्य घटना नहीं है। स्वतंत्र पह्लव शासकों की राजधानी तक्षशिला थी। इनके सिक्कों से हमें निम्न पह्लव राजाओं का पता लगता है:[1]—

बोनान ७-१६ ई०
स्पलहोर
स्पलरिश १५ ई०
स्पलगदम
अय १६-१७ ई०
अयिलिस १७-१८ ई०
गुंदफर २५ ई०

दूसरा और कोई साधन न होने के कारण हमें सिक्कों की सूचना पर निर्भर रहना पड़ता है, किंतु उससे वंश-परंपरा साफ तौर से नहीं जानी जा सकती। एक बात तो स्पष्ट मालूम होती है, कि हमारे इतिहासकार बोनान को जो प्रथम पह्लव शासक मानते हैं, उसमें वह ईरान के पार्थिव राजवंश के इतिहास को देखने का प्रयत्न नहीं करते। बोनान या बनाना १६ वां पार्थिव राजा था, जिसने ७ ई० से १६ ई० तक शासन किया था। जान पड़ता है, उसीके समय में पह्लवों का शासन एक स्वतंत्र राज्य के तौर पर स्थापित हुआ। स्पलहोर बोनान का पुत्र था। बोनान के सिक्के, मालूम होते है, भारत के लिये नहीं, बल्कि सारे पार्थिव-राज्य के लिये ढाले गये थे। स्पलहोर के सिक्के की एक तरफ लिखा रहता है "वसीलेउस् वसीलेउन" और दूसरी ओर "महाराज भ्रातस भ्रमिअस स्पलहोरस। इससे मालूम होता है, कि स्पलहोर बोनान का भाई था। "धार्मिक" का अर्थ है, बौद्ध धर्म का अनुयायी। लेकिन मोग के मरने (५८ ई० पू०) और बोनान (१) के राज्यारूढ (७ई० होने के बीच में ६५ [illegible] है। यदि हम बोनान को पार्थिव सम्राट् न मानें, तो मोग की मृत्यु के बाद ही इसको हम शकों का उत्तराधिकारी मान सकते हैं। बोनान के सिक्के में एक ओर ग्रीक

---

[1] भारतीय सिक्के (श्रीवासुदेवशरण उपाध्याय, प्रयाग १९४८ पृ० ११६-२५)

लिपि में "राजाओं का राजा बोनान" लिखना सारे पार्थिव साम्राज्य की दृष्टि से है, और दूसरी ओर उसके भाई स्पलहोर का केवल महाराज-भ्रात लिखा जाना यही बतलाता है, कि वह पार्थिव सम्राट् का उपराज मात्र था। भारतीय पह्लवों ने अपने सिक्कों में उसी तरह ग्रीक-लिपि, देवताओं और पदवियों का अनुकरण किया, जैसा कि मोग ने किया था। इनके कुछ सिक्के चौकोर भी हैं, जिनमें एक ओर ग्रीक देवता हेरकल की मूर्ति और ग्रीक लेख होता है, और दूसरी ओर ग्रीक देवी पल्लस की मूर्ति। कुछ सिक्कोंमें स्पलहोर और उसके पुत्र स्पलगदम का भी नाम प्राकृत भाषामें अंकित मिलता है। स्पलगदम को भी "ध्रमिअ" लिखना उसके बौद्ध होने का परिचायक है। इन सिक्कों में प्राकृत भाषा खरोष्ठी लिपि में लिखी हुई है, जो कि पश्चिमोत्तरीय भारत में अशोक के समय से ही प्रचलित लिपि चली आती थी। पह्लवों और शकों का पश्चिमोत्तर भारत से संबंध और ग्रीकों के अनुकरण की प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी, कि उन्होंने सौराष्ट्र और अवन्ती जैसे ब्राह्मी-लिपि के क्षेत्र में पहुँच कर भी ग्रीक लिपि का उपयोग अपने सिक्कों में किया। बोनान का एक दूसरा भाई स्पलरिश था, जो शायद स्पलहोर के बाद शासक बना। इसके एक सिक्के में [illegible] है, जिससे मालूम होता है, कि जिस तरह बोनान और स्पलहोर, स्पलगदम, और बोनान से स्पलरिश का संबंध था, उसी तरह का संबंध अय से स्पलरिश का भी रहा होगा। स्पलरिश के सिक्के पर त्रिशूलधारी राजा की खड़ी मूर्ति है। सिक्के की एक ओर ग्रीक अक्षरों में राजा की उपाधि और स्पलरिश नाम लिखा हुआ है, दूसरी ओर ग्रीक देवता ज़ेउस की सिंहासन पर बैठी मूर्ति तथा खरोष्ठी लिपि में लेख "महरजस महतस स्पलरिश।" स्पलरिश जान पड़ता है, बोनान की अधीन नहीं बल्कि अब स्वतंत्र शासक बन गया था। इस अकेले नामवाले सिक्के के अतिरिक्त उसका दूसरा भी सिक्का मिलता है, जिसमें एक ओर ग्रीक लिपि में स्पलरिश का नाम खुदा रहता है, और दूसरी ओर खरोष्ठी में अय का नाम। इन सिक्कों में एक ओर राजा घोड़े पर सवार और दूसरी ओर उसकी मूर्ति के साथ अय का नाम रहता है। यह बतलाता है, कि अय अभी स्पलरिश के उपराज या क्षत्रपकी तरह शासन करता था। जब अय स्वतंत्र शासक हो जाता है, तो एक ओर उसकी [illegible] उसकी राजोपाधि और नाम रहता है, और दूसरी ओर किसी ग्रीक देवी देवता की मूर्ति के साथ खरोष्ठी लिपि में '''महरजस रजरजस महतस अयस" लिखा रहता है। किसी सिक्के पर एक ओर मोअका नाम और दूसरी ओर अय का नाम भी उत्कीर्ण देखा जाता है, जिससे संदेह होने लगता है, कि अय मोअ के बाद शासनारूढ हुआ। लेकिन साथ ही हम अय की अधिराजी परंपरा अय-स्पलरिश-बोनान को भी जानते हैं, इसलिये इस सिक्के के बारे में कहा जा सकता है, कि अय ने मोअ के सिक्के की एक ओर अपने नाम का ठप्पा लगवा दिया। यदि हम अय को प्रथम मानें, तो स्पलरिश के साथ उसके लघुशासक होने की संगति नहीं स्थापित कर सकते। स्पलहोर बोनान का भाई था और स्पलरिश भी; लेकिन स्पलगदम, स्पलहोर और स्पलरिश का अय के साथ किस प्रकार का रक्त-संबंध था, इसे जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है।

पह्लव (विशेषकर अय के) सिक्कों पर पीछे कुछ भारतीय देवताओं की भी मूर्त्तियाँ मिलने लगती हैं। अय के दस प्रकार के चांदी के और कई प्रकार के तांबे के सिक्के मिले हैं। दोनों में यूनानी देवी-देवताओं की प्रधानता पार्थियों के "फिलहेल" (यवन-पुत्र) के भाव को प्रगट करती है। कुछ और सिक्कों के कारण अय का उत्तराधिकारी अयलिश बतलाया जाता है, जिससे ही

एक नये पह्लव राजा द्वितीय अयस का अनुमान किया जाता है। इसके राज्यपाल अस्पवर्मा के सिक्केकी एक ओर घोड़े पर सवार चाबुक लिये राजाकी मूर्ति तथा अत्यन्त भद्दे यूनानी अक्षरोंमें उपाधि के साथ अय का नाम है और दूसरी ओर यूनानी देवी पल्लस की मूर्त्ति तथा खरोष्ठी लिपि में "इंद्रवर्मपुत्रस अस्पवर्मस स्त्रतगस जयतस" लिखा है। हम जानते हैं, कि ग्रीक शासनकाल में क्षत्रपी (प्रदेश) के शासक को "स्त्रतेगोस" कहते थे। सेलूकीय साम्राज्य में ७२ स्त्रतेगोस थे। पह्लव सिक्कों के देखने से पता लगता है, कि उनके सिक्के का प्रथम पार्श्व अधिराज की मूर्ति [illegible] था और दूसरा पार्श्व उसके स्त्रतग (उपराज, राज्यपाल) के लिये। अस्पवर्मा में अब भी ईरानी शब्द का रूप "अस्प" मौजूद है, किंतु उसका पिता इन्द्रवर्मा शुद्ध भारतीय नाम रखता है। दक्षिण के पह्लवों में तो आगे चलकर वर्मा सभी राजाओं की साधारण उपाधि हो गई, जो अभी भी त्रिवांकुर और कोचीन के राजाओं के नाम के साथ देखी जाती है।

जिस अंतिम पह्लव राजा को कुषाण कुजुल ने हराकर अपने वंश की स्थापना की, उसका नाम पकारे कहा जाता है। ईरानी पार्थिव वंश का २२वां राजा पकोर २७७ ई० के आसपास हुआ था, जिसका और अर्दवान (४) का संघर्ष रहा। इसके पहले पकारे (पाकुर) प्रथम हुआ, जो अर्दवान (१६-४२ ई०) का ही दूसरा नाम या प्रतिद्वंद्वी रहा होगा। गुंदफर का भी एक विशेष स्थान है। कितने ही लोग गुंदफर को गर्दभिल्ल राजा बनाना चाहते हे। यूनानियों के काल से अब ईरान और भारत इतने दूर हो गये थे, कि उनके सिक्कों पर लकीर पीटते हुये यूनानी लिपि और भाषा का उपयोग बहुत ही भद्दे और अशुद्ध रूप में ही होता था। प्रो० राखालदास बनर्जी का मत है, कि गुन्दरफर कनिष्क और हुविष्क के समय (७८-१५२ ई०) राज करता था। गुन्दरफरके सिक्कों की एक तरफ घुड़सवार राजा की मूर्ति, ग्रीक लिपि में उपाधि और नाम तथा दूसरी ओर जेउस या [illegible] अक्षरों में "महरजस रजतिरजस त्रतरस देवव्रतस गुदफरस" ([illegible]) होती है। बाद के सिक्कों से यह भी पता लगता है, कि उसके भाई अथग्नि और भाई के पुत्र अवगद ने भी गुन्दरफर के उपराज के तौर पर शासन किया था। गुंदफर के एक सिक्के पर जहां एक ओर घोड़सवार मूर्ति और ग्रीक लिपि में उत्कीर्ण राजाकी नामोपाधि मिलती है, वहां दूसरी ओर विजय देवी को हाथ में लिये जेउस की मूर्ति तथा खरोष्ठी में "महरजस रजतिरजस गुदफर भ्रतपुत्रस अवगदस" (महाराज राजाधिराज गुंदफर के भाई के पुत्र अवगदका) [१] इनके अतिरिक्त सनवर तथा पकुर आदि पह्लव शासकों के और भी सिक्के मिलते हैं, जो इस वंश के अंतिम शासक रहे।[१]

---

[१]भारतीय सिक्के (वासुदेव शरण उपाध्याय) पृ० १२७

२. तुलनात्मक शक-पह्लव-वंश

ई०	भारत	चीन	दक्षिणापथ	ईरान
१	(शातवाहन)	पिङती १-६	बोनान ७-१६	(पार्थित्र)
			बोनान ७-१६	उरुद II २-६
			अय १६-१७	अर्दवान् १६-४२
			गुदफर १८-२५	
२०		क्वाङ् वूती २५-५८	कुजुल I २५-५०	
४०	हाल			वारदान४२-४६
			बीम ५०-७८	वल्गश (I) ५१-७७
६०		मिङ् ती ५८-७६		
		चाङ् ती७६-८९	कनिष्क ७८-१०१	पाकुर ७७-१०५
		होती ८९-१०६		
१००	गौतमीपुत्र-१०६-१३०	अन्-ती १०७-१२६	वसिष्क १००-१०६	खुस्रव१०५-११३
			कनिष्क II ११९	
१२०		शुन् ती १२६-१४५	हुविष्क १२०-५२	
				वल्गश II, III१३३--१९१
१४०	पुडुमावि १५५	ह्रान्ती १४७-१६८	वासुदेव १५२-१८६	
१६०	यज्ञश्री १६६-१९६	लिङ् ती १६८-१८९		
१८०		स्यान् ती १८९-२२०		वल्गश १९१-२०८

२. कुषाण (२५-४२५ ई०)

यूची (ऋचीक) जन के मध्य-एसिया पर अधिकार करने की बात हम कह चुके हैं, और यह भी, कि पार्थिवों (पह्लवों) के प्रहार के कारण उनके एक कबीले को सीस्तान प्रदेश में कुछ वर्षो तक रह वहाँ अपना नाम छोड़ भारत की ओर भागने के लिये मजबूर होना पड़ा। इस कबीले का नाम मालूम नहीं। उसे केवल शक कह देने से बात और भी अस्पष्ट हो जाती है, क्योंकि ईसा की प्रथम शताब्दी में बहुत सी शक-शाखायें थीं—त्यानशान् और सप्तनद में वू-सुन, उनके उत्तर में सइवाङ, और दक्षिण (तरिम-उपत्यका) में लघु-यूचियों के वंशज, तुषारके पश्चिम (वर्तमान ख्वारेज्म कराकल्पकिया और उज्बेकिस्तान) में कंग, जिनके पश्चिम में वोल्गा की ओर अलान (ओसेत), जिनके दक्षिण-पश्चिम में पार्थिव (पुराने दहै, जो पारस की खाड़ी तक के स्वामी

थे), बाख्त्रिया के यूची वंशज, और नम्रस्तान (सीस्तान) से निकलकर बिलोचिस्तान, सिंध, पंजाब, सौराष्ट्र और अवन्ती में फैले शक। सीस्तान से आनेवाली पहली शक बाढ़ के सरदारों का वंश क्षहरात था। यह तक्षशिला, सौराष्ट्र, अवन्ती और मथुरा के शक-शासकों के वंश के नाम से सिद्ध होता है। हम इस पहली बाढ़ को उनके सरदारों के कुल के नाम पर क्षहरात कह सकते हैं। घुमन्तू जातियों का नाम अपने शासक के कुल या प्रतापी शासक के नाम पर पड़ जाना अक्सर देखा जाता है। मध्यएसिया के आजकल के उज्बेकों का नाम मंगोल-वंशीय एक पुराने राजा उज्बेक खान[1] के नामपर पड़ा, जो कि सुवण-ओर्दू मंगोलोंका खान था, जिसने सबसे पहिले इस्लामको स्वीकार किया। क्षहरात वंशकी राजलक्ष्मीको लूटनेवाले उनके पुराने शत्रु पह्लव थे, जिनकी बात हम कह चुके। इसके बाद जो इतिहासमें अत्यन्त प्रतापी शकवंश आता है, उसे कुषाण कहा जाता है। कितने ही ऐतिहासिकों का मत है, कि यह मूलतः लघु-यूचियोंके वंशज तरिम उपत्यकाके तुखारोंकी ही एक शाखा थी, जिनका नाम वहाँके कूचा नगरमें अब भी मिलता था। जिस वक्त उनके बड़े महायूची बाख्त्रिया और कपिशा-गंधार-सिंधके शासक बने, उसी समय इन्होंने पामीर और गिल्गितकी पर्वतमालाओंमें अपने पैर फैलाये। यह याद रखनेकी बात है, कि पहलेके हूणों और तुर्कोंकी भाँति शक घुमन्तू भी तम्बुओंमें रहते घुमन्तू जीवन बिताना अपना धर्म समझते थे। गृहवासी लोग उनकी दृष्टिमें कायर और दब्बू थे। पाँच शक-कबीलोंमें शक्तिके लिए प्रतिद्वन्द्विता हुई, जिसमें कुषाण कबीलेने अपने सरदार कुजुलके नेतृत्वमें सफलता प्राप्त की। उस समय सभी कबीले गंधार और कपिशाके उत्तरके पहाड़ोंमें रहते थे। कुजुलने अपने बाकी चार कबीलोंको ही ढकेलकर अपने कबीलेको आगे नहीं बढ़ाया, बल्कि उसीने भारत में पह्लव वंशका उच्छेद किया।

कुषाण राजा—

१. कुजुल कदफिस	२५-५० ई०
२. विम कदफिस	५०-७४ ई०
३. कनिष्क (१)	७४-१०१ ई०
४. वाशिष्क	१०१-६ ई०
५. कनिष्क (२)	११९ ई०
६. हुविष्क	१२०-५२ ई०
७. वासुदेव	१५२-८६ ई०
पिरो	चौथी सदीका अन्त

(१) कुजुल कदफिस्[2] १ (२५-५० ई०)

कुजुलके विजय प्राप्त करनेके समय कपिशा (काबुल) में ग्रीक राजा हरमेयसका शासन था, जो संभवतः पह्लव शक्तिके निर्बल होनेके समय कपिशाका स्वामी बन गया था। उसने

[1] देखो मध्यएसिया का इतिहास (२) पृष्ठ ३०-३२ (१३०३-४० ई०)

[2] प्राचीन भारतका इतिहास (भ० श० उपाध्याय, पटना १९४८ ई०) पृ० २१३ भारतीय सिक्के (वा० श० उपाध्याय) पृ० १२९, Coins of Ancient India (J. Allan 1936); Coins of ancient India (Rapson)

कपिशाको जीता, या पुराने यवन-वंशकी किसी शाखाने पह्लवोंकी निर्बलतासे लाभ उठाया और उसी वंशका अंतिम राजा हरमेयस था, यह निश्चित तौरसे नहीं कहा जा सकता। इतना मालूम है, कि हरमेयसके सिक्के में उसके साथ कुजुलका भी नाम मिलता है। कुजुलके एक सिक्केपर जिस ओर ग्रीक अक्षरोंमें "बसिलेउस कुषानो कोजोलो कदफिजोयुस" लिखा रहता है, उसी तरफ हरमेयस का आधा शरीर भी चित्रित है, दूसरी ओर ग्रीक देवता हेरकलकी आकृति तथा खरोष्ठी लिपिमें "कुजुलकसस कुषाण यवगस ध्रमठिदस" रहता है। हम पह्लवोंके उदाहरणसे जानते हैं, कि उस वक्त सिक्केकी एक तरफ अधिराजका चित्र और नाम होता, और दूसरी ओर शासकका खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में नामोपाधि उत्कीर्ण होती। यदि यह बात यहाँ भी ठीक है, तो हो सकता है, हरमेयस अधिराज था और कुजुल उसका क्षत्रप या अधीन-शासक था। कुजुल कुषाण-वंश का यवगू था। यवगू या जेब्बू पीछे मध्य-एसियाके तुर्कोंमें उपराजकी एक प्रचलित साधारण उपाधि थी। इस उपाधि का सबसे पहला उल्लेख इसी कुजूल कदफिसके सिक्के में मिलता है। ध्रमठित (धर्मस्थित) पाली धम्मिय (धार्मिक) का ही पर्याय है और जो आम तौरसे बौद्ध राजा ही अपने लिये इस्तेमाल करते थे। ईसाकी प्रथम शताब्दीमें तरिम-उपत्यकामें निश्चय ही बौद्ध धर्म का प्रचार था। इस प्रदेशके दक्षिणी भाग में उस समय भारतीय लिपि और भारतीय भाषा का प्रयोग होता था। नाम आदिसे मालूम होता है, कि भारतसे जाकर बस गए लोगोंका वहाँ प्राधान्य था। तरिम्-उपत्यकाके उत्तरी भागमें शक-जातियों (तुषारों) का निवास था। यद्यपि भाषा, जाति और [illegible]में उत्तर दक्षिणका अंतर था, तो भी वहाँ दक्षिण में कराकुरम और क्वेनलन पर्वतमालाके अन्तरमें बढा हुआ भारत मान सकते थे। वहाँ से उत्तर शक-तुषारोंका देश था। जहाँ तक बौद्ध धर्मका संबंध है, दोनों प्रदेश एकही धर्म और संस्कृतिके माननेवाले थे। इसलिये कुषाणोंके यबगु कुजुलका बौद्ध राजा होना कोई असाधारण बात नहीं थी। आगे सिक्कों परसे हरमेयसका नाम हट जाता है, और उसकी जगह शिरस्त्राण पहने राजाका सिर या दूसरे संकेत के साथ ग्रीक भाषा और लिपिमें कुजुलका नाम मिलता है और दूसरी ओर बैठे हुए राजा, ऊंट या देवता आदि की मूर्तिके साथ "कुषाण यवुगस ध्रमठिदस" या "महरयस रयरयस देवपुत्रस", अथवा "महरजस महतस कुषाण" के साथ "कुजुल-कुश महरयस रजतिरजस यवगुस ध्रमठिदस" मिलता है। हरमाउसके अधीन शासकके तौरपर कुजुल अपना शासन आरंभ करता है। यह भी हमें मालूम है, कि यूचियों द्वारा बाख्त्रियासे यवन-शासनके उच्छेद होनेके समय पुराने यवन राजवंशके लोग दुर्गम पहाडों की ओर भाग गये, जहाँ उन्होंने अपनी प्रजाकी श्रद्धा और भक्ति का लाभ उठाकर अपने छोटे-छोटे राज्य कायम कर लिये। पामीर (इमाओस), और चित्रालके पहाडों में ऐसे बहुतसे छोटे-छोटे राजवंशोंका अभी हालतक अस्तित्त्व था, जो अपनेको सिकन्दर अर्थात् ग्रीक राजाओंका वंशज मानते थे। कुजुलको कुछ इतिहासकार मोगका वंशज मानते हैं, किंतु ऐसा होनेपर फिर वह न तुषारी रहेगा और न क्षहरात छोडकर कुषाण वंश नाम देनेकी उसे आवश्यकता रहेगी। चीनी ग्रंथोंमें भी कुजलका नाम आता है। जान पडता है, कुजुलको कुषाण वंशकी नीव डालने के लिये अपने सारे जीवन भर संघर्ष करना पडा। चीनी लेखकोंके अनुसार वह ८० वर्षकी आयु में मरा।

(२) विम कदाफिस[1] (५०-७८ ई०)

विमके ओएम और दूसरे उच्चारण भी मिलते हैं। चीनी लेखकोंके अनुसार यही भारतका विजेता था। इसने अपने राज्यको कपिशा-गंधारसे और आगे बढ़ाया। संभवतः इसने ही यमुनाके पूरब भी अपनी राज्य सीमा पहुँचाई और बाख्त्रियाको भी अधीन किया। बिहारसे ख्वारेज्म तक फैले कनिष्कके विशाल राज्यके विस्तारमें उसके पूर्वाधिकारी विमका बहुत हाथ था, इसमें संदेह नही। विमके शासनकी एक सबसे महत्वपूर्ण घटना यह है, कि इसीने भारतमें सबसे पहले सोनेका सिक्का चलाया। यवनोंके पहले हमारे यहाँ तांबे या चाँदीके चौकोर (पंचमार्क) सिक्के चलते थे यवनोंने अपने सिक्कोंको गोल तथा राजाकी मूर्ति या दूसरी आकृतियोंके साथ अलंकृत करके निकाला, जिसका भद्दा अनुकरण क्षहरात और पार्थिव भी करते रहे, किंतु,इनमेंसे किसीने सोनेका सिक्का नहीं चलाया। विमने अपने सोनेके सिक्केमें [illegible] तौल आदि का अनुकरण किया है, और उसीकी तरह यह १२४ ग्रेनका होता है। अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यमें सोनेके सिक्केका बड़ा महत्व है, शायद इसीलिए विमने भारतमें सोनेके सिक्कोंका प्रचार किया। भारतका अंतर्राष्ट्रीय व्यापार इससे पहले भी ग्रीस, रोम, अफ्रीका, जावा, चीन और मध्य-एसिया तक था। उस वक्त जल या स्थलका सार्थ (कारवां) अपने साथ भारतीय माल ले जाता और बदलेमें दूसरा माल ले आता था। अब भी इस तरहका व्यापार होता था,किंतु माल ढोकर लेजानेकी जगह व्यापारी थोड़ेसे सोनेके सिक्कोंको ले जाकर बहुतसा माल खरीदकर ला सकते थे। विमके सोनेके सिक्के पर एक ओर शिवकी मूर्ति होती है। किसी किसीपर राजाके नामके साथ "महिश्वर" भी लिखा है, जिससे मालूम होता है, कि कुजुल जहाँ धर्मस्थित (बौद्ध) था, वहाँ विम माहेश्वर (शैव) था। इसके सिक्कोंपर एक ओर [illegible] राजा हाथमें गदा और शूल लिए खड़ा है, तथा वहीं ग्रीक लिपिमें "[illegible]" [illegible], और दूसरी ओर "महरजस राजाधिरजस सर्वलोग इश्वरस महिश्वरस विमकदफिसस"। 'ईश्वर' और "महीश्वर" राजा और महाराजाके पर्याय हैं, इसलिए हो सकता है, "महीश्वर" (माहेश्वर) शैवका द्योतक न हो। इसके दूसरे तांबेके सिक्केकी एक ओर लंबी टोपी और लंबा लबादा पहने राजा खड़ा है। उसकी दाहिनी ओर हवन कुंड है। राजाके बांये हाथमें परशु है। इसी तरफ ग्रीक लिपिमें "बसिलेउस बसिलेउन सेतरमेगस विमकदफिस" लिखा हुआ है। सिक्केकी दूसरी ओर नंदीके साथ त्रिशूलधारी शिवकी मूर्तिके पास खरोष्ठी लिपिमें लिखा रहता है "ईश्वरस महीश्वरस विमकद-फिस"। "ईश्वर महीश्वर" ग्रीक "बसिलेउस बेसिलियोन" (राजाओंका राजा) का अनुवाद मालूम होता है। कुषाणोंको बौद्ध या शैव आदि धर्मोंके साथ संबद्ध देखकर उन्हें भारतमें आकर हिंदू-संस्कृति और धर्मको ग्रहण करनेवाला समझनेकी गलती इसी कारणकी जाती है, कि हम यह नहीं जानते, कि उनका मूल-स्थान (तुषार-देश, [illegible]) इससे पहिले ही से ही धर्म और संस्कृतिमें हिंदू था।

---

(३) कनिष्क (७६-१०६ ई०)

विमके उत्तराधिकारीके रूपमें हम भारत ही नहीं एसियाके एक महान् शासक, महान् निर्माता कनिष्कको पाते है। जिस तरह विम और कुजुलका पारस्परिक संबंध हमें नहीं मालूम है, उसी तरह कनिष्क और विमका भी संबंध भी अज्ञात है। कुजुल कुषाणोंका यवगू (जवगु) था, इससे वह घुमन्तुओंकी प्रथाके अनुसार विम कुजुलका भाई भी हो सकता है और बेटा भी। वही बात विम और कनिष्कके संबंधमें भी कह सकते है। विमने जहाँ गंगासे वक्षु तक फैले अपने राज्यको कनिष्कके लिये छोड़ा, वहाँ सोनेकी मुद्राकी प्रतीकवाली विशाल व्यापार लक्ष्मीका भी उसे स्वामी बना दिया। कनिष्कके सिंहासनारूढ़ होनेके समयसे वह सन् आरंभ होता है, जिसे हम आजकल शक-शालिवाहन संवत् कहते हैं। शालिवाहन सातवाहनका रूपांतर है, जो आंध्र राजाओंकी पदवी सा बन गया था। सातवाहनोंका शकोंके साथ संघर्ष और विवाह-संबंध भी बहुत रहा है, शायद इसी कारण पीछे शक-शालिवाहन (शकसातवाहन) जोड़ा शब्द बोला जाने लगा। कनिष्क जहाँ अशोककी तरह एक उदार "धार्मिक धर्मराजा" बौद्ध था, वहां दूसरी ओर वह एक बड़ा बहादुर योद्धा और कुशल शासक भी था। सारनाथमें उसके तीसरे राज्यवर्ष (८१ ईस्वी) का एक अभिलेख मिला है, जिससे जान पड़ता है, कि गद्दीपर बैठनेके तीन वर्षके भीतर ही वह सारे उत्तर-प्रदेशका स्वामी बन गया था। ख्वारेज्मकी मरुभूमि (करा-कुम) से कनिष्कके समयके नगर मिले हैं और उसीके कारण ईसाकी आरंभिक तीन शताब्दियोंकी वहाँकी संस्कृतिको कुषाण-संस्कृति कहा जाता है। अयस-कला, जिल्दिक और तोप्रक-कलाके ध्वंसावशेष इसी कालके हैं। वहाँ जो चीजें उस कालकी मिली हैं, उनमें कनिष्कके सिक्के भी हैं। अभी भी वहाँकी खुदाई जारी है। जो चीजें वहाँ मिली है, उनके बारेमें अभी ग्रंथ नहीं लिखे गये है। कुछ छोटे-मोटे लेख रूसी अनुसंधान-पत्रिकाओंमें ही छपे है, जो भाषाके कारण ही बाहरवाले विद्वानोंके लिए ज्ञात नही है, बल्कि पत्रिकायें बाहर मिलती नहीं। हमारे दूतावास जितनी शान-शौकतसे अपने कमरोंको सजाने और ठाट-बाटसे रहनेकी फिकर करते है, उतना वहाँ साइन्स, कला और इतिहास-संबंधी जो खोजें हो रही है, उनके बारेमें ध्यान देनेकी अवश्यकता नहीं समझते। १९४९ ई० की खुदाईमें वहाँ तीसरी शताब्दीके महत्वपूर्ण भित्ति-चित्र मिले हैं। एक कमरेमें तो इतने अधिक कुशल कारीगरोंके बनाये हुए धनुष, वाण और दूसरे हथियार मिले है, जिसके कारण उसे उस कालका शस्त्रसंग्रहालय कहा जा सकता है। इन पुराने कुषाणकालीन नगर-ध्वंसोंमे संभव है उस समयके अभिलेख भी मिले। हाल ही में उससे कुछ ही पीछेके चर्मपत्रपर लिखे पुरानी भाषाके बहुतसे अभिलेख मिले हैं। यदि कनिष्कके मनों सिक्के हमें उत्तर प्रदेशके आजमगढ़ जैसे एक जिलेमें मिल जाते हैं और कनिष्कके लेख पेशावर, रावलपिंडीके जिलों, बहावलपुर रियासत, मथुरा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, सारनाथ आदिमें मिले है, तो संभव है, कि कराकुम, किज़िलकुम की मरुभूमि कनिष्क कालके बारेमें जाननेके लिये विशेष सहायक हो।

कनिष्कके राज्यकालका निर्णय उसके और उसके उत्तराधिकारियोंके अभिलेखों द्वारा ही

Notes on Indo-Scythian Chronology, (Sten-Kono), Early History of India (V. Smith)

किया गया है। कनिष्कका सबसे अंतिम अभिलेख उसके राज्यके २३वें वर्ष (१०१ ई०) का मिला है। मथुरा और सांचीमें शक-संवत् २४ और २८ के दो अभिलेख मिले हैं, जिनमें वसिष्कका नाम आता है, जिसका अर्थ हुआ—१०२ और १०६ ई० में वसिष्क कुषाणोंका राजा था। वैसे पेशावर जिलेके आरा स्थानमें शक-संवत् ४१ (११९ ई०) का भी एक लेख मिला है, जिसमें "वसिष्क पुत्र महाराज राजातिराज देवपुत्र... कनिष्कके राज्यका ४१ वर्ष" लिखा हुआ है। जिससे संदेह होता है कि कनिष्कने ४१ वर्ष राज किया। लेकिन वसिष्कका पुत्र कनिष्क था, इसका कोई पता नहीं है।

२६. कनिष्क का कुषाणसाम्राज्य (१०० ई०)

और दूसरे २४वें और २८वें शक-संवत्में वसिष्क और ३१वें से ६०वें (१०९, १४८ई०) में हुविष्कके अभिलेख मिले हैं, जिसके कारण हमें यह मानना पड़ेगा कि वसिष्क और हुविष्क या तो कनिष्कके क्षत्रप थे, अथवा यह वसिष्क-पुत्र कनिष्क दूसरा कनिष्क था, जिसने वसिष्क और हुविष्कके बीचमें राज्य किया। अस्तु। यह तो निश्चित ही मालूम होता है कि कनिष्कने २३ साल (७८-१०१ ई०) तक अवश्य शासन किया था। ख्वारेज्मकी खुदाईसे मालूम होता है, कि कनिष्कका शासन मध्य-एसियामें आजके सारे उज्बेकिस्तान और ताजिकिस्तानमें फैला हुआ था। साथ ही कनिष्क अपनी पितृ-भूमि पुराने तुषार-देश (तरिम-उपत्यका) को भूला नहीं था। चीनने १११ ई० में तावान (फर्गाना) तकको जीतकर सारी तरिम-उपत्यका लेते हुए फर्गाना तकके रेशमपथको अपने हाथमें कर लिया था। तरिमके उत्तरके वू-सुन चीनके बड़े विश्वासपात्र अधीन शासक थे, जिन्हे [illegible] भी चीनने अपने साथ घनिष्ट सूत्रमे बांध रक्खा था। हम अन्यत्र देख चुके हैं, किस तरह वू-सुन राजा चीन राजकुमारियोंको व्याह लाते थे, जो बेचारी

घुमन्तू जीवनके कष्टको बर्दाश्त करते अपने नैहरके सुखोंके लिये आंसू बहाया करती थीं। कनिष्क अपनी अपार अजेय सेनाका नेतृत्व करते हुए चारों ओर अपनी विजय-दुन्दुभी बजा रहा था, उस समय चीनमें लोयाङ के हान-वंश (२५-२२० ई०)का शासन था। वू-ती (२५-५८ ई०)चाङ ती (७६-८८ ई०) और हो-ती (८९-१०६ ई०) इस वंशके प्रतापी सम्राट् कनिष्कके समकालीन थे। इस वंशका संस्थापक वाई याङवान् (२३-२५) ई० था। पुराने हान-वंशकी राजधानी छाङ-आन्में २०८ ई० पू० से २५ ई० तक शासन किया था। तरिम-उपत्यकाकी ओर बढ़नेमें कनिष्कके लिये सबसे बाधक चीन था, जिसके सेनापति पान्-चाउकी वीरता और रणकुशलताकी बड़ी धाक थी। उसने तरिम-उपत्यकाको ही अपने हाथमें नहीं कर रक्खा था, बल्कि उसके कारण कनिष्कका कश्मीर और उसके उत्तरका प्रदेश भी खतरेमें पड़ गया था।

कनिष्ककी यह कोई गुस्ताखी नहीं थी, यदि उसने चीन सम्राट्से राजकन्या मांगी। हम जानते हैं वू-सुन राजा, जो पीढ़ियोंसे चीन सम्राट्के दामाद होते आये थे, बल और वैभवमें कनिष्कके मथुराके क्षत्रप खरपल्लान या काशीके क्षत्रप वनस्पर क्या इन क्षत्रपोंके तीसरा श्रेणीके सरदारोंके बराबर भी नहीं थे। लेकिन जब कनिष्कका दूत पान्चाउके पास अपने राजाके लिये चीनी राजकुमारी माँगने गया, तो उसने कनिष्कके दूतको जेलमें डाल दिया। इस तरह पान्-चाउने कनिष्कको युद्धके लिये आह्वान किया। बंगालसे ख्वारेज्म तकके प्रतापी सम्राट्के लिये यह बड़े अपमानकी बात थी। कनिष्क एक बड़ी सेना लेकर पान्-चाउसे बदला लेनेके लिये गया, किंतु उसे पामीर और हिमालय के दुर्गम मार्गोंको पार करके अपनी सेनाको लेजाना था, जब कि चीनी सेना अपने हूण और वू-सुन सहायकोंके साथ वहां पहलेसे मौजूद थी। फलतः कनिष्कको बुरी तौरसे हारकर चीन सम्राट्का करद बनना पड़ा। खूनके घूंट पीकर उस वक्त तो वह रह गया, लेकिन कुछ वर्षों बाद उसने फिर उस पराजयके कलंकको धोना चाहा। उस समय पान्-चाउ मर चुका था और उसका पुत्र पान्-चाङ चीनकी पश्चिमी सेनाका सेनापति था। कनिष्कने चीनी सेनाको बुरी तरह पराजित किया और तरिम-उपत्यका के अपने पूर्वजोंके देशको प्राप्त करनेमें सफलता पाई। तरिम-उपत्यका और उसके उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में बहुतसे चीनके करद राज्य थे। हूण भी अब दो भागोंमें बंट गये थे, और उनका एक शक्तिशाली (दक्षिणी) भाग चीनके साथ था। इसमें संदेह नही, कनिष्क की सेनाको इन सबकी सम्मिलित शक्तिसे भुगतना पड़ा होगा। कनिष्कने चीनको हराकर ही सन्तोष नही किया, बल्कि मध्य-एसियाई या चीनी राजकुमारोंको जामिन (युद्धके लाभ) के रूपमें अपने साथ ले आया। इन राजकुमारोंके आराम की ओर उसने बहुत ध्यान दिया। इससे एक बड़ा उपकार यह हुआ, कि उन्होंने भारतमें नासपाती और आड़ूके फल पहले पहल लगाये। हमारे यहाँ पहिले से ही कपिशाका अंगूर मशहूर था। उनके रहनेके लिये उसी कपिशा (कोहदामन) उपत्यकामें स्थान बनवाया गया था, जिसे शे-लो-क-विहार कहते थे। स्वेन्-चाङने अपनी यात्रामें ७वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें उसे देखा था। पूर्वी पंजाब (जलन्धर)के जिस इलाकेमें उन्हें जागीर मिली थी, उसका नाम ही चीनभुक्ति (चीन जिला) पड़ गया था। स्वेन् -चाङके जीवन चरित्रके लेखक हुइ-लीने लिखा है, कि राजकुमारोंने विहार बनवाकर उसकी मरम्मतके लिये इतना रुपया गाड़के रख दिया था, कि उसे प्राप्त कर स्वेन्-चाङने विहारकी फिरसे मरम्मत करवा दी।

कनिष्क बौद्धोंकी परिभाषाके अनुसार सचमुच ही "धम्मियधम्मराजा" (धार्मिक धर्म-

राज) था। उसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। इसके पहले गंधारके इस नगरको कोई प्रधानता नहीं मिली थी। गंधारकी प्रसिद्ध नगरी और राजधानी तक्षशिला थी, जो कि सिंधु नदीके पूरबमें रावलपिंडी जिले में कालासरायले स्टेशनके पास शाहजीदीढेरीके नामसे मौजूद है। गंधारका प्राचीन देश (पख्तूनिस्तान) पाकिस्तान और स्वतंत्र कबीलोंमें बंटा हुआ था। लेकिन आजकल पख्तून (पठानोंका देश) रावलपिंडी तक नहीं है। पश्चिमी गंधारमें

चित्र २३—कनिष्क

पुष्कलावती (चारसद्दा) को ग्रीक राजाओंने कुछ समय अपनी राजधानी जरूर बनाया था। गंधारके महत्वका बढ़ानेवाला कनिष्क था। उस समय राजधानी पुरुषपुर बहुत समृद्ध रही होगी, यह तो उससे तीन और पांच शताब्दियों पीछे आनेवाले फा-शीन और स्वेन्-चाङके यात्रा-विवरणोंसे मालूम होता है। कनिष्कके समय पाटलिपुत्रका वैभव पुरुषपुरको मिल गया था। बाख्त्रिया भी एक क्षत्रपकी राजधानीसे अधिक महत्व नहीं रखती थी। फर्गानाकी उर्वर और समृद्ध उपत्यका ही नहीं कनिष्कके हाथमें थी, बल्कि सिङक्याङके पूर्वी सीमासे लेकर पार्थिव

(ईरानी) सीमा तक का रेशमपथ कनिष्क के हाथ में था। फर्गाना तथा सोग्द के समरकन्द आदि व्यापारिक नगर, उसके हाथ में थे। सोग्द नदी के किनारे आज भी कुशानिया कस्बा है, जो बतला रहा है, कि कुषाणोंने इस भूमि को और समृद्ध करने की कोशिश की थी। ख्वारेज्म में निम्न-वक्षु की उत्तर तरफ किज़िलकुम के रेगिस्तान में तोप्रक-क्लाका नगरध्वंस हाल में खोदकर निकाला गया है, जिसके आकार-प्रकार को देखने[1] ही से मालूम होता है, कि घुमन्तू शक अब नागरिकता में आगे बढ़ गये थे। कश्मीर में भी कनिष्क ने कनिष्कपुर नामसे एक नगर बसाया था, जिसका उल्लेख कल्हण ने राजतरंगिणी में किया है। तक्षशिला मे उसका बसाया नगर आजका सिरसुख है।

व्यापार के महत्त्व को, तो जान पड़ता है, कुपाणों ने खास तौर से समझा था, इसीलिये उन्होंने व्यापार-पथों की ओर विशेष तौर से ध्यान दिया था। बड़ी नदियाँ ही नहीं, बल्कि ऐसी नदियों का भी उन्होंने इस्तेमाल किया था, जिनमें वर्षा के दो ढाई महीनें ही नावें चल सकती हैं। इसका उदाहरण आजमगढ जिले के दक्षिण में अवस्थित मँगई (मार्गवती) नदी है। छोटी नदी होने पर भी वह गाजीपुर जिले में सीधे गंगामें जाकर मिलती है। इसी छोटी नदी के दाहिने किनारे पर मेरे पितृग्राम (कनैला) से मील भरपर ही सिसवा का विस्तृत ध्वंसावशेष है, जहाँ वर्षों से ढेरों कनिष्क के सिक्के मिलते आ रहे हैं, । शिंशपा ग्राम कुषाणों के वक्त एक अच्छा व्यापारिक केन्द्र रहा। मंगई नदी में वर्षा खतम होते ही इतना कम पानी रह जाता है, कि लोग जगह-जगह बाँध बाँधकर पशुओं के लिये पानी जमा करते है । कनिष्क के विशाल साम्राज्य में ऐसी न जाने कितनी मंगइयों को व्यापारपथ के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा होगा।

तोप्रक-कला का निर्माण कुषाणों की सुरुचि और उपयोगिता दोनों को प्रदर्शित करता है। यह चौकोर दुर्गबद्ध बस्ती चारों ओर मजबूत प्रकार से घिरी थी। इसकी एक तरफ दक्षिण में दुर्ग का सुदृढ द्वार था। द्वारके भीतर एक प्रशस्त पथ उत्तरसे दक्षिण चला गया था। दक्षिण के छोर पर जान पड़ता है, शासक का महल (अंत:पुर) था। प्रधान सड़क से दाहिने और बांयें समकोण पर चार और सड़कें निकली थीं, जिनके किनारे बाजार और घर बसे हुये थे। नगर की लंबाई प्राय: हजार गज और चौड़ाई ६०० गज थी। खुदाई के संचालक प्रोफेसर न. त. ताल्स्तोफ का कहना है, कि क्लासिकल प्राची की वस्तुकला का यह सुंदर नमूना है। भारत में शकों के शासन और कला का स्थान भारशिवों और बाद में गुप्तों ने लिया।

कुषाणों से पहले वाख्त्रीय ग्रीकों ने कला को बहुत प्रोत्साहन दिया, लेकिन वह भारतीय रंग में तब तक रंग न पाई, जब तक कि कनिष्क के सर्वतोमुखीन प्रगति वाले शासन ने उसे वैसा नहीं कर दिया। बुद्ध की प्रथम मूर्ति कनिष्क के समय में बनी, जिसके चीवर के चुन्नट और केश-विन्यास पर ग्रीक प्रभाव दिखाई पड़ता है, यद्यपि बहुत ही सूक्ष्म और मधुर रूपमें ही। बाख्त्रीय ग्रीक कला को गंधार-भारतीय शैली में परिणत करने का काम कनिष्क के शासन में हुआ । ग्रीक और पह्लव शासन काल से ही मथुरा क्षत्रपों की राजधानी चली आई थी। शासन के समय मथुरा समृद्ध रही होगी, इसमें संदेह नहीं । तक्षशिला, पाटलिपुत्र और दक्षिणापथ के

---

[1] वे. द्रे. १९४६.१ पृष्ठ ७१, ७२, ७३

व्यापारपथ भी यहीं पर मिलते थे। उस समय के राजस्थान का भी मार्ग यहीं से फूटता था। आज यह सारा-सुभीता आगरा को प्राप्त है। बहुत संभव है, इसीके कारण अकबर अपनी राजधानी दिल्ली से आगरा ले गया। १९४७ ई० के बाद भी विना पहले से सोचे-समझे ऐसी घटना घटित होती देखी गई। पहले थोड़े से सिंधी या पंजाबी शरणार्थी आगरा में पहुँचे। कितने ही विस्थापित सिंधी राजस्थान के जोधपुर आदि नगरों में बसना चाहते थे, क्योंकि सिंध के वह समीप थे, लेकिन जल्दी उन्हें मालूम हो गया, कि यदि ऐसे स्थान में रहना है, जहाँ जीविका के साधन भी आसानी से प्राप्त हो सकें, तो आगरा ही वैसा स्थान है। आज आगरा में बहुत बड़ी संख्या में सिंधी आकर बस गये हैं। आगरा आज जहाँ कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, बनारस तथा पूरब के नगरों के साथ रेल द्वारा संबद्ध है, वहाँ बम्बई, दिल्ली, अमृतसर, जयपुर अजमेर आदि से भी वह रेल द्वारा संयुक्त है। अकबर की दूरदर्शिता ने पहले ही आगरा को महत्व दे दिया था, इसलिये अंग्रेजों ने रेल का चतुष्पथ भी वहीं बनाया। कुषाणों के वक्त ये सारे सुभीते मथुरा को प्राप्त थे। इनके अतिरिक्त मथुरा में बुद्ध जाकर रहे थे, बौद्धोंका एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय सर्वास्तिवाद—जिसका कि कनिष्क अनुयायी था—का तत्कालीन प्रधान केन्द्र भी यहीं था। इस धार्मिक संवंध को लेकर मथुरा कुषाण वास्तुकला और मूर्तिकला की अति समृद्ध नगरी बन गई। मथुरा को वासुदेव कृष्ण के जन्मस्थान होने से उतना महत्व नहीं मिला था, यह बुद्धकालीन जनपद और उसकी राजधानी मदुरा के उपेक्षापूर्ण वर्णन से मालूम होता है। बुद्ध के समय सूरसेन जनपद का राजा अवन्तिनाथ चंडप्रद्योत का एक दौहित्र सामन्त था।

मथुरा जैसे कितने ही और समृद्ध नगर कनिष्क-शासित उभय मध्य-एसिया और भारत के बहुत से भागों में मौजूद थे।

कनिष्क और बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म के इतिहास में अशोक के बाद ऊंचा स्थान जिस राजा को है, वह कनिष्क है। पाटलिपुत्र जीतने पर वह अपने साथ अश्वघोष को ले गया। अश्वघोष कालिदास के पहलेके महान् कवि हैं। इनकी कविताकी कितनी ही समानता कालिदास के काव्य में भी मिलती हैं। उनके "बुद्धचरित" और "सौंदरनंद" दो महाकाव्य हैं। संस्कृतमें "बुद्धचरित" खंडित मिलता है, किंतु उसके चीनी और तिब्बती अनुवाद पूर्ण हैं। "सारिपुत्र प्रकरण" (नाटक) की खंडित संस्कृत प्रति तरिम-उपत्यका के रेगिस्तान से मिली है, और उनके एक दूसरे नाटक "राष्ट्रपाल" का पता भी लगता है, यद्यपि वह अभी तक कहीं अनुवाद या मूलरूप में नहीं मिला है। अश्वघोष हमारे पहले नाटककार हैं, जिन्होंने पर्दों और दृश्यों के साथ नये ढंग के अभिनय और रंगमंच का सूत्रपात किया। मथुरा की कला के रूप में जैसे गंधार-कला भारतीय रूप धारण कर विकसित हुई, उसी तरह और उसी समय अश्वघोष के नाटकों के रूप में ग्रीक नाटकों का सुन्दर भारतीकरण हुआ। यह हम बतला चुके हैं, कि एसिया की ग्रीक पुरियों (पोलिस) के नागरिक जीवन और प्रबंध में भी ग्रीस की भांति नाट्यकला का एक विशेष स्थान था। इसलिये भारत की ग्रीक पुरियों में रंगमंच अवश्य रहे होंगे, जो ग्रीको-बाख्त्री कला की तरह बिलकुल ग्रीक रूप और ग्रीक भाषा में होंगे।

कनिष्क के सम्माननीय आचार्यों में अश्वघोष से भी प्रमुख स्थान पार्श्व और वसुमित्र का था। वसुमित्र की अध्यक्षता में कनिष्क ने बौद्धों की एक बड़ी सभा (संगीति) बौद्ध पिटक के संशोधन और संग्रह के लिये बुलाई थी। यह संगीति कश्मीर [illegible] (कुंडलवन विहार) में बैठी

थी, जिसके प्रमुख पार्श्व, वसुमित्र और अश्वघोष थे। इसी समय सर्वास्तिवाद के अंतिम रूप मूल-सर्वास्तिवाद के त्रिपिटकका पाठ-निर्णय और संग्रह हुआ था। इससे भी बढ़कर इस संगीति का काम था, तीनों पिटिकों की विभाषाओं (भाष्यों) की रचना। इन विभापाओं में से एक भी अब मूल संस्कृत में नहीं मिलती। मूल-सर्वास्तिवाद के विनयपिटक का अनुवाद तिब्बती संग्रह (कन्जूर) में मिलता है, चीनी भाषा में मूल तथा उसका भाष्य (विनय-विभाषा) भी प्राप्य है। विनयपिटक भारत के बुद्धकालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन पर बहुत प्रकाश डालता है। उसके भाष्य के रूप में बनी विनय-विभाषा तो और भी अधिक ज्ञातव्य बातों की खान है। इन्हीं विभाषाओं के कारण सर्वास्तिवादी पीछे वैभाषिक कहे जाने लगे। कश्मीर और गंधार कुषाण-वंश की समाप्ति के बाद भी वैभाषिकों के केन्द्र बने रहे, यह हम वसुबंधु के लेखों से जानते हैं। कनिष्क की राजधानी पुरुष-पुर को ही चौथी सदी में वसुबंधु तथा उनके अग्रज असंग को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह दोनों भाई अद्वितीय बौद्ध दार्शनिक हैं। इस समय काव्य-कला, मूर्तिकला, नाट्यकला में ग्रीक और भारतीय धारा का सुंदर समागम हुआ, इसी तरह ग्रीक और भारतीय विचारों के मिलनका भी यहीं समय है। भारतीय न्याय, वैशेषिक, ज्योतिष आदि अनेक शास्त्रों में ग्रीक विचारकों की देन जो हमें स्वीकृत करनी पड़ती है, उसका भी समय कनिष्ककाल है। कनिष्कके समकालीन और सम्मानित आचार्यों में आयुर्वेदशास्त्र के विधाता चरक भी हैं। मातृचेट बौद्धों के एक सुंदर साहित्यकार थे, जिनका "अध्यर्ध-शतक" जहां एक ओर बुद्ध की स्तुति का काम देता था, वहां साथ ही उसके द्वारा तरुण विद्यार्थी को बुद्ध के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का ज्ञान सरलता से हो जाता था। मातृचेट और अश्वघोष को तिब्बती परंपरा एक बतलाती है। मातृचेट का अर्थ है माता का सेवक। अश्वघोष अपनी कृतियों में हर जगह अपने नाम के साथ "सुवर्णाक्षीपुत्र साकेतक" लगाते हैं। माता सुवर्णाक्षी और मातृनगरी साकेत (अयोध्या) के साथ अश्वघोष का बहुत प्रेम था, यह तो स्पष्ट है। मातृचेट का मुख्य नाम क्या था, यह हमें मालूम नहीं है। पर, अश्वघोष और मातृचेट को एक कहना ठीक नहीं है। कनिष्क ने और आचार्यो को बुलाने के समय मातृचेट को भी बुलाया था, किंतु बुढापे के कारण न आ उन्होंने 'अध्यर्घ-शतक" को अपनी सेवा के रूप में भेजा। वस्तुतः उस समय कला और विद्या के नवरत्नों का कनिष्क की राजधानी में जो समागम हुआ था, उसीका अनुकरण तीन शताब्दी बाद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया।[1]

सिक्के[2]—कनिष्क के सिक्के विहार से लेकर अराल समुद्र तक बहुतायतसे मिलते हैं। भारतीय मुद्रा के विद्वान् तथा पुरातत्व वेत्ता श्री परमेश्वरीलाल गुप्त (आजमगढ़) ने उन्हें धडियों जमा किया है। इसके सिक्के के अग्रभाग पर लम्बा चोगा, नुकीली टोपी, घुटनों तक का [illegible] "[illegible] वेसीलियोन शाओननो शाओ कनिष्को कुषाणो" (राजाओं का राजा शाहानुशाह कनिष्क कुषाण) लिखा रहता है। इसके पृष्ठ भाग पर हेरकल, सेरापी आदि ग्रीक देवताओं,अतशो

---

[1] Coins of Ancient India (J. Allen, Rapson),

[2] भारतीय सिक्के (वा० श० उपाध्याय)

(अग्नि) जैसे ईरानी देवताओं, मीरो (मित्र), सूर्य जैसे शक देवताओं या बोदो (बुद्धकी मूर्ति) के साथ ग्रीक में देवताओं के नाम अंकित होते हैं। हम कह चुके हैं, कि कनिष्क के लिये बौद्ध धर्म या भारतीय संकृति कोई नई चीज नहीं थी, क्योंकि उसके पिता-पितामहके समयसे ही नहीं, बल्कि कुषाणों के मूल स्थान तरिम-उपत्यका में रहते समय भी बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति की प्रधानता थी। उसने अपने पूर्वगामी राजाओं का अनुकरण करके खरोष्ठी लिपि और प्राकृत भाषा को यदि सिक्कों पर स्थान नहीं दिया, और ग्रीक भाषा और लिपि का ही उपयोग किया, तो उसका कारण ग्रीक संस्कृति के प्रति अंध भक्ति नहीं कहा जा सकता, जैसा कि उसके समकालीन ईरान के पार्थिव राजा अपने को "फिलहेलन" कहकर करते थे। सिक्कों और कनिष्क के पुरुषपुर (पेशावर), तक्षशिला में बनवाये स्तूपों में भी उसकी बौद्ध धर्म में भक्ति स्पष्ट है। चौथी संगीति कश्मीर के कुंडलवन-विहार में हुई थी, वहाँ पर उसने विहार और स्तूप बनवाये। विभाषाओं को ताम्रपत्रों पर खुदवाकर वहीं के स्तूप में कनिष्क ने रखवा दिया था, किंतु अभी तक न कुंडलवनविहार का पता लगा है, न विभाषा-स्तूप का ही। कनिष्क के समय बौद्ध धर्म में महायान कोई मुख्य स्थान नहीं रखता था। वैपुल्य (वेथुल्ल), रत्नकूट आदि वर्ग के सूत्रों की रचना गांधार में नहीं बल्कि धान्यकटक और श्रीपर्वतके (आंध्र) प्रदेश में हुई। उसका प्रभाव गांधार पर तब पड़ा, जबकि ४थीं सदीमें वसुबंधु के अग्रज असंग गांधार में उसके प्रबल पक्षपाती हुये और प्लातोनके विज्ञानवाद में क्षणिकवाद की पुट देकर उन्होंने योगाचार दार्शनिक संप्रदायका प्रवर्त्तन किया। योगाचार से अनुप्राणित हो ८वीं सदी में शंकराचार्य ने वेदांत का महल खड़ा किया। लेकिन जहाँ तक कनिष्क के काल या राज्य का संबंध है, अभी महायान ने प्रधानता नहीं प्राप्त की थी। तक्षशिला में अपने स्तूप का दान कनिष्क ने सर्वास्तिवाद के आचार्यो को दिया था, यह भी इसी बात को पुष्ट करता है।

कनिष्क के ४१वें राजवर्ष का भी अभिलेख मिला है, इसका हम जिक्र कर आये हैं, लेकिन वह शायद द्वितीय कनिष्क का है, जो उसके उत्तराधिकारी वसिष्क और तदुत्तराधिकारी हुविष्क के बीच में कुछ समय स्वतंत्र शासक रहा। अधिकतर यही ठीक लगता है, कि कनिष्क ने २३ वर्ष तक शासन किया। यह भी कहावत मात्र है, कि बराबर के दिग्विजयों से तंग आकर शक सरदारों ने कनिष्क को मार डाला। कनिष्क के शिर को हम उसके सिक्कों पर देख सकते हैं। उसकी खड़ी मूर्ति प्रायः पुरुषमात्र मथुरा जिलेके माट नामक स्थानमें पाई गई और आज-कल मथुरा-म्युजियम में रक्खी है (चित्र २३)। इस मूर्ति में कनिष्क अपने दाहिने हाथ को एक सीधे दंड से हथियार पर और बांये हाथ को अनग्न खड्ग की मुट्ठी पर रक्खे हुये है। उसके पैरों में वही लंबा शक बूट है, जो भारत की अनगिनत द्विभुज सूर्य-प्रतिमाओं में देखा जाता है और जिसे आज भी शकों के वंशज रूसी लोग जाड़ों में पहनते हैं। उसके शरीर पर घुटनों से नीचे तक लटकनेवाला एक अंगरखा है, जिसके ऊपर उससे भी नीचे तक जानेवाला चोगा है। मूर्ति के पैरों पर कनिष्क का नाम खुदा हुआ है, इसलिये उसके कनिष्क की होने में संदेह नहीं किया जा सकता।

(४) वशिष्क (१०१-१०६ ई०)

वशिष्क या वशुष्कके बारेमे इतना कम मालूम है, कि कितने ही विद्वान् उसे कनिष्क और हुविष्कके बीचमें हुआ राजा नहीं गिनते ; किंतु शक-संवत् २४और २८के उसके दो अभिलेख मथुरा और सांची में मिले है । इसमें संदेह नहीं, उसने थोडे ही समय तक राज्य किया, जिसीके कारण उसके सिक्के नहीं मिले। यह भी हो सकता है, कि वह सिंहासनकी विवादास्पदताके समय मे शासक बना । कनिष्क का साम्राज्य राजधानी पुरुपपुरसे जितना पूरबमे फैला हुआ था, उससे कम उसका विस्तार पश्चिममें नहीं था । संभव है, हुविष्कका जोर पहले गांधारसे ख्वारेज्म तक रहा, उसी समय कुछ सालों तक वशिष्कने शासन किया, अथवा कनिष्कके उपराज होते हुए भी उसके शासित प्रदेशमें उसे अधिराज लिख दिया गया । इस समय करीब करीब सारा मध्य एसियायी दक्षिणापथ कुषाण-राज्यमें था, चाहे उस समय कनिष्कके बाद वाशिष्क और कनिष्क, (२) वहां शासन करते रहे या हुविष्क ।

(५) कनिष्क (२) (११९ ई०)

पेशावर जिलेमें अर्थात् कुषाण राजधानीसे नातिदूर आरा गाँवमें संवत् ४१ (११९ई०) का निम्न अभिलेख मिला है—

"२, महरजस रजतिरजस देवपुत्रस क(इ)सरस वझेष्कपुत्रस कनिष्कस संवत्सरअे अेकचपर (ई)शई सम् २० २० १ ...."[1]

इस लेखसे मालूम होता है, कि कनिष्क (२) वशिष्कका पुत्र तथा स्वयं महाराज राजातिराजदेवपुत्र था । वशिष्कका पुत्र कनिष्क[1] नहीं हो सकता । इसलिये यह शक संवत् ४१ का कनिष्क दूसरा है । इसके बारेमें भी यही कहा जा सकता है, कि या तो हुविष्कके शासनारूढ होनेपर राज्यके लिये झगडा चला, उसमे यह स्वतंत्र हो गया था, अथवा हुविष्कका क्षत्रप था ।

(६) हुविष्क (१२०-१५२ ई०)

हुविष्क निश्चयही कनिष्कका शक्तिशाली उत्तराधिकारी था । वह कनिष्कके प्रायः सारे साम्राज्यको अपने हाथमें कायम रख सका । इसका एक शिला-लेख शक संवत् २८ (१०६ ई०) का गिरधरपुर (जिला मथुरा) के एक कूयें (लाल कुआ) से मिले खंभे पर उत्कीर्ण है । यह कुआँ ८४ जैन मन्दिर और गिरधरपुरके डिहके बीचमे पडता है। आजकल खंभा मथुरा म्युजियम मे है। अभिलेख इस प्रकार है[1]—

१. सिद्धं संवत्सरे २०८ गुरुप्पिय दिवसे १ अयं पुण्या
२. शाला प्राचीतीकनस रनकमानपुत्रेण खरासले
३. र पतिन वकनपतिना अक्षयनीवि दिन्न गुतो वृद्धे
४. तो मासानुमासं क्षुह्लवस्य चातुदिशे पुण्यशाला

---

[1] प्राचीन भारत का इतिहास पृ० २२२ हि० २

५. यं ब्राह्मणशतं परिविषितव्यं दिवसे दिवसे
६. च पुण्यशलाये द्वारमूले धारियें सर्व सवसत्वनां आ
७. ढका ३ लवुण प्रस्था १ शक्र प्रस्था १ हरितकलापक
८. घटक ३ मल्लक ५ अेतं अनाधनां कृतेन दतव्य
९. बुभक्षितान पिवसितानं य च तु पुण्य तं देवपुत्रस्य
१०. षहिस्य हुविष्कस्य ये च देवपुत्रों प्रियः तेषामपि पुण्य
११. भवतु सर्वापि च पृथिवीये पुण्य भवतु आक्षयनिवि दिन्न
१२. . . . . . . क श्रेणीये पुराणशत ५०० ५० समितकर श्रेणी
१३. . . . . . . पुराणशत ५०० ५० ''

इस लेखमें अेक दानका उल्लेख है, जिसमें देवपुत्रषाही हुविष्क तथा जिनके वह प्रिय है, उनके पुण्यके लिये रुकमानपुत्र खरासलेरपति बकनपतिने ११०० पुराण (सिक्कों) की अक्षयनीवि इसलिये स्थापित की, कि प्रतिमास शुक्ल चतुर्दशीके दिन पुण्यशालामें १०० ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय। जान पडता है, ११०० पुराण (५६ ग्रेन चांदी) के सूदसे प्रतिमास अेक भोजके लिये तीन अढइया[१] सत्तू, एक प्रस्थ नमक, एक प्रस्थ शक्कर, तीन घटक और पांच मल्लक हरितकलापक (अरहर) मिल जाता था। इस लेखसे यह पता लगता है, कि २८ वें शक संवत् (१०६ ई०) में हुविष्कका मथुरापर शासन था, और मथुरा की क्षत्रपी (जो कि प्रायः सारे [illegible] क्षत्रपी थी) हुविष्कके हाथमें थी। हुविष्कका शासन उत्तर प्रदेश, पंजाब, कश्मीर, गांधार, कपिशा, तक ही नहीं, वल्कि वाख्त्रिया और ख्वारेज्म तक था। शांयद अभी मूल तुखार देशभी कुषाणोंके हाथ से गया नहीं था। हुविष्कने मथुरामें अेक बौद्ध विहार और चैत्य बनवाया था। कश्मीरमें उसने अपने नामसे एक नगर बसाया था, जो हुष्कपुर, या उष्कुर (जुकुर)के नामसे मौजूद है। उसके अभिलेख २८ से लेकर ६० वें शक संवत् तकके मिलते हैं, जिससे जान पडता है कि वह ईसवी सन् १०६ से १३८ ई० तक अवश्य शासन करता रहा। ऐसी अवस्थामें कनिष्क (२) स्वतंत्रशासक नहीं रहा होगा। ख्वारेज्ममें कुषाण कालके नगर और बहुतसी चीजें निकली हैं, लेकिन अभी उनका पता रूसी विशेषज्ञों के अतिरिक्त और किसी को नहीं हैं। ख्वारेज्मपर कनिष्कके भी बहुत समय बाद तक कुषाणोंका प्रभाव रहा. यह रूसी विद्वान् स्वीकार करते, और ईसाकी २री ३री शताब्दीके ख्वारेज्मकी संस्कृतिको "कुशान्स्कया कुलतुर"[१] (कुषाणीय संस्कृति) कहते है।[२]

हुविष्कके भिन्न भिन्न प्रकारके तांबे और चांदीके सिक्के मिलते हैं, जिसके अग्रभागपर राजाका चित्र, ग्रीक लिपि में नाम और उपाधि सहित अंकित होता है। सिक्केके पृष्ठभाग पर ग्रीक,ईरानी या भारतीय देवी देवताओंकी मूर्तियाँ ग्रीक लिपिमें लिखे नामके साथ होती हैं। केवल ग्रीक लिपि का स्वीकार करना बतलाता है,कि अभी कुषाण राज्य केवल भारत तक ही

---

[१] अल्बेरूनी (ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध) के अनुसार—४ कर्ष (सुवर्ण, तोला) = १ पल, ४ पल (= १६ तोला) = १ कुडव, ४ कुडव (= १४ तोला) = १ प्रस्थ, ४ प्रस्थ (२५६ तोला, ३ सेर २६ तोला = आढक (अढइया) ७३।२. क० सो० XIII पृ० १४८।

सीमित नहीं था। हुविष्कके एक तांबेके सिक्केके अग्रभागपर हाथीपर सवार, शिरपर मुकुट पहने, हाथमें शूल-अंकुश लिये देवपुत्रकी तस्वीर है, और पृष्ठभाग पर किसी देवताकी खड़ी मूर्ति। इसके सोनेके सिक्कोंमें तांबे के सिक्कोंसे कुछ भेद पाया जाता है।

हुविष्कके शासनकालमें साम्राज्यकी समृद्धिमें कोई अंतर नहीं पड़ा। उस समय फर्गाना सोग्द, बाख्त्रिया और ख्वारेज्म बहुत समृद्ध थे। पश्चिममें पार्थिव साम्राज्य भी बहुत विशाल और, शक्तिशाली था। इच्छा होनेपर कुषाण अपने वणिक्पथ को कास्पियनके उत्तरी तट से आलानों और सर्मातोंके भीतरसे रोम-साम्राज्य और युरोपमें अपनी वस्तुओंको पहुँचा सकते थे।

(७) वासुदेव (१५२-१८६ ई०)

जैसा कि नामसे प्रकट होता है, अब कुषाण केवल भारतीय संस्कृतिसे प्रभावित नहीं रह गए थे; बल्कि पूरी तौरसे भारतीय हो गए थे। कुजुल, वीम, कनिष्क, वशिष्क, हुविष्क यह सभी शक नाम हैं, और वासुदेव शुद्ध भारतीय तथा ब्राह्मणिक नाम है। इसके पूर्वाधिकारी हुविष्कका कोई ऐसा सिक्का नहीं मिला है, जिसपर बुद्धकी प्रतिमा हो, इसके विरुद्ध शिव विशाख आदि की मूर्त्तियाँ उसके अनेकों सिक्कोंपर मिलती हैं, जिससे यही जान पड़ता है कि उसकी आस्था ब्राह्मण-धर्मपर अधिक थी, इसीसे उसके उत्तराधिकारीका नाम वासुदेव पड़ा। वासुदेवके अभिलेख संवत् ७४ (१५२ ई०) से लेकर ९८ (१७६ ई०) तकके मिले हैं, जिससे मालूम होता है, कि उसने कमसे कम २४ वर्ष तो अवश्य शासन किया। उसके लेख केवल मथुरा जिलेमें और सिक्के पंजाब और उत्तर प्रदेशमें मिले हैं। शायद अब उसका शासन केवल भारतमें ही रह गया था। कपिशा, बाख्त्रिया, सोग्द, ख्वारेज्म आदिमें नाना देवी की पूजा होती थी, जिसकी मूर्ति पहलेके सभी कुषाण-सिक्कोंपर मिलती है, किन्तु वासुदेवके सिक्कोंपर वह बहुत कम मिलती है। इसके सिक्कोंपर शिव और नंदीकी प्रधानता बतलाती है, कि अब कुषाण-राजवंश ब्राह्मण धर्मी हो चला था। वासुदेवका शासन मध्य-एसियामें नहीं था, लेकिन अब भी मध्य-एसिया कुषाणोंका था। वासुदेवके किसी-किसी सिक्केपर नानाकी मूर्ति मिलती है। उसके सिक्के अधि-कतासे नहीं मिलते, जिससे जान पड़ता है, कि भारतमें भी कुषाण-शक्ति निर्बल होती जा रही थी। मध्यएसियाके कुषाणोंसे संबंध रखनेवाली सामग्री अभी-अभी मिलने लगी है। यह निश्चित मालूम होता है, कि ३री शताब्दीके अंतमें ख्वारेज्म तक कुषाणोंका शासन था। ३री से ५वीं शताब्दीमें अफ्रीग उनका स्थान लेते हैं, जिनके नगरावशेष तोप्रक्-कला, यक्केपरसान और लघु कबात-कलाके ध्वंसावशेषोंके रूपमें शताब्दियों तक किजिलकुमके बालूमें ढंके रहकर अब बाहर आये हैं। बाख्त्रिया, सोग्द और पामीर (ईमाओस्) में भी कुषाणों ही का शासन था। कुषाण अपने मूल स्थानके नामसे तुखारी भी कहे जाते थे, अब इनका प्रधान स्थान मध्य-वक्षुके दोनों तरफकी विस्तृत भूमि थी, जिसे इसी समय तुखारिस्तानका नाम मिला। इस प्रदेशको आरंभिक अरब लेखक इसी नामसे याद करते हैं।

भारतमें वासुदेवके बाद द्वितीय वासुदेव, द्वितीय या तृतीय कनिष्क भी हुए, जिनका पता उनके सिक्कोंसे मिलता है। अंतिम कुषाण शासक किदारके नामसे पुकारे जाते थे। ये कुषाण शाहके नामसे सासानियोंके में अधीन थे। प्रथम किदार कुषाण शाहकी राजधानी पेशावरमें थी। किदारने कश्मीर तथा मध्य पंजाबको जीतकर अपनेको शक्तिशाली बनाया, और सासानी

जूयेको अपने ऊपरसे उठा फेंका। लड़ाईमें विजयी हो किदारने अपने स्वतंत्र सिक्के चलाये। यह सिक्के सासानी ढंगके हैं। इनके अग्र भागपर राजाका आधा शरीर तथा ब्राह्मी अक्षरोंमें राजाका नाम खुदा मिलता है। राजाके शिरपर पगड़ी मुकुटकी तरह बँधी रहती है। बाल शिरपर बिखरे तथा मुखपर दाढीका अभाव देखा जाता है। लेख ब्राह्मी अक्षरोंमें "किदार कुपाण" होता है। सिक्केके पृष्ठभागपर अग्निकुंडके दोनों तरफ दो परिचारक खड़े दिखाई पड़ते हैं।

पिरो (४ थी शताब्दीका अन्त)

किदार अंतिम प्रभावशाली कुषाण राजा था। अब समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्तका समय आ गया था, जिनके विक्रमके कारण कुषाणोंको बहुत धक्का लगा। चंद्रगुप्त (२) (३७५-४१४ ई०) ने पिरोको हराया। पश्चिममें शापूर (३) (३८३-८८ ई०) से भी हार खाकर उसे सासानी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार ५वीं शताब्दीके आते आते कुपाण शक्ति बहुत क्षीण हो गई। मध्य-एसियामें भी उसकी वही हालत हुई। किंतु, जिस प्रकार कुपाणोंका स्थान हेफतालों (श्वेत हूणों) ने लिया, इसके जाननेका हमारे पास साधन नहीं है। हमें यह भी मालूम नहीं है कि वह कौन सा श्वेत-हूण सरदार था, जिसने मध्य-एसियासे कुपाण-शासनको उठाया।

स्रोत-ग्रंथ :

1. Greeks in Bactria India (W. W. Tarn)
२. प्राचीन भारतका इतिहास (भगवतशरण उपाध्याय, पटना, १९४९)
३. भारतीय सिक्के (वासुदेव शरण उपाध्याय, प्रयाग, सं० २००५)
4. Coins of Ancient India (J. Allen, London 1936)
5. Coins of Ancient India (Rapson, London)
6. Catalogue of Coins in the British Museum; Greek amd Scythian kings of Bactria and India, History of Ancient India (V. Smith)
7. History of Ancient India (v. Smith,
8. History of Ancient India (R. S. Tripathi)
9. Memoire Sur l' Asie Centrale (Girarard de Rialle, Paris 1875)
10. The Story of Chang Kien (F. Hirth J A O S. 1917, p. 89)
11. Notes on Indo-Scythian chronolgy, (Sten Kono)
१२. ऋत्कि० सोओब्, XIII पी० १४८,
१३. किताबुल्-हिन्द (अबूरैहाँ अल्बेरूनी, अनुवादक सै० असगरअली, दिल्ली १९४१)

अध्याय ५

हेफताल (४२५-५५७ ई०)

१. राजा

भारत और ईरानमें भी हेफ़ताल हूण कहे जाते थे, किंतु वह वस्तुतः हूण नहीं थे। हूणों के साथ उनका इतना ही संबंध था, कि हूण-प्रहारके बाद मध्य-एसियाकी अपनी भूमि को छोड़कर जहाँ यूची और दूसरे शक दक्षिणकी ओर चले आयेथे, वहाँ पश्चिमी छोर पर कुछ शक-संतानें अब भी रह गई थीं, जो हूण संस्कृतिसे काफी प्रभावित हुई; इसलिए उन्हें हूणिक शक कहा जा सकता है। उत्तरापथ अब भी घुमन्तुओं और अर्ध-घुमन्तुओंका देश था। घुमन्तू चाहे शक हों या हूण, उनके रहन-सहन और कितनी ही और बातोंमें समानता होती है। फिर देर तक हूणोंके शासनमें रह जाने वालों पर अधिक प्रभाव पड़ना ही चाहिये। जान पड़ताहै, जिस संहारके कारण हूण वंशजोंको उत्तरापथ छोड़ धीरे-धीरे पश्चिममें दन्यूबकी-उपत्यकता तक भागना पड़ा, उसी तरहके प्रहारसे हेफ़्ताल भी दक्षिणकी ओर भागनेके लिये मजबूर हुए। हेफ़ताल (एफ़ताल) पश्चिमी शकोंकी संतान तथा अलानोंके भाई-बंध थे। संभवतः वर्तमान ताशकंद प्रदेशके उत्तरमें वहीं इनका कबीला रहता था, जहाँ पर कि वू-सुनों और कंगोंकी सीमायें मिलती थीं। ईस्वी ५वीं शताब्दीमें ख्वारेज्ममें अफ्रीगोंकी प्रधानता हुई। यह अफ्रीक (अफ्रीग) ५ वींसे ६वीं शताब्दी तक ख्वारेज्ममें अपनी स्वतंत्रता बनाये रखे। अरब विजेता उसी तरह इनकी स्वाधीनताका अपहरण नहीं कर सके, जिस तरह इनसे पहले बाख्त्रीय ग्रीकोंने कंगोंकी। श्वेत-हूण (हेफ़ताल) अपनी दक्षिणाभिमुख विजय-यात्रा ताशकंदके द्वारसे सोग्द और बाख्त्रियाकी ओर कर सके। एक बार बाख्त्रिया और सोग्दसे कुषाणों के शासनको हटाकर अपनी प्रभुता जमा लेनेपर कपिशा और गांधारके कुषाण राजाओंको वह छोड़ नहीं सकते थे। इस प्रकार हेफ़्ताल भारत तक चले आये। हेफ़तालोंका मूल-निवास वक्षु-उपत्यका नहीं थी। इनके आनेके समय वक्षु तुषारों (कुषाणों) के हाथमें थी। भारतमें वह अवश्य ६० वर्ष पीछे आये, जब कि बाख्त्रिया इनका केंद्र बन गया था। बाख्त्रीय कुषाण संस्कृतिमें दीक्षित होनेके बाद भारतकी ओर आनेसे उनका प्रथम निवास वक्षु-उपत्यका कहा जाता था। सोवियत विद्वानोंकी हालकी खोजोंसे पता लगता है, कि हेफ़्तालों (श्वेत हूणों) का शासन-केंद्र बाख्त्रिया नहीं, सोग्द-उपत्यका थी। बुखाराके पास वरखशामें इनकी राजधानीके अवशेष मिले हैं। बालूसे ढँके ध्वंसावशेषोंकी दीवारोंपर कितने ही भित्ति चित्र मिले हैं, जिनपर भारतीय चित्रकलाका काफी प्रभाव है।

३. तुलनात्मक हेफताल-अवार वंश

ई०	भारत	चीन	दक्षिणापथ	उत्तरापथ
		(चिन्)		
३००		हुइ-ती २९०-३०७	(कुषाण-४२५)	(हूण)
	(गुप्त)	मिन्ती ३०७-१३		

३२०	चंद्र I ३१९-३४०	मिङ्ती ३२३-२६		
		चेङ्ती ३२६-४३		
३४०	समुद्र ३४०-७५	खङ्ती ५३०		
		मु-ती २७५-६२		(आवार)
३६०		ऐ-ती ३६२-६६		मुकुरु
		ती-ई ३६६-७१		
		स्याङ्-वू-ती ३७३-९७		
३८०	राम गुप्त ३७५	(तोवा) ताङ्-वू-ती		चारूक
	चंद्र II ३७६-४१४	३८६-४०९) अन्-ती ३९७-४१९		
४००		(तोबा)		
		मिङ्-ख्वान ४०९-२४		शे-लुन्-३९४
४२०	कुमार I ४१५-५५	ताइ-कू ४२४-५२	(हेफताल ४२५)	दादर-४२९
४४०				
४६०	स्कन्द ४५५-६७	वेन्-चेङ् ४५२-६६		
	नरसिंह ४६८	स्यान्-वेन् ४६६-७१		तुगोचिर
	कुमार II ४७३	स्याङ्-वेन् ४७१-५००		तुगोचिर-पुत्र ४६-७०
४८०				
५००		स्वान्-वू ५००-१६	तोरमान५१०	
	भानु ५१०-	स्याङ् मिङ ५१६-२८	मिहिरकुल-	चेउनो-५१६-
५२०		स्याङ् च्वाङ् ५२८-३०		ब्रह्मन्
		स्याङ् वू ५३०-३५		
५४०	(मौखरी)			
	ईशान वर्मा ५५५			अनक्के-५४६-

ग्रीक और अरमनी लेखक इन्हें हेफताल, अेप्तालित, या अेफथाल कहते हैं[१]। साथ ही इन्हें हूण और श्वेतहूण भी कहा जाता रहा। इतिहासकार प्रोकोपने इन्हें "श्वेतपारसीक" भी कहा है। श्वेतहूण कहनेका कारण [illegible] यही बतलाते हैं, कि इनकी संस्कृति हूणोंसे अधिक उन्नत और रंग अधिक सफेद था। ६ठीं शताब्दीमें यह चीन और सासानी साम्राज्यके विभाजक थे। हेफ्ताल वंशीय राजा तोरमान और मिहिरकुलका शासन भारतमें भी रहा, और यहाँ उनके सिक्के भी मिले हैं। [illegible] देखनेसे ही पता लग जाता है, कि वह हूण जातिके नहीं थे। मंगोलायित होने से हूणोंको दाढ़ी और मूछ नहीं-सी होती थी, जब कि सिक्कोंपर तोरमान और मिहिरकुलके चेहरे दाढीसे भरे मिलते हैं। तोरमानके सिक्केके अग्रभागमें राजा का शिर तथा गुप्तलिपि में "विजितावनिरवनिपतिः श्रीतोरमान" लिखा रहता है, और दूसरी ओर पंख सहित मोरकी आकृति। तोरमानके सिक्केमें गुप्तमुद्राका पूर्णतया अनुकरण किया गया है, जिससे स्पष्ट है, कि भारतमें वह अपनेको गुप्तोंका उत्तराधिकारी मानता था। उसके पुत्र मिहिरकुलके सिक्कोंके अग्रभागपर राजाकी खड़ी मूर्ति तथा "शाही मिहिरकुल" अथवा घोड़ेपर सवार राजाकी मूर्तिके साथ मिहिरकुल अंकित रहता है। पृष्ठभागपर लक्ष्मीकी मूर्ति रहती है।

तोरमान और मिहिरकुल दो ही हेफ्ताल शासकोंके नाम हमें मालूम है। जिस वक्त तोरमान का शासन भारतमें था, उसी समय सासानी कवाद (१) (४८७—४९८,५०१—

[१] सिरिइस्किये इस्तोचनिकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ ससर (न० पिगुलेव्स्कया)

कि सारे हेफ्तालोंका प्रधान नेता तोरमान था। हेफतालोंका संघर्ष केवल भारतमेंही (गुप्तोंसे) नहीं हुआ, बल्कि वह सासानियोंके भी भयंकर शत्रु थे। कवादका पिता पीरोज (४५६—८३ई०) हेफतालोंसे लड़ते मारा गया। इससे पहले वह अपनी पुत्री हेफ्ताल राजाको देकर संधि कर चुका था। ईरानी साम्यवादी मज्दक के प्रभावमें आनेके कारण कवाद को विस्मृति-दुर्गमें बंदी होने और फिर वहाँसे भागनेका जब मौका मिला, तो वह अपने बहनोई श्वेत-हूणोंके राजाके पास गया। इस हेफताल राजाका जो नाम (अखशुनवर) अरबी लिपिसे होकर हमारे पास पहुंचा है, उसे तोरमान नहीं पढ़ा जा सकता।

वरख्शा (बुखारासे नातिदूर) को सोवियतके विद्वान् हेफ़तालोंकी राजधानी बतलाते हैं।[1] इसकी खुदाई १९३७ ई० में प्रोफ़ेसर व० अ० शिश्किनने कराई थी। वहां ५०० घन-किलोमीतरके क्षेत्रमें पुराने नगरके बहुतसे ध्वंसावशेष मिले हैं। यह अवशेष उस समयके हैं, जब कि अभी बुखारा को प्रधानता नहीं मिली थी। खुदाईमें एक बड़ा हाल मिला है, जो शायद दरबार-हाल या मंदिर रहा हो। इसकी दीवारोंमें मनुष्य, पशु आदिके बहुतसे चित्र (शिकारके दृश्य, भारतीय वेषभूषामें किसी भारतीय राजाका चित्र आदि) मिले हैं। प्रोफेसर शिश्किनका ख्याल है, कि इन हेफ़्तालों पर भारतीयताका बहुत प्रभाव पड़ा था, जो तोरमानके ग्वालियरमें बनवाये सूर्य मंदिरके अभिलेखसे भी मालूम होता है।

२. ईरानी और हेफताल[2]

मध्य-एसियाके रंगमंचपर आरंभ ही से बराबर एकके बाद एक घुमन्तू जातियाँ लूट मार करती राजा बन जाती रहीं, फिर कुछ दिनों तक पास-पड़ोसमें उथल-पुथल मचातीं कभी कभी हिंदूकुशके पार हो भारत तक चली आतीं, यह हम अनेक बार देख चुके हैं। हेफ़तालोंकी शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी, कि ईरानके सासानी शाह कितनी ही बार उनके दयाके भिखारी बने। बहराम गोर (४२१-४३८ ई०) के समय कुषाणोंको हटाकर वह ईरानके पड़ोसी बने। बाख्त्रिया लेकर उन्होंने खुरासानमें लूटमार मचाई। बहराम ७००० सवारोंको लेकर उनके ऊपर चढ़ा और उसने युद्धमें हेफ़ताल राजाको अपने हाथों मार वक्षु पार जा शत्रुको अपनी शर्तों पर संधि करनेके लिये मजबूर किया। लेकिन हेफ़ताल घुमन्तुओंपर इसका स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। बहरामके पुत्र यज्दगर्द (२) (४३८-४५७ ई०) के १९ सालके शासनमें भी संघर्ष जारी रहा। उसके उत्तराधिकारी होरमुज्द (३) (४४७-४५८ ई०) और उसके भाई पीरोज (४५९-४८४ ई०) गद्दीके लिए झगड़ पड़े। पीरोज भागकर हेफ़तालोंके राजा अखशुनवरके पास वक्षु पार गया और हेफ़ताल सेना लेकर लौटा। होरमुज्दने राज्य और प्राण दोनों खोये। हेफ़ताल पीरोजको अपने हाथमें रखना चाहते थे। उनसे मुक्ति पानेके लिये पीरोजने ४८० ई० में हेफ़तालोंसे युद्ध ठाना। हेफ़तालोंको अपने पड़ोसी अवारों (जुनजुन) और सासानियोंसे बराबर संघर्ष करनेके लिए तैयार रहना पड़ता था। उसी तरह ईरानके भी दोनों ओर हेफताल (येथा) और रोमन

---

[1] क्रत्किये सोओब्श्चेनिया x p 3

[2] ईरान दर जमान सासानियान (अर्थर क्रिस्तियान्सन, फारसी अनुवादक रशीद यासमी तेहरान १३१७) पृ० २०४, ४८, २९२, २९२

५३१ ई०)ईरानपर शासन करता था। [illegible] शक्ति दुर्धर्ष थी। यह नहीं कहा जा सकता, [illegible]ो शक्तियाँ थीं। रोमन सम्राट् हेफ़तालोंको प्रेरित करते रहते और हेफ़ताल भी ईरानको लालच भरी दृष्टिसे देखते रहते थे। पीरोजने अखशुनवरके पुत्रपर आक्रमण किया, जो कि शायद बाख्त्रियाका उपराज था। पीरोजको कई बार बुरी तरह हारना पड़ा और अन्तमें बड़ी अपमानपूर्ण शर्तों के साथ संधि करनी पड़ी—अपने पुत्र कवादको हेफ़ताल दरबारमें जामिनके तौरपर रखना और राजाको अपनी कन्या दे, वार्षिक रुपया स्वीकार कर [illegible] करद बनना पड़ा। रुपयोंको पीरोज अदा नहीं कर सका, इसपर हेफ़तालोंने ४८० ई० में पीरोजपर आक्रमण किया। इसी लड़ाईमें वह मारा गया। अब सासानी साम्राज्य पूरी तौरसे हेफ़तालोंकी दया पर निर्भर था। राजधानी तस्पोन (मसोपोतामिया) तक को खतरा हो गया।

आर्मेनिया राजनीतिक ही तौरसे नहीं, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक तौरसे भी ईरानका भाग चला आता था, लेकिन पड़ोसी रोमन उसे उकसाया करते थे, जिसके कारण ईरानको आर्मेनिया के लिए बराबर संघर्ष करना पड़ता था। इस राजनीतिक संघर्ष का एक यह भी कारण हुआ, कि आर्मेनियाने जर्थुस्त्री धर्म छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकार कर रोमके साथ और भी घनिष्ठता स्थापित की। जिस समय पीरोज मारा गया, उस समय ईरानी सेनापति जेरमेहर (सुखरा) आर्मेनियाके ऊपर अभियानके लिये गया हुआ था। हेफ़ताली खतरेको सुनकर वहांसे जल्दी जल्दी राजधानीमें लौट उसने पीरोजके भाई बलाश (४८४-४८७ ई०) को गद्दीपर बैठाया। तीन ही सालके शासनके बाद उसे उतारकर पीरोज-पुत्र कवाद (४८७ ई०) गद्दीपर बैठाया गया। कवाद हेफ़ताल राजाका साला और दामाद दोनों ही था। मज्दकके साम्यवादी तथा कुछ-कुछ धर्म-विरोधी विचारोंको स्वीकार करनेके लिये [illegible] (४९८ ई०)। अपने बहनोई के पास जा हेफ्ताल सेनाकी मदद ले वह फिर (५००ई०) सिंहासनपर बैठा। इससे स्पष्ट है, कि हेफ्तालोंका ईरान पर भारी प्रभाव था। कवादके उत्तराधिकारी खुसरो अनौशिर्वान (५३१—५७९ई०) को भी हेफ्तालोंसे कम संघर्ष नहीं करना पड़ा। लेकिन छठी शताब्दीके मध्यतक पहुँचते-पहुँचते अपने सवासौ वर्षोंके राजत्वकालमें हेफ्ताल अधिक सभ्य और नागरिक बन गये, जिसमें भारत और ईरान दोनोंने सहायता की। मध्य-एसियाके सनातन नियमके अनुसार अब उन्हें किसी दूसरे घुमन्तू वंशके लिये अपना स्थान खाली करना था। अवारों (ज्वेज्वेन) को हटाकर ५४० के आसपास तुमिन इलीखान (मृत्यु ५५३ ई०) ने अवार साम्राज्यकी जगह तुर्क साम्राज्यकी स्थापना की। उसने पूरबमें चीनके कारण आगे बढनेका स्थान न पा, पश्चिमकी ओर विजय-यात्रा आरंभ की। उसका उत्तराधिकारी इस्सिगी थोडे ही समय तक शासन कर सका, फिर इलीखानका भाई मुयूखान गद्दीपर बैठा, जिसने अपने ज्येष्ठ भाई के अपूर्ण कामको पूर्ण करना चाहा। मुयूखानने सिर और सोग्दकी उपत्यकाओंसे हेफ्तालोंको खदेड़नेके लिये ईरानी शाह अनौशेरवान के साथ संबंध स्थापित किया। अनौशेरवान और मुयूखानने मिलकर हेफ्तालोंको खतम करनेका निश्चय किया। दोनोंने हेफ्तालोंपर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई का परिणाम था हेफ्तालोंके राज्यकी समाप्ति और ५५७ ई० के आसपास उनके राज्यका तुर्कों और सासानियों द्वारा बांट लिया जाना—बलख (बाख्त्रिया), तुखारिस्तान ईरानियोंके हाथ आये और वक्षुपारका हिस्सा तुर्कोंने ले लिया। अनौशिरवानने मुयूखानकी लड़कीसे ब्याह किया। रोमन नही

चाहते थे, कि तुर्क और सासानी मिल जायें, इसलिये उन्होंने तुर्क खाकानके पास दूत भेजकर उसे सासानियोंके खिलाफ भड़काना चाहा।

२५ हेफताल (श्वेतहूण) साम्राज्य (५१० ई०)

स्रोतग्रंथ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross)

२. सिरिइस्किये इस्तोचनिकि पो इस्तोरिइ नरोदोफ़ ससर (न० पिगुलेव्स्कया, मास्को १९४१)

3. Memorie Sur l' Asie Centrale (G. de Rialle, Paris 1875)

4. Sur les Huns Blanc ou Ephtalites (Vivien de Saint-Martin)

5. Histoire generale des Huns, des Turcs, des Mongols et des autres occidenteux (J. Degingnes')

६. क्रत्कि० सोओब० vII

7. Terracottas From Afrasiab (C. Trever, Leningrad 1936)

८. ईरान दर ज़मान सासानियान (अर्थर क्रिस्तियान्सन, अनुवादक रशीद यासमी, तेहरान १३१७)

अध्याय ६

तुर्क (५५७-७०४ ई०)

तुर्कोंका तृतीय खान मुयू (मृत्यु ५५३ ई०) जिस समय दक्षिणापथका स्वामी बना, उस समय तुर्क साम्राज्य अभी पूर्व और पश्चिम दो राज्योंमें नहीं विभक्त हुआ था। उसके भाई तथा उत्तराधिकारी तोबाखान (५६९-५८० ई०) के राजगद्दी संभालनेके समय मुयू खानके पुत्र दलोबियानने उत्तराधिकारके लिये झगड़ा किया, जिसमें उसे सफलता नहीं हुई। उसने चचाके मरनेके बाद (५८० ई० में) तुर्क-साम्राज्यको दो भागोंमें विभक्त कर पश्चिमी तुर्क-साम्राज्यकी नींव डाली, यह हम कह आये हैं। तोबा कगानके समय तुर्कोंपर बौद्ध धर्मकी छाप पड़ी, जो आगे बढ़ती ही गई। इसके पहलेके हेफतालोंपर बौद्ध धर्मका कितना प्रभाव पड़ा, यह नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक तोरमानका संबंध है, ग्वालियरमें सूर्य मंदिरके बनवानेसे जान पड़ता है, वह शकोंके पुराने देवता सूर्यका भक्त था। उसके पुत्र मिहिरकुलको बौद्धोंका शत्रु बतलाया जाता है। अपने पूर्वगामी कुषाणोंकी तरह हेफतालोंका बौद्ध धर्मसे विशेष अनुराग नहीं था, किंतु तुर्कोंके समय फिर बौद्ध धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ी।

(१) दालोबियान (५८०-   )

तोबाके समय तक अविभाजित तुर्क साम्राज्यका ही अंग दक्षिणापथ भी था, किंतु उसके भतीजे दालोबियानने पश्चिमी तुर्क साम्राज्यकी नींव डाली। इसीके राज्यमें पश्चिमी मध्य-एसिया था, किंतु इसके समयमें साम्राज्यकी सीमा और आगे नहीं बढ़ी। उसके उत्तराधिकारी नीलीने थोड़े ही समय तक शासन किया।

(३) चुलोकगान (६०५ ई०)

नीलीके पुत्र दामो (धर्मा) का नाम ही बतलाता है, कि उसका वंश बौद्ध धर्मसे कितना प्रभावित था। वह अधिकतर कुल्जा (इली-उपत्यका) में रहा करता था। प्रदेशोंका शासन यवगू (उपकगान) करते थे। कुषाणोंके सिक्कोंपर भी इस उपाधिको हम देख चुके हैं। चुलो कगानका एक यवगू शाश (ताशकंद) के पास रहता था, जो दक्षिणमें वक्षु तट (सासानी सीमांत) तकका शासक था। नौशेरवानका पुत्र और उत्तराधिकारी होर्मुज्द (४) (५७९-९० ई०) मुयू खानका नाती था। लेकिन इससे क्या संघर्ष मिट सकता था? कभी उसे रोमसे लोहा लेना पड़ता था और कभी तुर्कोंके दबावसे छुटकारा पानेके लिये उनसे भिड़ना पड़ता था। चुलो कगानका यवगू शाव (शबोलियो) तीन लाख सेना लेकर सासानी साम्राज्यके भीतर घुसकर हिरात तक पहुँच गया। उधर रोमन सम्राट्ने ८० हजार सेनाके साथ सिरियापर चढ़ाई कर दी। कास्पियनके पश्चिम ईरानी साम्राज्यकी सीमा पर हूणोंके वंशज खजार उत्तरसे प्रहार कर रहे थे, जिसके

१. तुलनात्मक तुर्क वंश

ई०	भारत (कन्नौज)	चीन	पू० तुर्क	प० तुर्क	ईरान
५४०	यशोवर्मा-५३२-	(लियाङ्)	तूमिन-५५३	तूमिन-५५३	(सासानी)
		वू-ती ५०३-४९			खुस्रो नौशेरवाँ ५३१-७८
५६	हरिवर्मा	च्यान्वेन्५४९-५५१	इसिगी ५५३	इसिगी ५५३	
		वेङ्ती ५६०-६७	मुयू-५५३-६९	मुयू	
		स्वेन् ती ५६९-८३	तोबा ५६९-८०	तोबा	
५८०		(सुइ)	शेतू ५८२-८७	दालोब्यान ६८०-	होर्मुज्द ५७८-५९०
		वेङ ती ५८१-६०५	दूलन ५८७-६००		खुस्रो पर्वेज ५९०-६२८
६००	हर्ष ६०६-६४८	याङ्ती ६०५-१७	दालू बुगा ६००-६०५	चूलो-६०५	
		कुङ ती ६१७-१८	खेली-६२८	शेइगुइ६१८-६१९	
६२०		(थाङ)		तुनशेखू ६१९-	
		काउचु ६१८-२७	तुली ६२८-६३१		कवाद II ६२८-२९?
		ताइचुङ ६२७-५०	सिविली ६३१-६४७	निशिदुलू-६५१	यज्दगर्द III ६३४-४
६४०					(अरब)
	अर्जुन ६४९	काउचुङ ६५०-८४	चेबी ६४७-८२	इबीशबोलो ६५१	उमर ६४२-४४
					उस्मान ६४४-५६
					अली ६५६-६१
६६०					म्वाबिया ६६१-८०
६८०		वूहू (रानी) ६८४-७०५	गुदलू ६८२-६९३		यजीद I ६८०-७१७
			मोचो ६९३-७१३	अशिनाशिन-७०८	
७००		चुङ् चुङ् ७०५-१०		सोगे ७०८-७०९	
		स्वेन् चुङ् ७१३-५६	मोगिल्यान ७१६-७३३	सुलू ७०९-७३८	उमर II ७१७-२०
७२०	यशोवर्मा ७२५-५२				

कारण वहांके दरबन्दपर खतरा हो गया था। खुद राजधानीके पास दक्षिणकी ओर से अरब सरदारोंने फुरात-उपत्यका (इराक) पर चढ़ाई कर दी थी। तुर्क सेनापति शावने होरमुज्दके पास धृष्टतापूर्ण संदेश भेजा "देखना पुल और सड़कें ठीक-ठाक रहें। मैं रोमनोंसे मिलनेके लिये ईरानको पार करना चाहता हूं"। होरमुज्दने अपने प्रसिद्ध सेनापति (तेहरान के) सामन्त बहराम चोबीं को १२००० चुने हुए योद्धाओंके साथ तुर्कोंका मुकाबिला करनेके लिये भेजा। बहरामने तुर्कोंको बुरी तरह हराया और उसीके बाणसे शाव मारा गया। शावका पुत्र बंदी हुआ। बहरामको तुर्क-ओर्दूसे अपार संपत्ति मिली, जिसे ढाई लाख ऊंटोंके साथ उसने शाहके पास भेज दिया। वहांसे बहराम रोमनोंके विरुद्ध भेजा गया, लेकिन वहां उसकी पूर्ण पराजय हुई। होर्मुज्दने गुस्सेमें आकर बहरामको पदच्युत कर दिया, जिसके कारण उसे विद्रोही बनना और होरमुज्द को तख्तसे हाथ धोना पड़ा। उसके उत्तराधिकारी खुसरो ii परवेज (५९०-६२८ ई०) के समय भी तुर्कोंसे संघर्ष चलता ही रहा, जिसमें उसका विद्रोही चचा छ साल तक तुर्कों (चुलो कगान) की मददसे लड़ता रहा। लेकिन खुसरोको रोमके विरुद्ध कुछ सफलतायें प्राप्त हुईं। ६१३ ई० में उसने दमश्क ले लिया। ६१४ ई० में येरुशलम उसके हाथमें था, जिसे १६ वर्ष बाद ६२९ ई० में ही हिराक्लियस लौटा पाया।

४. शे-गुइ (६१८-६१९ ई०) और ५. तुन-शे-खू (६१९ ई०)[1]

इन दोनों भाइयोंके कगान होनेके समय तुर्क साम्राज्यका विस्तार अधिक हुआ, यद्यपि उनका समकालीन खुस्रो परवेज (५९०-६२८ ई०) भी निर्बल शासक नहीं था। शे-गुइने अपनी पश्चिमी सीमाको कास्पियन समुद्रतक पहुँचा दिया, पूरबमें वह चीनकी महादीवारके पश्चिमी छोरपर अवस्थित प्रसिद्ध सीहैं घाटा तक थी। उसके छोटे भाई तुन-शे-खूने भी अपने सैनिक कौशलका परिचय देते सासानियोंको मार भगा तथा अफगानिस्तान तक अपनी सीमा पहुँचा दी। इस समय ईरानके तीन शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी थे : पूरबमें तुन-शे-खू कगान, काकेशसके उत्तरमें खजार कगान और पश्चिममें विजन्तीय सम्राट् हिराक्लियस्। ये चारों शक्तियाँ जिस वक्त आपसमें गुत्थम-गुत्था कर रही थीं, इसी समय अरबके रेगिस्तानमें एक नई शक्ति पैदा हो रही थी। जिस समय (६२९-६४५ ई०) स्वेन्-चाङ भारत यात्रा करते तुन्-शे-खूसे ६३१-६३२ ई० में मिलकर नालंदा निवास और सम्राट् हर्षवर्धनका स्वागत प्राप्त कर रहा था, उसी समय खुस्रोके तृतीय उत्तराधिकारी यज्दगर्द iii (६३४-६४२ ई०) को खतम कर अरबोंने विशाल सासानी साम्राज्यको अपने हाथमें कर लिया, और तुन्-श-खू के शासनकालमें ही अरब उसके पड़ोसी हो गये।

तुन्-शे-खूके उत्तराधिकारियों में उसका पुत्र तुन-वो-शे (६३४-६३८ ई०) शवोलो खिलिश खान के नाम से गद्दी पर बैठा। इसके नाममें खिलिश शब्द वही है, जो कि भारत के खिलजी सुलतानों के वंश के साथ संबद्ध है। अभी तुर्कों की शक्ति उतनी क्षीण नहीं हुई थी, और न अरब अपने को उतना मजबूत देखते थे, कि वह तुर्कों से छेड़-छाड़ करते। ११वें पश्चिमी तुर्क कगान इवी शवोलो शेखू (६५१-..) या असिना खेलू चीन के सामने बराबर दबनेवाला कगान था। उसके उत्तराधिकारी असिनासिन (मृत्यु ७०८ ई०) के समय भी तुर्क साम्राज्य पतनोन्मुख

होने से बचाया नहीं जा सका। इसका एक सबूत यही है, कि इसीके शासनकाल (७०४ ई०) में सिर, जरफशां और आमूदरिया की उपत्यकायें तुर्कों के हाथ से निकलने लगीं।

तुर्कों में हूणों, अवारों, कुषाणों, हेफ्तालों की तरह ही घुमन्तू कबीलाशाही शासन-प्रथा चली आती थी, जिसके कारण कगान के भाई-भतीजे यवगू होकर अपने प्रदेश में बहुत कुछ स्वतंत्रता-पूर्वक शासन करते थे। जिस वक्त कगान [illegible], उस वक्त प्रदेशों में यवगुओं और तेगिनों (राजकुमारों) का शासन इतना स्वच्छन्द होता, कि वहां की साधारण जनता उनके सिवा कगान को जानती ही नहीं थी। शवोलो शेखू और असिनासिनकी कगानता ऐसी ही थी। अरबों से इनके यवगुओं का संघर्ष था, इसीलिये अरब लेखक कगानको नहीं, बल्कि उसके प्रादेशिक शासक (तेगिन) को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते थे।

(स्वेन्-चाङ का देश-वर्णन[१])

स्वेन्-चाङ ६३१-६३२ ई० में तुर्कों द्वारा शासित दक्षिणापथ से गुजरा था। इस भूमि में प्रविष्ट होने से पहले ही वह तुर्क कगान तुन्-शे-खूसे मिल चुका था। तुर्क कगान ने उसकी बड़ी आवभगत की थी। मिलन-स्थान से आगे (तरस से बामियान तक) का उसका वर्णन तत्कालीन दक्षिणापथ के परिचय के लिये विशेष महत्त्व रखता है, इसलिये हम यहाँ उसके वर्णन का संक्षेप देते हैं।

तरस्—यह बिङ-गुल (सहस्रधारा) से पश्चिम १४० या १५० ली (आजकल औलिआता से दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर) पर है। तरस से १० ली दक्षिण चीनी बंदियों का एक गाँव था। इनका वेष तुर्कों जैसा था, किंतु भाषा अब भी वह चीनी बोलते थे।

[illegible]——[illegible] चिमकेंत से १५ मील उत्तर-पूरब, जिसे स्वेन् चाङ ने पाइ-शुङ-शेङ (फारसी इस्फिद-याब = श्वेत जल) है। यह चीनी बंदियों के नगर से २०० ली दक्षिण-पश्चिम था। स्वेन्-चाङ ने इसकी भूमि को तरस से अधिक उर्वर बतलाया है।

नूजकंद—मनकंद से ४० या ५० ली दक्षिण नू-ची-कान की अत्यन्त उर्वर भूमि थी। यहाँ बहुत प्रकार के फल फूल होते थे। अंगूर बहुत ही अधिक थे। यहाँ का एक अलग शासक था, जिसके अधीन सौ से ऊपर ग्राम-नगर थे।

ताशकंद—नूजकंद से २०० ली पश्चिम चेसी (ताशकंद) का इलाका पड़ा। (तुर्की भाषा में ताश पत्थर को कहते हैं।) यहाँ भी एक अलग तुर्क शासक था।

फर्गाना—ताशकंद से हजार ली दक्षिण-पूरब फइ-हान का प्रदेश था, जहाँ स्वेन्-चाङ स्वयं नहीं गया। लोगों से पूछने पर उसे मालूम हुआ: "वह चारों ओर पहाड़ों से घिरा है। भूमि बड़ी ही उपजाऊ है। वहां बहुत तरह के फल-फूल पैदा होते हैं। लोग भेंडें और घोड़े पालते हैं। सर्दी और हवा का बहुत जोर है। लोग दिल के मजबूत होते हैं। इन की भाषा दूसरे देशों से भिन्न है।...दस साल से इसका कोई राजा नहीं है। स्थानीय सरदार प्रधान बनने के लिये आपस में लड़ रहे हैं। इस जिले और नगरों की प्रतिरक्षा और सीमा नदियां तथा प्राकृतिक वस्तुयें हैं।"

---

[१] On Yuan chwang's Travel (Thomas Watters,) vol I p. p. 71-122)

चीनियों ने चाङ क्यान् के समय (ई० पू० १३६–१२४) में ही फर्गाना के बारे में परिचय प्राप्त कर लिया था, लेकिन उस समय चीनी भापा में इसका नाम शा-वाङ और राजधानी उइ-शान् (कुपाण) थी। ७७४ ई० मे चीनी इसे निङय्वान कहते थे, और आजकल हुवो-हान् (फोक्-हान)

[illegible] —[illegible] यह चीनी नामांतर है। आजकल इसे उरात्यूबे कहते हैं। फर्गाना से एक हजार ली पूरब शे (सिर) नदी के पूर्व में यह स्थान अवस्थित है। शे नदी को स्वेन्-चाङ सुङ-लिङ (पामीर) से निकली बतलाता है। उस समय इसकी धारा मटमैली थी। इसीलिये स्वेन् चङाने इसे मटमैली द्रुतगामी महान् धारा लिखा है। यहाँ का राजा भी तुर्क-कगान के अधीन था।

समरकंद—सम-जी-कान के उत्तर-पश्चिम में [illegible] (किज़िल-कुम) का होना स्वेन्-चाङ ने बतलाया है। वह लिखता है: "यह बिल्कुल निर्जन भूमि है, जहां केवल पहाड़ों का अनुगमन करते तथा कंकालों को देखते चला जा सकना है।" इस प्रदेश का पुराना नाम सू-ही (सोग्द) था। स्वेन्-चाङ के समय भी यह प्रदेश बड़ा उर्वर था। वृक्ष और फूल बहुतायत से होते थे। यहां बड़े सुन्दर घोडे पाये जाते थे। यह बहुत बड़ा व्यापारिक नगर था। लोग शिल्प-चतुर, उद्योगपरायण और चुस्त थे। सारा तुर्क-राज्य इसे अपने देश का केन्द्र मानता था और सभी लोग यहां के सामाजिक [illegible] को आदर्श मानते थे। यहां का राजा बड़ा हिम्मती और उदार था। पड़ोसी राजा इसके आज्ञाकारी थे। इसके पास बड़ी अच्छी सेना थी। यहाँ के योद्धा इतने बहादुर थे, कि मृत्यु को बंधुओं के पास जाने से बढ़कर नहीं समझते थे। युद्ध में शत्रु इनके सामने खड़ा नहीं हो सकते। यह अवस्था दक्षिणापथ की उस समय थी, जब कि अरब ईरान की ओर बढ़ने की तैयारी कर रहे थे। धर्म के बारे में स्वेन्-चाङ ने लिखा है, कि समरकंद के लोग अग्निपूजक हैं। ६वीं ७वीं सदी में हमें मालूम है, कि बौद्ध दूसरे स्थानीय देवताओं को भी पूजते थे। स्वेन्-चाङ के समय समरकंद में बौद्धों के साथ विद्वेष और अत्याचार भी होता था। स्वेन्-चाङ के समय दो विहार थे। स्वेन्-चाङ के साथी तरुण भिक्षु पूजा करने के लिये गये, तो लोगों ने उन्हें मार भगाया और विहार में आग लगा दी। समरकंद के राजा ने उन्हें दंड दिया और स्वेन्-चाङ को बुलाकर धर्मोपदेश सुना। स्वेन्-चाङ लिखता है, कि यहां का राजा शौ-बू खानदान की वेन् शाखा का है। रानी एक तुर्क राजकुमारी है। ६३१ ई० में यहां के राजा ने चीन सम्राट् ताइ-सुङ (६२७-६५० ई०) के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये अपना दूत भेजा था, लेकिन जान पड़ता है, वैमनस्य मोल न लेने के ख्याल से उसने स्वीकार नही किया।

मेमेग्—समरकंद से दक्षिण-पूर्व यह इलाका था, जिसे स्वेन्-चाङ ने मि-मो-हा लिखा है। यहां के लोग समरकंद जैसे ही थे।

मी-तान् (कि-पू-ता-ना)—मी-मो-हा से उत्तर यह स्थान मिला। रमीतान् वस्तुतः समरकंद से ३० मील उत्तर-पश्चिम है।

कुशानिया (कुशोङहिका)—कुषाण शासकों का यह चिह्न आज भी मौजूद है। इसे स्वेन्-चाङ ने मितान् से ३०० ली (६० मील) पर बतलाया है।

हो-हान् (कर्मीना)—कुशानिया से २०० ली (४० मील) है।

पू-हो (बुखारा)—४०० ली (८० मील) पश्चिम।

फा-ती (पैकंद ?)—बुखारा से ४०० ली (८० मील) पश्चिम।

ह्वो-ली-सी-मी-का (ख्वारेज़मिया)—फा-ती से ५०० ली (१००मील) दक्षिण-(? उत्तर) पश्चिम, वक्षु नदी के दोनों किनारों पर यह प्रदेश २० या ३० ली (४ या ६ मील) चौड़ा तथा उत्तर से दक्षिण ५०० ली (१०० मील) लम्बा है।

समरकंद से ख्वारेज़्म तक की बातें स्वेन्-चाङ ने सुनकर लिखी हैं। वह सीधा समरकंद से केश (शहरशब्ज) गया था।

का-श्वाङ-ना (केश)—समरकंद से ३०० ली (६० मील) दक्षिण-पश्चिम यह प्रदेश है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ और निवासी समरकंद जैसे (मोग्दी) हैं। (शहरशब्ज जिस नदी के किनारे है, उसका नाम आज भी कश्क-दरिया है।

दरबन्द (लौहद्वार)—केश से २००ली (४० मील) दक्षिण-पश्चिम जाने पर स्वेन्-चाङ पहाड़ियों में घुसा। "पगडंडी बहुत संकरी तथा खतरनाक है। बस्ती नहीं है। घास पानी भी बहुत कम है।...पहाड़ों के भीतर दक्षिण-पश्चिम की ओर ३०० ली (६० मील) से अधिक जाकर आदमी लोहघाटे में प्रविष्ट होता है। लोहघाटे की दोनों तरफ बिल्कुल सीधे खड़े ऊँचे पर्वत हैं। ...चट्टानें लोहे के रंग की हैं। यहाँ फाटक लगाये गये हैं, जो लोहे से मजबूत किये गये और उनके ऊपर बहुत सी छोटी छोटी लोहे की घंटियाँ लटकाई गई हैं। अपनी दुर्धर्षता के कारण ही इस घाटे का यह नाम (लौहद्वार) पड़ा।" यह आजकल का बुज़ग़ल्ला (अजगृह) है...जिसकी चौड़ाई प्रायः दो मील तक ४० से ६० फुट तक है। इसके बीच मे एक नदी (सुलाख) बहती है। इसमें एक गाँव है।

तारीख रशीदी में लिखा है "प्रसिद्ध लौहद्वार की नदी ऊंचे पहाड़ों के बीच से टेढ़ी-मेढ़ी होकर दर्बन्द से पश्चिम प्रायः १२ फर्सख जाती है। यह संकरा मार्ग ५ से ३६ कदम तक चौडा और दो फर्सख लंबा है।" बुज़गला खाना के इस दर्रे का पूर्वी छोर समुद्र तल से ३५४० फुट और पश्चिमी छोर ३७४० फुट ऊंचा है।

तुखार (तु-हु ओ-लो)-लोहद्वार के बाहर आते ही तुखार देश आ जाता है। इसकी सीमा पूर्व में चुङ-लिङ (पामीर) पर्वत, पश्चिम मे ईरान, दक्षिण में महाहिमवंत (हिंदूकुश) पर्वत और उत्तर में लोहद्वार है। तुखार देश के बीच में पूरब से पश्चिम की ओर वक्षु नदी बहती है। यह देश २७ न मंनों में [illegible]। गर्मियों में यहाँ बहुत बीमारी (मलेरिया) होती है। जाड़े के अन्त और बसंत के आरंभ में लगातार वर्षा होती रहती है।...यहाँ के भिक्षु लोग बारहवें मास की सोलहवीं तिथि से तीसरे मास की पन्द्रवी तिथि तक वर्षावास मनाते हैं। इस प्रकार वह अपने धार्मिक नियमों को ऋतु के अनुकूल मानते हैं। यहाँ के लोग...विश्वास-पात्र होते हैं, धोखेबाज नहीं। यहाँ की एक विशेष भाषा और २५ अक्षरों की वर्णमाला है, जो कि ऊपर से नीचे तथा बाँये से दाहिने लिखी जाती है। ऊनी कपड़ों की अपेक्षा यहाँ सूती अधिक पहने जाते है। यहाँ के सोने चांदी और दूसरी धातु के सिक्के दूसरे देश से भेद रखते है। यह देश गर्मी में गरम होता है, लेकिन गर्मियों के इस्तेमाल के लिये जाड़ों में वर्फ को जमा कर लेते हैं।

तेर्मिज (ता-मी)—"तुखार देश की यह राजधानी चौड़ी की अपेक्षा अधिक लंबी, २० ली (४ मील) के घेरे में बसी है। यहाँ दो विहार है, जिनमें हजार से अधिक भिक्षु रहते हैं। यहाँ के स्तूप और मूर्त्तियाँ बहुत सुन्दर हैं।

शुग्नान (शी-गा-येन्-ना)—यह तेर्मिज से पूरब है, जहां पांच विहार हैं, किंतु भिक्षु बहुत कम हैं।

हू-लू-मो (खुल्म ?)—यह प्रदेश शुग्नान से पूरब में है। यहा का राजा एक हि-सू तुर्क है। यहां दो विहार और सौ से ऊपर भिक्षु रहते हैं।

सू-मान ( )—हु-लू-मोसे पूरब में है, जहां दो विहार और थोड़े से भिक्षु रहते हैं।

कू-येन्-ना ( )—यह प्रदेश वक्षु से दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है, जहां तीन विहार और सौ से अधिक भिक्षु रहते हैं।

हू-शा ( )—पूर्वोक्त से पूर्व में अवस्थित है।

को-तू-लो (खुत्तल)—पूर्वोक्त से पूरब में है, जो पूरब में चुङ-लिङ (पामीर) के भीतर कु-मि-ते प्रदेश तक पहुंचता है।

कु-मि-ते ( )—यह चुङ-लिङ (पामीर) पर्वत-माला में उसके दक्षिण-पूर्व में वक्षु के पास अवस्थित है। इसका दक्षिणी पड़ोसी देश शि-कि-नी है।

वक्षु के दक्षिण में निम्न प्रदेश हैं:—त-मो-सि-तिये-ति, पो-तो-च्वाङ-ना, यिन्-पो-कान्, कु-लङ-ना, हि-मो-त-ला, पो-लि-हो, कि-लि-सो-मो, को-लो-हू, अलि-नि, मेङ-कान्।

हु-ओ (कुंदुज) से दक्षिण-पूर्व में कु-ओ-सि-तो, और अन्त-ल-फो (अंदराब) है। हु-ओ से दक्षिण-पश्चिम फो-क-रङ देश है। इससे दक्षिण [illegible] है, जिसके उत्तर-पश्चिम हू-लिन् देश है, जहां दस विहार और ५०० भिक्षु रहते हैं।

हु-ओ (कुंदुज)—यहां शे-हू खान का ज्येष्ठ पुत्र तथा सेनापति (क्षत्रप) तातू (तर्दुश, तर्दू) रहता है, जो कि काउ-शाङ (कुषाण) राजा का साला भी है। सेनापति को उसकी स्त्री ने जहर दे दिया। उसका पुत्र ते-मिन् (ते-किन्) और सौतेली मां राज्य के मालिक हैं।

फो-हो (बलख)—हु-लिन् से पश्चिम "लघु राजगृह" नामक प्रसिद्ध राजधानी प्रायः २० ली (५ मील) के घेरे में बिखरी हुई बस्तियों का नगर है। यहां १०० विहार तथा ३००० हीनयानी भिक्षु रहते हैं। "राजधानी के बाहर [illegible] में नव (नफो) विहार है, जिसे इस देश के एक पुराने राजा ने बनवाया था। महाहिम (हिंदूकुश)-पर्वत के उत्तर यही एक बौद्ध विहार है, जहां लगातार अविच्छिन्न परंपरा से ऐसे आचार्य चले आते हैं, जो कि त्रिपिटक के व्याख्याकार होते हैं। विहार के संघाराम में एक बड़ी कलापूर्ण रत्नजटित बुद्ध-मूर्त्ति है। इसकी शालायें बड़ी मूल्यवान् वस्तुओं से सजाई हुई हैं, इसलिये भिन्न-भिन्न राजाओं ने बार-बार इसे लूटा। तुर्क शे-हू (शे-खू) या एक राज्यपालके पुत्र स्वयं राज्यपाल स्मू-जो ने संघारामको लूटनेकी कोशिश की। बिहारकी बुद्धशालाके दक्षिणमें बुद्धका प्रक्षालनपात्र है, जिसमें प्रायः २८ मन (एक टन) की जगह है। यह बड़ा ही चमकीली है। नहीं कहा जा सकता, कि वह धातुका है या पत्थरका। ८/१० इंच लंबी सवा अंगुल चौड़ी बुद्धकी दाढ़ (दांत) और दो फुट लंबा तथा ७ इंच मोटा भूरे रंगका काशा (दंड) भी यहां है, जिसकी मूठ मुक्ता-जटित है। इन वस्तुओंकी दर्शन-पूजा उत्सवके दिनोंमें होती है।

नवविहारके उत्तर २०० फुट ऊंचा एक स्तूप है, जो वज्रलेपसे गच किया तथा बहुमूल्य वस्तुओंसे सजाया है। नवविहारसे दक्षिणमें एक संघाराम है, जिसे बहुत पुराने समयमें

अर्हत् और आर्य भिक्षुओंके लिये बनाया गया था। यहां रहते हुए जितने भिक्षु अर्हत् पदको प्राप्त हुए, उनकी संख्या (गिनी) नहीं जा सकती। सौसे ऊपर अर्हतोंके यहां स्तूप बने हुए हैं। इस स्थानमें जो भिक्षु रहते हैं, कहा नहीं जा सकता, इनमें कौन अर्हत् हैं कौन नही।

यु-मेइते (युमेद)—बलखसे दक्षिण-पश्चिम हिमपर्वतके एक कोनेमें यह प्रदेश है।

हु-गि-कान (अशगान्)—यूमेधइसे दक्षिण-पश्चिम यह पर्वतीय प्रदेश है, जहां बहुत-सी उपत्यकायें हैं। यहांके घोड़े अच्छे होते हैं।

तलकान (त-ल-कान्)—अशगानसे उत्तर-पश्चिममें तलकान है, जिसके पश्चिममे पो-ल-सू (पर्शु, ईरान) है।

का-शी (गज)—बलखसे सौ ली (२० मील) दक्षिण यह देश है। यह बहुत पहाड़ी इलाका है। फल-फूल कम होता है, लेकिन गेहूं और मटर बहुत होती है। बहुत गर्म जगह है। लोग कठोर और रूखे हैं। यहांके दस विहारोंमें ३०० सर्वास्तिवादी भिक्षु रहते हैं।

बामियान (फान्-सेन्-ना)—महाहिमगिरि (हिंदूकुश) मे गजसे दक्षिण-पश्चिम यह ऊंचे तथा गहरे खड्डोंका प्रदेश है। यहां आंधी और बरफ एकके बाद एक आती रहती है। गर्मीके मध्यमें भी सर्दी रहती है।...लुटेरोंके दल यहां बने रहते हैं, जिनका पेशा है नर-हत्या। (गजसे) ६०० ली (१२० मील) चलनेपर तुखार देश पार हो बामियान देशमें पहुंचा जाता है। यह महाहिमगिरिके भीतर है। राजधानी एक खड्डके पार सीधे खड़े पहाड़ोंके घेरेमें है, जिसके उत्तर ओर एक ऊंची चट्टान है।...देश बहुत सर्द है। यहांकी उपज गेहूं और थोड़ा सा फल-फूल है। यहां भेड़ों और घोड़ोंके लिये अच्छी चरागाहें हैं। लोग कठोर और रूखे होते हैं। वह वरके बने ऊनी पट्टू और पोस्तीन पहनते हैं। यहांके रीति-रवाज और सिक्के तुखार जैसे हैं। लोगों की आकृति भी वैसी ही है, किंतु भाषामें कुछ अन्तर है। अपने पड़ोसियोंसे ये कहीं अधिक ईमानदार हैं। इनमें त्रिरत्नके उपासक (बौद्ध) और देवताओंके पूजक (हिंदू) भी हैं। यहांका राजा शक वंशी है। यहांके दस विहारोंमें हजारों लोकोत्तरवादी भिक्षु रहते हैं।

अरब भूगोलवेत्ता इब्नहौकल (दसवीं सदी) ने लिखा है "बामियान शहर बलखसे आधा एक पहाड़पर अवस्थित है। इसके पहले एक नदी मिलती है, जो बहकर गुर्जिस्तान प्रदेश में जाती है। यहां कोई बाग-बगीचा नही है।"

राजधानीके उत्तर-पूर्वमें सुनहले रंगकी खड़ी बुद्धमूर्ति (सुर्खबुत) है, जो १७३ फुट ऊची है, जिसके पूरबमें एक बौद्ध विहार है। इसके पूरबमें शाक्यमुनि बुद्धकी १२० फुट ऊची खड़ी मूर्ति (सफेद बुत) है। यह मूर्ति पहलीसे सवा मील दूर है। इससे १२ या १३ ली (दो ढाई मील) पूरब एक हजार फुट लंबी निर्वाण बुद्धमूर्ति (अज्दहा) है, जो कि एक अकेली सी शिलाके चौरस तलपर बनी है। इसी विहारमें बुद्ध-शिष्य आनंदके प्रशिष्य शाणवासकी संघाटी रखी है।

स्वेन्-चाङ बामियानसे अन्-त-लो-फो (अंदराब) होते अफगानिस्तान और भारतकी ओर आया। हिंदूकुशके उत्तरके कुछ और स्थानोंके बारेमें उसने लिखा है—

कुओ-सि-तो (खोश्त)—अंदराबसे ३०० ली (६० मील) उत्तर-पश्चिम यह स्थान है, जो पहले तुखारदेशमें था, किंतु अब तुर्कोंके हाथमें हैं। यहां की भूमि समतल है, जहाँ खेती बाकायदा होती है। फल-फूल बहुत होते हैं। जलवायु नरम है। यहां के लोग ईमानदार हैं, लेकिन

जल्दी उत्तेजित हो जाते हैं। इनकी पोशाक ऊनी कपडोंकी होती है। [illegible] बौद्ध हैं। यहां दस विहार हैं, जिनमें महायान और हीनयान दोनों यानोंके भिक्षु रहते हैं। राजा तुर्क है, जोकि लोहद्वारके दक्षिणके छोटे-छोटे राज्योंपर शासन करता है। उसके स्थायी निवासका कोई नगर नहीं हैं। वह एक जगहसे दूसरी जगह घूमता रहता (घुमन्तू) है।..इससे पूर्वमें चुङ-लिङ (पामीर) है, जो कि जंबूद्वीपके केन्द्रमें है। दक्षिणकी ओर इसकी पर्वतश्रेणी महाहिमगिरि (हिंदुकुश) से मिली हुई है। उत्तर में यह तप्तसागर (इस्सिकुल) और सहस्रधारा (बिङ-गुल) तक पहुंचती है। पश्चिममें यह हु-ओ (कुंदूज) देश तक तथा पूरबमें वू-शा (वोलोरताग) तक फैली है।......यहांकी भूमिमें प्याज बहुत पैदा होती है, इसीलिये चुङ-लिङ (प्याजका पहाड़) नाम पड़ा, अथवा इसकी चट्टानोंके प्याजी रंग होने के कारण यह नाम दिया गया।

मेन-कान् (मेङ-कान्, मुन्-जान्)—खोश्तमें १००ली (२० मील) पूरब है। यहांके लोग हू-ओ (कुंदुज) जैसे हैं।

अ-लि-नी ( )मेङ-कान् से उत्तरमें यह प्रदेश वक्षु नदीके दोनों तरफ अवस्थित है, लोग कुंदुज जैसे हैं।

हो-लि-हू ( )वक्षुके उत्तर तरफ अलि-नि से पूरबमें यह प्रदेश है, जहांके लोग कुंदुज जैसे हैं।

कि-लो-शे-मे- (कृष्णनिम्न, वखान)—मेन्-कानसे ३०० ली (६०मील) पूरबमें यह प्रदेश है, जो पहिले तुखार देश में था। लोग मेन्-कांन जैसे है।

पो-लि-हो—उपरोक्तसे उत्तर-पुरब है, जहां के लोग भी पहले ही देश जैसे हैं।

हि-मो-तोलो (तुखार)—कि-ली-शे-मोंसे ३०० ली (६०मील) पूरबमें यह प्रदेश है, जहां लगातार पहाड और उपत्यकाएं चली गई हैं। भूमि उपजाऊ है। गेहूं पैदा होता है, वनस्पति बहुत देखी जाती है, फल प्रचुर परिमाणमें पैदा होते हैं, जलवायु बहुत ठंडा है। लोग बडे क्रोधी तथा चंचल होते है, आचार-विचारका ख्याल नहीं रखते। वह कदमें छोटे तथा कुरूप होते हैं।..इनका परिधान तुर्कोंकी तरह मोटाझोटा ऊनी कपडा, नम्दा, पोस्तीन और पट्टू का होता है। इनमें विवाहिता स्त्रियां शिरपर तीन फुटसे अधिक ऊंची लकडी की सींग टोपीके तौरपर पहनती है, जिसकी दो शाखायें एकके ऊपर एक सामनेकी ओर होती हैं। ऊपरी की ओर निकली शाखा सासकी मानी जाती है। उसके मर जानेपर शाखा हटा दी जाती है। सास ससुर दोनों के मर जानेपर सींगकी टोपी नहीं पहिनी जाती। पहले यहां शक-वंशी राजा थे, जिनके हाथमें चुङ-लिङ (पामीर) के पश्चिमके अधिकांश भाग थे। पीछे यह तुर्कोंके हाथमें चले गए। लोगों पर तुर्कोंके रीति-रवाजका प्रभाव बहुत है। लूटपाट सदा होती रहती हैं, इसलिए लोग जाकर दूसरे देशोंमें घुमक्कड़ी करने लगे।...यह लोग नम्देके तम्बुओंमें रहते हैं, और एक जगहसे दूसरी जगह घूमते पश्चिममें कि-लि-शेमो (कृष्ण) देश तक जाते हैं।

पो-तो-शङना (बदख्शां)—२०० ली (४० मील) और पूरब जानेपर यह प्रदेश मिलता है, जो कि पूर्वी तुषार देश है। पहाड़ियों और घाटियोंवाला यह प्रदेश अधिकतर बालू और पत्थरोंका है। मटर, गेहूं, अंगूर, अखरोट, नास्पाती, खूबानी जैसे मेवे यहां पैदा होते हैं। देश बहुत ठंडा है। लोग शिष्टाचारहीन और शिक्षाहीन होनेपर भी बहादुर होते हैं। नम्दा

या पट्टूका कपड़ा पहनते हैं। यहां तीन-चार बौद्ध विहार हैं, जिनमें थोड़ेसे भिक्षु रहते हैं। राजा बौद्ध है।

यिन्-पो-क्यान् (इन्वकान्, वखान)—बदख्शांसे २०० ली (४० मील) दक्षिण-पश्चिम प्राचीन तुखार देशमें यह इलाका है। इसके पहाड़ोंकी उपत्यकायें संकरी हैं, जिनमें खेतीकी भूमि है। जलवायु तथा लोग बदख्शांकी तरह है, लेकिन भाषा भिन्न है। यहांका राजा दुष्ट और क्रूर है।

कु-लङ-ना (कोरन, कोक्चा उपत्यकाका उपरी भाग)—३००० ली (६० मील) दक्षिण-पूरबमें प्राचीन तुखार देशका यह भाग है। थोड़ेसे बौद्ध भी हैं। यहां पत्थरोंको तोड़कर सोना निकाला जाता है। थोड़ेसे विहार और भिक्षु हैं। राजा भी यहांका त्रिरत्न-भक्त (बौद्ध) है।

त-मो-सी-ती (धर्मस्थिति, वखान)—कुलङनासे ६०० ली (१०० मील) उत्तर-पूरब यह प्रदेश प्राचीन तुखारका ही एक भाग पो-शू (वक्षु) पर अवस्थित है। पहाड़ी जगह है।... वर्फीली ठंडी हवा चलती रहती है। मटर और गेहूं पैदा होता है। वनस्पति नाममात्र है। यहांके घोड़े अच्छे होते हैं। लोग नाटे और झगड़ालू होते हैं। पोशाक नम्दा और पट्टूकी है। "इनकी आंखें दूसरे लोगोंसे भिन्न फीरोजेकी तरह नीली होती हैं।" यहां दस विहार है, जिनमें थोड़ेसे भिक्षु रहते हैं। राजधानी हुन्-ते-तोमें एक विहार है, जिसमें एक पत्थरकी बुद्ध-मूर्ति है। मूर्तिके ऊपर स्वतः घूमनेवाला छत्र है।

शि-किन (शगनान)—उत्तरी पहाड़ोंको पार करने पर यह प्रदेश मिलता है। यहां मटर और गेहूं बहुत होता है, दूसरी फसलें बहुत कम होती हैं। वृक्ष दुर्लभ हैं, और फल-फूल भी बहुत कम होते हैं। जलवायु बहुत ठंडा है। लोग लुटेरे और हत्यारे हैं, सामाजिक या आचारिक भेदभाव नहीं मानते।...इनकी पोशाक पोस्तीन और पट्टूकी होती है। भाषा भिन्न है, लेकिन लिपि तुखार जैसी है।

शाङमीर (　　　　)—शगनानसे दक्षिणमें है, यहां मटर, गेहूं और अंगूर बहुत होता है।...जलवायु ठंडा है।...लिपि तुखारी, किंतु भाषा भिन्न है। यहांका राजा बौद्ध तथा शकवंशी है।

पो-मी-लो (पामीर)—शङमीरसे ७०० ली (१४० मील) उत्तर-पूरब, दो हिमपर्वत-मालाओंके बीचमें यह उपत्यका अवस्थित है। वसंत और गर्मियोंमें यहां हाड़ चीरनेवाली भयंकर हवा तथा बर्फानी तूफान आते हैं। मिट्टी नमकीन तथा बहुत कंकरीली है। खेती नहीं होती, मुश्किलसे कहीं वनस्पति देखनेको मिलती है। बिलकुल निर्जन तथा केवल बेकार पड़ी भूमि हैं। यहां एक बड़ा नाग सरोवर है, जो पूरबसे पश्चिम ३०० ली (६० मील) लंबा और उत्तरसे दक्षिण ५० ली (१० मील) चौड़ा है। सरोवर चुङ-लिङ (पामीर) के भीतर एक बड़े ऊंचे स्थानपर है। इसका जल बहुत ही निर्मल और शुद्ध है। पानी अथाह और नीले रंगका है, स्वाद भी अच्छा है।...जलतलपर बहुत जातिके जलपक्षी रहते हैं।...इस सरोवरसे एक धारा पश्चिमकी ओर जाती है, जो धर्मस्थितिमें जा पूरबमें वक्षुसे मिलती है। सभी धारायें यहांसे पश्चिमकी ओर बहती हैं।

क्या-पान्ते (सरिम्-गोल)—ताश कुर्गानके पास है।

पो-लु-लो ( ) पामीर-उपत्यकाके दक्षिणमें यह इलाका है, जहां बहुत सोना-चांदी निकलता है।

६. अंतिम तुर्क

जब ६३१-६३२ ई० में स्वेन्-चाङ इस प्रदेशमें घूम रहा था, बलख, बामियान, महाहिमगिरि (हिंदूकुश), बदख्शां और बखान ही नहीं बल्कि मेर्व भी तुर्कोंके हाथमें था। इस समय पश्चिमी तुर्क कगान तुन्-शे-खूका शासन था, तो भी हूण पूर्वजोंकी तरह तुर्क राजवंशी अपने अपने शासित प्रदेशमें स्वतंत्रसे थे। तुन्-शेखूके बाद केंद्रकी शक्ति क्षीण हो गई, और सामन्त स्वतंत्र हो गये। सोगे (७०४-७१७ ई०) और सूलू (७१७-७५७ ई०) ने तुर्क राज्यको पुनः दृढ़ अवश्य किया, किंतु मध्य-एसियाका दक्षिणापथ अब उनके हाथसे निकल गया। अरब शक्ति वहां प्रबल होती जा रही थी। तुखारिस्तानमें तुर्कोने अरबोंसे बहुत जबर्दस्त मुकाबिला किया, [illegible] सोग्दमें भी [illegible] हुआ। तुर्कोंके ही समय उनकी बौद्ध-धर्म-भक्तिका प्रतीक एक विशाल विहार सोग्द (जरफ़शां) नदीके किनारे बना। विहारको तुर्की और मंगोल भाषामें बुखार कहते हैं। उक्त बौद्ध बिहारके कारण वहां बना नगर बुखारा कहा जाने लगा। इससे पहले हेफ़तालोंके समय बरख्शा प्रधान केंद्र था, लेकिन अरबोंके आक्रमणके समय बुखारा प्रसिद्ध नगर बन चुका था। यहां का शासक बुखारा (वर्दन)-खुदात कहा जाता था। तुर्कोंके कुछ सामन्त इससे पहले तर्कमरूद, बेर्वाने, अस्वाने और नूरमें बस गये थे। केंद्रसे स्वतंत्र होनेके बाद इन सरदारोंने अवेरजी को अपना राजा चुना, जो कि वेइकन्द (राज्य-नगर) में रहता था। उस समय अभी बुखारा नहीं बसा था। अवेरजी बहुत ही अत्याचारी शासक था, विशेषकर धनी व्यापारियों और देहकानों (ग्रामपतियों) को बहुत लूटता था। इसके कारण बहुतसे धनी व्यापारी वहांसे तुर्कोंके प्रदेशोंमें चले गये, जहां उन्होंने जेमकेत (चिमकंद?) नगर बसाया। राजा कराजुरिन गरीबोंका पक्षपाती था। मदद मांगनेपर उसने अपने पुत्र शेरे-किश्वरको भेजकर अवेरजी को बंदी बना कांटोंसे भरे बोरेमें बंद करके बुरी तरहसे मरवाया शेरेकिश्वर ने राजा बनकर देश छोड़कर भागे लोगोंको बुलवा मंगाया।

(१) शेरेकिश्वर, सेकेजकेत

शेरेकिश्वर (देशसिंह) ३० साल तक राज्य करता रहा। उसके उत्तराधिकारी सेके-जकेतने समीतन और दूसरे नगर बसाये। फेरख्शा (बरख्शा) पहिले ही श्वेत-हूणोंकी राज-धानी थी। सेकेजेत उस तुर्क खानवंशका था, जिसको चीन राजकुमारियां ब्याहके लिये मिला करती थीं। कहते हैं : एक चीन राजकुमारी ब्याह करके आई, जो अपने साथ बुद्ध-मूर्ति लाई थी। इसी मूर्तिके लिये विहार (बुखार) बनाया गया, वही बुखारा नगरके नामका कारण हुआ। शायद यह घटना स्वेन्-चाङकी यात्राके पहिलेकी है, अर्थात् ६३० ई० से पहिले विहार बना।

(२) बेनदून

यह मुस्लिम संवत्के आरंभ (६२२ ई०) के आसपास था। इसके समय बुखाराकी और उन्नति हुई। इसने लोहेकी तख्तीपर अपना नाम लिखवाकर अपने बनवाये महलके द्वारपर लटकवा

दिया था, जो पांच शताब्दियों बाद तक भी वहां मौजूद रहे जबकि ११ वीं शताब्दीके अरब ऐतिहासिकोंने उसका जिक्र किया।

(३) तुग्शादे[१]

यह बुखाराका अंतिम तुर्क राजा था। नाबालिक होनेके कारण राज्यका कारबार उसकी मां करती थी, जिसे अरब इतिहासकार खातून कहते हैं—तुर्कीमे खातूनका अर्थ रानी है, इसलिये यह वैयक्तिक नाम नहीं हो सकता। खातूनने ५० सालतक शासन किया। जान पड़ता है, पुत्रके वयस्क हो जानेके बाद भी मां का प्रभाव बहुत अधिक रहा। प्रतिदिन सूर्योदयके समय उठकर वह घोड़ेपर चढ़ अपने महलसे निकल रेगिस्तान (बुखाराके एक मैदान) के फाटकपर आ सिंहासनपर बैठती। नगरके व्यापारी, सार्थवाह और छोटे-मोटे दूकानदार दर्बारमें हाजिर होते। उसके अफसर और सामन्त चारों ओर घेरे रहते। खातून यहीं राजकाज तथा न्याय करती। जिस वक्त वह दरबारमें रहती, सुनहले कमरबंद, कीमती चोगा पहने तलवार लिये २०० तरुण शरीर-रक्षक सेवामे तैयार रहते। उन्हें एक दिन ही ड्यूटी देनी पड़ती, दूसरे दिन दूसरे २०० जवान आ जाते। हर एक तुर्की कबीला एक-एक दिनके लिये अपने तरुणोंको इस कामके लिये भेजता। कबीलोंकी संख्या इतनी अधिक थीं, कि सालमें प्रत्येक कबीलेकी बारी एक बार पड़ती थी। इन कबीलोंमे ६० परिवार ऊंचे समझे जाते थे।

अंतमें तुगशादेको अरबोंकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी और वह मुसलमान होकर ३० साल तक बुखाराका शासक बन अपने पड़ोसी वर्दनके राजासे अरबोंके लिये लड़ता रहा।

सोग्द (समरकंद) और भी अधिक महत्व रखता था। वहांका तर्खून आखिरी समयतक लडता रहा। जबतक उसे परास्त नहीं कर दिया, अरबोंको चैनसे शासन करनेका मौका नहीं मिला। तरखूनने चीनसे मदद मांगी थी, अपने जाति-भाई तुर्कोंसे भी सहायता पाई थी, किंतु आखिरमें उसे देश छोडकर भागना पडा। समरकंदसे पूरबमे अपने दुर्ग मग पर्वत में उसने अपने बहुतसे चर्मपत्रपर लिखे अभिलेखोंको छोडा, जिनमेंसे अधिकांश (७वीं सदीकी) सोग्दी भाषामें तथा कुछ अरबी और चीनीमें भी हैं। सोवियत पुरातत्त्ववेत्ताओंने इन्हें हाल में खोद निकाला।

---

[१] History of Bokhara (A. Vambery, 1973)

स्रोत ग्रन्थ :

1. Heart of Asia (E. D. Ross, (London 1899)

२. सिरिइस्किये इ[illegible] पो इस्तोरिइ नरोदोफ ससस र (न. पिगुलेस्कया, मास्को १९४१)

3. Turkistan down to the Mongol Invasion (W. Barthold), 1928

4. On yuan Chwangs Travel in India (Thomes Watters, 1904)

5. Memoir Sur les Contre'es Occidentales (Hiuen Tsang, अनुवादक Julien)

6. The Turko-Scythien Tribes (E. Parkar in China Review, XX 1892, 3, pp. 125)

7. History of Bokhara (Arminus Vambery, London 1873)

8. Introduction a l' histoire de l' Asie (Paris 1895)

9. Early History of the Turks (Washborn, Contemporary Review, LXXX, pp. 249-63)

१०. सोग्दिइस्कया कलोनिज़ात्सिया सेमिरेच्या (अ० न० वेर्नश्ताम)

भाग ५

उत्तरापथ (७६६–९४० ई०)

अध्याय १

आगूज़, उइगुर

१. आगूज़

आगूज एक पुरानी तुर्क जाति थी, जिसका स्मरण मोगिलियानके अभिलेखमें आया है। मोगिलियानने आगूजोंको हराकर चीनकी ओर भगा दिया था। मोइनचुरा (उइगुर खान)के सहायक किपचकोंके पूर्वज आगूज़—आगूजोंके पांच विभागोंमे एक किपचक थे। किपचकका अर्थ वृक्षकोटर है। शायद किसी समय किसी पूर्वजने वृक्ष कोटरमे छिपकर प्राण बचाया हो। गूज या आगूज़ तुर्कोंके तीन विभाग थे—किपचक, कंकाली और करलुक (गरलोक)। किपचकोंके ही वंशधर सलजूक, तथा आधुनिक तुर्कमान, उसमानली और कजाक है। कोई कोई आगूजोके उत्तराधिकारी किपचकोंको कंकालियोंका पूर्वज मानते है। इन्हीं कंकालियोंके उत्तराधिकारी वायन तुर थे। कंकाली (कङली) यायिक (उराल) नदीके पूर्वमें अपनी गाडियोंके साथ घूमा करते थे, इसीलिये इनका नाम कंङकाली या तिङली (गाडीवाला) पडा। ९ वीं सदीके अंतमें किपचक वोल्गाके पश्चिममें पहुँच गये थे, और १३ वी सदीमें आधुनिक रूसियोंके पूर्वज स्लावोंको परेशान कर रहे थे। किपचकोंसे ही सलजूक-वंश निकला,जिसने कितनेही समय तक मध्य-एसिया और ईरानपर शासन किया। आजकलकी तुर्की के तुर्क उसमानली शाखाके वंशधर हैं। ७वीं ८वीं सदीमें कालासागरसे उत्तर पेचनगा घुमन्तु घूमते थे, जिनके पूर्वोत्तरमें किपचक, दक्षिण-पश्चिममें ख़ज़ार, पूर्वमें गूज और पश्चिममें स्लाव रहते थे। गूज़ या आगूज़ ७वीं ८वी सदीमें चीन की सीमासे लेकर कास्पियन तक फैले घूमन्तु जीवन बिताते थे। सामानियोंके सारे शासनकाल (८९२-९९३ई०) मे ये उनके उत्तरी पडोसी थे। खोकन्द और पूर्वी तुर्किस्तान से वक्षु तटकी ओर इनका प्रवाह चल रहा था। सामानियोंकी शक्ति के पतनके बाद बुखारा प्रदेशमें भी ये घुस आये और वहां एक सरदार तकमक पुत्र सलजूक के कारण एक शाखा सलजूक कही जाने लगी। सलजूक पहलेपहल मुसल्मान बना। उसके पहले गूज अधिकतर बौद्ध या ईसाई धर्मोंके माननेवाले थे। सल्जूक और सुवास एक गूज़ सरदार पेगूके सेनापति थे। उसका पेगू नाम ही बतलाता है, कि वह बौद्ध था। पेगू बोगू (भगवान) का ही रूपान्तर है, पारसी बुद्धको पेगू कहते थे।

आगूज जब मंगोलियामें थे, तब ही वह इस नामसे प्रसिद्ध थे। पश्चिममें आनेपर उनमेंसे कुछको तुर्कमान कहा जाने लगा। दूसरी सदी ई० पू० के चीनी यात्री आन-साई (आलान्-या) की भूमिको जानते थे, जहां के निवासी ईरानी जातिसे संबंध रखते थे। ग्रीक लोग आलान (आवोर-

सोग) को दोन नदी और कास्पियनके बीचके निवासी जानते थे। पीछे भी अलान वोल्गाके पूरबमें रहते थे। ३७४ ई० आसपास के हूण अलानोंके ऊपर पड़े, जिसके कारण वह अपनी भूमि छोड़नेके लिये मजबूर हुए। ८वीं सदीमें तुर्क खाकानने अपने अभिलेखमें आगूजों अथवा ताकुज-आगूजोंके खानका जिक्र किया है। नौकी गिनती में आगुज कहनेका मतलब यही है, कि उनके नौ कबीले थे—कभी कभी तुर्क और आगूज दोनों शब्द साथ साथ आते हैं। आगूज वही तुर्क जनता थी, जो कि छठीं सदी ई० में चीन की सीमासे ईरान और विजंतीन (पूर्वी रोम) की सीमा तक घुमन्तू जीवन बिताती थी। रूसी विद्वान न० व० बर्तोल्द के कथनानुसार[२] तुर्क उनका राजनीतिक नाम था और आगूज नृवंशीय। अरब भूगोलज्ञ आगूजों का रहना पूर्वी कास्पियनसे इसफजाब तक और ताकुज-आगूजोंका सिर-उपत्यकामें कूचा और तुर्फान तक बतलाते हैं—तुर्फान उनका केंद्र था। १३ वीं सदीके भूगोलज्ञ इब्न-अमीरने लिखा है, कि आगूज कभी भी ताकूज-आगूजोंके नीचे नहीं रहे। अरब ताकुज-आगूजोंका रहना जहाँ बतलाते हैं, चीनी वहींपर उसी समय उइगुरोंका निवास बतलाते हैं। ८६६ ई० में तुर्फानको उइगुरोंने लिया था। इससे जान पड़ता है कि अरब जिनको ताकुज-आगूज कहते हैं, चीनी उन्हींको उइगुर नाम देते हैं। अरबोंके अनुसार ८२० ई० (२०४ हि०) में तोगुज़ उश्रूसनाको ले खोजंदसे जीजक तकके स्वामी बन गये। विजंतीय (रोमक) ऐतिहासिकोंके अनुसार छठीं सदीमें वोल्गासे पश्चिमका इलाका तुर्क-राजाके हाथमें चला गया। ५७६ ई० में विजंतियों द्वारा ध्वस्त होनेपर किमेरियोंके बासपोर (केर्च) को तुर्कोंने ले लिया।

५९० ई० में वहां विजंतीय शक्तिसे विद्रोह हुआ। तुर्कोंकी इस अल्पकालिक सफलताके समय ६२५ ई० में इस प्रदेशपर खजारी कगानका अधिकार था। ८वीं और ९ वीं सदीके मध्यमें निम्न वोल्गामें खजार और बोल्गार रहते थे। इन्हीं तुर्कोंसे आत्मरक्षाके लिये सासानी ईरानियोंने छठीं सदीमें दरबंद और गुर्जीके रक्षा-प्राकार बनवाये। छठीं सदीमें तुर्क (चोल, सुल) के राज्यमें कास्पियनसे पूर्व के प्रदेश तथा गुर्गानमें जर्थुस्ती देहकान रहते थे। अब्बासी खलीफाके ऊपर आगूज जाजिया से चिमकंद (सिर-उपत्यका) तक प्रहार करते थे। बोल्गा (इतिल) के ऊपरी और निचले भागमें आगूज़ रहते थे, जिनके उत्तरी पड़ोसी किमाक थे। अरब भूगोलज्ञ इब्न-फ़ज़लान ने अपनी यात्रा के समय (९२२ ई० के वसंत में) आगूज़ों को केवल उस्तउर्द में पाया था, उस समय एम्बा नदी से पूर्व में तुर्क-वंशी बाश्किर रहते थे। इस समय कस्पियन के पश्चिम में ख़ज़ार, पूर्व में आगूज़, जिनके पूर्व में करलुक घुमन्तू रहते थे। आगुज़ों के सरदार को खान नहीं यबगू कहा जाता था, यही बात करलुकों में भी थी। यबगू को मोगोलियान के शिला लेख में जब्गू कहा गया है—११वीं शताब्दी के लेखक महमूद काशगरी ने भी ज की जगह य का प्रयोग किया है। यब्गू जाड़ों में निम्न सिर-उपत्याका में रहता था। सामानी सीमांत सैराम से सिर के मुहाने तक उसकी गोचर-भूमि थी। आगूज़ों की भूमि से जाते वणिक्पथ पर जहां-तहां मुसल्मानों के भी नगर थे। इन्हीं में एक यंगीकेंत (देहनव) था, जो कि सिरदरिया से छ-सात किलोमीतर हटकर बसा था। फारेलसे १० दिन और फराब से १२ दिन में वहां पहुंचा जाता था। यहां आगूज़ों का एक राजा रहता था।

---

[२] "ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमेन्स्कवो नरोद", History of Bokhara (A. Vambery)

इसी के पास दो और नगर जंद और तमरउत्कुल थे। इब्न-खल्दूनके अनुसार आग़ूज़ बड़े समृद्ध थे, किन्हीं किन्हीं के पास एक-एक लाख भेड़े थी। वह ख्वारेज्म व्यापार करने जाते थे। जब सोग्द और तुखारिस्तान में शांति रहती, तो आमू-दरिया के दक्षिण तट पर अवस्थित पारातगिन नगर में भी हो जाते थे, जो कि अराल से एक दिन के रास्ते पर था। गुर्गंच (उर्गंज) वणिक्‌पथ पर था। वहाँ सामान की ढुलाई और व्यापार दोनों काम आगूज़ करते थे। ९२२ ई० में इब्न-फ़ज़लान ने आगूज़ों को काफिर पाया था, वैसा ही जैसा कि वह ८वीं सदी में मंगोलिया मे थे। फ़ज़लान ने एक आगूज राजा का नाम कुचुक यनाल बतलाया है, जो कि मुसल्मान होकर फिर काफिर हो गया था। आगूज़ों में इस्लाम के अतिरिक्त ईसाई धर्म का भी प्रचार था, यह १३ वीं सदी के लेखक जकरिया क़ज़वीनी के लेख से मालूम होता है।

२. उइगुर

(१) उइगुर—यह बतला चुके है, कि अरबों के ताकुज-आगूज और चीनियों के उइगुर वस्तुतः एक ही है। उइगुर शुरू में आधुनिक मंगोलिया में ओरखोन नदी की उपत्यका में रहते थे। इनका पहला राजा बुकू खां बतलाया जाता है। कहते हैं, बुकूखां ने स्वप्न में देखा, कि वह सारी दुनिया का राजा होगा। उसने अपने पड़ोसियों—किरगिज, चीन, तंगुन (अम्दो) के विरुद्ध अभियान किया और अपार संपत्ति के साथ लौटा तथा उर्दूबालिक नगरी बसाई। दूसरे स्वप्न में उसे एक जेड़ (अकीक पत्थर) का टुकड़ा मिला, जिसके पास रहने तक संसार पर उसका शासन रहेगा। इस पर उसने पश्चिम की ओर अपनी सेना चलाई और तुर्किस्तान (सप्तनद) में दाखिल होकर बलाशगून (सूजिया) नगर बसाया। चीनी इतिहास बतलाता है, कि उइगुर ७वीं सदी मे मंगोलिया के उत्तर-पश्चिम में रहते थे। ८वीं सदी में उनका स्थान वही प्रदेश था, जहां पर कि उर्गा (उलानबातुर) के पास पीछे मंगोल राजधानी कराकोरम नगर बसाया गया। ९वी सदी में उनके राज्य को किरगिजों ने ध्वस्त कर दिया, और वह दो भागों में विभक्त हो गये, जिनमें पूर्वी भाग का संपर्क पीछे चिंगिस से हुआ। इन्हीं को पीछे वेइ-वूर या (हुइ-हो, पूर्वी तुर्क) कहा जाने लगा। मुस्लिम इतिहासकारों ने उइगुर नाम पहले पहल १३वीं सदी में लिया, इससे पहले वह उन्हें ताकुज-आगूज कहते थे।

मंगोलों के राजनीतिक और सांस्कृतिक गुरु उइगुर थे।[२] चिंगिस और उसके उत्तराधिकारियों के समय वह बड़े बड़े पदों पर थे, यह हम देखेंगे। उइगुर नाम आज भी उज्वेकों के चार विभागों में मिलता है :—उइगुर-नइमन, कङ्-ली-किपचक, कियत-कुंग्रद, नोखुस-मंगित। इनमें चौथा विभाग बुखारा के आखिरी राजवंश का था।

(२) उइगुर उत्पत्ति—पुराने हूणों ने अपने उत्तर की तिङलिङ (गाड़ी वाली) जाति को जीता था। सियन्-पी शासनकाल (३८६-५३४ ई०) में तिङलिङ चीन की ओर से लड़े थे। चीनियों को पीछे यह सुनकर आश्चर्य हुआ, कि पश्चिम में भी इस जाति के लोग रहते है। तिङलिङ और सभी किरगिज ऊंचे पहियेवाली गाड़ियां इस्तेमाल करते थे। कंकालियों की भी यही बात

---

1. A thousand years of Tatars (Parker)
2. Turkistan Down to Mongol Invaison

थी। चीनी लेखकों ने साफ लिखा है, कि उइगुर और किरगिज एक ही भाषा बोलते हैं। जब तिङलिङ शब्द लिखने का रवाज नहीं रहा, तो चीनी लेखक उनके लिये चिर-के अथवा तेरक (चीले, हीले) लिखने लगे। ६४८ ई० में तुर्कों और खित्तनों की भूमियों के बीच में रहने वाली जातियों ने थाङ सम्राट् ताइ-सुङ (६२७-६५० ई०) की अधीनता स्वीकार की, वह इसी तेरक (तुर्क) नाम से पुकारी जाती थीं। तुर्क से तेरक में इतना ही अंतर बतलाया जाता है, कि विवाह के समय तुर्क पुरुष अपनी स्त्री के पास चाहे तब तक रहता था, और उसी समय लौटता था, जब कि एक पुत्र पैदा हो जाता था। लेकिन, तेरकों के बारे में कहा जाता है, कि वह ऊंची गाड़ीवाले लोग थे। तेरकों का ही एक छोटा कबीला उइगुर था, ऐसा किन्हीं-किन्हीं विद्वानों का मत है। तेरक कास्पियन तक फैले हुये थे, जहां पर कि मंगोल-विजय के समय कंकालियों को रहते पाया गया। तुर्की भाषा में कंकाली गाड़ी को कहते हैं, चंगेज (चिंगिस) काल में इसी का चीनी उच्चारण कङली हो गया——छठी सदी में कङली सिविर खकानका एक डेरे भी था। इस प्रकार गोबी के रेगिस्तान, इस्सिकुल और सिर-[illegible] जाते थे। यही जाति प्रधानता प्राप्त कर उइगुर के नाम से मशहूर हुई। हूणों की शासक जाति (राजवंशी कबीले) पश्चिम की ओर चली गई, जो बच रहे, वह आसेना तुर्कों और किरगिजों को छोड़ उइगुर कहे जाने लगे। ये अपने पूर्वजों की तरह ही बड़े साहसी और मजबूत घुमन्तू थे, लूटपाट इनका पेशा था, और घोड़े पर बैठे तीर चलाने में बड़े कुशल होते थे। चूला खाकान ने जबर्दस्ती तेरकों को आधीन करके अपने और उइगुरों के बीच शत्रुता का बीज बोया और क्रुद्ध होकर उनके कितने ही सरदारों को मार डाला। इस पर उइगुर, कुंकिर्त, तुला और बैकाल जातियों ने विद्रोह कर औ अपने अलग अलग जिगिन स्थापित किये। इन्हीके जिगिनों का संमिलित जातीय नाम उइगुर पड़ा। मुख्य उइगुर कबीले को योकर कहा जाने लगा। उस समय ये सेयन्दा नदी के उत्तर में रहते थे। सेलिंगा नदी पर उनका एक लाख ओर्दू था, जिसमें आधे लड़ाई में भाग ले सकते थे।

३. उइगुर-खाकान[1]

१. **जिकेन, जिगिन या जिकेन** उइगुरों का प्रथम राजा था।

उइगुरों के दो भाग थे: नैमन उइगुर (आदि उइगुर) जो चिंगिसखां के समय जुगारियां में रहते थे, तोगुज़-उइगुर (नव-उइगुर) जो ओरखोन और तुला की उपत्यकाओं में रहते थे। यह स्मरण रखना चाहिये, कि ८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ९वीं शताब्दी के अंत तक पूर्वी-एसिया में उइगुर बहुत शक्तिशाली रहे और एक आधुनिक लेखक के अनुसार "पुराने समय में पूर्वी-एसिया के यह सबसे [illegible] थी।" इनकी राजधानी काराकोरम (मंगोलिया) थी, किंतु इनका ओर्दू घूमा करता था। पीछे इनका केन्द्र बिशबालिक हुआ। इनमें बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार था। इनकी भाषा में [illegible] तकलामकान की मरुभूमि में प्राप्त हुये हैं। बौद्धों के साथ साथ नेस्तोरीय (ईसाई) धर्म का भी इनमें बहुत प्रचार था। ८४० ई० में [illegible] का शिर काटा गया, और ८४८ ई० में यह अपनी जन्मभूमि आधुनिक मंगोलिया छोड़ने के लिये मजबूर हुये। नेस्तोरियों के संपर्क में आ उइगुरों ने सुरियानी लिपि से अपनी वर्ण-

---

[1] वहीं

माला तैयार की, जो कि उनके द्वारा चंगिस खां के समय मे जाकर मंगोलों मे आज भी प्रचलित है।

(उइगुर-राजावलि)

जिगिन उइगुरों का प्रथम राजा था, किन्तु उगुरो को प्रधानता तब प्राप्त हुई, जब कि पूर्वी-तुर्कों को समाप्त कर मोइनचुर ने मध्य-एसिया में अपनी शक्ति का विस्तार किया। मोइनचुर मे पहिले उइगुरों के नौ राजा हो चुके थे, आगे आठ राजाओं के समय तक उइगुर शक्तिशाली रहे। इनकी राजावली निम्न प्रकार है—

(१) जिगिन.....
(२) बोसत (बोधिसत्व)...६२९-...ई०
(३) सुमेत
(४) बोरुन
(५) बीरुत
(६) तु-खेली
(७) बुख्तेवर ७१७
(८) ......
(९) कुतलुक बिगा—७५६ ई०
१ (१०) मोइनचुरा (मोयुनचुर ७५९-६०)
२ (११) यितिकिन ७६०-७८
३ (१२) दुरमोगी ७७८-७९
४ (१३) तरस ७८९......
५ (१४) आचो —७९५
६ (१५) कुतलुग—७९५—
७ (१६) कौसंग ८०८—२१
८ (१७) गुदलुग जिगिन ८२१-२४
९ (१८) ...८२४-३२
१० (१९) ...८३२—
११ (२०) ......
१२ (२१) आ-के
१३ (२२) आनेन।

२ बोसत् (६२९-

बोसत बोधिसत्व का अपभ्रंश है, जिससे पिता लगता है कि वंश के आरम्भ में ही बौद्ध धर्म का उसमें कितना प्रचार हो चुका था, इसलिए उनके राजा ने बौद्धधर्म के आदर्शवाद के प्रतीक बोधिसत्व का नाम अपने लिये स्वीकार किया। वह जिगिन का पुत्र था। उइगुरों से दक्षिण में

रहने वाले सेइंदों के सहयोग से उसने अपनी शक्ति को बढ़ाया। उइगुरो को आगे बढ़ते देखकर तुर्क कगान (खान) खेली के उपराज जेली ने एकाएक सेना लेकर आक्रमण किया, लेकिन उइगुरों ने बहुत बुरी तरह से हराया, और उसे सजीव पकड़ कर येरेफ़ा (हूत्रोगी-[illegible]-फा) की उपाधि पाई। बोधिसत्व का उर्दू (सेना) तुला नदी की उपत्यका में रहता था। उसने ६२९ ई०से पहिले चीन-सम्राट के पास भेंट भेजी थी। यह थाङ वंश के आरम्भ और समृद्धि का समय था। बोधिसत्व के साथ साथ सेइंदा का सरदार भी इस भूभाग मे शक्तिशाली था।

३ तुमेत

बोधिसत्व के बाद उइगुरों का एक सरदार तुमेत उनका खाकान हुआ। इसने सेइंदा को हराकर उनके उर्दू को अपने में मिला लिया, किन्तु कुछ ही समय बाद वह फिर स्वतंत्र हो गये। तुमेत की शक्ति को बढ़ते हुए देखकर दूसरी तेरक जातियों—उइगुर, तरंकल, बैकाल, बुक्कू, तुला, गुसार, आदिर, किविर, घेई, किर, स्वतेसिर, शेकिर और किरगिज़—ने चीन की अधीनता स्वीकार की, यह चीनी अभिलेखों से [illegible] है। इसी समय किर्गिजों का नाम पहिले पहल तेरेक जातियों में गिना गया है। इनके सरदारों (राजाओं) की थाङ्-सम्राट ने बड़ी [illegible], और वह सम्राज्य के सहायक बन गये। इन घुमन्तू जातियों की प्रार्थना पर चीन ने डाकगृहों के साथ साथ अच्छे रास्ते बनवाये। छाङआन (चीन राजधानी) से उइगुरों और दूसरी तुर्की-जातियों के राजनीतिक केन्द्रों तक रास्ते तैयार किये गये। उइगुरों का कगान तुमेत यद्यपि बाहर से अपने को चीन के अधीन दिखलाता था, किन्तु अपने राज के भीतर वह नायक कागान (स्वतंत्र राजा) के तौर पर ही प्रसिद्ध था। उसके बारह मंत्री थे, जिनमें छ भीतरी भू-भाग के शासन में सहायता करते और छ बाहरी भूभाग के। यह संगठन तुर्क-सरकार के नमूने पर किया गया था। किसी कारण से उइगुरों ने तुमेत से नाराज हो उसे मार डाला।

४ बोरुन, ५ बीरुत (पीली), और ६. तु-खे-ली

यह तीनों कगान तुमेत के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र थे। यह उस समय हुये, जबकि असेना तुर्क की एक शाखा तेर्किश का प्रतापी कगान मे-चो शासन कर रहा था। उसने पुरानी तुर्क भूमि को जीत लिया, जिसके कारण उइगुर, सिबिर, सिकिर आदि हूणीय जातियां दक्षिण की ओर भागकर पुरानी तुर्क भूमि में खाङ-चउ-फू के पास चली गई। इसी समय तिब्बतियों का भी बहुत जोर बढ़ा। वह तरिम उपत्य का को लेकर चीन के ऊपर भी आक्रमण किया करते थे। उइगुर लोग चीन के सहायक होते थे।

७. बुखतेवर (७१७)

७१७ ई० में तुखेली के पुत्र बुखतेवर ने मे-चो के युद्ध में चीन की सहायता कीऔर इसी संघर्ष में मे मोचो मरा। मोचो के पुत्र पर झूठा अपराध लगा कर उसे दक्षिण चीन में निर्वासित कर दिया गया।

८. पुत्र

उसके स्थान पर उसका पुत्र बैठा। उस समय इन घुमन्तू जातियो पर काबू रखने के लिये उइगुर भूमि (उरुमची) में चीन का एक राजामात्य रहता था, जिसकी शिकायत पर मोचो-पुत्र को दक्षिण में निर्वासित कर दिया गया, और वहीं जाकर वह मर गया। इस पर उइगुर जाति के नेता राजामात्य के विरुद्ध हो गये और उन्होंने उसको मार डाला। इसके कारण राजामात्य के स्थान (वर्कुल) से राजपथ द्वारा चीन का संबंध टूट गया। विद्रोहियों का सरदार तुर्कों के राज्य मे भाग कर वहीं मरा। मरकिरिन के शासन के बाद तुर्कों की राजशक्ति छिन्न-भिन्न हो गई यह कह आये है। उससे उइगुर लाभ उठाये बिना कैसे रह सकते थे?

९. कुतुलिग बिगा (-७५६ ई०)

तुर्कों की इस अवस्था से फायदा उठानेवाला तथा पिछले विद्रोही सरदार का पुत्र कुतुलिग बिगा था। इसे करलिक, वीरा, बसिमिर, और करलुग से मुकाबिला करना पड़ा। बसिमिर राजा होने का दावा करता था, जिसपर बिगा ने उसका सिर काट लिया। संघर्ष मे सफल होकर उसने चीन के पास दूत द्वारा संदेश भेजा, कि इस तरफ की शान्ति और व्यवस्था कायम रखने की जिम्मेवारी मै लेता हूं। उसने अपने राज्य को निष्कंटक बनाकर कुतुलिग बिगा खान की उपाधि धारण की। चीन ने भी "राजकुमार" की उपाधि प्रदान की और उसे वहां भेज दिया, जहां पहिले ओर्खोन नदी के तट पर तुर्कों की राजधानी थी। यह चीन को अर्पित की गई तीन-नगरियों के पश्चिमी छोर से पांच सौ मील उत्तर में थी। मरने से पहले यही पर मरचो (६९३-७१६ ई०) नौ कबीलों के जीतने मे सफल हुआ था। इन्हीं कबीलों में से एक क-स (खजार) भी थे, जिन्होंने पीछे कास्पियन के पश्चिमी तटपर अपना राज्य स्थापित किया था। कुतुलिग बिगा ने करलुकों और बसमिरों को भी जीत लिया। इस सफलता पर चीन-सम्राट् ने बिगा को कगान की उपाधि स्वीकृत की। मरकरिन के वंशजों के लिये तुर्क अब भी विरोध कर रहे थे, जिन्हें बिगा ने कई बार हराया। चीन-सम्राट् ने और भी सम्मान की आशा दी। बिगा ने अपने राज्य को बढ़ाते हुए पूर्व में पूर्वी मंचूरिया के मत्स्यचर्मबाले तातारोंकी भूमि से लेकर पश्चिम में अल्ताई तक बढ़ा लिया। दक्षिण मे उसकी सीमा गोबी की महामरुभूमि थी—अर्थात् उसके मरने के समय ७५६ ई० में सारी पुरानी हूण-भूमि उइगिरों के अधीन थी।

१०. मोइनचुरा (७५६-७६० ई०)

बिगा खान के बाद तेगिन काले उइगुरों का कगान हुआ, जो पुराने अभिलेखों मे मोइन-चुरा के नाम से प्रसिद्ध है। तुर्कों से संघर्ष अब भी चल रहा था, जिसका नेतृत्व अमरोशर कर रहा था। अमरोशर पहिले चीन की ओर से खित्तनों के साथ लड़ता रहा, फिर अपने ही स्वामी के विरुद्ध हो गया। इसीके मुंह की कहावत है—"तुर्क पिता से पहिले माता का ख्याल करते है।' मोइनचुरा के प्रसिद्ध सेनापति वो-जी (नेस्तोरीय) के सहायक के तौरपर भी अमरोशर ने अच्छा काम किया था। इस समय पुराने यू-ची देश के स्वामी तिब्बती थे और चीन की दोनों राजधानियां

(छाङ-आन, लोयाङ) विद्रोहियों के हाथ में थीं। राजधानियों को फिर थाङ-वंश के हाथ में देने में उइगुरों ने भारी मदद की। पहिले उन्हें पूर्वी राजधानी लो-याङ (आधुनिक होनान्-फू) को लूटने का भी अधिकार दे दिया गया, किन्तु पीछे वार्षिक दस हजार थान रेशम भेंट देकर पिण्ड छुड़ाया गया। ७५८ ई० में चीन दरबार में अब्बासी खलीफा और उइगुरों के दूतों का बराबर के स्थान के लिये झगड़ा हुआ। सम्राट् किसी को नाराज नहीं करना चाहता था, इसलिये उसने दोनों दूतों को भिन्न-भिन्न दरवाजों से एक ही साथ आस्थान-मंडप (दरबार हाल) में आने का प्रबन्ध किया और दूत के निर्बंध पर भी सम्राट् के सम्मान के लिये काउ-तु (दण्डवत्) करने की अनुमति नहीं दी।

१९०९ ई० में ऊपरी सेलिंगा में रुनी-लिपि में एक शिलालेख मिला, जो सेलिंगा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें उइगुर राजवंश के प्रथम खान मोइनचुरा का नाम आता है। अभिलेख में तुर्कराजवंश के पिछले खान आज़मिश (७४५ ई०) की मृत्यु से लेकर मोइनचुरा की मृत्यु (७५९ ई०) तक की बातें लिखी हैं। इससे मालूम होता है, कि क्युल् विलगा (कुतुलुग विगा) कगान के मरने के बाद मोइनचुरा गद्दीपर बैठा। "उसके बाद मेरे पिता का अन्त हुआ, तो काली (साधारण) जनता ने (मुझे नेतृत्व) प्रदान किया, किन्तु कुछ लोग ताइ-बिलगा-कुतुग के समर्थक हुये, और उन्होंने उसे कगान बनाया। मैंने सेना एकंत्रित की, उसके विरुद्ध अभियान किया और उसे जीत लिया। मैं जब विजयी हुआ, मेरे हाथ में नभ (देव) ने राज दिया। किन्तु मैंने उसके पक्षपाती काली (साधारण) जनता (कारा इगित) को नहीं सताया और न उसके उर्दू, घर. . .को जप्त किया। मैंने केवल उसे दण्डित किया और पद से हटा दिया।"

इस अभिलेख से पता लगता है, कि मोइनचुरा साधारण जनता की सहायता से सफल हुआ था, उसने अपने प्रतिद्वन्द्वी को दबाया। उइगुर घुमन्तूओं में जनतांत्रिकता प्रचलित थी, जिसके कारण साधरण (काली) जनता अपने अधिकारों को इस्तेमाल करने का मौका पाती थी। यद्यपि इस जनतांत्रिकता का यह अर्थ नहीं था, कि युद्धबंदियों को उनके यहां दास नहीं बनाया जाता था। घुमन्तू सरदारों और उनके लड़ाकू उर्दू की समृद्धि तो बहुत कुछ इन्हीं दासों के श्रमपर निर्भर थी।

मोइनचुरा के समय उइगुर-वंश ने तुर्कों का स्थान लिया। उसका पिता तुर्कों का एक उच्चअधिकारी (शाद) था। उसने पहिले तुर्कों के विरुद्ध बगावत की, और मोइनचुरा को हजारपति का स्थान दिया। तुर्कों के विरुद्ध हुई बगावत में ताकूज-आगूज ने भी सहायता की। ताकूज़-आगूज के बारे में मोइनचुरा कहता है "मैंने अपने सहायक नौ आगूज़ जनता को एकत्रित और संघटित किया। मेरा पिता क्युल विलगा कगान. . .सेना के साथ गया और मुझे भी उसने हजार का नेता बनाकर दक्षिण-पूर्व में भेजा।" तुर्कों के मोगलियान खान के अभिलेख में हम पढ़ चुके हैं, कि उसने तागुज-आगुज जनता को उनकी भूमि और पानी से निकालकर चीन की ओर भेज दिया, जैसा कि उसी अभिलेख की सैंतीसवीं पंक्ति में लिखा है "मैंने (उनकी सेना को) ध्वस्त कर दिया. . .बहुत से उनमें मरे। सेलिंगाके नीचे उन्हें धकेल कर मैंने (अपना मोर्चा बनाया,) और उनके घरों को नष्ट कर दिया।. . . उइगुर उर्दू में सौ परिवार रह गये थे। तुर्की जनता उस वक्त भूखी थी, तब मैंने उस सामान को अपने लोगों को सहायता देने के लिये जमा किया। जब मैं चौंतीस वर्ष का था, तब आगूज़ भागे और चीन की ओर गये।"

मोगलियान खान के इस अभिलेख से मालूम होता है, कि आगूज़ (उइगुर) लोगों पर तुर्कों ने बहुत अत्याचार किया था, जिसका बदला मोइनचुरा ने लिया। उसने तुर्कों के अंतिम कगान अज़मिश को लड़ाई में हराकर बंदी बनाया और उसके कथानुसार उसी के साथ "तुर्क राजवंश उच्छिन्न हो गया।"

११. यितिकिन (७६०-७७७ ई०)

मोइनचुरा के बाद उसका दूसरा पुत्र यितिकिन गद्दी पर बैठा। चीन का थाङ-वंश उस वक्त बड़ी बुरी अवस्था में था। चीन को इस अवस्था में डालने में भारी कारण तिब्बती थे। इस समय सिंहासन के भी कई दावेदार थे, जिनमें से एक का पक्ष लेकर यितिकिन भी शान्सी तक लूटने के लिए गया। लोगों ने कुछ दे-दिवाकर अपनी जान बचाई, किन्तु यह सब तब जबकि उसने एक दो दूत-मंडलों को कोड़े लगवा कर मरवा डाला, क्योंकि दूतने उइगुर [illegible] (रानी) के सामने ठीक सम्मान प्रदर्शन नहीं किया। थांङ वंश उइगुरों की मदद चाहता था। उन्हीं की मदद से ही सम्राट् की सेना ने शान्सी के दक्षिण-पश्चिम कोने में लड़कर विद्रोहियों को हटाया। फिर सेना वहां से पूर्वी राजधानी लोयाङ् को लेने के लिये उधर बढ़ी, जहां एक दूसरे विद्रोही को सी-चाङ-ई (पेकिङ) के समीप हराया। उइगुर सेना और छ सौ मील तक खून के समुद्र में कूच करती गई। अपमान की तो बात ही किया, वह रास्ते में सभी लोगों को लूटती, लड़कियों को पकड़ती, प्रलय की लीला मचाती आगे बढ़ती गई। तो भी विद्रोह और दमन के सहायक उइगुरों को बहुत भारी भेंट, उपाधि और जागीरें दी गई।

७६५ ई० में यितिकिन के एक सेनापति बुक्कू ने बनावटी विद्रोह का बहाना बना सेना ले तिब्बतियों को लूटने और तरिम-उपत्यका से तिब्बतियों के शासन को खतम करने का प्रयत्न किया। लेकिन बुक्कू अपने संकल्प को पूरा करने से पहले ही मर गया। यितिकिन ने क्वो-ज़ी से यह कह कर निपटारा किया, कि सब अपराध बुक्कूका था, उसने मेरी आज्ञा के बिना ही यह अत्याचार किये। साथ ही यितिकिन ने सम्राट् को यह भी वचन दिया, कि यदि बुक्कू के पुत्र (जो कि खातून का भाई भी था) को क्षमादान दिया जाय, तो मैं तिब्बतियों पर आक्रमण करूंगा। खातून ७६८ में मरी। उसके बाद उसकी छोटी बहन चीनी अन्तःपुर से भेजी गई, जिसने बड़ी बहन का स्थान लिया। यह हम देख ही आये है, कि मध्यएसिया के सफल घुमन्तू सरदार चीन-सम्राट् का दामाद बनना अपना हक समझते थे। खातून खाकान की भेंट के लिये सम्राट् की ओर से अपने साथ बीस हजार थान रेशम लायी। उइगुर अपनी शक्ति को जानते थे, फिर शान दिखाने से क्यों बाज आते? चीन के सीमान्तों की मंडियों में वह अपने घोड़ों और दूसरे जानवरों को बेंचने के लिये ले गये। उन्होंने प्रत्येक घोड़े का ४० थान रेशम मांगा। बीस से तीस हजार तक घोड़े वहां आ चुके थे। यह मांग बहुत ही अन्यायपूर्ण थी, लेकिन चीन मजबूर था। उसे दस हजार और घोड़े लेने पड़े। अभागे सम्राट् ताइ-चुङ ने पहिले ही से उत्पीड़ित प्रजा से अत्याचार-पूर्वक और अधिक पैसा जमा करना पसंद नहीं करना चाहा, इसलिये वह सुलह करने के लिये मजबूर हुआ। लड़ाई का सबसे बड़ा कष्ट तो लोगों को ही भुगतना था। उइगुर चीनी प्रजा और उनके शासकों को बड़ी नीची निगाह से देखते थे। एक उइगुर ने किसी चीनी को मार डाला। उसे उइगुरों के डर के मारे मुकद्दमा चलाये बिना ही माफ कर दिया गया, जबकि उसके दूसरे

साथी उसे जबर्दस्ती छुड़ा ले गये। ७७८ ई० में उइगुरों ने फिर लूट-मार मचायी। उनके विरुद्ध आई सेनाको हार खाना पड़ी। नाहक में १० हजार आदमी जबह हुये। दूसरी सेना भेजी गई, जिसे कुछ सफलता मिली। इसी समय सम्राट् ताइ-चुङ (७६३-८०) मर गया। उइगुर कगान के पास सूचना देने के लिये एक हिजड़ा दूत भेजा गया। उस समय कगान अपनी सारी सेना लिये महाप्राकार की ओर जा रहा था। उसने दूतके सलामको भी लेने की परवाह नहीं की। कगान के एक मंत्री दुर्मोगो ने इसका विरोध किया, किन्तु उसकी राय को भी यितिकिन ने ठुकरा दिया। इस पर दुर्मोगो ने नाराज होकर कगान, उसके संबंधियों तथा दो हजार दूसरे अनुयायियों को मारकर "संयुक्त कुतुलुग विगा कागान" के नाम से अपने को उइगुरों का राजा घोषित किया।

१३. दुर्मोगो संयुक्त कुतुलुग (७७७-७९ ई०)

नये कगान (खाकान) को नये चीन-सम्राट् तें-चुंग (७८०-८०५ ई०) ने बड़ी खुशी से तुरन्त दूत भेज कर कगान स्वीकार किया। उइगुरों के नौ कबीले थे, जिनमें मुख्य उइगुर कहे जानेवाले कगान के संबंधी अपने को बड़ा समझते थे। कुछ समय बाद कितने ही उइगुर और नौ कबीलों के सरदार चीन राजधानी में एकत्रित की हुई संपत्ति को ले उत्तर में अपने देश को लौट रहे थे। उनकी ऊंटों की जमात में बड़ी चतुराई से कुछ लूटी हुई लड़कियां छिपाई गई थी। सीमान्त के अफसर ने बरछी से कोंचकर छल को पकड़ लिया। अपराधी नौ कबीलों ने कुछ करना अच्छा नहीं समझा, क्योंकि उन्होंने अभी सुना था, कि दो हजार अनुयायियोंके साथ पहिले कगान को मार कर दुर्मोगो कगान बना है। उधर जाने पर उनपर भी आफत आती, इसलिये अपने सभी उइगुर सरदारों को मार कर उन्होंने ताइ-चाऊ में स्थिति सीमान्त राज्यपाल चाङ-क्वाङ-सेंग के पास जाकर चीन की अधीनता स्वीकार की। सरदारों का यही कसूर था, कि वह उनका ऐसा करना पसंद नहीं करते थे। राज्यपाल ने इसे पसंद किया और सम्राट् के पास स्वीकृति के लिये सिफारिश करते लिखा—इन नौ कबीलोंके हट जानेपर उइगुरोंकी शक्ति मजबूत नहीं रह जायगी। साथ ही उसने दुर्व्यवहारके साथ पेश आनेके लिये अपने एक अफसरको उइगुर-कगानके चाचाके पास भेजा। चचाने उसे मारनेके लिये कोड़ा उठाया। चीनी सेना घात लगाये तैयार थी। उसने उइगुरों और दूसरे तातारों (तुर्कों) को मार डाला, और एक लाख थान रेशम, कई हजार ऊँट और घोड़े अपने हाथमें कर लिये। अफसरने सम्राट्को सूचित किया—"कि उइगुरोंने एक अफसरको कोड़े मारे। उन्होंने सएर (आधुनिक उलान्चेप, मंगोलिया) की भूमि लेनी चाही, इसलिये मजबूरन हमको ऐसा करना पड़ा। अब मैं लौट आ रहा हूँ।" सम्राट्ने तुरन्त उस अफसरको बुला लिया और राजधानीमें बराबर रहनेवाले उइगुर-दूतके पास सब बात समझाने के लिये एक दूत भेजा।

खाकानके पास खाकान पदकी स्वीकृति ले जानेके लिये एक खास दूत भेजा गया, किन्तु वह दूसरे साल पहुंच सका। खाकानने दूतको पचास दिन तक बिना देखे ही नजरबन्द रखा। इस बीच मंत्रियोंसे सलाह होती रही। अन्तमें दुर्मोगोंने संदेश भेजा—"मेरे सारे लोग तुम्हारी जान लेना चाहते हैं, मैं ही केवल अपवाद हूँ। लेकिन मेरा चचा और उसके साथी अब मर चुके हैं, इसलिए तुम्हें मारना केवल खूनसे खून धोना होगा, जो कि सदा के लिये और भी मलिनता पैदा करनी होगी। मैं पानीसे खून धोना अच्छा समझता हूँ। मेरा कहना है, कि

मेरे अफसरोंके छीने गये घोड़े बीस लाख (थान रेशम) के मूल्यके बराबरके है। अच्छा है कि तुम इस क्षति-पूर्तिको तुरन्त भेज दो।" इस संदेशके साथ दुर्मोगोने चीनी दूतको उसके आदमियोंके साथ लौटा दिया। सम्राट्ने कड़वी घूंट पी ली और चुपचाप क्षतिपूर्ति भेज दी।

तीन साल बाद (७८३ ई०) खाकानने चीन-सम्राट्से राजकन्या मांगी। सम्राट्ने इनकार करना चाहा, इस पर महामंत्रीने समझाया—"निश्चय ही परमभट्टारक हमारे राजदूतके कोड़े लगानेके बादकी घटनाको ध्यानमें नहीं ला रहे हैं, जो कि बुक्कूकी रानी (खातून) के सामने हुई थी?" आखिर राजकन्या भेजी गई। वह ऐसी सौभाग्यवती निकली, कि उसने चार खाकानोंकी सेवा की। राजकन्याके आनेपर खाकानने कृतज्ञता प्रकाशित करते पश्चिमी तुर्कोंके
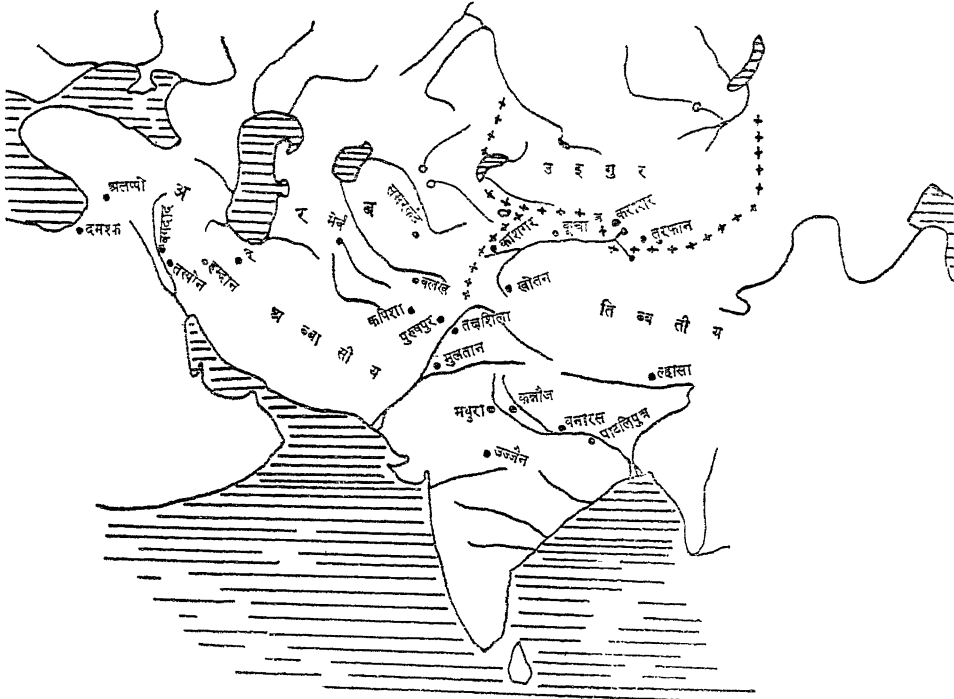
२४. उइगुर राज्य (७६० ई०)

विरुद्ध अपनी सेवायें अर्पित कीं। इस समय पश्चिमी तुर्कोंके कुछ कबीले उइगुरोंके साथ थे। इसी समय करलोग बालागसून (सूजिया) में छाये हुए थे। दुर्मोगोने सम्राट्से आज्ञा लेकर अपनी जातिका नाम बदल हुइहू (उइगुर) रख दिया। कुछ दिनों बाद तातारोंमें मुसलमानोंको उइगुर कहा जाने लगा, संभवतः इसका कारण यही था कि उन्होंने अपने यहां सर्वप्रथम उइगुरों को ही मुसलमानके रूपमें देखा। इस तरहकी घटना और जगहोंपर भी हुई है, सर्वप्रथम ईसाई बने एक छोटेसे फ्रेंच कबीलेके नामसे देशका नाम फ्रान्स पड़ गया, फ्रेंकोकी प्रजा कैल्टो को फ्रेंक, फिर भारतमें अंग्रेजोंको भी फिरंगी कहा जाने लगा। ७८९ ई० में दुर्मोगो मर गया।

४. तरस (७८९ –   )

दुर्मोगोके बाद उसका भाई तरस कगान हुआ। ७५१-७६६ ई० में तिब्बती भी इतने शक्ति-संपन्न थे, कि उन्होंने कांसू से उरुमची और बर्कुल लेते हुए सारी तरिम-उपत्यकाको अपने हाथमें कर लिया। इस समय रेशमपथ उनके हाथमें चला गया और चीनसे पश्चिमका संबंध उइगुर भूमिके रास्ते रह गया। उइगुर मनमानी कर वसूल करके काफिलोंको जाने देते। शादो तिब्बतियोंके हाथमें चला गया था। उइगुरोंने उरुमची लेनेकी बहुत कोशिश की, लेकिन सफल नहीं हुए। उनके पश्चिममें करलुग सप्तनदमें बलवान होते जा रहे थे, इसलिए उइगुरोंको दक्षिणकी ओर ही बढ़नेका रास्ता था।

५. आचो (-७९५ ई०)

तरसके मरने पर उसका भतीजा आचो गद्दीपर बैठा। करलोग इस वक्त बहुत सबल हो गये थे। चूनदी के ऊपरी भागमें उनकी राजधानी इसिबालिक थी, जहां उनके यबगूकी गोचर-भूमि थी। आचो करलुगों और दक्षिणमें तरिम-उपत्यकाके स्वामी तिब्बतियोंसे भी संघर्ष करता रहा। ७९५ ई० में वह निस्संतान मरा।

६. कुतुलग (७९५-८०८ ई०)

हूणों, तद्वंशज अबारों, तुर्कों, उइगुरों तथा दूसरी घुमन्तू जातियोंमें राजशक्ति व्यक्तिमें नहीं उर्दू (जन) में केन्द्रित होती थी, इसलिए उनके कगान (खान) के मरने या पकड़े जानेसे जातिका सर्वनाश नहीं हो सकता था। चीनने कितनी ही बार उन्हें उछिन्न सा करके छोड़ा, किन्तु वह चरी हुई दूबकी तरह कुछ ही समयमें फिर हरे-भरे हो जाते थे। आचोकी जगहपर उर्दूने उसके मंत्री कुतुलुगको कगान चुना। इस कगानका चीनमें अच्छा स्वागत हुआ। इसके समय मानी-धर्मके प्रचारक राजधानी कराखोजामें आये। कगानने उनका अच्छा स्वागत किया। दो सौ बरस बाद भी राजधानीमें मानी-धर्मके मंदिर मौजूद थे।

७. काउ-साङ (८०८-८२१ ई०)

८०८ ई० में उइगुरोंका यह नया खाकान था, जिसने चीनसे ब्याहके लिये राजकन्या मांगी। चीन-दरबार ने सोचा, इस तरहके संबंधसे हमारे लाभ की बात यह होगी, कि उइगुरों और तिब्बतियोंका झगड़ा चलता रहेगा, और तिब्बती हमारी तरफ मुंह उठाकर नहीं देख सकेंगे। लेकिन इस सलाहको सम्राट् स्यान्-चुङने नहीं माना। ८२१ में राजकन्याके लिये और दबाव पड़ा, इसपर नये सम्राट् मूं-चूङ (८२१-२५ ई०) ने राजकन्या भेजी, किन्तु तबतक काउ-साङ मर चुका था, इसलिए यह भेंट उसके उत्तराधिकारीको मिली।

८. गुदुलग जिगिन (८२१-२४ ई०)

घुमन्तुओंको हाथमें रखनेके लिये जहां चीन-दरबार उनके पास रेशमके थान और सोना भेजता था, वहां राजकन्या देकर दामाद बनाना भी उसकी एक पुरानी नीति

थी। ऐसी कन्यायें अधिकतर सम्राट्की पुत्री क्या सम्राट्-वंश की भी नहीं होती थी। इसके लिये सारे देशसे सुन्दर तरुणियां एकट्ठा करके रखी जाती थीं। किंतु अबके राजकन्या असली सम्राट्-पुत्री थी। इसके लिये धन्यवाद देने और राजकन्याको लानेके लिये अभूतपूर्व साज-सज्जा के साथ दूत-मंडल भेजा गया। इस स्वागत-मंडलीमें कबीलोंके दो हजार सरदार सम्मिलित थे। वह अपने साथ बीस हज़ार घोडे एक हजार ऊंट भेंटके लिये लाये थे। इतनी बडी पल्टनको राजधानीमें आनेकी इजाजत नहीं मिली, केवल पांच सौ बराती पहुंचे, बाकी ताइयुवान फू (शानसी) में रह गये। कगानको सम्राटने एक और भी ऊंची पदवी "महामहिम धार्मिक," की दी। खित्तन अभी इतने शक्तिशाली नहीं हुए थे। उनपर चीन और उइगुरों की संयुक्त शक्तिका दबाव पड़ा और अन्तमें उन्होंने दोनोंकी अधिराजता स्वीकार की। थोड़े समय बाद फिर सीमान्तके लिये खित्तनोंसे झगड़ा हुआ, पर, सम्राट् को फिर उइगुर सेना की मंहगी मदद लेनेकी इच्छा नहीं हुई। सम्राट् और कगान दोनों ८२४ई० में मर गये —कगान हत्यासे।

१९. भाई (८२४-३२ ई०)

मृतकगान के स्थानपर उसका छोटा भाई गद्दीपर बैठा, जिसकी ८३२ ई० में हत्या हो गई।

२०. भतीजा (८३२)

निहत कगानकी जगह पर उसका भतीजा गद्दीपर बैठा, किन्तु एक उइगुर सरदारने शादो सरदार गिज़िया (सत्यवादी) से मिलकर कगानपर हमला करना चाहा, इसपर कगान ने आत्म-हत्या कर ली। अब उइगुर राजवंशके अंतिम दिन आ गये थे, जल्दी जल्दी कगानो के मारे और बदलते जानेसे उसकी शक्ति बहुत निर्बल हो गई।

२१. ... (८४० ई०)

इस कगानका नाम और समय मालूम नहीं। संभवत: वह ८४० के आसपास रहा। यह पिछले कगानका संबंधी नहीं था। उइगुरोंकी राजशक्ति शीघ्रतासे क्षीण होती जा रही थी, दूसरी ओर उस साल भारी हिमवर्षाके कारण उनके पशु मारे गये, फिर सूखा पड़ा, जिससे पशुओंके चरने के लिये काफी तृण नहीं रह गया। अन्तमें महामारीने अपना काम शुरू किया। उनका सबसे बड़ा धन घोडा, ऊंट भेड़-बकरियां-अधिकांश मर गये। इसी समय किर-गिज़ोंसे मिलकर एक उइगुर सरदारने सेना ले राजकीय उर्दू पर आक्रमण कर कगानको मार डाला और सारे उर्दू को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। चीन-राजकन्या (कगानकी खातून) विजेताके हाथमें पड़ी। एक देरे (राजकुमार) बचे-खुचे पन्द्रह कबीलोंके साथ अपने पच्छिमी पड़ोसी करलुकोंकी शरणमें चला गया, बाकीमेंसे कुछ तिब्बतियोंके साथ मिल गये और कुछ करकुलके आस-पास बिखर गये। राजकीय उर्दूके पासवाले तेरह कबीले दक्षिणमें शानसीकी ओर चले गये और उन्होंने देरे ओकेको अपना कगान चुना।

२२. ओके

उइगुरोंके इधर-उधर भटकनेका समय आगया विजेताके हाथमें आई चीन कुमारीको किरगिज़ चीन भेजना चाहते थे। इसी बीच ओकेने अवसर पा राजकुमारीको पकड़नेमें सफलता पाई। इस सफलताके बाद आगे बढ़ते वह कुकुखाते (तियां-ते अथवा क्वो-ह्वाचङ : वर्तमान तेंदुस) के पास गया, लेकिन उसका आक्रमण विफल गया। मंत्रियोंकी इस सलाहको सम्राट्ने मान लिया कि किगिजोंको प्रोत्साहन न दिया जाय, और उसकी जगह जांचके लिये आयोग भेजा जाय। राजकुमारीने भी संदेश भेजा—चूँकि अब ओके कगान है,इसलिए मैं उसकी खातून (रानी) होना चाहती हूँ। चीनियोंमें शायद इसी समय स्त्रियोंके पैर बांधनेका रवाज हुआ, जिसमें चीनी स्त्रियोंको "तुर्कोंके साथ भागने" का मौका न मिले। सम्राट्ने नये कगानको अपना दामाद माना, फिर उसके उर्दूकी तकलीफ दूर करना भी आवश्यक था, इसलिये उसके पास पांच-हजार टन अनाज भेजा। ओकेने प्रार्थना की—हमें ताइ-चू (तेंदुस और पेकिंगके बीच) में रहनेकी आज्ञा दी जाय, जिसे स्वीकार नहीं किया गया। उइगुरोंके कितने ही कबीले खित्तन कबीलोंमें जाके मिल गये। ओकेने अपने उर्दूको ता-तुंग-फूके उत्तरी पर्वतोंमें रक्खा। अब भी उसके पास लाख आदमीसे कम नहीं थे। अपनी गुजर-बसरके लिये कगानने सम्राट्से तंदुस नगर उधारके तौर पर मांगा। इन्कार करनेपर उसने सारे प्रदेशमें लूटमार मचा दी। लेकिन उइगुरोंमें अब पूरी फूट थी। एक उइगुर सरदार ऊमुज़ने ओकेको दबानेमे चीनकी सहायता की। रातको कगानके उर्दूपर आक्रमण कर तीस हजार बंदी बनाये, जिसमें चीनी राजकुमारी भी थी। ओके ने निकल भागने में सफल हो जाकर करा-किरगिज कबीलेमें शरण ली, जिसने रिश्वतके लोभमें उसे मार डाला।

२३. ओ-नेयन (८४७)

यह ओकेके स्थानपर नया कगान हुआ, किन्तु उसके उर्दूमें सिर्फ पांच हजार लोग थे। घेई (खेली) ने धोखा दे उसे अपना कगान बनाना चाहा, लेकिन ८४७ ई० में चीनने घेइयोंको तहस-नहस कर दिया। बचे-खुचे घेई अपने बंधु खित्तनोंके पास चले गये, जो एक नये साम्राज्यकी नींव डाल रहे थे। अब इस प्रदेशमें बहुत कम उइगुर थे, उच्च वर्गके केवल तीन सौ परिवार बचे हुए थे। उन्होंने जाकर शिरवी कबीलेके पास शरण ली। सम्राट्ने शिरवियोंसे कगानको समर्पण करनेकी मांग की; इसलिये कगान अपने लोगोंको उनके भागपर छोड़ स्वयं अपनी खातून, पुत्र और दूसरे नौ सवारोंके साथ भाग कर करलुकोंमें चला गया। शिरवी बाकी बचे उइगुरोंको अपना दास बनाना चाहते थे, लेकिन किरगिज़ दावेदार सत्तर हजार सेना लेकर चढ़ आये और उइगुरोंको पकड़कर गोबीके उत्तरकी ओर ले गये। वहांसे वह दूसरे छोटे-मोटे कबीलोंकी लूट-मारसे जीते, छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें बँट अन्तमें अपने कबीलेकी दूसरी शाखामें जा मिले, जो उस समय तुर्कोंकी पुरानी जन्मभूमि (खाङ-चाउ-फू) के आसपास रहती थी।

§४. अन्तिम उइगुर

पश्चिमी तुर्क जब छिन्न-भिन्न हो गये, तो बूकिनके उर्दूके कुछ लोग भागकर उइगुरोंमें जा मिले। जब किरगिजोंने उइगुरोंको ध्वस्त किया, तो इन्होंने बरकुल के आसपासकी भूमिमें

जाकर शरण ली। यह कुछ समय हरासर (कराशर) में रहे। फिर अपने देरे (राजकुमार) के साथ फां-ते-ले ((खाङ चाउ) पहुँचे। इनकी हीन अवस्था देखकर सम्राट् स्वेन-चुङ (८४७-६०) को दया आई और उसने इनके सरदारको कगानकी उपाधि देनेके लिये दूत भेजा।

स्वेन्-चुङके उत्तराधिकारी ई-चुग (८६०-७४ ई०) के समय यह पश्चिमी उइगुर इतने मजबूत हो गये, कि ८६६ ई० में इनके सेनापति बुक्कूने उइगुर तथा दूसरे कबीलोंकी सेना ले तिब्बतियोंको कान्सू और कूचा आदि नगरोंको छोड़कर भागनेके लिये मजबूर किया, और तिब्बती राज्यपाल (क-लोन) के सिरको काटकर सम्राट्के पास चीन भेज दिया। लेकिन अब थाङ-वंश भी समाप्तिपर आया था, और ९०४ ई० में उसकी जगह पांच राजवंश लेनेवाले थे। यद्यपि ८६६ ईसवीमें कूचा और उसके आसपासके नगरोंसे तिब्बती भगा दिये गये, किन्तु कोकोनोर प्रदेशमें वह कई सदियां पीछे तक रहे।

८६६ की इस भारी विजय—जिसमें उन्होंने दीर्घकालसे तरिम-उपत्यकाके शासक तिब्बतियोंको हराकर भगाया—के बाद इतिहासमें उइगुरोंका नाम बहुत कम सुनाई देता है। नवीं सदीके अंतके चीनी अभिलेखोंसे पता लगता है, कि वह इस सदीके अन्तमें सैनिक सेवा करते थे, कभी कभी चीनके सीमान्ती नगरोंमें घोड़ों और बहुमूल्य रत्नोंको चाय और रेशम आदिसे बदलनेके लिये आते थे। पंचवंशी कालमें वह कर भेंट देनेके लिये दरबारमें आते थे और चीनको मामा कहते; क्योंकि थाङ-वंशने अपनी कई कन्यायें उइगुर कगानोंको दी थीं। नवीं शताब्दीमें उइगुरोंका प्रभुत्व तुरफानसे ह्वाङ-होके मुड़ावके पास तक था, किन्तु अब इनके दो केन्द्र थे—(१) पीयाङ जो कि तुर्फानके पास पूरबमें था और (२) खाङ-चाउ, जो कोकनोरके उत्तरमें था। खाङचाउवाले नजदीक पड़ते थे, इसलिये वह चीनमें अधिक पहुंचते थे। चीनी अभिलेखोंसे पता लगता है, कि ९११ ई० में उइगुरोंने दरबारमें भेंट भेजी थी। फिर एक उइगुर सरदारने भेंट भेजी, जिसका चीनी नाम वाङ-चेंङ-में था। उसे कगानकी पदवी देनेके लिये चीनसे दूत भेजा गया, किन्तु पहुँचनेके समय तक वह मर चुका था और उसकी जगह उसका छोटा भाई चाङ-तेगिन शासन कर रहा था।

आतुर्युक (९२६ ई०)

९२६ ई० में आतुर्युकको कगान देखा जाता है। ९२७ ई० में एक दूसरा स्थानापन्न कगान वाङ-चेन्-यू ने अपनी भेंट भेजी, जिसे माउ-किरे (द्वितीय शादो सम्राट् मांगचुग ९२६) ने कगानकी उपाधि प्रदान की। यह स्थानापन्न ९६० ई० तक शासन करता रहा। ९६२ में उसके पुत्रने भेंट भेजी थी। यह कगान जिस प्रदेशमें रहते थे, उसके बारेमें चीनियोंने लिखा है, कि वहां बहुमूल्य पाषाण, जंगली घोड़े, एक कोहानी ऊँट, हरिन, सोहागा, हीरा, कपास, घोड़ेके चमड़े, अनाज में गेहूं, जौ, पीली भांग, (सोम) प्याज आदि होता है। वह लोग खेतकी जोताई ऊँटसे करते हैं। खान ऊँचे महलमें रहता है। उसकी पत्नीको देवी (दिव्य कुमारी) [illegible] मंत्रीको मेयलुक। दरबारमें सिर नंगा करके जाना पड़ता है—हूणोंमें भी यह रवाज था। इनकी स्त्रियां सिरके ऊपर पांच-छ [illegible] लाल रेशमी थैलेमें समेटकर रखती हैं। विवाहिता स्त्रियां सिरपर नमदेकी टोपी लगाती हैं।

९६४, ९६५ में उइगुरोंने चीन (सुङ) दरबारमें भेंटके साथ दूत भेजा था। भेंटमें रत्न, अम्बर, चमरीकी पूंछ और समूर थे।

९७७ ई० में उइगुर कगानका राज्य कोकोनोर और [illegible] खङ-पा-च्वाउ तक था अर्थात् यूचियोंकी पुरानी भूमि अब उइगुरोंके हाथमें थी। चीन सम्राट्ने इसी समय हुक्म दिया था, कि हमारे दामाद उइगुर खाकान खान्-सा-चाउको पैसा भेजना चाहिये, जिससे वह अच्छे घोडों और बहुमूल्य रत्नोंको हमारे उपयोगके लिये भेजे।

९८८ ई० में कुछ उइगुर परिवार राजाको मार उच्च अफसरोंके साथ आलाशान-पर्वतके पास बसनेके लिये आये, किन्तु उनके पास उर्दू नहीं था।

९९६ ई० में खान्-चान कगानने हिया के तंगूतों (अमदुओं) के विरुद्ध लड़नेके लिये अपनी सेवायें चीन-सम्राट्को पेश कीं। तोबा (मियन्पी) राजवंशकी संतान हिया-राजवंशने ८९० से तब तक अपने स्वतंत्र अस्तित्वको कायम रखा, जब तक कि चिङगिस खान्ने उसे १३ वी सदीके आरम्भमें बड़ी क्रूरताके साथ नष्ट नहीं कर दिया। ९९६ ई० के थोड़े ही बाद हियाने खान्-चान्को खतम कर ले लिया।

१००१ ई० में उइगुर खाकानकी भेंट चीन आयी। उसके दूतने कहा था—हमारा राज्य ह्वाङ-होके पश्चिममें सुइ-सांङ (इस्सिकुल से पूरबके हिमपर्वत) तक अवस्थित है—अर्थात् पश्चिममें सुङ्-सानमें पूरबमें ह्वाङ-हो तक उस वक्त उइगुर शासन करते थे, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि इस विशाल प्रदेशमें सैकड़ों छोटी-छोटी अधीन रियासतें नहीं थीं। शायद यह कगान बोगरा खान हारून रहा हो। उइगुरों, करलुकों और कराखानियोंका संबंध ऐसा था, जिसके कारण कोई भी अपनेको उइगुर या गूज कह सकता था। बोगरा खानकी राजधानी बलाशागुन (सूज़िया) थी। वह काशगरसे चीनके सीमान्त तक शासन करता था। १००४में भी चीन में भेंट पहुंची थी। १००७ में भेंट लेकर जो दूत-मंडल गया था, उसके साथ एक बौद्ध भिक्षु भी था, जो चीन राजधानीमें सम्राट्की दीर्घायु-प्रार्थनाके लिये एक बौद्ध मंदिर बनाना चाहता था। लेकिन आरम्भिक सुङ सम्राट् बौद्ध धर्मको प्रोत्साहन नहीं देना चाहते थे, इसलिये स्वीकृति नहीं मिली। इस समय सुङ-वंशके उत्तरमें मंगोलिया, मंचूरिया और उत्तर-पूर्वी चीन लिये हुए खित्तनोंका शक्तिशाली साम्राज्य कायम था। इसी वंशके कारण चीनका दूसरा नाम खिताई पड़ा। खित्तनके लेखानुसार १००१ ई० में एक भारतीय भिक्षु फाङ-साङ (संस्कृत-भिक्षु)—जो एक प्रसिद्ध वैद्य भी था—को उइगुरोंने खित्तन दरबारमें भेजा था। १००८ ई० में फिर भेंट आई और १०११ ई० की भेंट भेजते हुए उइगुरोंने शानसी प्रदेशके आधुनिक ऊ-चाउ-फू (नगर) में एक बौद्ध मंदिर बनानेकी प्रार्थना की थी। इससे पता लगता है कि ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें पूर्वी मध्य-एसियामें बौद्धधर्म प्रभाव रखता था। १०१८ और १०२१ में भी उइगुर चीन दरबारमें भेंट भेजते रहते थे। संभवतः ग्यारहवीं सदीमें भी वह घुमन्तू जीवन बिताते थे। बारहवीं सदीमें वह स्थायी निवासी बनकर रहने लगे और शानसी प्रदेश तथा आसपासमें व्यापार करनेके लिये अपना वणिक्-मंडल भेजते थे। उन्हें तंगूतों (अमदुओं) के राज्यमें गुजरना पड़ता था। खित्तन सम्राट् कंचाऊ, शाचाऊ, हाचाऊ और असाला (अरसलन) के निवासी उइगुरोंको अपनी प्रजा कहते थे।

स्रोत-ग्रन्थ :

१. ओचेर्क इस्तोरिइ तुर्कमेन्स्कवो नरोद (व० व० बरतोल्द, १९२४)

२. ऋत्कि० सोओब् श्चेनिये

३. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्‌या (व०व० बरतोल्द, बेर्नी १८६८)

4. A thousand years of Tatars (E. H. Parker, Shanghai 1895)

5. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)

6. Tibetan Documents concerning Chinese Turkistan,. (F. W. Thomes. J R A S 1934)

7. History of Bokhara (A. Vambery)

अध्याय २

करलुक (७३६-६४० ई०)

१ करलुक (करलोग) जाति

करलुकका अर्थ है हिम-पुरुष[1] या हिमालका राजा। यह भी आगूजोंके पांच तुर्कोंमेंसे एक तथा उइगुरोंकी तीसरी शाखा थे,जो अल्ताई और त्यान्शान्के हिम-पर्वतोंमें रहनेके कारण इस नामसे मशहूर हुये। इनकी राजधानी अल्मालिक थी। ७६६ ई० में करलुकोंने सुयाबको अपने हाथमें कर लिया। करलुकों और उनकी ज्येष्ठ शाखा उइगुरोंमें संघर्ष चलता रहता था,यह हम बतला चुके हैं। पश्चिमी तुर्क साम्राज्यके पतनके बाद तुर्कवंश छिन्न-भिन्न हो गया। इसी वक्त तुर्कोंके अलग अलग कबीलोंने अलग-अलग नाम स्वीकार किये, जिन्हें ही मंगोल्यानके शिलालेख में नौ आगूज़ कहा गया है। चीनके अभिलेखोंमें पश्चिमी तुर्कोंकी दस शाखायें बतलायी गई हैं। शातो वह तुर्क थे,जो पथरीली भूमिमें रहते थे। एक शाखाने पूर्वी-तुर्किस्तानमें स्थान ग्रहण किया था, इनको चीनियोंने तुर्क या दूसरे नामसे याद किया है, और इन्हींको अरब-इतिहासकार नाकुज-आगूज कहते हैं। इनकी एक शाखाने दक्षिण में अपना राज्य स्थापित किया,जिसका केन्द्र निम्न-सिर-दरिया तक था। आज भी किरगिज़ोंमें याफेतके पुत्र त्युर्ककी पौराणिक कथा मशहूर है, जो इस्सिकुलके किनारे रहता था। सप्तनदमें त्युर्गिश शाखाके दो वंश तख्ती और आज़ी रहते थे।

८ वीं सदीके उत्तरार्धमें सप्तनदमें करलुकोंकी प्रधानता थी, जो कि अल्ताई की हिम-पर्वतमालासे यहां आये थे। ७६६ ई० में इन्होंने सुयाबको लेकर वहां अपनी एक राजधानी बनाई। करलुकोंने अपने राजाकी उपाधि जबगू स्वीकार की थी, जो ही ओर्खोनके अभिलेखका यवगू है।

जिस वक्त तुर्क साम्राज्यका पतन हुआ, उस समय पूर्वमें चीनी और पश्चिम-दक्षिणमें अरब उसके ऊपर नजर गड़ाये हुए थे, किन्तु तुर्कोंका साम्राज्य इन दोनोंके हाथमें न जाकर तुर्क जातिके ही हाथमें रहा। इनके पूर्वी भागपर उइगुरोंका अधिकार हुआ जिनके बारेमें हम अभी कह आये हैं,और पश्चिमी भाग करलुकोंके हाथ में चला गया। चीन और अरबके बीच तुर्कोंकी भूमिके लिये तलस नदीके तटपर जुलाई ७५१ ई० में भारी लड़ाई हुई। अरब सेनापति जियाद सालेह-पुत्रने तराज तक धावा मारा, जो कि अतलस (तलस)नदीके बायें तटपर था। चीनी सेनापति

---

[1] A thousand years of Tatar (Parker)

हाउ-स्यान्-चीने तलस पर्वतपर अपनी छावनी डाली थी——आजकल तलस नदीके पुराने नगरोंके ध्वंस किरगिजिस्तान गणराज्यमें पाये जाते हैं। चीनियोंकी हार हुई, जिसके कारण जहां चीनका उभय मध्य-एसिया पर अधिकार न हो पाया, वहां अरबोंकी शक्ति भी इतनी क्षीण हो गई,कि वह तलससे आगे नहीं बढ़ सके। दोनोंके झगड़ेमें करलुक अपना राज्य स्थापित करनेमें सफल हुए। हां, इतना जरूर हुआ कि अरबोंने फरगाना-उपत्यकासे करलुकोंको भगा दिया। सोग्दियोंका व्यापारिक प्रभाव तब भी अक्षुण्ण रहा। उन्होंने पहिले से ही चीनके पश्चिमी सीमान्त से सारे रेशमपथपर अपना अधिकार जमा रखा था। जगह जगह उनके अपने उपनिवेश थे। तुर्क, उइगुर या करलुक लोग अरबोंकी तरह धर्मान्धताके शिकार नहीं थे, इसलिये उनके यहां सोग्दी लोग, जर्थुस्ती, मानी या दूसरे धर्मको स्वतंत्रतापूर्वक मान सकते थे। मुसलमान प्रचारक भी वहां पहुंचते थे। दसवीं शताब्दीके एक फारसी भूगोलज्ञ के कथनानुसार कास्तिक जोत से उत्तरमें अवस्थित बेकलिग (बेकलीलिग) सोग्दियोंका एक अच्छा नगर था, जिसे सोग्दी भाषामें सेमिकना कहते थे।[1]

करलुक जबगुओंके नाम अधिकतर मालूम नही है। चीनके साथ इनका कोई संबंध नहीं था। अरबोंमें प्रतिद्वंद्विता जरूर थी, किन्तु वह स्थानीय शासक को ही करलुकोंका राजा मान लेते थे।

२. धर्म

करलुक भूमिमें करलुक तुर्कोंके अतिरिक्त सोग्दी भी रहते थे। वूसुन और शकोंके अवशेष सोग्दियोंको अपना नजदीकी समझकर उन्हींमें मिल गये और अब सभी सोग्दी नामसे प्रसिद्ध थे। सोग्दियोंके अतिरिक्त घुमन्तू करलुक और दूसरे तुर्क भी उनके राज्यमें रहते थे। तुर्कोंमें बौद्ध अधिक थे, पर नेस्तोरियों और मानी धर्मानुयायियोंकी भी कमी नही थी। उनके बहुतसे नगरोंमें ईसाइयों (नेस्तोरियों) का होना मुसलिम लेखकोंके ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। इस्सिकुलके पास जिकिलया घुमन्तू रहते थे, जिनमें ईसाई धर्मके अनुयायी काफी थे। वस्तुतः इस्लामके पहुंचनेसे पहिले इन जातियोंमें अपनी जातीयता और धर्मको एक नहीं किया गया था। मुसलमान लेखकोंके कहनेसे पता लगता है, कि तत्कालीन करलुक जबगूने खलीफा मेहदी (७७५-८५ ई०) के पास पहिले-पहल इस्लाम स्वीकार किया, लेकिन यह संदिग्ध है। तो भी दसवीं सदीमें तलस नदीसे पूर्व अर्थात् करलुकोंकी भूमिमें जामामस्जिदें मौजूद थीं। करलुक पहिले पशुपाल, शिकारी घुमन्तू थे, अब कुछ खेती-किसानी भी करने लगे थे। दसवीं सदीमें नाकुज-आगुजोंकी शाखाओंमें करलुक बड़े शक्तिशाली थे। उस समय उनके कगान (यबगू) सरदार तथा लोग अधिकतर मानीका धर्म मानते थे, किन्तु उनके भीतर नेस्तोरी, बौद्ध और मुसलमान भी थे। करलुकोंका नगर वर्सखान पीछे दसवीं सदीसे [illegible] (कराखानियों) के हाथमें चला गया। उनके अतिरिक्त पेन्चुल (आधुनिक आकसू) भी करलुकोंके हाथमें, पीछे कमजोर होनेपर कराखानियोंके अधीन, पीछे इसे किरगिजोंने ले लिया। यह याद रखना

---

[1] ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्ये (व० बरतोल्द)

हाउ-स्यान्-चीने तलस पर्वतपर अपनी छावनी डाली थी—आजकल तलस नदीके पुराने नगरोंके ध्वंस किरगिजिस्तान गणराज्यमें पाये जाते हैं। चीनियोंकी हार हुई, जिसके कारण जहां चीनका उभय मध्य-एसिया पर अधिकार न हो पाया, वहां अरबोंकी शक्ति भी इतनी क्षीण हो गई,कि वह तलससे आगे नहीं बढ़ सके। दोनोंके झगड़ेमें करलुक अपना राज्य स्थापित करनेमें सफल हुए। हां, इतना जरूर हुआ कि अरबोंने फरगाना-उपत्यकासे करलुकोंको भगा दिया। सोग्दियोंका व्यापारिक प्रभाव तब भी अक्षुण्ण रहा। उन्होंने पहिले से ही चीनके पश्चिमी सीमान्त से सारे रेशमपथपर अपना अधिकार जमा रखा था। जगह जगह उनके अपने उपनिवेश थे। तुर्क, उइगुर या करलुक लोग अरबोंकी तरह धर्मान्धताके शिकार नहीं थे, इसलिये उनके यहां सोग्दी लोग, जर्थुस्ती, मानी या दूसरे धर्मको स्वतंत्रतापूर्वक मान सकते थे। मुसलमान प्रचारक भी वहां पहुंचते थे। दसवीं शताब्दीके एक फारसी भूगोलज्ञ के कथनानुसार कास्तिक जोत से उत्तरमे अवस्थित बेकलिग (बेकलीलिग) सोग्दियोंका एक अच्छा नगर था, जिसे सोग्दी भाषामें सेमिकना कहते थे।[1]

करलुक जबगुओंके नाम अधिकतर मालूम नही है। चीनके साथ इनका कोई संबंध नहीं था। अरबोंमे प्रतिद्वंद्विता जरूर थी, किन्तु वह स्थानीय शासक को ही करलुकोंका राजा मान लेते थे।

२. धर्म

करलुक भूमिमे करलुक तुर्कोंके अतिरिक्त सोग्दी भी रहते थे। वूसुन और शकोंके अवशेष सोग्दियोंको अपना नजदीकी समझकर उन्हींमें मिल गये और अब सभी सोग्दी नामसे प्रसिद्ध थे। सोग्दियोंके अतिरिक्त घुमन्तू करलुक और दूसरे तुर्क भी उनके राज्यमें रहते थे। तुर्कोंमें बौद्ध अधिक थे, पर नेस्तोरियों और मानी धर्मानुयायियोंकी भी कमी नहीं थी। उनके बहुतसे नगरोंमें ईसाइयों (नेस्तोरियों) का होना मुसलिम लेखकोंके ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। इस्सिकुलके पास जिकिलया घुमन्तू रहते थे, जिनमें ईसाई धर्मके अनुयायी काफी थे। वस्तुतः इस्लामके पहुंचनेसे पहिले इन जातियोंमें अपनी जातीयता और धर्मको एक नहीं किया गया था। मुसलमान लेखकोंके कहनेसे पता लगता है, कि तत्कालीन करलुक जबगूने खलीफा मेहदी (७७५-८५ ई०) के पास पहिले-पहल इस्लाम स्वीकार किया, लेकिन यह संदिग्ध है। तो भी दसवीं सदीमें तलस नदीसे पूर्व अर्थात् करलुकोंकी भूमिमें जामामस्जिदें मौजूद थीं। करलुक पहिले पशुपाल, शिकारी घुमन्तू थे, अब कुछ खेती-किसानी भी करने लगे थे। दसवीं सदीमें ताकुज-आगुजोंकी शाखाओंमें करलुक बड़े शक्तिशाली थे। उस समय उनके कगान (यबगू) सरदार तथा लोग अधिकतर मानीका धर्म मानते थे, किन्तु उनके भीतर नेस्तोरी, बौद्ध और मुसलमान भी थे। करलुकोंका नगर वर्सखान पीछे दसवीं सदीमें ताकुज-आगुजों (कराखानियों) के हाथमें चला गया। उनके अतिरिक्त पेन्चुल (आधुनिक आकसू) भी करलुकोंके हाथमें, पीछे कमजोर होनेपर कराखानियोंके अधीन, पीछे इसे किरगिजोंने ले लिया। यह याद रखना

---

[1]ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्ये (व० बरतोल्द)

चाहिये कि इससे पहिले किरगिज़ ऊपरी एनेसेइ उपत्यकामें रहते थे, जहां आठवी सदीमें भी उनके पूर्वज घुमन्तुओंका निवास था। दसवीं सदीमें हर तीसरे साल इनका कारवां रेशमके व्यापारके लिये कूचासे होकर गुजरता था। यहीं किरगिज़, अरब, करलुक और तिब्बती व्यापारी इकट्ठा होते थे। आखिरमें किरगिज़ ताकुज़-आगुजोंके विरोधी बन करलुकोंके साथ हो गये, जिसके फलस्वरूप सप्तनदका एक भाग किरगिज़ोंको मिल गया। यदि कराखानियोंके समय किरगिज सप्तनदमें आये, तो दसवीं या ग्यारहवीं सदीमें उन्होंने इस्लाम धर्मको स्वीकार कर लिया था, जिसके अनुयायी आज भी उनके वंशज कज़ाक़ और किरगिज़ हैं। लेकिन सोलहवीं सदीमें भी उनके भीतर काफिरोंका होना मुस्लिम लेखक बतलाते हैं।

अन्तिम समयमें करलुकोंका केन्द्र चू-उपत्यका ९४० ईसवी के आस-पास उनके दुश्मन "काफिर तुर्को" (कराखानियों) के हाथमें चला गया, जिनका ग्यारहवीं और बारहवीं सदीमें बड़ा प्रभाव था। चू-उपत्यकामें बलाशागून (सूजिया) इनकी राजधानी रही।

३. करलुकोंके नगर

करलुक शासक यद्यपि अधिकतर घुमन्तू [illegible] थे, किन्तु उनके लिये आमदनीके और भी रास्ते खुले हुए थे, विशेषकर वणिक्-पथपर बसे उनके नगर बड़े ही महत्वके थे। चीनसे पश्चिमी एसिया और यूरोपकी ओर जानेवाला एक वणिक्-पथ सप्तनद होकर जाता था, जिसके ऊपर निम्न नगर करलुकोंके अधीन थे।

जुल्—यह आधुनिक पिसपकके आस-पास था। रेशम-पथ यहां तराज़ (तलश, जिला औलियाअता) और आसीकित (नमंगान ज़िला) होते कराकुल डांडेसे आता था। चुल या जूल तुर्की भाषामें मरुभूमि को कहते हैं।

नेवाकित्—यह चू-उपत्यकाका सबसे बड़ा व्यापारिक नगर था। यहांसे एक रास्ता जिल-अरिक होता इस्सिकुलके तटपर पहुंचता था, और दूसरा उत्तर की ओर स्याव जाता था। जुलसे नेवाकित पन्द्रह फरसख[१] था। नेवाकित् वहां था, जहांसे रास्ता चू-नदीके बायें किनारे हो करावुलककी जाता था। इस्सिकुल सरोवरके किनारे करलुक लोगोंके निवास और गोचर-भूमियां थीं।

किरमिनकित् (कुंवैरकित्)—नेवाकित् और दर्रेके बीच यह बड़ा व्यापारिक नगर था। यहां करलुकोंका लवान कबीला रहता था, जिसके शासककी उपाधि कु-तेगिन-लवान और दर्रेका नाम जुल (संकीर्ण दर्रा) था।

यार—जुलसे बारह फर्सख (प्रायः सत्तर मील) दक्षिणमें यह नगर था, जहां पर तीन हजार क़रलुक सैनिक रहते थे। यहीं शायद इस्सिकुलके दक्षिण तट पर जिकिल के शासक तैवसनकी राजधानी अवस्थित थी।

तोन्—यारसे पांच फर्सख (प्रायः तीस मील) इसी नामकी नदीपर यह नगर अवस्थित था।

बरसखान—तोन्से तीन दिनके रास्तेपर यह बड़ा नगर था। इन दोनों नगरोंके बीचमें जिकिल

---

[१] फर्सख = ६ वर्स्त = ६ मील = १६०० हाथ (?)

कबीलेके लोगोंके तंबू होते थे। इस नगरका नाम आज भी बरसकोन नदीके नाममें सुरक्षित है। इस नगर के आस-पास चार बड़े और पांच छोटे गांव थे। नगरमें ६ हजार सैनिक रहा करते थे। यहांके शासककी उपाधि मनक (तेविन) बरसखान थी। दसवीं शताब्दीके अरब भूगोलज्ञोंके अनुसार बरसखानका मनक करलुक-वंशी था, किन्तु पीछे यह ताकुज़-आगुज़ोंके पक्षमे हो गया। पूर्वी और पश्चिमी तुर्किस्तानके वाणिज्यके लिये इस नगरका बड़ा महत्व था। इस खानके पुत्रका नाम भी बरसखान था। उजगेंद (फरगाना) से वणिक्-पथ यासी (जासी) जोत पार हो अरपा और करा-कोइन, अतवास तथा नरिनकी उपत्यकाओंमें होते यहां आता था। नेवाकत्से सुयाब होते हुए भी एक रास्ता यहां पहुंचता था।

अतवास—कराकोइन और अतवास नदियोंके संगमके पास पहाड़में यह नगर अवस्थित था। आजकल इसे कोशोइ-कुरगान कहते हैं। यह फरगाना, बरसखान और पूर्वी तुर्किस्तानकी सीमासे छ दिनके रास्तेपर था। तिब्बती शासित इलाकेका रास्ता तुरुगर्त जोत पार होकर जाता था। [illegible] नहीं थी। सप्तनदका दक्षिणी भाग ताकुज-आगुजोंकी लड़ाईमे यागमा लोगोंके हाथोंमें चला गया, जिनके ही हाथमें काशगर भी था। करलुक और यागमा लोगोंकी सीमा नरिन नदी थी।

सुयाब—यह करलुक-भूमिका बड़ा ही महत्वपूर्ण नगर चू-नदीसे उत्तर नेवाकत्से तीन फरसख (१८ मील) पर अवस्थित, आजकलका करावुलक है। यहांका शासक करलुक कगानका भाई होता था, जिसकी पदवी यानाल्शा थी। उसके पास बीस हजार सैनिक थे।

पंजीकत्—सुयावके रास्तेपर नेवाकत्से एक फरसख (६ मील) पर यह नगर अवस्थित था। यहां आठ हजार करलुक सैनिक रहते थे।

बैकलिग—इसे बैकलीलिग भी कहते हैं। कस्तिक जोतसे उतरकर यहां पहुंचते थे। यहांके शासक की उपाधि वदान-शंगु, दूसरी उपाधि यनल-तैमिना भी थी। इसके पास तीन हजार सैनिक और नगरके भी सात हजार सैनिक रहते थे। बणिक्-सार्थ (कारवां) सुयावसे बरसखान पन्द्रह और डाक तीन दिनमें पहुंचती थी। कस्तिक द्वारा जानेवाला रास्ता इली पार होते अलाताउ और किजिलकिया जोत से कराकोल, जहांसे इस्सिकुलके उत्तरी तटसे होकर जिकलोंकी भूमिमें पहुंचता था।

सिकुल—करलुकोंकी भूमिके सीमान्तपर यह बड़ा व्यापारिक नगर था। शायद यह तैमूरके समयका इस्सिकुल नगर हो।

स्रोत-ग्रन्थ :

१. ओचेर्क इस्तोरिइ सेमिरेच्या (व० बरतोल्द, वेर्नी १८१९)
2. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Barthold' 1928)
3. A thousand years of Tatars (Parker)
४. आर्खेआलोगिचेस्किइ ओचेर्क सेवेर्नोइ किर्गिज़िइ (अ० न० बेर्नश्ताम, फ्रुन्ज़े १९४१)

भाग ६

दक्षिणापथ (६७३–९०० ई०)

(आरम्भिक इस्लाम)

अध्याय १

अरब (६७३-८१८ ई०)

§१. पैगम्बर मुहम्मद

छठी सदी के अंत में अरब के लोग बिल्कुल संस्कृति-शून्य नहीं थे। मक्का (बक्का) और मदीना के नगर व्यापारियों और सामन्त-पुजारियों के निवासथे। मक्का में एक पुराना मंदिर था, जिसे काबा कहते थे। मंदिर की प्रधान पूजा-मूर्ति मूर्ति नहीं, बल्कि किसी समय आकाश से गिरे उल्का-पाषाण का टुकड़ा था, जिसे हज्र-अस्वद (कृष्ण-पाषाण) कहा जाता है। इसकी उस समय बड़ी पूजा होती थी। जान पड़ता है, इसकी कीर्ति भारत तक पहुंच चुकी थी, जहां के हिंदू इसे शिव का एक प्रसिद्ध लिंग मानते थे। इसके अतिरिक्त काबा के मंदिर मे लात, मनात, सूर्य (शम्श) आदि बहुत सी मूर्त्तियां थीं। हर साल एक बहुत बड़ी यात्रा भरती थी, जिसमें अरब के कोने-कोने के लोग दर्शन-पूजा के लिये आते थे, और इसी समय एक बड़ा व्यापारिक मेला लग जाता था। मुहम्मद जिस कुलमें पैदा हुये, उसे हाशिमी खान्दान कहा जाता था, क्योंकि मुहम्मद के पिता अब्दुला के पिता और दादा अबुल मोतल्लब और परदादा हाशिम थे। हाशिम के पिता का नाम अब्दुल-मनात (मनातदास) था, जिससे स्पष्ट है, कि पांच ही पीढी पहले मुहम्मद के पूर्वज एक काफिर देवता को परमपूज्य मानते थे। हाशिम के भाई का नाम अब्दुल शम्श (सूर्यदास) था।

कुरेश वंश काबा के पंडों मे बहुत ऊंचा स्थान रखता था। इसी वंश में ५७० ई० में मुहम्मद का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम अब्दुल्ला और मां का नाम आमना था। अभी मुहम्मद गर्भ ही में थे, कि उनके पिता मर गये। उनकी पर्वरिश का भार दादा अब्दुलमतल्लब के ऊपर पड़ा। मक्का के खानदानी परिवारों की रीति के अनुसार शिशु मुहम्मद को भी पालने के लिये एक बद्दू स्त्री हलीमा को दे दिया गया। मक्का मदीना जैसे शहरों के लोग नागरिक हो गये थे, पर आज की तरह उस समय भी बहुत से अरब कबीले घुमन्तू थे, जिन्हें बद्दू कहा जाता था। घुमन्तूओं के तम्बुओं में पलना शायद पौरुष और हिम्मत बढ़ाने वाली शिक्षा का अंग समझा जाता था। कहा जाता है, मुहम्मद आजन्म अनपढ़ (उम्मी) रहे। यद्यपि इसपर विश्वास कम होता है, क्योंकि वह कितने ही वर्षों तक अपनी भावी पत्नी तथा मक्का की एक बहुत धनी स्त्री खदीजा के कारवां के सरदार होकर दूसरे देशों में व्यापार करने जाते थे। उस समय यद्यपि अरब लोगों का धर्म मूर्तिपूजा था, किन्तु मक्का जैसे शहरों में मूर्तिविरोधी यहूदी और ईसाई भी रहा करते थे, और जिन देशों में व्यापार करने के लिये मुहम्मद को जाना पड़ा, वहा तो इन धर्मों

की प्रधानता थी। मुहम्मद को यहूदी और ईसाई धर्म के विद्वानों के सम्पर्क में आने का मौका मिला और मूर्तिपूजा पर उनकी श्रद्धा नहीं रह गई।

वह खदीजा के पति होकर अब मक्का के एक धनी व्यक्ति हो चुके थे, जब कि ४० वर्ष के हो जाने पर उन्होंने पैगंबर होने का दावा किया। उन संप्रदायों में दीक्षित न होकर भी वह यहूदियों और ईसाइयों के धर्म में श्रद्धा रखते थे। मुहम्मद का उद्देश्य केवल धार्मिक नहीं था। यहूदी पैगंबरों के बारे में भी वह जानते थे, कि धर्म और शासन दोनों को वह अपने हाथ में रखते थे। इसके अतिरिक्त वह अपनी अरब जाति की दुर्दशा से भी खिन्न थे। अरब वीर और परिश्रमी होते हुये भी आपस में खूनी लड़ाइयां लड़ते अपने को तबाह करते रहते थे। अरब के रेगिस्तान में बिखरी हुई शक्ति के महत्व को उन्होंने जल्दी समझ लिया, और यह भी देख लिया कि यहूदी पैगंबरों की तरह ही एक धार्मिक-राजनीतिक व्यवस्था के आधीन एक उन्हें एकत्रित किया जा सकता है। ४० साल की उम्र तक पहुंचते उन्हें मालूम हो गया था, कि यहूदी या ईसाई जैसे पराये धर्म की सहायता से अरबों को एकता के सूत्र में नहीं बांधा जा सकता, न अरबो की राजनीतिक और सामाजिक निर्बलताओं को दूर किया जा सकता। यह प्रधान कारण था, जो कि यहूदी और ईसाई धर्म को प्रमाण मानते हुये भी मुहम्मद ने एक नये धर्म (इस्लाम) का प्रचार किया।

उसकी मुख्य शिक्षा थी मूर्ति-पूजा के खिलाफ जहाद। मक्का के पंडे भला इसे कैसे सहन करते? काबा का मंदिर उनके लिये जीविका का साधन था। उनके देवताओं को बुरा-भला कहकर मुहम्मद उनकी श्रद्धा को ठेस लगा रहे थे। विरोध होने पर भी उन्हें सफलता मिलने लगी। उनके अपने हाशिम वंश के नौजवान उनके साथ चलने के लिये तैयार हुये। मुहम्मद के चचेरे भाई तथा आबूतालिब के पुत्र अली विशेष तौर से उनके अनुरक्त थे। हाशिम के भाई अब्दुश् शम्श के पुत्र उमैया की संतानें भी मुहम्मद का साथ देने के लिये तैयार हुई। उनके खास चचा अब्बास के तीनों पुत्रों ने भी जल्दी ही इस्लाम को मान लिया। हाशिम वंश के अनुकूल होने पर भी मक्का में विरोध इतना बढ़ा, कि मुहम्मद और उनके मुट्ठीभर अनुयायियों को मृत्यु का डर लगने लगा और ६२२ ई० में ५२ वर्ष की उमर में उन्हें चुपके से हिजरत (प्रवास) करके मदीना में शरण लेनी पड़ी। इसके बादका जीवन उनका मदीने से संबंध रखता है।

मदीना का पुराना नाम यस्रिब था, किंतु नबी (पैगंबर) के बस जाने के कारण उसका नाम मदीनतुन्नबी (पैगंबर का नगर) पड़ा, जिसका ही संक्षेप मदीना है। पेगंबर मुहम्मद की कबर मदीना में है। मक्का के काबा मंदिर की मूर्त्तियों को यद्यपि तोड़-फोड़कर फेंक दिया गया, किंतु वहां के कृष्णपाषाण के साथ अरब लोगों का इतना अधिक पूज्य भाव था, कि उसे तोड़ने या फेंकने की हिम्मत नहीं पड़ी और आज भी मुहम्मद का अनुकरण करते हुये हर एक हाजी मुसलमान उस काले पत्थर को चुम्बन देकर सम्मान प्रकट करता है। मदीना में रहने के अंतिम दस वर्ष धर्म-प्रचार के लिये ही महत्व नहीं रखते, बल्कि इसी समय मुहम्मदने उस राजनीतिक और सामरिक शक्ति का विकास किया, जिसने पौन शताब्दी के भीतर ही सिंधु तट से स्पेन तक, सिर दरिया से नील नदी तक फैले एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर दी। अपने जीवन में ही मुहम्मद अरब के भिन्न-भिन्न कबीलों को इस्लाम के झण्डे के नीचे लाने में सफल हुये थे।[१]

---

[१] दर्शन-दिग्दर्शन पृ० ४७-५४

(नई आर्थिक व्याख्या)[1]

चाहे तिब्बत हो या अरब, प्रायः सभी कबीला-प्रथा रखनेवाली जातियों में पशुपालन, कृषि या वाणिज्य के अतिरिक्त लूट की आमदनी (माले-गनीमत) भी वैध जीविका मानी जाती है। माले-गनीमत को बिल्कुल हराम कर देने का मतलब था, अरबों के पुराने भावपर ही नहीं, उनके आर्थिक आय के साधन पर भी हमला करना। चाहे इस तरह की आय से सभी परिवारोंको सदा फायदा न पहुंचे, किंतु जूये के दाने की भांति कभी अपनी किस्मत के पलटा खाने की आशा को तो वह छोड़ नहीं सकते थे। हजरत मुहम्मदने 'माले-गनीमत' नाम रखते हुये भी उसे छोटी-मोटी लूट से ईरान और रोम के देश-विजय की 'भेंटों' जैसे विस्तृत अर्थ मे बदलना चाहा, तो भी मालूम होता है, अरब प्रायद्वीप मे यह प्रयत्न कभी सफल नहीं हुआ। वहां के लोगों ने माले-गनीमत का वही पुराना अर्थ माना, इसका ही परिणाम यह था, कि अरब से बाहर अन्-अरबी लोग जहां लूट और छापा मारी के धर्म को हटाकर शांति (इस्लाम) स्थापित करने में बहुत हद तक सफल हुये, वहां अरबी कबीले तेरह सौ वर्ष पहिले के पुराने दस्तूर पर हाल तक कायम रहे। जो भी हो, माले-गनीमत की नई व्याख्या थी—विजय से प्राप्त होनेवाली आमदनी में से ⅕ सरकारी खजाने (बैतुल-माल) को मिलना चाहिये, और बाकी योद्धाओं में बराबर बांट देना चाहिये। विस्तृत राज्य स्थापन करने की इच्छावाले एक व्यवहार-कुशल दूरदर्शी शासक की यह सूझ थी, जिसने आर्थिक लाभ की इच्छा को जागृत रखकर, पहिले अरबी रेगिस्तान के कठोर जीवन वाले बद्दू तरुणों और पीछे हर मुल्क के इस्लाम लानेवाले समाज में प्रताडित तथा कठोर जीवी लोगों को इस्लामी सेना में भर्ती होने का भारी आकर्षण पैदा किया, और साथ ही बढ़ते हुये बैतुल्-मालने एक बलशाली संगठित सैनिक-नागरिक शासन की बुनियाद रक्खी। माले- गनीमत के बांटने में समानता तथा खुद अरबी कबीले के व्यक्तियों के भीतर भाई-चारे और बराबरी के ख्याल ने इस्लामी "समानता" का नमूना लोगों के सामने रखा।

माले-गनीमत की इस व्याख्याने आर्थिक वितरण के एक नये रूप को पेश किया, जिसने कि अल्लाह के स्वर्गीय इनाम तथा अनन्त जीवन के ख्याल से उत्पन्न होने वाली निर्भीकता से मिलकर दुनिया में वह उथल-पुथल पैदा की, जिसे कि हम इस्लाम का सजीव इतिहास कहते हैं। यह सच है, कि माले-गनीमत की यह व्याख्या कितने ही अंशों में दारयवहु, सिकन्दर, चन्द्रगुप्त मौर्य ही नही दूसरे साधारण राजाओं के विजयों में भी मानी जाती थी; किंतु वह उतनी दूर तक न जाती थी। वहां साधारण योद्धाओं मे वितरण करते वक्त उतनी समानता का ख्याल नहीं रखा जाता था; और सबसे बढ़कर कमी यह थी, कि विजित जाति के साधारण निःस्व लोगों को उसमें भागीदार बनने का कोई मौका न था। अरबों ने विजित जाति के अधिकांश धनी और प्रभु-वर्ग को जहां पामाल किया, वहां अपनी शरण मे आनेवालों—खासकर पीड़ित वर्ग—को विजय-लाभ में साझीदार बनाने का रास्ता बिल्कुल खुला रक्खा। स्मरण रखना चाहिये, इस्लाम का जिससे मुकाबिला था, वह सामन्तों-पुरोहितों का शासन था, जो सामन्तशाही शोषण और दासता के आर्थिक ढांचे पर आश्रित था। यह सही है, कि इस्लाम ने इस मौलिक आर्थिक ढांचे को बदलना

---

[1] वही पृ० ५१

अपना उद्देश्य कभी नहीं माना, तो भी उसके मुकाबिले में अरब में अभ्यस्त कबीलाशाही भ्रातृत्व और समानता को अन्-अरबों के साथ भी जरूर इस्तेमाल किया, इसीसे उसने अल्पसंख्यक शासक वर्ग के नीचे की साधारण जनता के कितने ही भाग को आकृष्ट और मुक्त करने में सफलता पाई। यद्यपि इस्लाम ने कबीले के पिछड़े हुये सामाजिक ढांचे से यह बात ली थी, किंतु परिणामतः उसने एक प्रगतिशील शक्ति का काम किया; और सडांद फैलाने वाले बहुत से सामन्त परिवारों और उनके स्वार्थों को नष्टकर, हर जगह नई शक्तियों को सतह पर आने का मौका दिया। यह ठीक है कि यह शक्तियां भी आगे उसी "रफ्तार-बेढंगी" को अख्तियार करनेवाली थी। पर दासों-दासियों को मालिक की सम्पत्ति तथा युद्ध की लूट को उचित माल बताने के लिये अकेले इस्लाम को दोष नहीं दिया जा सकता, उस वक्त का सारा सभ्य संसार—चीन, भारत, ईरान, रोम—इसे अनुचित नहीं समझता था।

§२. आरंभिक खलीफा

मक्का के निवास तक मुहम्मद एक धार्मिक प्रचारक या सुधारक मात्र थे, किंतु मदीना जाने पर उनको अपने अनुयायियों के लिये आर्थिक, सामाजिक व्यवस्थापक एवं सैनिक नेता भी बनना पड़ा, इसका ही यह परिणाम हुआ, कि उनकी मृत्यु के समय (६३२ ई०) पश्चिमी अरब के कितने ही प्रमुख कबीलों ने इस्लाम को स्वीकार किया, तथा अपनी निरंकुशता को कम करके एक संगठन में बंधना चाहा। उस समय तक सारे अरबी-भाषी लोगों में इस्लाम घर कर चुका था।

हजरत मुहम्मद स्वयं राजतंत्र के विरुद्ध न थे। ईरान और रोम के शाहंशाहों की प्रसिद्धि उनके कानों तक ही नहीं पहुंची थी, बल्कि व्यापार के सिलसिले में उनके राज्यों में वह जा भी चुके थे। मुहम्मद ने जर्थुस्ती ईरानी शाह और ईसाई रोमन कैसर को इस्लाम लाने के लिये दावत दी, लेकिन वह अरब के रेगिस्तान के संदेश को अवहेलना छोड़ और दूसरी दृष्टि से देख ही कैसे सकते थे? अरब में उस समय [illegible] सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था चल रही थी, जिससे सादगी और जनतंत्रता अरबों के नस-नस में इतनी व्याप्ती थी, कि मुहम्मद भी उसके आकर्षण को मानने के लिये मजबूर थे। एक देश (पश्चिमी अरब, हेजाज) के शासक हो जाने के बाद भी मुहम्मद का जीवन बहुत ही सरल था। वस्तुतः मुहम्मद ने अरब के राजनीतिक विकास में यही काम किया, कि अरबीभाषी छोटे-छोटे कबीलों को विशृंखलित और संघर्षमय जीवन से उठाकर एक बड़े कबीले के रूप में परिणत कर दिया। लेकिन, यह संभव नहीं था, कि अरब से बाहर पैर रखने के बाद वहां की भिन्न-भिन्न भाषाओं और जातियों के लोगों को एक महान् कबीले के रूप में परिणत किया जाय, अथवा सामन्तशाही युग में बहुत आगे बढ गये लोगों को फिर से कबीलाशाही (जन-व्यवस्था) में लौटाया जाय। यह कैसे हो सकता था, कि सिंध से स्पेन तक फैले विशाल साम्राज्य पर उसके शासक बनी-उमैया कबीलाशाही शासन द्वारा राज्य करते?

पैगंबर के मरने के बाद ही झगड़ा शुरू हो गया। हाशिम खानदान के लोग पैगंबर के उत्तराधिकारी या खलीफा बनना अपना अधिकार समझते थे, लेकिन इस्लाम में तो केवल हाशिमी (अली आदि) लोग ही नही थे, इसलिये जिन चार खलीफों (पैगंबर के उत्तराधिकारियों) के

समय प्राचीन इस्लाम अपने कबीलाशाही जनतांत्रिक रूप को थोड़ा बहुत कायम रख सका, उनमें प्रथम अबूबकर अ-हाशिमी थे।

१. अबू-बकर (६३२-६४२ ई०)

मुहम्मद की कई बीवियों में से एक के यह बाप और अधिक वृद्ध भी थे। इन्हीं को मुसल्मानों के बहुमत ने खलीफा चुना। अबू-बकर दस साल तक शासन करते रहे। इन्हींके समय खालिद के नेतृत्व में अरब-सेना ने रोम को हराकर दमिश्क ले लिया और पहिली बार अरब के रेगिस्तानी लोगों को रोम जैसे समृद्ध और अत्यन्त संस्कृत राज्य के एक भाग पर शासन करने का मौका मिला। तभी से कबीलाशाही सादगी के स्थान पर विलासिता का आरंभ हुआ। अबू-बकर के जमाने में सिरिया (दमिश्क) ही नहीं, बल्कि फिलस्तीन भी अरबों के हाथ में आ गया। इसी काल (६३९ ई०) में ईरान के साथ नहावंद के युद्ध में मुठभेड़ हुई, जिसमें ईरान की जबर्दस्त हार हुई। यज्दगर्द iii सासानी वंश का अंतिम शाह उसी तरह अरबी सेना के सामने से भागता फिरा, जिस तरह हजार वर्ष पहले दारयवहु iii अलिकसुन्दर की सेना से भागता रहा। वह सीस्तान गया, वहां से खुरासान की ओर भागा, फिर मेर्व में शरण लेनी चाही। मेर्व तुर्कों का था। खाकान ने सुना कि सासानी शाह उसके राज्यकी ओर भाग आया है, तो वह स्वयं उसे पकड़ने या शरणमें लेनेके लिये आगे दौड़ा। शायद उसे भी अरबोंका भय होगया। यज्दगर्दने मेर्वके बाहर एक पन-चक्की घरमें छिपकर जान बचानी चाही, लेकिन चक्कीवालेने उसके पास धन-जेवर देखा, उसके मुंहमें पानी भर आया और उसने उसे मारकर पनचक्कीकी धारमें फेंक दिया। उस वक्त मेर्वके लोग आजकी तरह तुर्क नहीं, बल्कि धर्म और भाषा दोनोंसे ईरानी थे, जो तुर्कोंके राज्यमें रहते भी अपनेको सासानियोंका सगा मानते थे। जब उन्हें चक्कीवालेके इस विश्वासघातका पता लगा, तो वह बिगड़ उठे और उन्होंने उसकी बोटी-बोटी नोंच कर मार डाला। यज्दगर्दके शरीरकी मोमियाई बनाकर इस्तख्र भेजा, जहां जरथुस्ती प्रथाके मुताबिक उसे दफनाया गया। नहावंद और उसके बादकी दो एक झड़पोंसे ही ईरानकी कमर टूट गई। वस्तुतः ईरानका सामाजिक ढांचा इतना निर्बल और राजनीतिक ढांचा इतना नीच स्वार्थपूर्ण था, कि वह जीनेपर राज्य और मरनेपर बहिश्तपरपूर्ण विश्वास रखनेवाले अरब-योद्धाओंका मुकाबिला नहीं कर सकता था। भारतकी तरह वहांपर भी मुट्ठी भर पुरोहित और सामन्त सर्वेसर्वा थे, दूसरे लोग नीच समझे जाते थे और उन्हें दासता या अर्धदासताका जीवन बिताना पड़ता था। दासों और अर्धदासोंके लिये इस्लामकी सामाजिक समता बहुत ही आकर्षक थी। सामन्त इतने विलासी थे, कि उनमें योद्धाकी हिम्मत नहीं रह गई थी, अथवा आपसी फूटके मारे संगठित होकर अरबोंका मुकाबिला नहीं कर सकते थे। अन्तमें उन्हें अरबोंके सामने हार स्वीकार करनी पड़ी, जिन्हें ईरानके लोग मानते थे, कि सभ्यता और संस्कृतिमें हमारे सामने गिरगिटखोर अरब निरे जंगली हैं।

२. उमर[1] (६४२-६४४ ई०)

उमर इस्लामके दूसरे खलीफा थे। इनकी भी लड़की पैगंबरको ब्याही थी।

---

[1]Heart of Asia (E. D. Ross), दर्शनदिग्दर्शन पृ० ५४, ५५

पैगंबरके धर्म और शासनको आगे बढ़ानेमें इनका काफी हाथ था। इसीलिये पैगंबरकी अत्यन्त प्रिय पुत्री फातिमाके पति तथा चचेरे भाई अली को फिर वंचित कर उमरको खलीफा बनाया गया। अब इस्लामका शुद्ध धार्मिक रूप लुप्त हो चुका था, और वह विश्व-विजयिनी एक जबर्दस्त सैनिक संगठनका रूप ले चुका था। हरेक अरब को पहले भी लड़नेके लिये तैयार रहना पड़ता था। एक कबीलेके किसी आदमीके मारे जानेपर दोनों कबीलोंमें बदला
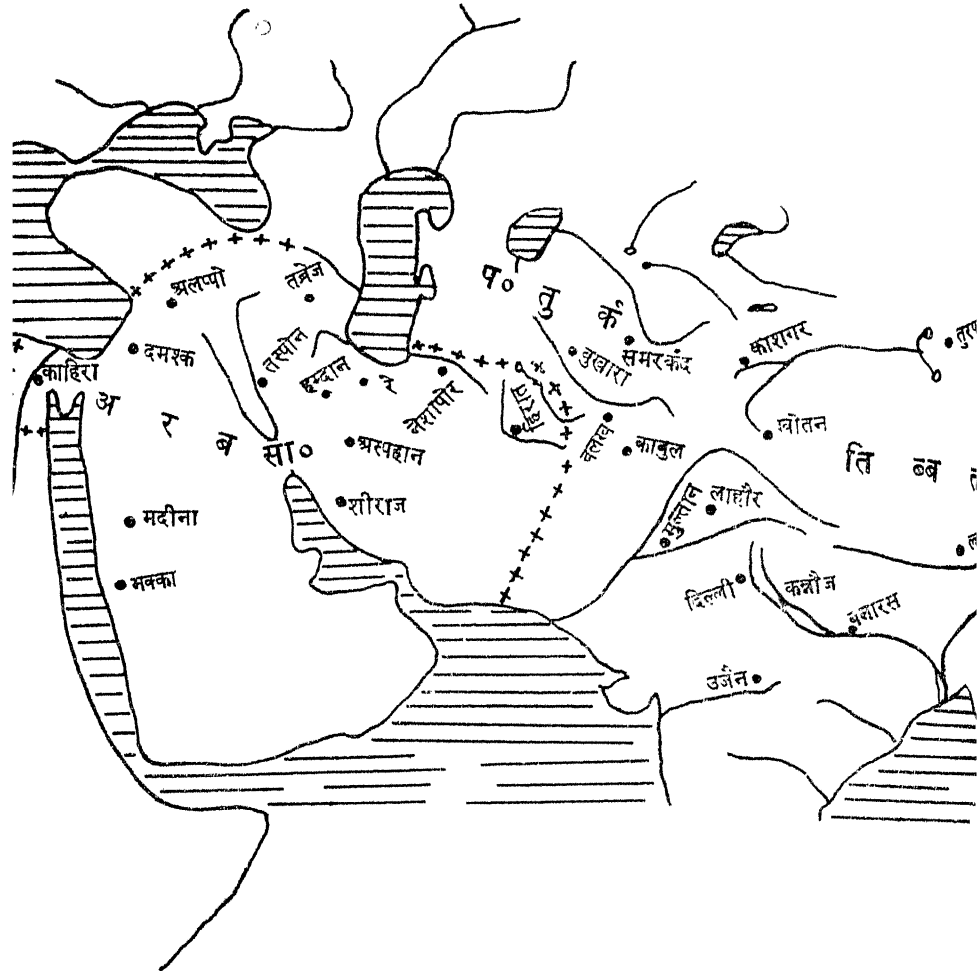
२६. अरबसाम्राज्य (६२२ ई०)

लेनेकी आग भड़कती पीढ़ियों तक चली जाती। इस्लामने उसी मरने-मारनेकी भावनाको एक नई धारामें प्रवाहित कर दिया था, जिसमें अरबोंका हर एक कबीला दिल खोलकर भाग ले रहा था। यह बतला चुके हैं, कि दुनियाके और घुमन्तू कबीलोंकी भांति अरब कबीले भी लूटना अपना धर्मसिद्ध अधिकार मानते थे, और यह उनकी जीविकाका साधन भी था।

इस्लामिक धर्म-विजयके नामसे वह और भी नफेमें थे, क्योंकि अब उन्हें बड़े-बड़े धनी मुल्कोंको लूटनेका मौका मिलता था——उन्हें धन मिलता, युद्धकी बंदिनी स्त्रियां दासीके रूपमें मिलती और गुलाम तो इतने मिलते थे, कि राजधानी मदीनामें जिधर देखो उधर ईरानी, तुर्क या रोमन गुलाम बड़ी भारी संख्यामें दिखाई पड़ते थे। उनमेंसे बहुतसे मुसलमान भी हो जाते थे। अब इस्लाम पैगंबरके जमानेका इस्लाम नहीं था, जब कि इस्लाम स्वीकार करते ही आदमी सामाजिक समानताका अधिकारी माना जाता था। यदि अरब योद्धा लड़ाईमें जीते दास-दासियो से कलमा पढ़ लेने मात्रसे हाथ धो बैठते, तो भला वह गाजी और जहादी होकर प्राणोंको खतरेमें डालना क्यों पसंद करते? जिन जातियोंसे गुलाम आते थे, वह अरबोंसे बहुत अधिक सभ्य थी। पद-पदपर अपमानित होना उन्हें असह्य था, लेकिन तलवारके डरके मारे कुछ बोल नहीं सकती थी। उमर दो ही साल तक शासक रहे। इसी २४ महीनेके शासनकी बहुत सी कहानियां सुनी जाती हैं, जिनसे उमरके सादा जीवन और न्याय-प्रियताका परिचय मिलता है। लेकिन, वह सब केवल अरबोंके लिये था, विदेशी या विजातीय मुसलमान उसके अधिकारी नहीं थे। जिन जातियों और परिवारोंके साथ अरब जहादियोंने घोर अत्याचार किया था, उनके खूनसे हाथ रंगा था; उनके आदमी भला कैसे बदला लिये बिना रह सकते थे। एक ईरानी दासने अपने परिवार या अपनी जातिपर किये गए अत्याचारका बदला लेनेके लिये उमरको मार डाला। इसकी बड़ी घोर प्रतिक्रिया हुई। अरबोंने इसका बदला सारी ईरानी जातिसे लेना चाहा, लेकिन सारी जातिको तो मारा नहीं जा सकता था। हां, उन्होंने सारे ईरानसे जर्थुस्ती धर्मको मिटानेका संकल्प कर लिया, और उसमें बहुत दूर तक सफलता भी पाई। यह वही समय था, जब कि स्वेन्-चाङ भारतकी यात्रा करके अभी अभी चीन लौटा था, और दस ही साल पहले अपनी यात्रामें मध्य-एसियाकी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समृद्धिको अपनी आंखों देख चुका था।

३. उस्मान[1] (६४४-६५२ ई०)

ईरानी दास द्वारा मारे गये द्वितीय खलीफाका बदला लेना नये खलीफाके लिये जरूरी था। उसने ऐसे ... राज्यपाल बनानेका इनाम घोषित किया, जो कि खुरासान (पूर्वी ईरान) में घुसनेमें सफल हो। उस्मानके समय सिरिया (भतपूर्व रोमन-प्रदेश) का शासक बनाकर उमैया-वंशी सरदार म्वाविया दमिश्क भेजा गया। दमिश्क रोमन क्षत्रपकी राजधानी थी। वहांका राज-प्रबंध रोमक कानूनके अनुसार होता था। म्वावियाके सामने प्रश्न था——देशका शासन कैसे किया जाय? उसने देखा, वहांपर कबीलोकी राज-व्यवस्था लागू नहीं की जा सकती, सामन्तशाहीसे कबीलाशाहीकी ओर लौटा नहीं जा सकता। यदि वह ऐसा करनेके लिये तलवारका सहारा लेता, तो भी सारे सामाजिक और आर्थिक ढांचेका बदलना संभव नहीं था। म्वावियाकी व्यावहारिक बुद्धिने समझ लिया, कि ऐसा करनेके लिये सिरियाके लोगोंको पहले बद्दू या अर्ध-बद्दू के रूपमें परिणत करना होगा, जो असंभव है। उसने रोमन सामन्ती ढांचेको रहने दिया,

---

[1] वही

और अरबी हकूमतको मनवा तथा अधिकसे अधिक आदमियोंको मुसलमान बना अपने शासनको मजबूत करनेका प्रयत्न किया। म्वावियाने रोमक राज्य-प्रणालीको स्वीकार किया। इस्लाम और कबीलाशाही सादा जीवनको जो लोग एक समझते थे, उन्हे यह बुरा लगा। जिन्होंने पैगंबरके सादे जीवन, कबीलोंकी विलास-शून्य, भ्रातृत्वपूर्ण समानताको देखा था, उन्हे म्वाविया का शाही दबदबा और शान-शोकत बुरी लगी। यदि गाढ़ेकी चादर ओढ़े खजूरके नीच सोन वाला अथवा दासको ऊंटपर चढ़ाये विजित येरुशिलममें दाखिल होनेवाला उमर अब भी खलीफा होता, तो म्वाविया ऐसा न कर सकता। समय बदल चुका था। पैगंबरके दामाद और परमविश्वासी अनुयायी अलीको जब यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने इसकी सख्त निन्दा की। वह चाहते थे : हमारी सल्तनत चाहे रोमपर हो या ईरानपर, वह अरबी कबीलोंकी सादगी और समानताको कभी न छोड़ें। अलीकी आवाज अरण्यरोदन थी। सफल शासक म्वावियापर खलीफाको नाराज होनेकी जरूरत न थी। हां, म्वाविया और अलीमें स्थायी वैमनस्य हो गया।

६३९ ई० में नहावंदके युद्धमें ईरानियोंकी पराजय हुई थी, किंतु १३ वर्षो (६५२ई०) तक ईरानियोंका विद्रोह शांत नहीं हो सका। उसमानके शासनमें खुरासान ही नहीं, बल्कि तुर्कोंके राज्यपरभी अरबोंने प्रहार किया। ६५२ई० में अब्दुल्ला अमीरपुत्रने ख्वारेज्म को हराया। इसी समय बलखके लोगोंने अधीनता स्वीकार की। उसमानके शासनके समयसे इस्लामिक आदर्शवाद का रहासहा रूपभी खतम होने लगा। उसमानने अपने परिवारके धन-वैभवको खूब बढाया, जिससे अरबों में भीतर ही भीतर वैमनस्य होने लगा, जिसका परिणाम हुआ उसमान का कतल।

४. अली (६५२-६६१ ई०)

२४ वर्षोकी प्रतीक्षाके बाद उस आदमीको खलीफा बननेका मौका मिला, जो शिया मुसलमानोंके अनुसार मुहम्मदका एकमात्र उत्तराधिकारी था। अली अपने गुणोंके कारण पैगम्बर के बहुत प्रिय थे। पैगम्बरकी कोई पुत्र-संतान नहीं थी। उनकी प्रिय पुत्री फातिमा के पति अली तथा नाती हसन-हुसेन पैगम्बरके बहुतही प्रेमपात्र थे, इसमें संदेह नही। अलीको बहुत देर करके पद मिला था, किंतु दमिश्का राज्यपाल म्वाविया उन्हे फूटी आंखोंभी नहीं देखना चाहता था। वह समझता था, अली हमें शाहंशाही या कैसरी शानके साथ चैनसे नहीं रहने देगा। अली चाहे कितनाही म्वावियाको न पसंद करते हों, किंतु म्वावियाका खान्दान बनी-उमैया एक शक्तिशाली अरब वंश था। म्वावियाके ऊपर प्रहार करनेका मतलब था, बनी-उमैयाको दुश्मन बनाकर गृह-युद्ध आरंभ करना। अलीका सारा समय म्वावियाके विरोधमें ही बीता और उसीमें उन्हें बलि चढना पडा। यहीं नहीं, म्वावियाके षड्यंत्रमें उनके बडे बेटे हसनको विष खाकर मरना पडा, और म्वावियाके पुत्र यजीदने अलीके दूसरे पुत्र हुसेन को करबलामें तडपा-तडपा कर मारा। करबलामें हुसेन और उनके ६९ साथियोंकी मौत बडी दर्दनाक घटना है। इसने इस्लामके भीतरी फूटको सदाके लिये स्थायी बना दिया। इस्लामके पैगम्बरके प्रिय नातीका कटा हुआ शिर जब यजीदके सामने रखा गया, तो उसने उसको छडीसे ठोकर मारकर हिलाया। उस समय एक

---

[१] दर्शनदिग्दर्शन पृष्ठ ५७-५९

अरब बूढेके मुंहसे दर्दभरी आवाज निकली—"अरे,धीरे-धीरे,यह पैगम्बर का नाती है। अल्लाहकी कसम, मैंने खुद इन्हीं ओठोंको हज़रत के मुंहसे चुबित होते देखा था।" लेकिन अरबोंके लिये अब इस्लाम या उसका पैगम्बर विश्व-विजयके साधन मात्र रह गये थे। उन्हें पैगम्बर और उनके नातीसे क्या लेना-देना था? अच्छा यही हुआ, कि अलीको अपने दोनों पुत्रोंकी मृत्यु अपनी आंखों देखनेका दुर्भाग्य नहीं मिला।

अली लड़ते हुए कहीं मारे गये थे। कौनसी जगह मारे गये, इसके दावेदार बहुतसे स्थान है। खुरासानमें तुर्बते-हैदरी आज भी एक अच्छा कस्वा है, जिसका अर्थ (अली) हैदर की कब्र। अफगानिस्तानके उत्तरी सूबे तुर्किस्तान में मजार-शरीफ एक शहर है, जिसका अर्थ है पवित्र-कब्र। इसके बारेमें भी बतलाया जाता है, कि यह हजरत अलीकी कब्र है, और इसीलिये उसकी बहुत पूजा होती है। दर्रा-खैबरमें भी अली-मस्जिद है, जिसके बारेमें बतलाया जाता है, कि अलीने काफिरोंके साथ युद्ध करते समय वहां आकर स्वयं नमाज पढ़ी थी। अलीके समय अरब-राज्यको कुछ बढ़नेका मौका जरूर मिला, किंतु वह सफलता पहलेके तीन खलीफों तथा बनी-उमैयाके शासनके सामने अधिक नहीं थी। हां, अलीके अंतिम समयतक मध्य-एसियाके भीतर अरबोंके पैर पहुंच चुके थे। ६५० से ६५५ ई० तक लगातार समरकंदसे दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित मैमुर्ग प्रदेशको अरब लूट-पाटकर बर्बाद करते रहे, यह चीनी अभिलेखोंसे मालूम होता है।

स्रोत-ग्रन्थ:

1. Heart of Asia (E. D. Ross. 1999)
2. Turkistan Down to the Mongol Invasion (W. Bartold)
3. History of Bokhara (A. Vambery, London 1873)
४. इस्कुस्स्त्वो स्रेद्नेइ आजिइ (ब.व. वेइमार्न, मास्को १९४०)
५. आर्खितेक्तुर्नियें पाम्यात्निकि तुर्कमेनिइ (मास्को १८३९)
६. दर्शन दिग्दर्शन (राहुल सांकृत्यायन, प्रयाग १९४७)
७. इस्लामकी रूपरेखा (")

अध्याय २

उमैया वंश (६६१-७४९ ई०)

अलीके मरनेके बाद उनके बडे बेटे हसनके उत्तराधिकारी बननेकी बडी संभावना थी। राज्यपाल म्वाविया मदीनेमें जनप्रिय नहीं था। हसन और हुसैन दोनोंकी यज्दगर्द (सासानी शाहंशाह) की दो राजकुमारियां व्याही गई थीं, जिससे शाही तडक-भडक पैगम्बर खान्दानके
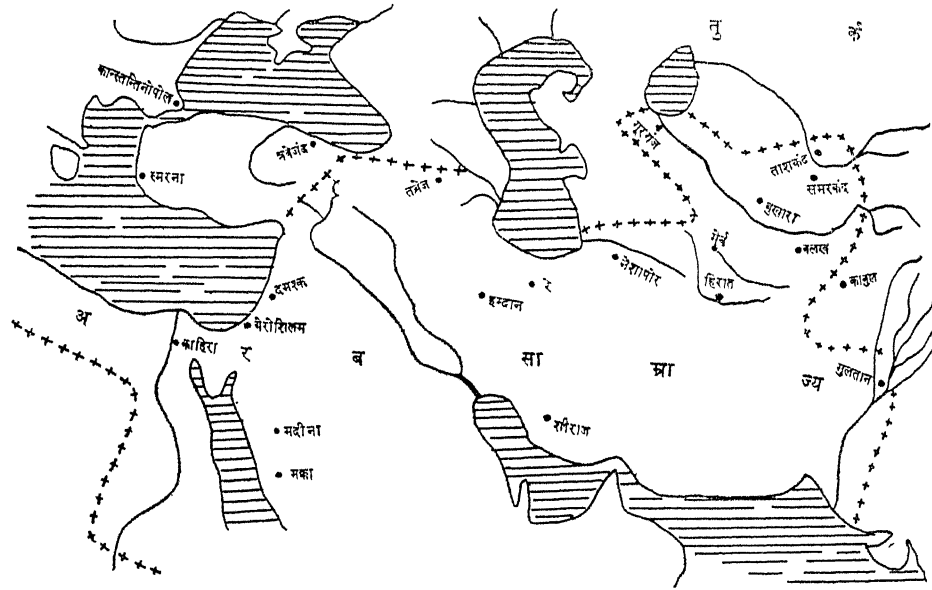
२७. अरब (उमैया) साम्राज्य (७१२ ई०)

भीतर भी दाखिल होनेसे बाज नही आ सकती थी। पैगम्बरका नाती होने के कारण लोगों का अनुराग हसन के प्रति अधिक था। म्वाविया हसनकी बीबीसे जहर दिलवा उन्हें मरवा कर स्वयं खलीफा बन बैठा

१. खलीफा म्वाविया मेरवान I (६६१-६७० ई०)

अलीके बाद खलीफाका पद म्वावियाने लेकर अपने उमैया वंशकी नींव रक्खी। इस वंशमें निम्न १३ खलीफा हुए:—

१. म्वाविया (i)	६६१-६८० ई०
२. यज़ीद (i)	६८०-६८३ ई०
३. म्वाविया (ii)	६८३
४. अब्दुल मलिक	६८३-७०५ ई०
५. वलीद (i)	७०५-८१४ ई०
६. सुलैमान	७१४-७१७ ई०
७. उमर (ii)	७१७-७२० ई०
८. यज़ीद (ii)	७१९-७२३ ई०
९. हिसाम	७२३-७४२ ई०
१०. वलीद (ii)	७४२
११. यज़ीद (iii)	
१२. इब्राहीम	
१३. मेर्वान (ii)	७४९ ई०

उमैया राजवंशके समय खुरासान और सोग्दके निम्न वली (राज्यपाल) थे :—

१. अब्दुल्ला अमीर-पुत्र	६६१ ई०
२. क़ैस हैसम-पुत्र	६६२ ई०
३. अब्दुल्ला खाजिम-पुत्र	६६३ ई०
४. ज़ियाद	६६५ ई०
५. हकम अमीर-पुत्र	६६७ ई०
६. रवी जियाद-पुत्र हारिसी	६७० ई०
७. खुलैद अब्दुल्ला-पुत्र हनफ़ी	६७३ ई०
८. सईद उस्मान-पुत्र	६७६ ई०
९. सल्म ज़ियाद-पुत्र	६८१-६८३ ई०
१०. अब्दुल्ला ज़ियाद-पुत्र	६८३-६९१ ई०
(मूसा अब्दुल्ला-पुत्र)	६८९-७०४ ई०
११. मुहल्लब	७०० ई०
१२. उमैया अब्दुल्ला-पुत्र खालिद-पुत्र	६९६ ई०
१३. मुहल्लब	७०० ई०
१४. यज़ीद मुहल्लब-पुत्र	७०१ ई०
१५. मुफज्ज़ल मुहल्लब-भ्रात	७०३ ई०
१६. कुतैब मुस्लिम-पुत्र वाहिली	७०५-७१४ ई०
१७. जर्राह अब्दुल्ला-पुत्र	७१७ ई०
१८. अब्दुर्रहमान	
१९. सईद अब्दुल्-अजीज-पुत्र	७२० ई०
२०. सईद अम्र-पुत्र हरसी	७२१ ई०
२१. असद अब्दुल्ला-पुत्र कसरी	७२५-७२७ ई०

२२.	अशरश् अब्दुल्ला-पुत्र	७२७-७२९ ई०
२३.	जुनैद अब्दुर्रहमान-पुत्र	७२९-७३३ ई०
२४.	आसिम् अब्दुल्ला-पुत्र	७३४-७३५ ई०
	असद अब्दुल्ला-पुत्र (पुनः)	७३५-७३७ ई०
२५.	नस्र सैयार-पुत्र	७३७-७४८ ई०

तुलनात्मक अरब वंश

	भारत	चीन	अरब	उत्तरापथ
		(थाङ)		(पश्चिमी तुर्क)
६४०	अर्जुन ६४८-	ताइ-चुंङ ६२७-५०		निशि दुलू ६५१
			(उमैया)	
		काउ-चुङ ६५०-८४		इबी शबोलो ६५१-
६६०			म्वाविया I ६६१-८०	
६८०			यज़ीद i ६८०-८३	
		वूहु (त्वी) ६८४-७०५		
			अब्दुलमलिक ६८३-७०५	
				अशिनाशिन -७०८
७००			क्लीद i ७०५	सोगे ७०८-९
				मुलू ७०९-३८
		स्वान् चुङ ७१३-५६	सुलेमान ७१४-१७	
			यज़ीद II ७१९-२३	(उइगुर)
७२०				
	यशोवर्मा ७२५-५२		हिशाम ७२३-४७	बुक्तेवर ७१९
७४०			(अब्बासिया)	कुतुलबिगा -७५६
		सुचुङ ७५६-६३	सफ्फाह् ७५०-५४	मोयुनचुर ७५६-६०
			मंसूर ७५४-७५	

	भारत	चीन	अरब	उत्तरापथ
७६०	वज्रायुध ७७०-	ताइचुङ ७६३-८०		
			मेंहदी ७७५-८३	दुर्मोगो ७७८-८९
७८०	(प्रतिहार)	तेइङ्चुङ ७८०-८०५	हादी ७८३-८६	
	वत्सराज		हारून ७८६-८०९	
	७८३-८१५			आचो -७९५
				कुतुलुक ७९५-८०८
८००				
		त्यान्चुङ ८०६-२१		
			अमीन ८०९-१३	काउसङ ८०८-२१
	नागभट्ट ८१५-		मामून ८१३-३३	
८२०		मू-चुङ ८२१-२५		

जिस समय म्वाविया इस्लामका खलीफा बना, उस समय अब भी पूर्वी ईरानपर अरबोंका अधिकार स्थिर नहीं हो पाया था। अब्दुल्ला अमीर-पुत्रने ६६२ ई० में खुरासानपर सफल अभियान किया। उसी समय उसको वहांका वली (राज्यपाल) बना दिया गया। लूट-मार करना आसान था, क्योंकि ईरानके विजयके बाद खुरासान, बलख, मेर्व सभी जगह अरबोंकी धाक जम चुकी थी, लेकिन स्थायी सफलता न होनेसे वली (गवर्नर) बराबर बदलते रहते थे। अमीर म्वावियाके शासन-कालमें निम्न वली मध्य-एसिया भेजे गये—

(१) **अब्दुल्ला अमीर-पुत्र** (६६१ ई०)—खुरासान-विजेता।

(२) **कैस हैसान-पुत्र** (६६२ ई०)—

(३) **अब्दुल्ला खाजिम-पुत्र** (६६३ ई०)—

(४) **जियाद** (६६५ ई०)—इसे पिछले साल खलीफाने अपना भाई घोषित किया था। यह दो साल तक वली रहा।

(५) **हाकिम अमीर-पुत्र** (६६७ ई०)—खुरासानका वली (राज्यपाल) होकर आनेके बाद इसने तुखारिस्तानकी ओर अभियान किये और वहां साथ ही बलखसे दक्षिण-पूर्व हिंदूकुश तकका प्रदेश जीत लिया। यह पहला अरब सेनापति था, जिसने वक्षुको पार किया, यद्यपि वक्षु-पारके तुखारिस्तानपर वह स्थायी अधिकार कायम नहीं कर सका। ६७० ई० में मेर्वमें इसकी मौत हुई।

(६) **खुलैद अब्दुल्ला-पुत्र** (६७० ई०)—अल्हनफ़ीने नये वलीके आने तक शासन संभाला।

(७) **रबी जियाद-पुत्र अल्हारिसो** (६७० ई०)—यह नया राज्यपाल पहले वली जियादका सहायक था। बीसियों सालके शासनके बाद अब स्थिति अनुकूल हो गई थी, और कितने ही अरब-परिवार आकर खुरासानमें बस गये। यह आवश्यक भी था, क्योंकि इस

प्रकार खलीफाकी सेनाको पास ही में सैनिक भी तैयार मिलते थे। अरब योद्धा, नये जीते हुए देशकी सुख-सपत्तिको देखकर अरबके रेगिस्तानसे यहांके जीवनको अधिक पसंद करते थे। रबीने बलखमें लगातार होते रहते विद्रोहोंको बिना युद्ध ही दबानेमें सफलता पाई। दूसरे विजेताओंसे अरब घुमन्तू विजेताओंको कितने ही सुभीते भी थे। जहां अरब तलवार शत्रुकी शक्तिको छिन्न-भिन्न करती, वहां पराजितोंको विजेताओंके साथ एकता-बद्ध करनेका काम इस्लाम करता। सबसे पहले ईरानके दलित और उत्पीड़ित निम्नवर्गका इस्लामकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था, क्योंकि उनका जातीय (जर्थुस्ती) धर्म हिंदू-धर्मकी तरह ही छुआछूत और जातपांतका पक्षपाती था, जिसके कारण मुसलमानोंके संपर्क मात्रसे आदमी जातिच्युत हो जाता, और उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक स्वार्थ अरब विजेताओंसे मिल जाता। यद्यपि अरब मुसलमान अन्-अरब मुसलमानोंको समानताका अधिकार नहीं दे सकते थे, किंतु काफिरोंके मुकाबिलेमें मोमिनका बहुत ऊंचा स्थान था, वह छोटी जातका होने पर भी बड़ीसे बड़ी जातके ईरानीसे ऊपर था। जिस समय अरब मध्यएसियापर विजय प्राप्त कर रहे थे, उस समय यहां गांवका स्वामी देह्कान होता था। भारतवर्षमें देह्कान किसान को कहते हैं, लेकिन मूल देह्कान शब्दका वही अर्थ और दर्जा था, जो कि प्राचीन हिंदू कालमें ग्रामणीका। देह्कान देह (ग्राम) का राजा था। राजधानीके पासवाले प्रदेशोंमें देह्कानोंकी निरंकुशता पर शाह और पुरोहित (मोविद)-वर्गका अंकुश भी होता था, किंतु दूरके प्रदेशोंमें वहांके क्षत्रपका दबाव देह्कानोंके ऊपर इतना नहीं था, कि उसे ग्रामीणोंपर मनमानी करनेसे रोका जा सके। देह्कान छोटे जमींदार नहीं, बल्कि तालुकदार या छोटे सामन्तकी हैसियत रखते थे। शाही अंगरक्षक इन्हींके पुत्रोंमेंसे लिये जाते थे। शाही नौकर (शाकिर या चाकिर) भी इनमेंसे होते थे। बुखाराके खातूनके शरीर-रक्षकोंके बारेमें हम बतला चुके हैं, कि वह देह्कानोंके लड़के होते थे। ईरानमें शाही धर्म (राजधर्म) जर्थुस्ती दीन था। किंतु खुरासान आदि जैसे दूरके प्रदेशोंमें कोई राजधर्म नहीं था, क्योंकि वहां बौद्ध, नेस्तोरी (ईसाई) और यहूदी धर्मके लोग भी काफी संख्यामें बसते थे। जर्थुस्ती धर्मसे निकले हुए मज्दकी जैसे धर्मके माननेवाले अत्याचर से बचने के लिये इन प्रदेशोंमें आकर बस गये थे; जिसके कारण भी जर्थुस्ती धर्मकी यहां उतनी धाक नहीं थी। मावरा-उन्-नह्र (वक्षु और सिरदरियाके बीचके प्रदेश, अन्तर्वेद) में बल्कि जर्थुस्ती धर्मसे बौद्ध और नेस्तोरी धर्मके अनुयायी कम नहीं थे, तो भी ईरानी जातिका धर्म होनेके कारण जर्थुस्ती धर्म अधिक प्रभाव रखता था (स्वेन्-चाङके समरकंदमें रहते समय जर्थुस्तियोंने बौद्धोंके एक विहारको जला दिया था)।

(अरब-विजयके समय[१])

सेठ--मध्य-एसियामें चीनके व्यापारके कारण सेठोंका प्रभावशाली वर्ग व्यापारिक नगरोंमें रहता था। यह मामूली सेठ नहीं थे, बल्कि इनके पास बहुत भारी जागीरें (जमीं-

---

Turkistan Down to the Mongol Invasion (K. Bartold);
History of Bukhara (A. Vambery)

दारियां) होती, रहनेको भी अपने गढ़ होते थे। समाजमे इनका स्थान देहकानोंसे बहुत कम अन्तर रखता था।

मध्य-एसियामें सोग्द, फर्गाना और तुखारिस्तान वैसे तो नगरों और ग्रामोंके देश थे, लेकिन अपने उत्तरी घुमन्तू लड़ाकू जातियोंसे बराबर संघर्ष रहनेके कारण यहांके लोग वीरताका मूल्य समझते थे। समरकंदमे प्रतिवर्ष एक चौकीपर भोजन और एक मटकी अंगूरी शराब रक्खी जाती थी। यह हमारे यहांके पानके बीड़ा उठानेकी रस्म जैसी थी। जो आदमी उस भोजन और शराबकी ओर हाथ बढ़ाना चाहता, वह मानो पिछले सालके निर्वाचित वीर (पहलवान) को लड़नेके लिये ललकारता। दोनों वीरोंमे लड़ाई होती। जो अपने विरोधीको मार देता, वह देशका सबसे बड़ा वीर माना जाता। साल भर बाद फिर इसी रीतिके अनुसार वीर-परीक्षा होती।

देशवासियों मे जहां इस प्रकार वीरोंका सम्मान किया जाता, वहां यहांके तुर्क शासकों की वीरता के बारेमे अरब भी संदेह नहीं कर सकते थे। ८६९ ई० में अरब इतिहासकार जहीज़[1]ने लिखा था "कला-कौशलमें चीनी, हिक्मत (दर्शन) में यूनानी, शासनमें सासानी और युद्धमें तुर्क" बढे हैं।

मध्य-एसियाके तत्कालीन शासक और सरदार तुर्क या अतुर्क हमारे राजपूतोंकी तरह मृत्युसे डरते नहीं थे। युद्ध उनके लिये खेल था, किंतु उनमें एकता नहीं थी। आपसी शत्रुताके कारण वह एक दूसरेके विरुद्ध अरबोंकी सहायता करनेसे भी बाज नहीं आते थे। खलीफ़ा उमरने विधान बनाया था, कि मोमिन (मुसलमान) छोड़कर किसीको हथियार चलानेका अधिकार नहीं है। रोम और ईरानके जीते हुए इलाकोंमे जिस तरह लोगोंने भीषण संघर्ष किया, उससे अरबोंको विश्वास नहीं था, कि गैर-मुस्लिम उनके वफादार हो सकते हैं। यह ठीक भी था, क्योंकि अरब किसी देशको केवल राजनीतिक तौरसे ही परतंत्र नहीं करना चाहते थे, बल्कि वह वहांके धर्म और संस्कृतिको इस्लामके लिये खतरेकी बात समझ उन्हें निर्मूल कर देना चाहते थे, जिसके ही कारण संघर्ष बहुत तीव्र हो जाता था। मध्य-एसियामें तुर्क आये, उनसे पहले हेफ़ताल, शक और यवन आये, किन्तु वह वहांकी संस्कृतिके दुश्मन नहीं थे। उन्होंने स्थानीय देवी-देवताओंको भी अपने लिये पूजनीय माना और यदि स्वयं संस्कृतिमें पिछड़े थे, तो यहांकी संस्कृतिसे बहुतसी बातें सीखकर अपनेको संस्कृत बनाया। अरबोंकी नीति ऐसी नहीं थी। उन्होंने इस्लाम धर्मके नामपर बिखरे हुए अरब कबीलोंको एकताबद्ध किया था। चाहे देश-विजय ही प्रेरक रहा हो, किंतु उसने अपने योद्धाओंको इस्लामके नामपर मर मिटने और दुनियासे कुफ्रको हटाकर पैगंबर-का धर्म फैलानेका बीड़ा उठाया था। इसीलिये यूनानियों, शको या तुर्कोंकी तरह धर्म और संस्कृतिके साथ समझौता करनेकी गुंजाइश नहीं थी। इसके विरुद्ध लोगोंकी चाहे अपने अपने बहु-स्वीकृत जातीय धर्मके प्रति आस्था भले ही हो, लेकिन वह तब तक दूसरे लोगोंके साथ बिगाड़ या अत्याचार करनेके लिये तैयार नही थे, जब तक कि उनके अपने धर्मपर खूनी हमले न हों। उमरका कानून उमैया खलीफोंके समयमें ही नहीं माना गया और वली (राज्यपाल) कुतैब

---

[1] जहीज़ (इतिहासकार), "अहलुस् सीन फिस्-सनाआत वल्-यूनानियून् फ़िल्-हिक्मे व आले-सासान फ़िल्-मलके वल्-अतराक फ़िल्-हरूबे"—रिसारला "फजायलुल्-अतराक"। (Turkistan Down to the Mongol Invasion में उद्धृत)

(७०५-७१५ ई०) ने अपनी लड़ाइयोंमें दुश्मनोंके साथ लड़नेका अधिकार काफिरोंको दे दिया। अरब बहुत दिनों तक देशपर अधिकार करना नहीं चाहते थे। उनका उद्देश्य था—लूटके मालको लेकर लौट जाना और अगले साल फिर आकर उसी तरह करना। अरबोंका निवासस्थान विशेषकर खुरासान और बलख प्रदेशमें था। सल्म जियाद-पुत्र (६८२-६८३ ई०) ही पहला राज्यपाल था, जिसने पहली बार वक्षु-पार जाड़ा बिताया। इन लूटों और आक्रमणोंके प्रतिकारके लिये आपसमें झगड़ने छोटे-छोटे राजाओंको भी कुछ करनेका ख्याल आया। इतिहासकार तबरीके अनुसार मध्य-एसियाके राजा खतरा होनेपर ख्वारेज्मके किसी शहरमें एकत्रित होते और आपसी झगड़ोंको शांतिपूर्वक तै करते एवं मिलकर अरबोंसे लड़नेकी शपथ लेते थे। लेकिन व्यवहारतः इसपर चलना उनके लिये मुश्किल था। अरबोंके विजयका एक कारण यही कमजोरी थी। समरकंदके राजा गोरकने ७१८ ई० में चीन सम्राट्के पास लिखा था, कि हम ३५ सालसे अरबोंसे लड़ रहे हैं। लेकिन, बिखरे हुए पचासों छोटे-छोटे राजा अरबोंकी शक्तिसे मुकाबिला कैसे कर सकते थे?

(६) रबी जियाद-पुत्र हारिसी—इसने बलखके विद्रोहको बिना युद्धके शांत किया। कोहिस्तानके तुर्कोंने बहुत सख्त संघर्ष किया, जिनका नेता तर्खून नीजक था, जो पीछे कुतैबके हाथों मारा गया। रबीने वक्षु पार आक्रमण किया, किंतु लूटमारसे ही संतोष करके लौट आया। ६७३ ई० में रबी और उसके मलिककी मृत्यु हो गई। खलीफा पूरबी प्रदेशका एक मलिक (उपराज) नियुक्त करता था, जो अपने भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके लिये किसीको वली बनाकर भेजता था। उसके पुत्र अब्दुल्लाने केवल दो महीना शासन किया।

(७) खुलैद अब्दुलापुत्र हनफी (६७३ ई०)—जियादके मरनेके बाद खुलैदने अपने पुत्र उबेदुल्लाको कूफा बलख और खुरासानका मलिक (उपराज) बनाया। उबैदुल्ला जियाद-पुत्र खुलैदको हटाकर गवर्नर बना।

उबैदुल्ला जियाद-पुत्रने इराक (मसोपोतामिया) में एक बड़ी सेना जमा की। फिर खुरासान होते वक्षुपार हो, बुखाराके पर्वतोंमें दाखिल हुआ। वह स्वयं ऊंटपर सवार था। उसने रामतीन और बैकंदको लूटा। बुखाराकी शासिका खातून अरबोंके सामने लड़नेकी हिम्मत न कर समरकंद भाग गई। कहते हैं, जल्दीमें उसका एक जूता छूट गया, जिसका दाम दो लाख दिरहम (एक दिरहम=२५ ग्रेन चांदी) था। अन्तमें खातूनने अरबोंको वार्षिक कर देना स्वीकार किया। उबैदुल्ला लूटका माल लादे लौटा। हिरात आनेपर खलीफाने उसे बसराका गवर्नर नियुक्त किया।

(८) सईद उस्मान-पुत्र (६७३ ई०)—नये गवर्नरने उबैदुल्लाकी संधिको न मानकर बुखारापर आक्रमण कर दिया। उबैदुल्लाके साथ लड़नेमें ही खातूनकी सारी शक्ति और संपत्ति खतम हो चुकी थी, फिर बेचारी अब क्या लड़ती? सेनाकी हिम्मत भी टूट गई थी, इसलिये उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता था। अंतमें खातूनने बुखारा-खुदातको अरबोंको दे देना स्वीकार किया। समरकंद अब भी स्वतंत्र था और सबसे धनी लोग वहां रहते थे। रानी (खातून) ने नेकचलनीके लिये बुखाराके ८० पुरुषोंको जामिनके तौरपर दिया, जिनको लिये सईद समरकंद पर चढ़ा। तुर्कोंने मुकाबिला किया, किंतु अंतमें समरकंद अरबोंके हाथमें गये बिना नहीं रहा। सईदको ३००००

युद्ध दास और अपार संपत्ति हाथ लगी। पहले दिन युद्धमें समरकंदके सोग्दियोंको तैयार देखकर सईदने हमला नहीं किया, और दूसरे दिन उन्हें गाफिल पाकर आक्रमण कर दिया। जब सईद समरकंद-विजयके बाद बुखाराके रास्ते लौटा, तो खातूनने अपने जामिन आदमियोंको मांगा। सईदका उत्तर था—तुम्हारा विश्वास नहीं, इसलिये आमू-दरिया पार हुए बिना हम उन्हें लौटा नहीं सकते। आमू पहुंचनेपर मेर्वसे लौटानेका बहाना किया। अंतमें उन्हें वह अपने साथ मदीना ले गया और देहकान (सामन्ती) की वेष-भूषाको हटाकर उन्हें गुलामोंकी पोशाक पहना दी। इस दासतासे मरना बेहतर समझ अस्सी "गुलामों" ने सईदके महलमें घुसकर दरवाजा बंद कर लिया और अपने धोखेबाज शत्रुको मारकर स्वयं भी आत्म-हत्या कर डाली। यह घटना ६७९ ई० (६० हि०) की है।

२. खलीफा यज़ीद मेरवान-पुत्र (६८०-६८३)

म्वावियाका बेटा यह वही यजीद है, जिसने कूफाका राज्यपाल रहते समय करबलामें हुसेन और उनके साथियोंकी निर्मम हत्या कराई थी। राज्यपाल सईदकी मदीनामें हत्या हो चुकी थी, और यज़ीदने सल्म ज़ियाद-पुत्रको खुरासानका वली बनाया।

(१) सल्म ज़ियाद-पुत्र (६८१-६८३ ई०)—सल्मके अधिकार संभालते समय सोग्द में विद्रोह फैला हुआ था। गोरकने हथियार रख नहीं दिया था। सईदका परिश्रम व्यर्थ हो गया। उसकी धोखेबाजीसे अरबोंकी बात पर लोगोंका विश्वास नही रह गया था। सल्मने पहले सोग्दको ठीक करना जरूरी समझा। उसने सेनापति मुहल्लबसे सलाह करके मेर्वमें सैनिक केंद्र स्थापित किया, और ६००० अरब सेनाके साथ वक्षु (आमू-दरिया) पार हो वह बड़ी तेजीसे बुखारापर चढ़ दौड़ा। खातूनने सोग्दके तरखून मलिक गोरकसे अपना पति बनानेका लालच दे सहायता मांगी। तरखून १२०००० सेना साथ ले मददके लिये आया। अरबोंने भेद लगानेके लिये जो टुकड़ी भेजी थी, उसके आधे आदमियोंको मारकर गोरक ने भगा दिया। फिर प्रधान सेनासे मुकाबिला हुआ, जिसमें तुर्कोंकी जबर्दस्त हार हुई। सल्मको अपार संपत्ति हाथ लगी, प्रति-सैनिक २४०० दिरम (एक दिरम २५ग्रेन = १$\frac{1}{3}$ माशा चांदी) अपना हिस्सा मिला। रानीको उसने क्षमा कर दिया। सल्म मेर्वके नौ मुस्लिमोंमें बहुत प्रिय था, इसका पता इसीसे लगेगा, कि उसके दो सालके शासनमें नगरके २००० लड़कोंके नाम सल्म रक्खे गये।[1]

---

[1] ओडोनोवनने अपनी पुस्तक "मेर्वकी कथा" (पृ० ३८९) में लिखा है "एक दिन नगरका डुग्गीपीटनेवाला एक दर्जन दूसरे तुर्कमानोंके साथ मेरे झोपड़ेमें आया। वह अपने नवजात शिशुओंको मेरे पास लाये थे। मैं उनके शब्दोंको अच्छी तरह पकड़ नहीं पाता था। मैंने जो कुछ समझा, वह यही था, कि उन शिशुओंमेंसे एक ओडोनोवन बेग था, दूसरा ओडोनोवन खान, तीसरा ओडोनोवन बहादुर...। पता लगा कि तेक्के (तुर्कमान) लोग अपने नवजात लड़कोंका नाम किसी प्रसिद्ध विदेशीके नामपर रक्खा करते हैं।"

३. खलीफा म्वाविया (II) (६८३ ई०)

यह वस्तुतः खलीफाके पदके योग्य नहीं था। इस्लामके विश्वविजयका यह काल था, जिसमें खलीफामें वीरताके साथ धर्मांधताकी बहुत आवश्यकता थी। उसने शासनको अपने लिये भारी बोझा समझा और कुछ ही महीनोंके बाद गद्दी अपने उत्तराधिकारी मेरवान-पुत्र अब्दुल मलिकके लिये छोड़ दी। उत्तराधिकारके लिये अब्दुल्ला जुबेरपुत्र और अब्दुल मलिकका झगड़ा हुआ, जिसके कारण इस्लामी साम्राज्यके दो भाग हो गये। अब्दुल्लाने यमन, सिरिया, फिलस्तीन और मिस्रको लिया। अब्दुल मलिकने राजधानी दमिश्कको अपने हाथमें करके शीघ्र ही अब्दुल्लासे सिरिया और मिस्र भी छीन लिया।

४. खलीफा अब्दुल-मलिक मेरवान-पुत्र (६७३-७०५ ई०)

मेरवान के पुत्र अब्दुल-मलिकने जिस समय शासनकी बागडोर संभाली, उस समय उसके प्रतिद्वन्द्वियोंकी कमी नहीं थी। उसका एक प्रतिद्वन्द्वी मुहम्मद मक्का-मदीनेमें खलीफा बन बैठा था। बिजंतीन (रोम) साम्राज्य अभी भी शक्तिशाली था, यद्यपि उसके हाथसे सिरिया और फिलस्तीन निकल कर अरबोंके राज्यमें चले गये थे। अरब खलीफा बिजंतीनको भी ईरानकी तरह हड़पना चाहते थे। अब्दुल-मलिकने देखा, कि बाहरके संघर्षके साथ वह घरू संघर्षको सफलतापूर्वक नहीं चला सकता, इसलिये बिजंतीनसे सुलह करके उसने मुहम्मदको मक्का-मदीनासे मार भगाया। अब्दुल मलिककी खिलाफतमें अरबोंको मध्यएसियामें आगे बढ़नेमें बहुत सफलता मिली, जहां उसके निम्न वली हुए:—

(१०) अब्दुल्ला जियाद-पुत्र (६८३-६९१ ई०)—खिलाफतके लिये जो झगड़ा मलिक और अब्दुल्लामें हुआ था, उसमें खुरासानके राज्यपाल (वली) अब्दुल्लाने विरोधीका समर्थन किया था, इसलिये अब्दुलमलिकने उसे हटाकर बुकैरको खुरासानका राज्यपाल बनाया।

(११-१२) बुकैर अब्दुल्ला-पुत्र, उमैया खालिद-पुत्र (६७६)—बुकैरपर विश्वास न [illegible]। सेनापति मुहल्लब अब्दुल्ला जियाद-पुत्रका पक्षपाती था। नई व्यवस्थाके असंतुष्ट हो वह मेर्व छोड़कर केश (शहरसब्ज) चला गया। ७०० ई० में उसने अपने पुत्र हबीबको एक बड़ी सेनाके साथ बुखारापर आक्रमण करनेके लिये भेजा। राजाकी पराजय हुई। दो साल बाद कर उगाहनेके समय मुहल्लब मेर्व आया, जहां ७०१ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(१३) यजीद मुहल्लब-पुत्र (७०१ ई०)—[illegible] स्थानपर उसका पुत्र यजीद मेर्वका राज्यपाल बनाया गया।

(१४) मुफ़ज्जल मुहल्लब-भ्रात (७०३ ई०)—हज्जाज यूसुफ-पुत्र सेकेफीको यजीद पसंद नहीं [illegible] चचा तथा उपराज्यपाल मुफ़ज्ज़लको वली बनाया। उसका शासन केवल ९ महीनेका था, जिसमें उसने खीवा और बादगीमें लूटमार करके प्राप्त संपत्तिको अपने सैनिकों (अरबों) में बांट दिया।

५. खलीफा वलीद अब्दुलमलिक-पुत्र (७०५-७१४ ई०)

इसी खलीफाके समय ७११ ई० में अरब सेनापति मुहम्मद कासिम-पुत्रने सिंधको जीता। हमें मालूम ही है, कि सिंधके जीतनेमे घरेलू फूट शत्रुकी सबसे अधिक सहायक हुई।

(१५) कुतैब मुस्लिम-पुत्र वाहिली (७०५-७१४)—मेर्व सारे अरब-शासन-कालमें दक्षिणापथकी राजधानी रहा। मेर्वको शाहेजान (राजप्राण शाहेजहां) कहते थे। मेर्व का राज्यपाल खलीफाका पूर्वी उपराज नियुक्त करता था, जो कि इस समय हज्जाज युसुफ-पुत्र था। हज्जाजने मुफ़ज्ज़लको हटाकर उसकी जगह कुतैबको मेर्वका राज्यपाल बनाया। मध्य-एसियामें अरब-शासन और इस्लामकी दृढ़ नींव डालनेमें सबसे अधिक हाथ कुतैबका था। इसके पहलेके राज्यपालोंका लक्ष्य प्रधानतया केवल लूटमार करते चौथ उगाहना था। यद्यपि बहुत वर्षोसे अरब खुरासानके स्वामी थे, और मेर्व उनके राज्यपालकी राजधानी थी, किंतु वक्षु-पार उनका प्रभुत्व नाममात्रका था। बस, समय-समयपर उनकी सेनाये लूट मारके लिये वहां जाती थी। वक्षु और सिरके बीचकी भूमिपर इस्लामका झंडा गाडनेवाला कुतैब था। इसने वहांसे जर्थुस्त और बुद्धके धर्म को मिटाकर इस्लामको स्थापित किया और अपने सैनिकोंको कुरानकी पांतिया उद्धृत करते इस्लामके लिये जहादके लिये उत्तेजित किया। [illegible] और भी मजबूत करनेके लिये अभियानके समय तककी तनखाहें उन्हें पेशगी दे देना।

मूसा अब्दुल्ला-पुत्र हाजेन-पुत्र (६८९-७०४ ई०)—अब्दुला हाजेनपुत्र कैसी एक प्रसिद्ध अरब सेनापति था। पैगम्बर मुहम्मदने अरब कबीलोंकी शक्तिको बहिर्मुखीन करके उनके घरेलू खूनी झगडोंको रोक दिया था। अब वह आपस में लडनेकी जगह विदेशी काफिरोंसे लडते थे। लूट मे जहां बहुतसा धन मिलता था, वहां ईरानी, रोमन, सोग्दी और तुर्क सुन्दरियां यदि दासी बननेसे बचतीं, तो बीबी बन जातीं। युद्धकी लूटके बंटवारेमें कभी कभी एक-एक सिपाहीपर पांच पांच स्त्रियां पड़तीं। सबसे सुन्दरी और कुलीन स्त्रियां खलीफाके हरम के लिये चुनी जातीं, उसके बाद उपराज (मलिक) का नंबर आता, फिर वली (राज्यपाल) की बारी आती। हां, किसी सेनापतिकी नजर पड़ गई और खतरा नहीं मालूम हुआ, तो उसे भी कोई अनिंद्य सुन्दरी मिल जाती। सिपाहियोंको छँटी-छुटी [illegible]। स्त्रियोंकी इस लूटसे इस्लामको बहुत फायदा हुआ। मुल्ला काफिरोंको धर्मोपदेश दे लौकिक प्रलोभनके साथ उन्हें अपनी जाति छोड़ा इस्लामी जमातमें भर्ती करते थे। निकाही या या दासी बीबीयोंका काम था मुसल्मान पुत्र पैदा करना। दोनोंही तरहसे देशकी स्वतंत्रताके लिये लडनेवाले घाटेमें रहते। काफिर कभी कभी फिरसे अपने धर्ममें लौट जाते, किंतु मुसलमानोंकी यह संताने ईरानी जांत-पांतके कारण अपनी जातिमें लौटनेकी गुजाइश नहीं रखतीं। इस प्रकार इस्लाम ईरान और मध्य-एसियामें बड़ी तेजीसे बढ़ता रहा। कितने ही अरब परिवार अरब छोडकर खुरासान, मेर्व या बलखमें बस गये थे। किंतु जनवृद्धिकी सामान्य-गतिसे वह उतनी जल्दी बहुसंख्यक नहीं हो सकते थे। इस वैध या अवैध **स्त्री-**संबंध ने उस गतिको बहुत तेज कर दिया, इसमें संदेह नहीं। तो भी यह ख्याल रखना चाहिये, कि ईरान और मध्य-एसियाको जब अरब जीत रहे थे, उस समय वहां असह्य सामाजिक विषमता का राज्य था। भारतके शूद्रों और अछूतों की तरह वहां भी बहुतसी जातियां थीं, जो

इस्लामकी जमातमें दाखिल होकर कमसे कम अपने काफिर बन्धुओंसे नीच नहीं रह जातीं थीं।

अपार धनके लाभ और सुखी जीवनने अरबोंकी लडाकू प्रवृत्तिको जगा दिया था। उनके कई दल हो गये थे, जो शक्ति और लाभके लिये आपसमें लड़ते रहते थे। सेनापति या राज्यपाल ज्यादा दिनतक टिकते नहीं थे, जरा सी शिकायतपर उन्हें निकालकर दमिश्कसे कोई दूसरा भेजा जाता। इसी तरह के निष्कासनकी तलवार अब्दुल्ला ग्याजिनपुत्रके ऊपर पड़ी। वह ६९१-६९२ ई० (७२ हिज्री) तक खुरासानका निरंकुश शासक हो बैठा। उसने अपने नामके सोनेके सिक्के चलाये। खलीफा अब्दुल मलिक इसे कैसे बर्दाश्त कर सकता था? अंतमें खलीफाके हुकुमसे उसे कतल कर दिया गया। लेकिन अब्दुल्ला अपने भविष्यको जानता था, इसलिए अपने पूत्र मूसाको उसने वक्षु पारके तुखारिस्तान में भेज दिया था। मूसाने मुट्ठीभर आदमियों की मददसे तेरमिजपर अधिकार कर लिया। स्थानीय शासक भाग गया। उसके बाद १५ साल तक मूसा वहांका स्वामी रहा। यह यजीद मुहल्लब-पुत्रकी राज्यपालताका समय (७०१-७०४ ई०) था।

इसी समय सावित कुनत्रापुत्रभी मूसासे आ मिला। सावितका स्थानीय लोगोंपर बहुत प्रभाव था। उसने स्थानीय राजाओं को अपनी ओर कर लिया और यज़ीद के तहसीलदारों को अन्तर्वेद (वक्षु और सिरदरिया के बीच के प्रदेश) से मार भगाया। अब सारे अन्तर्वेद का स्वामी मूसा था। वहां खलीफा का नहीं मूसा का शासन चल रहा था। इसी समय तुर्कों, सोग्दों और हेफ़तालों ने मिलकर एक भारी सेना मुसलमानों से लड़ने के लिये भेजी, जिसे मूसा ने तितर-बितर कर दिया। लेकिन मूसा का साबित और उसके स्थानीय सहायकों से झगड़ा हो गया। मूसा उन्हें भी दबाने में सफल हुआ। साबित मारा गया। स्थानीय सामन्तों का मुखिया सोग्द का इखशीद तरखून गोरक बड़ी बहादुरी के साथ लड़ता रहा, किंतु अंत में उसे भागने पर मजबूर होना पड़ा। ७०४ ई० में राज्यपाल मुफ़ज्ज़ल मुहल्लब-पुत्र के हुकुम से सेनापति उस्मान मसऊदपुत्र ने सोग्द के इखशीद और खुत्तल के शाह की मदद से मूसा को हराकर तेरमिज पर अधिकार किया।

इसीके बाद कुतैब खुरासान का राज्यपाल होकर आया। तालेकान आते ही उसने दिग्विजय आरंभ कर दिया। मेर्व होते बलख पहुंच उसने वहां के विद्रोह का दमन किया। बरमक खान्दान पीढ़ियों से बलख के प्रसिद्ध नवविहार का महंत रहता आया था। तत्कालीन बरमक भागकर कश्मीर चला गया। समझता था, कश्मीर और अफ़गानिस्तान के अपने सहधर्मियों-हिंदुओं की मदद से वह जन्मभूमि से म्लेच्छों को भगा सकेगा, किंतु अरब-शक्ति स्थानीय उत्पीड़ितों की सहायता पा अब दुर्जेय थी। स्वयं भारत का एक भाग (सिंध) पांच ही छ साल बाद अरबों के हाथ में जानेवाला था। इसी समय तिब्बत के घुमन्तुओं ने अपना विशाल राज्य स्थापित किया था, जो त्यानशान और पामीर तक फैला हुआ था। चीन और तुर्कों की प्रतिद्वंद्विता के कारण उसे अरबों से मित्रता करनी पड़ी थी। फिर बरमक (परमक) को क्या सफलता मिलती? कुतैब ने बरमक की रानी को अपने हरम में डाल लिया। उसके भाई तथा सभी देहकानों ने कुतैब का स्वागत और वक्षुतट तक उसका अनुगमन किया। कुतैब के

---

[१] Turkistan Down to the Mongol Invasion

पराक्रम की कथायें वक्षुपार पहुंच चुकी थीं। वहां कोई उससे लड़ने की हिम्मत नहीं रखता था। परले तटपर शगनियान का राजा अपने शत्रु शुगान और अश्रूनन के राजाओंके विरुद्ध—कुतैब के [illegible]। पार होते ही उसने कुतैब को नगर द्वार की सोने की चाभी पेश कर राजधानी (तेरमिज़) में पधारने के लिये निमंत्रण दिया। कुतैब ने शगनियान पर यही उपकार किया, कि उसे खलीफा का करद बनाकर छोड़ दिया। अश्रूनन और शुगान के राजा भी त्रस्त थे। उन्होंने कर देकर छुट्टी ली। कुतैब वहां से मेर्व लौट गया। इसी साल उसने बादगियों के तरखून नीज़क से अपनी शर्तो पर संधि की।

अगले साल (७०५-७०६ ई०) कुतैब की विजय-यात्रा फिर आरंभ हुई। मेर्व से मेर्वरूद, और आमूल (चारजूय) होते उसने वक्षु पार किया। उसका लक्ष्य बुखारा था। बैकंद वक्षु के दाहिने तट पर बुखारा से सबसे नजदीक का अतिसमृद्ध व्यापारिक नगर था। यह महा-सेठों की नगरी थी, जिनके पास चीन के रेशम और दूसरे व्यापार से अपार संपत्ति जमा थी। ऐसे नगर पर घुमन्तू लूटेरों की नजर सदा रहती थी, इसलिये सेठों ने अपने नगर की जबर्दस्त किलाबंदी कर रक्खी थी। जैसे ही पता लगा, कि अरब उनके नगर की ओर आ रहे हैं, उन्होंने भी लड़ने की तैयारी कर ली। हर एक हथियार उठा सकनेवाला जवान सेना में शामिल हुआ। बैकंदवालों ने सोग्दियों के पास भी सहायता के लिये प्रार्थना की। दुश्मन की सेना ने दो महीने तक कुतैब को घेरे रक्खा, और वह अपने स्वामी हज्जाज के पास संदेश तक न भेज सका। हज्जाज ने कुतैब की मंगल कामना के लिये मस्जिदों में विशेष प्रार्थना करवाई। मध्य-एसिया का हरेक मुसल्मान घर का विभीषण था। कुतैब के कितने ही दूत उनके भीतर घूम रहे थे। जो भी सोग्दी या तुर्क मुसलमान हो जाता, वह बिना मोल ही अरबों का गुप्तचर बनने के लिये तैयार हो जाता। कुतैब का प्रमुख चर तंदर बुखारा की ओर गया हुआ था। उसे अच्छी रिश्वत मिल गई। उसने लौटकर अपने मालिक से कहा—"तुम्हारे संरक्षक हज्जाज पदच्युत हो गये।" कुतैब ने उसी समय अपने गुलाम सैयार से उसकी गर्दन कटवा दी और ज़िरार हसनपुत्र से कहा "इस घटना को तुम्हें और मुझे छोड़कर और कोई नहीं जानता। अगर यह बाहर खुल गई, तो मैं निश्चय समझूंगा, कि यह तुम्हारा काम है। इसलिये अपनी ज़बान पर काबू रखना।" तंदर के अनुयायियों ने कटे शिरवाले धड़ को देखा, तो वह जमीन पर गिर कर कहने लगे—"हमने समझा था, वह मुसलमानों का दोस्त है।"कुतैब ने कहा—"नहीं, वह विश्वासघाती था। भगवान् उसे किये का दंड देता, लेकिन उसे यहीं फल मिल गया। तैयार हो जाओ, कल शत्रुओं से मुकाबिला करना है।"

लड़ाई शुरू हुई। मुकाबिला सख्त था। कुतैब बड़ा बहादुर सेनापति था। वह सैनिकों की पांती में घूमता उनका उत्साह बढ़ा रहा था। शाम तक शत्रुओंमें भगदड़ मच गई। बहुत कम ही लोग नगर के भीतर भाग कर जा सके, बाकी सबको अरबों ने तलवार के घाट उतारा। इसमें शक नहीं, बैकंद (पैकंद) जीतने में अरबों को भारी कुर्बानी देनी पड़ी। ५० दिनों तक मुसलमानों की सारी कोशिशें बेकार गई और वह नगर के भीतर नहीं घुस सके। हर प्रयत्न में भारी प्राणहानि उठा कर लौटना पड़ा। एक टुकड़ी ने किले की दीवार के नीचे खाई खोदकर इसे सुरंग के जरिये भीतर के अस्तबल से जोड़ दिया। दीवार में दूसरा मार्ग बनाया, जिसके द्वारा उन्होंने अपने कुछ आदमियों को भीतर भेज दिया। जैसे ही मुसलमान किले के भीतर पहुंचे,

पहले गये आदमी उनसे आ मिले। कुतैब ने कह रक्खा था "इस सुरंग से जो आदमी किले के भीतर पहले दाखिल होगा, मैं उसे खून का दाम दूंगा। अगर वह मारा गया, तो वह दाम उसकी संतान को मिलेगा।" उत्साह में आकर सभी सैनिक सुरंग के भग्नस्थान पर टूट पड़े और किले को सर कर लिया। नागरिकों ने कुतैब मे प्राण-भिक्षा मांगी। उसने भी व्यर्थ खून-बहाना पसंद नहीं किया।

अपनी एक सेना को वहां छोड़कर कुतैब मेर्व की ओर लौट चला। उसका एक सेनप बर्की एक प्रभावशाली सेठ की दो कन्याओं को जबर्दस्ती पकड़ कर ले जा रहा था। यह सुन इज्जत के वास्ते बैकंदवाले फिर जानपर खेलने के लिये तैयार हो गये। लोगों ने नाक-कान काटकर अरबों की हत्या की। कुतैब एक ही फरसख आगे खूनबून में पहुंचा था, कि उसे विद्रोह की खबर मिली। उसने तुरंत लौटकर शहरपर हमला कर दिया। नागरिक फिर मजबूती से मुकाबिला कर रहे थे। एक मास तक वह नगर को घेरे रहा। अंत में सुरंग खोदकर आग लगा दी गई। दीवार गिर गई। बैकंद वालों ने बहुत प्रार्थना की, किंतु कुतैब ने उनकी एक भी नहीं मानी। शहर जीत कर उसने सभी हथियारबंद नागरिकों को मार डाला और बाकी नर-नारियों को गुलाम बना लिया। वह समृद्ध नगर अब ध्वंसों का ढेर रह गया। सारे खुरासान के जीतने से जितनी गनीमत (लूटका माल) मिली थी, उससे भी अधिक बैकंद से मिली। यहां के देवालय (बौद्ध बिहार) में एक सोने की मूर्ति[1] ४००० दिरहम वजन की (१ दिरहम=२५ ग्रेन, १/६ तोला) सोने की मूर्ति मिली और डेढ लाख मिस्काल (मिस्काल=१/२ १/३ तोला) भारी एक सुवर्णपात्र तथा कबूतर के अंडे के बराबर दो मोतियां। लोगों में कहावत थी, कि उन्हें पक्षियों ने अपने चोंचों में लाकर देवता के ऊपर चढ़ाया था। लेकिन मुसलमान अपने अल्लाह को छोड़कर किसी देवी-देवता के चमत्कार पर विश्वास करनेवाले नहीं थे। कुतैब ने अपने स्वामी हज्जाजके पास भेंट के साथ विजय की खबर भेजी।

---

[1] यद्यपि मुसलमान अधिकतर मूर्त्ति-भंजक के रूप में ही प्रसिद्ध है, लेकिन जहां आमदनी का सवाल आया, वहां उन्होंने मूर्त्तियों के साथ दूसरा सुलूक भी किया। अबूरेहां अलबेरूनी (ज़न्म ९७३ ई०:, मृत्यु २०४८ ई०) ने अपने ग्रंथ (किताबुल हिन्द, अन्जुमन तरक्की उर्दू, दिल्ली १९१४, पृ० १४९-१५५) में लिखा है—

"मशहूर मूर्त्तियों में एक सूर्य के नाम की मूर्त्ति मुलतान में थी। इसी संबंध के कारण उसका नाम आदित्य रक्खा गया था। यह मूर्त्ति लकड़ी की बनी, बकरी के लाल रंग की खाल से मढ़ी थी। इसकी दोनों आंखों में दो पद्मराग मणियां (लाल) जड़ी हुई थी।... मुहम्मद कासिम-पुत्र मुनब्बी ने जब मुल्तान जीता, और वहां की आबादी और समृद्धि के कारण पर विचार किया, तो उसे उसी मूर्त्ति के कारण पाया, क्योंकि लोग चारों ओर से उसके लिये तीर्थ करने आते थे। मुहम्मद कासिम-पुत्र ने उसको उसी हालत में छोड़ देना अच्छा समझा और अपमान के लिये मूर्त्ति की गरदन में गाय का गोश्त लटका दिया, तथा वहां पर एक जामामस्जिद बनवा दी। (पीछे) जब मुल्तानपर करामिता वंश का अधिकार हुआ, तो जलम शैबान-पुत्र ने उस मूर्त्ति को तोड़ डाला, उसके पुजारियों को कत्ल कर दिया और एक बुलन्द टीले पर अपना मक़ान पुरानी जामा मस्जिद की जगह बनवाया। उमैया वंश के समय जो कुछ किया गया था

बैकंद बहुत पुराना शहर था। प्रधान वणिक्पथ चीन से फर्गाना होकर यहां आता था। व्यापारी यहां से नावों द्वारा ख्वारेज्म पहुंचते, जहां से स्थल मार्ग होकर कास्पियन तट, फिर समुद्री रास्ते से काकेशस की कुरा नदी पकड़, एक स्रोत पारकर काला सागर तट पर पहुंच बहुमूल्य पण्योंको जहाज से युरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पहुंचाते। चीन के व्यापार में बैकंद का बहुत बड़ा हाथ था। जिस समय कुतैब ने बैकंद पर आक्रमण किया, उस समय अधिकांश परिवारों के मुखिया चीन तथा दूसरे देशों में व्यापार के लिये गये हुये थे। लौट कर आने पर उन्होंने अपनी स्त्रियों-बच्चों को दाम देकर अरबों के हाथों से छुड़ाया। वह फिर बैकंद को आबाद करने में लग गये। मध्य-एसिया का इतिहासकार नरशाखी लिखता है—"इतिहास में यही ऐसा नगर है, जो जड़-मूल से ध्वस्त हो जाने के बाद उसी पीढ़ी में अपने ध्वंसावशेष पर समृद्धि के साथ पुनः स्थापित हो गया।" "बैकंद-निवासियों ने अरबों को कर देना स्वीकार किया। कुतैब ने संधिपत्र लिखकर शांति स्थापित की। उसने शरदकाल में बैकंद विजय किया था। जाड़ों के लिये वह फिर अपनी राजधानी मेर्व लौट गया। कुतैब के पहले दो साल ज्यादातर लूट के अभियानों में बीते। [illegible] अब अरबों ने अपने को दुर्जेय साबित कर दिया था, किंतु अभी स्थायी राज्यविस्तार और शासन की स्थापना नहीं हो सकी थी। बैकंद अन्तर्वेदका दक्षिण द्वार था। बलख से सोग्द जाने का एक रास्ता तेरमिज से होकर भी था, किंतु वहां दरबद (लोहद्वार) से गुजरना पड़ता, जो सैनिक दृष्टि से आक्रमणकारियों के अनुकूल नहीं था।

७०६ ई० का वसंत आया। कुतैब फिर दिग्वजय के लिये निकला। उस समय, अन्तर्वेद के नगर और ग्राम दुर्गबद्ध थे, लेकिन बैकंद के पतन से लोग समझ गये थे, कि अरबों से मुकाबिला करने का परिणाम क्या होता है। नुमुशकत और रातीना ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया। लेकिन आगे बुखारा ही नहीं सारे सोग्द के लोग—सोग्दी और तुर्क—अपने देश और संस्कृति के शत्रुओं से लड़ने के लिये तैयार थे। ताराब, खूनबून और रामतीन के बीच में कुतैब

उससे डाह करके पहिले की जामामस्जिदको बन्द कर दिया गया। जब अमीर महमूद (गजनवी) ने इस मुल्क से करामिता का अधिकार उठा दिया, तो पहली जामामस्जिद में फिर से शुक्रवार की नमाज़ चालू की और दूसरी को बन्द कर दिया, जो कि अब सिर्फ मेंहदी की पत्तियों का खलिहान भर रह गई है।...थानेश्वर नगर की हिन्दू बड़ी इज्जत करते हैं। यहां की मूर्त्ति का नाम चक्र स्वामी है।...यह मूर्त्ति प्रायः पुरुष मात्र है और पीतल की बनी हुई है। इस वक्त वह गजनी के मैदान में सोमनाथ के सिर के पास पड़ी हुई है। सोम-नाथ का सिर महादेव के शिश्न के आकार का है।

सन् ५३ हिजरी (६७२ ईस्वी) की गरमियों में जब सिसली (द्वीप) को जीता गया, और वहां से रत्न-जटित मुकुट पहिने सोने की मूर्त्तियां लाई गईं, तो अमीर म्वाविया (६६१-६८० ई०) ने सिन्ध भेज दिया, जिसमें उन्हें वहां के राजाओं के हाथ बेंच दिया जाय। उसने देखा कि अखण्ड बेचने में कीमत ज्यादा—अर्थात् मूर्त्ति के एक दीनार भर सोने की कीमत एक दीनार सिक्के की कीमत से ज्यादा मिलेगी। उसने धर्म की नीति के विरुद्ध शासन की नीति के आधार पर मूर्त्ति के कारण होने वाले भारी दोष (मूर्त्ति पूजा आदि) का ख्याल नहीं किया।

पहले गये आदमी उनसे आ मिले। कुतैब ने कह रक्खा था "इस सुरंग से जो आदमी किले के भीतर पहले दाखिल होगा, मैं उसे खून का दाम दूंगा। अगर वह मारा गया, तो वह दाम उसकी संतान को मिलेगा।" उत्साह में आकर सभी सैनिक सुरंग के भग्नस्थान पर टूट पड़े और किले को सर कर लिया। नागरिकों ने कुतैब से प्राण-भिक्षा मांगी। उसने भी व्यर्थ खून-बहाना पसंद नहीं किया।

अपनी एक सेना को वहां छोड़कर कुतैब मेर्व की ओर लौट चला। उसका एक सेनप बर्की एक प्रभावशाली सेठ की दो कन्याओं को जबर्दस्ती पकड़ कर ले जा रहा था। यह सुन इज्जत के वास्ते बैकंदवाले फिर जानपर खेलने के लिये तैयार हो गये। लोगों ने नाक-कान काटकर अरबों की हत्या की। कुतैब एक ही फरसख आगे खूनवून में पहुंचा था, कि उसे विद्रोह की खबर मिली। उसने तुरंत लौटकर शहरपर हमला कर दिया। नागरिक फिर मजबूती से मुकाबिला कर रहे थे। एक मास तक वह नगर को घेरे रहा। अंत में सुरंग खोदकर आग लगा दी गई। दीवार गिर गई। बैकंद वालों ने बहुत प्रार्थना की, किंतु कुतैब ने उनकी एक भी नहीं मानी। शहर जीत कर उसने सभी हथियारबंद नागरिकों को मार डाला और बाकी नर-नारियों को गुलाम बना लिया। वह समृद्ध नगर अब ध्वंसों का ढेर रह गया। सारे खुरासान के जीतने से जितनी गनीमत (लूटका माल) मिली थी, उससे भी अधिक बैकंद से मिली। यहां के देवालय (बौद्ध बिहार) में एक सोने की मूर्ति[1] ४००० दिरहम वजन की (१ दिरहम=२५ ग्रेन, $\frac{1}{6}$ तोला) सोने की मूर्ति मिली और डेढ लाख मिस्काल (मिस्काल=$\frac{1}{2}\frac{1}{3}$ तोला) भारी एक सुवर्णपात्र तथा कबूतर के अंडे के बराबर दो मोतियां। लोगों में कहावत थी, कि उन्हें पक्षियों ने अपने चोंचों मे लाकर देवता के ऊपर चढ़ाया था। लेकिन मुसलमान अपने अल्लाह को छोड़कर किसी देवी-देवता के चमत्कार पर विश्वास करनेवाले नहीं थे। कुतैब ने अपने स्वामी हज्जाजके पास भेंट के साथ विजय की खबर भेजी।

---

[1] यद्यपि मुसलमान अधिकतर मूर्त्ति-भंजक के रूप में ही प्रसिद्ध है, लेकिन जहां आमदनी का सवाल आया, वहां उन्होंने मूर्त्तियों के साथ दूसरा सुलूक भी किया। अबूरेहां अलबेरूनी (जन्म ९७३ ई० :, मृत्यु २०४८ ई०) ने अपने ग्रंथ (किताबुल-हिन्द, अन्जुमन तरक्की उर्दू, दिल्ली १९१४, पृ० १४९-१५५) में लिखा है—

"मशहूर मूर्तियों में एक सूर्य के नाम की मूर्त्ति मुलतान में थी। इसी संबंध के कारण उसका नाम आदित्य रक्खा गया था। यह मूर्त्ति लकड़ी की बनी, बकरी के लाल रंग की खाल से मढ़ी थी। इसकी दोनों आंखों में दो पद्मराग मणियां (लाल) जड़ी हुई थी।... मुहम्मद कासिम-पुत्र मुनब्बी ने जब मुल्तान जीता, और वहां की आबादी और समृद्धि के कारण पर विचार किया, तो उसे उसी मूर्त्ति के कारण पाया, क्योंकि लोग चारों ओर से उसके लिये तीर्थ करने आते थे। मुहम्मद कासिम-पुत्र ने उसको उसी हालत में छोड़ देना अच्छा समझा और अपमान के लिये मूर्त्ति की गरदन में गाय का गोश्त लटका दिया, तथा वहां पर एक जामामस्जिद बनवा दी। (पीछे) जब मुलतानपर करामिता वंश का अधिकार हुआ, तो जलम शैबान-पुत्र ने उस मूर्त्ति को तोड़ डाला, उसके पुजारियों को कत्ल कर दिया और एक बुलन्द टीले पर अपना मक़ान पुरानी जामा मस्जिद की जगह बनवाया। उमैया वंश के समय जो कुछ किया गया था

बैकंद बहुत पुराना शहर था। प्रधान वणिक्‌पथ चीन से फर्गाना होकर यहां आता था। व्यापारी यहां से नावों द्वारा ख्वारेज़म पहुंचते, जहां से स्थल मार्ग होकर कास्पियन तट, फिर समुद्री रास्ते से काकेशस की कुरा नदी पकड़, एक जोत पारकर काला सागर तट पर पहुंच बहुमूल्य पण्योंको जहाज से युरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पहुंचाते। चीन के व्यापार में बैकंद का बहुत बड़ा हाथ था। जिस समय कुतैब ने बैकंद पर आक्रमण किया, उस समय अधिकांश परिवारों के मुखिया चीन तथा दूसरे देशों में व्यापार के लिये गये हुये थे। लौट कर आने पर उन्होंने अपनी स्त्रियों-बच्चों को दाम देकर अरबों के हाथों से छुड़ाया। वह फिर बैकंद को आबाद करने में लग गये। मध्य-एसिया का इतिहासकार नरशाखी लिखता है—"इतिहास में यही ऐसा नगर है, जो जड़-मूल से ध्वस्त हो जाने के बाद उसी पीढी में अपने ध्वंसावशेष पर समृद्धि के साथ पुनः स्थापित हो गया।" "बैकंद-निवासियों ने अरबों को कर देना स्वीकार किया। कुतैब ने संधिपत्र लिखकर शांति स्थापित की। उसने शरदकाल में बैकंद विजय किया था। जाड़ों के लिये वह फिर अपनी राजधानी मेर्व लौट गया। कुतैब के पहले दो साल ज्यादातर लूट के अभियानों मे बीते। यद्यपि तेरमिज और बैकंद विजय कर अब अरबों ने अपने को दुर्जेय साबित कर दिया था, किंतु अभी स्थायी राज्यविस्तार और शासन की स्थापना नहीं हो सकी थी। बैकंद अन्तर्वेदका दक्षिण द्वार था। बलख से सोग्द जाने का एक रास्ता तेरमिज से होकर भी था, किंतु वहां दरबद (लोहद्वार) से गुजरना पड़ता, जो सैनिक दृष्टि से आक्रमणकारियों के अनुकूल नहीं था।

७०६ ई० का वसंत आया। कुतैब फिर दिग्वजय के लिये निकला। उस समय, अन्तर्वेद के नगर और ग्राम दुर्गबद्ध थे, लेकिन बैकंद के पतन से लोग समझ गये थे, कि अरबों से मुका-बिला करने का परिणाम क्या होता है। नुमुशकत और रातीना ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया। लेकिन आगे बुखारा ही नहीं सारे सोग्द के लोग—सोग्दी और तुर्क—अपने देश और संस्कृति के शत्रुओं से लड़ने के लिये तैयार थे। ताराब, खूनबून और रामतीन के बीच में कुतैब

उससे डाह करके पहिले की जामामस्जिदको बन्द कर दिया गया। जब अमीर महमूद (गजनवी) ने इस मुल्क से करामिता का अधिकार उठा दिया, तो पहली जामामस्जिद में फिर से शुक्रवार की नमाज चालू की और दूसरी को बन्द कर दिया, जो कि अब सिर्फ मेंहदी की पत्तियों का खलिहान भर रह गई है।...थानेश्वर नगर की हिन्दू बड़ी इज्जत करते हैं। यहां की मूर्त्ति का नाम चक्र स्वामी है।...यह मूर्त्ति प्रायः पुरुष मात्र है और पीतल की बनी हुई है। इस वक्त वह गजनी के मैदान मे सोमनाथ के सिर के पास पड़ी हुई है। सोम-नाथ का सिर महादेव के शिश्न के आकार का है।

सन् ५३ हिजरी (६७२ ईस्वी) की गरमियों में जब सिसली (द्वीप) को जीता गया, और वहां से रत्न-जटित मुकुट पहिने सोने की मूर्त्तियां लाई गईं, तो अमीर म्वाविया (६६१-६८० ई०) ने सिन्ध भेज दिया, जिसमें उन्हें वहां के राजाओं के हाथ बेंच दिया जाय। उसने देखा कि अखण्ड बेचने में कीमत ज्यादा—अर्थात् मूर्त्ति के एक दीनार भर सोने की कीमत एक दीनार सिक्के की कीमत से ज्यादा मिलेगी। उसने धर्म की नीति के विरुद्ध शासन की नीति के आधार पर मूर्त्ति के कारण होने वाले भारी दोष (मूर्त्ति पूजा आदि) का ख्याल नहीं किया।

की सेना घिर गई। सोग्द का तरखून मलिक गोरक (गूरक), खुनुक-खुदात, बर्दान (बुखारा)-खुदात और चीन-सम्राट का भांजा राजकुमार कुर-मगानून ४०००० सेना के साथ आ डटे थे। कुतैब लौटने की सोच रहा था, जब कि एकाएक तुर्क उसके ऊपर टूट पड़े। शत्रु की शक्ति को देखकर अरबों में उत्साह नहीं था। मगर कुतैब बीच में कूदा। उसके उत्साह दिलाने पर अरब लड़ने के लिये तैयार हो गये। दोपहर तक अल्लाह ने काफिरों की सेना को भगा दिया। विजयी कुतैब तेरमिज और बलख के रास्ते लौटा। रास्ते में फारयाब में उसे हज्जाज का पत्र मिला, जिसे पढकर स्वामी के हुकुम के अनुसार वह वर्दानखुदान (बुखारा के राजा) को जीतने के लिये लौटा। ज़मीन में उसने वक्षु पार किया। रास्ते में सोग्द (समरकंद), केश (शहरसब्ज) और नसाफ (नखशाब) के भटों को हराता वह बुखारा पर पड़ा और निचले खर्काना में बर्दान के दाहिनी ओर अपनी छावनी डाली। शत्रु की बड़ी सेना ने उसपर आक्रमण किया। ढाई दिन तक घमासान लड़ाई होती रही। हम जानते हैं, कि इससे पहले भी (६७३ ई० और ६७६ ई० में) बुखारा की खातून को अरबों ने अनेक बार हराया, लेकिन तुर्क इतनी जल्दी हार माननेवाले नहीं थे, तभी तो अरब युद्ध में तुर्कों का लोहा मानते थे। अंत में अरब विजयी हुये। अब कुतैबने बर्दान-खुदात (बुखारा) पर सीधे आक्रमण किया, किंतु असफल हो उसे मेर्व लौटना पड़ा। कुतैब ने हज्जाज के पास विवरण भेजा, तो उसने नक्शा मांगा। नक्शा मिलने के बाद उसने कुतैब को हिदायत दी—"अपने पूर्व लक्ष्य पर लौट जाओ और अपनी प्रार्थनाओं में उसे छोड़ने के लिये पश्चात्ताप करो। दुश्मन के कमजोर स्थान पर आक्रमण करो। "किश बिकिश वसिफ नफसन बरिद् बर्दान" (केश को पीस डाल, नसफ को नष्ट कर डाल, और बर्दान को भगा दे)। सावधानी रखना, जिसमें तुम घिर न जाओ। रास्ते की और कठिनाइयों को मेरे ऊपर छोड़ दो।"

७०८ ई० (९० हि०) में कुतैब ने बुखारा पर फिर आक्रमण किया। खबर पाते ही बर्दान-खुदात ने सोग्दियों और दूसरे पड़ोसियों को सहायता भेजने के लिये कहा, किंतु उनके आने से पहले ही कुतैब वहां मौजूद था। उसने बुखारा को घेर लिया। कुमक आते ही अरबों पर आक्रमण हो गया। इस युद्धके बारेमें इतिहासकार तबरी लिखता है—"जब तुर्क नगरसे बाहर निकल आये, तो अज्द कबीलेवालोंने अलग अलग लड़नेकी आज्ञा मांगी। उन्होंने सीधे तुर्कों पर आक्रमण कर दिया। कुतैब अपने कवच पर हरा मुखाच्छादक डाले बैठा बड़े धैर्य से देखता रहा। तुर्क अज्दों को कुतैबके खेमे तक खदेड़ते आये, किंतु यहां स्त्रियोंने घोड़ों के मुंह पर पीट पीटकर मुसलमानों को मजबूर किया कि वह दुश्मन की ओर लौटें? फिर उन्होंने तुर्कों को खदेडकर पहली जगह पहुंचा दिया। एक ऊंचे टीले का लेना मुश्किल मालूम हो रहा था। कुतैब ने ललकारा—"कौन है, जो उन्हें यहां से भगायेगा?" लेकिन कोई आगे नहीं बढ़ा। सारा कबीला खड़ा मुंह ताकता रहा। फिर कुतैबने बेनी-तमीन कबीले को उनकी पुरानी प्रतिष्ठा और वीरता का स्मरण दिलाते ललकारा। तमीनों के सरदार वाकीने झंडा उठाते कहा—"ओ तमीन की संतानो क्या तुम आज मुझे छोड़कर भाग जाओगे?" "नहीं नहीं" की आवाज आई। वह वहां पहुंचे, जहां पर कि एक छोटी सी धारा शत्रु को अलग करती थी। सवार-अफसर हुसैनी धारा में पहले कूदा। बाकी लोग उसके पीछे पीछे थे। बीचमें पहुंचकर बाकीने झंडा हुसैनी को दे दिया, फिर अपनी देख-रेख में उस धारा पर पुल बनवाकर बोला—"जो प्राण न्योछावर करने के लिये तैयार है, वह पार आवै, जो नहीं चाहता, वह अपनी जगह पर ही रहे।" ८०० आदमी पिल पड़े।

फिर बाकी ने हुसैनी के रिसाले को शत्रु पर प्रहार करते हैरान करने के लिये कहा, और खुद पैदल सैनिकों के साथ आक्रमण करने के लिये बढ़ा। दोहरी मार के सामने तुर्क सैनिकों का छक्का छूट गया। अरब पुल पर से टूट पड़े। शत्रु सेना में भगदड़ मच गई, वह पूर्णतया पराजित हुई। खाकान और उसके पुत्र दोनों घायल हुये। यह देखकर आसपास के लोग कुतैब के नाम से कांपने लगे। सोग्द के तरखून गोरक ने दो सवारों के साथ धारा के पास जा बात करने के लिये प्रतिनिधि बुलाया और कुतैब को कर देना स्वीकार कर वह अपने राज्य (समरकंद) की ओर चला गया। कुतैब अब नीजक के साथ मेर्व की ओर लौटा। नरशाखी के कथनानुसार हैयान नवातयेन ने सोग्द तरखून से कहा—अधिक बुद्धिमानी इसी में है, कि मित्रों को छोड़कर अपने राज्य में लौट चलें। "जब तक गर्मी है तब तक हम वहां रहेंगे, जब जाड़ा शुरू होने पर लौटेंगे, उस समय सभी तुर्कों को तुम अपने विरुद्ध पाओगे। तुम्हारे सुंदर सोग्द को भला वह कब छोड़ना चाहेंगे ?" तरखून को यह बात पसंद आई। फिर पूछने पर हैयान ने कहा "कुतैब के साथ सुलह करो, हरजाना दो। फिर तुर्कों को कहो, कि हज्जाज सिंध पर भी सेना भेज केश और नकशाब के रास्ते सेना भेज रहा है। तुम पीछे लौटोगे, तो वह भी जरूर लौट जायेंगे।" उसी रात तरखून ने कुतैब से संधि की। उसे २००० दिरहम दिया। कुतैब ने वचन दिया, कि हम तुम्हारे राज्य (समरकंद) को तंग नहीं करेंगे। चीन-सम्राट्के भांजेने भी तरखूनका अनुसरण किया। कुतैब का बुखारा पर यह चौथा आक्रमण था।

स्वतंत्रता का अंतिम प्रयास—७०९ ई० (९१ हि०) में फिर कुतैव ने विजय-यात्रा आरंभ की। उसके अनुयायियों में बादगियों का राजा नीज़क और तुखारिस्तान के राजा जिगाय का एक मंत्री भी था। नीज़क को आशा थी, कि कुतैब तुर्कों से पिट जायगा, किंतु वह आशा सफल नहीं हुई। उसने देखा, अरब-शक्ति बड़ी तेजीसे बढ़ती जा रही है। यही समय है, जब कि मध्य-एसिया की दबी जातियों को अपनी स्वतंत्रताके लिये अंतिम प्रहार करना चाहिये, फिर ऐसा समय मिलने वाला नहीं है। किसी बहानेसे कुतैबसे छुट्टी ले वह तुखारिस्तान चला गया। खुल्म में पहुंचते ही उसने बगावत का झंडा खड़ा कर दिया। अपने खजाने को काबुलके राजा (हिंदू) के पास भेजकर उससे मदद मांगी। बलखके राजा (इस्पाहबद), मेर्वरूद, तालिकान, फारयाब और जुज्जान के राजाओं को भी धर्मयुद्ध में सम्मिलित होनेके लिये निमंत्रित किया। सब तैयार हो गये, लेकिन तुखारिस्तान-शासक जिगाय साथ नहीं हुआ। नीज़कने अपने अधिराज (जिगाय) के पैरों में सोने की बेड़ी डालकर बंदी बना लिया और तुखारिस्तान से कुतैबके प्रतिनिधि को बिदा कर दिया। कुतैब को यह खबर उस समय मिली, जब कि जाड़ा शुरू हो चुका था, और सेनायें जाड़े के निवास के लिये जहां-तहां बिखर गई थीं।

तुखारिस्तान का भीषण संघर्ष ९१ हिजरी (७०९ ई०) के शरदमें शुरू हूआ। पिछली अर्ध-शताब्दी से अरबों के साथ यहां के लोगों का संघर्ष हो रहा था। वह उनसे जरा भी दया-माया की आशा नहीं रखते थे, न उनकी किसी बात पर विश्वास रखते थे। संधि करना और तोड़ना अरब सेनपों का साधारण काम था। क्रूरता में वह उत्तर के घूमन्तू विजेताओं को भी मात करते थे। धन और स्त्रियों का लूटना शायद ही कभी इतना लोगों ने देखा हो। सबसे बुरी बात जो वहां के लोगों को खटकती थी, वह था उनके मन्दिरों, धर्मस्थानों और धार्मिक वस्तुओं का अल्लाह के नाम पर निर्दयतापूर्वक संहार करना। तुखारिस्तान और मध्य-

एसिया के लोग धार्मिक बातों में संकीर्ण नहीं थे। वहां बौद्ध, जर्थुस्ती और ईसाई शांतिपूर्वक रहा करते थे। उनके शासक (तुर्क) किसी एक धर्म को मानते हुये भी सभी धर्मों के प्रति उदारता दिखलाते थे।

कुतैब के लिये जरूरी था, कि नीजकको इस बगावतके लिये दंड दे, नहीं तो मध्य-एसिया पर जो उसकी धाक जम गई थी, उसका खात्मा हो जाता। उस समय मेर्व में मौजूद सैनिक ही आसानीसे मिल सकते थे। उसने अपने भाई अब्दुर्रहमान को २००० सेनाके साथ बलख भेजा और वहां बसंत तक चुपचाप रहने को कहा : फिर तुखारिस्तान पर आक्रमण करना, उस समय "मैं तुम्हारे पास रहूँगा।" जाड़े के अंत में शहर अवावद, अबहरशहर (नेशापुर), सरख्श, और हिरात से भी सेना मंगवा ली। मेर्व में सैनिक और नागरिक अधिकारी नियुक्त कर कुतैब ने पहला आक्रमण मेर्वरूद पर किया। वहां का सामन्त हारकर भागा और उसके दो पुत्रों को कुतैब ने सूली पर चढ़वा दिया। फिर तालिकान में लड़ाई हुई, जिसमें तुर्क हार गये। जो मारे जाने से बचे, उन्हें अरबों ने फांसी पर लटका दिया। कहते हैं, उनके लिये मील लंबी फांसी की पांती खड़ी की गई थी। अरब शासक नियुक्त करके कुतैब आगे बढ़ा। फाराब और जुज्ज़ान ने बिना विरोध के अधीनता स्वीकार की। कुतैब का स्थानीय शासकों पर या तो विश्वास नहीं था, या वह उनकी अवश्यकता नहीं समझता था। अरब इतने शक्तिमान् थे, कि वह स्वयं शासन कर सकते थे। कुतैब ने इन दोनों जगहों के लिये भी अरब अफसर नियुक्त किये। बलखवाले पहले से शांत रहे।

एक दिन रहनेके [illegible]। नीज़कने बगलानमें अपनी छावनी डाली थी और घाटे की रक्षा के लिये एक टुकड़ी नियुक्त कर दी थी। कुतैब तूफान की तरह आगे बढ़ता जाकर नीजक के दुर्भेद्य गढ़ के सामने रुका। रूब और समिन्जान के राजाओं ने क्षमादान पा गढ का दूसरा रास्ता बतला दिया। तुर्क बुरी तरह से घिर गये। अरबों ने सबको तलवारके घाट उतारा, और बहुत थोड़े जान लेकर भाग पाये। वहां से कुतैब समिन्जान की ओर चला। बगलान और समिन्जान के बीच के रेगिस्तान में नीज़क किलाबंदी करके स्वयं केर्ज चला गया, जिसका रास्ता एक ही ओर से था, जिसपर कोई घोड़े पर सवार होकर नहीं जा सकता था। कुतैब ने दो महीने तक उसे घेरे रखा, लेकिन किले को नही सर कर सका। नीजक की रसद खतम हो गई, कुतैब को भी इस दुर्गम पहाड़ी में लड़ने में डर लगने लगा। उसने शाम से काम निकालना चाहा, और सुलेमान को नीजक के पास आत्म-समर्पण करने के लिये भेजते उससे कह दिया, कि अगर सफल नहीं हुये, तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा। वह जाड़े के इन्तिजाम और कई दिन के सामान के साथ गया। नीजक से बात हुई। नीजक ने क्षमादान की शर्त रक्खी। प्राण बच जायेंगे, इस आशा से वह सुलेमान के साथ कुतैब के पास गया। बंदी बनाकर कुतैब ने उसे पास रखा और बसरा में हज्जाज के पास पत्र भेजा। उस समय अरब और अजम (इराक और ईरान) का एक ही मलिक (उपराज) होता था। ४० दिन के बाद उत्तर आया, कि नीजक को मार डालना आवश्यक है। लेकिन कुतैब वचन दे चुका था। वह तीन दिन तक तम्बू में बंद रहकर सोचता रहा। लेकिन स्वामी की आज्ञा का कैसे उल्लंघन कर सकता था? चौथे दिन उसने नीजक और उसके ७०० अनुयायियों को मरवा, नीजक के शिर को हज्जाज के पास भेज दिया। यह एक ही उदाहरण नहीं था। ऐसे अनेक उदाहरणों के कारण मध्य-एसिया के लोग अरबों को झूठे, धोखेबाज और खून के प्यासे मानते थे। नीजक ने अपने अधिराज तुखारिस्तान के राजा को

सोने की जंजीर में बांध रक्खा था। उसे भी मुक्त कर कुतैब ने दमिश्क भेज दिया। कुतैब यह विश्वासघात करने के बाद मेर्व लौटा। जुज़जान के राजा ने प्राणभिक्षा पाने की शर्त पर अधीनता स्वीकार करनी चाही। कुतैब ने स्वीकार किया। राजा स्वयं सामने आया और अपने लिये ज़ामिन दिये। कुतैब ने एक अरब हबीब को बुलाने के लिये भेजा। जुज़जान के राजा ने अपने परिवार के कई आदमी भेजे, फिर स्वयं मेर्व गया। उसके साथ कुतैब ने संधि की, किंतु लौटते वक्त जहर देकर तालिकान मे उसे मरवा दिया। इस पर लोग बिगड़ उठे और उन्होंने हबीब को मार डाला। अब कुतैब ने राजा के परिवार के सभी जामिनों को मार डाला। इसी साल कुतैब ने सूमान, केश, नख्शाब तीनों नगरों पर अधिकार किया और सोग्द के तरखून के ऊपर अपने भाई अब्दुर्रहमान को आक्रमण करने के लिये भेजा। तरखून ने कर और जामिन दिया। बुखारा में कुतैब भी मौजूद था। अब्दुर्रहमान समरकंद से लौटकर वहां आ भाई से मिला। फिर दोनों साथ मेर्व लौटे। तरखून की इस बात से सोगाद के लोग नाराज हो गये। तरखून ने आत्म-हत्या कर ली।

७११ ई० (९३ हिजरी) का साल आया। इसी साल हज्जाज ने अपने सेनापति मुहम्मद कासिमपुत्र को सिंधविजय के लिये भेजा। वह सिंधु के मुहाने पर उतरा। आपस में लड़ते सिंधी राजाओं को हराकर उसने सारे सिंध को खलीफा के लिये जीत लिया। हज्जाज की विजयाकांक्षा इतनी सफलता से थोड़े ही तृप्त होनेवाली थी। उसका मनसूबा चीन विजय करने का था। शायद उसे मालूम नहीं था, कि चीन कितना दूर है, वहां का थाङवंश कितना मजबूत है और रास्ते मे तरिम उपत्यका तिब्बती घुमन्तुओं के शक्तिशाली हाथों में है। हज्जाज ने घोषित कर दिया था, कि जो कोई चीन को जीतेगा, उसे हम चीन का राज्यपाल (वली) बनायेंगे। ऐसी सरगरमी में कुतैब बिना कुछ नई सफलता दिखलाये चुप रहकर अपने [illegible] कैसे रह सकता था? उस समय ख्वारेज्मका राजा चिगान था, जिसका छोटा भाई खोरजाद बड़े भाई से अधिक प्रभावशाली था। वह उससे खतरा समझने लगा और भाई के डर से मुक्त होने के लिये चिगान ने चुपके से कुतैब को बुला लिया। कुतैब एकाएक हजारास्प जा पहुंचा। हजारास्प वह जगह है, जहां वक्षु के दोनों किनारे इतने सँकरे हैं, कि थोड़े से आदमी बड़ी सेना का मुकाबिला कर सकते हैं। खोरज़ाद ने दूसरा चारा न देखकर आत्मसर्मण कर दिया। कुतैब ने उसे चिगान के हाथ में दे दिया। चिगान ने कुतैब की बड़ी भेंट-पूजा और स्वागत-सत्कार किया। चिगान का एक और प्रतिद्वंदी खामज़र्द का राजा था, जिसे दबाने में उसने कुतैब से मदद चाही। यह काम कुतैब ने अपने भाई अब्दुर्रहमान को सौंपा। अब्दुर्रहमान ने हमला करके खामज़र्द को मार डाला, देश को जीत लिया और ख़ामजर्द के ४००० दासों और बहुत से लूट के माल को लिये मेर्व लौटा।

इसी समय सोग्दमें फिर भारी उथलपुथल मची। कुतैब सीधे समरकंदपर आक्रमण करने गया। सोग्दियोंने अपने वीर नेता तथा सोग्दके इखशीद के नेतृत्वमें अरबोंका भयंकर प्रतिरोध किया। अरबोंकी सेना बहुत बड़ी थी। तुर्क अब अगर कुछ शक्ति रखते थे, तो उत्तरमें, किंतु इस समय पश्चिमी तुर्क कगानको अपने भीतरी झगड़ोंसे फुरसत नहीं थी। अरबोंका खतरा उनके लिए दूरकी बात थी। अरब भारी संख्यामें पहुंचकर समरकंदको घेरनेमें सफल हुए। गोरकने शाश (ताश्कंद) के राजासे सहायता मंगाई। कुतैबने २००० शाशियोंपर एकाएक

आक्रमरा करके उन्हें मार भगाया। काफी समय तक गोरकने मुकाबिला किया। कितनी ही बार शहरसे बाहर निकलकर तुर्क अरबोंपर आक्रमण कर उन्हें तंग करते, लेकिन रसद-पानीकी कमी और लड़नेकी शक्ति कम हो जानेके कारण अंतमें गोरकने सुलहकी प्रार्थनाकी। कुतैबने इसके लिए भारी हरजाना मांगा और शहरमें मस्जिद बनवा, नमाज शुरू करानेकी बातको भी शर्तोंमें रक्खा। शर्त मंजूर करनी पड़ी। ४०० हथियारबंद अरब समरकंदसे बुतपरस्तीको नेस्तोनाबूद करनेके लिए घुसे। उन्होंने समरकंदकी सभी मूर्तियोंको तोड़ या जला डाला। इस कामको सबसे पहले कुतैबने अपने हाथों आरंभ किया। गोरक खूब जानता था, कि अरब क्यों सफलता प्राप्त कर रहे हैं। उसने कुतैबके उत्तरमें कहा भी था—"तू अपने शत्रुओंको उनके भाई-बिरादरोंकी मददसे जीत रहा है।" और ऐसे भाई-बिरादर मुस्लिम अरबोंकी मदद करनेके लिए सभी देशोंमें तैयार थे।

७१२ ई० (९४[1] हि०) के जाड़ोंमें विश्राम करनेके बाद कुतैब फिर एक बड़ी सेनाके साथ विजययात्राके लिए निकल वक्षु पार हुआ। इस सेनामें केश, नखशाब और ख्वारेज्मके भी २०००० सैनिक थे। काशान, और खोजन्दको जीत उसने शाशपर आक्रमण कर इस्लामकी विजयध्वजा मध्य-एसियाके सबसे उत्तरी नगरपर जा गाड़ी। आधी शताब्दीके प्रतिरोधके बाद मानो मध्य-एसिया अब [illegible] सामने शिर झुकानेके लिए तैयार था। क्यों न होता, जब कि धर्म बदल कर अपने भाई ही लाखोंकी तादादमें विजेताओंका साथ दे रहे थे। अरब-विजेता तीन पीढ़ियोंसे अजमी (गैर-अरब) लोगोंके संपर्कमें आकर उनकी स्त्रियोंसे संतानें पैदा कर अब शुद्ध अरब भी नहीं रह गए थे। जहां तक स्त्रियोंका संबंध था, अरब शुरु ही से रक्त-शुद्धिको नहीं मानते थे। कुतैबने बुखारा, समरकंद आदिमें पहले पहल मस्जिदें बनवाईं, जो कि अब भी इन शहरोंमें सबसे पुरानी मस्जिदें हैं। उसने बुखाराके आधे घरोंको खाली करवा उनमें अरबोंको बसा दिया था। मेर्वमें पहलेही ऐसा किया जा चुका था। घरमें बसे अरब जहां सुरक्षा रखनेका काम करते थे, वहां हर तरीकेसे लोगोंको मुसलमान बनानेका प्रयत्न करते थे। अज़ान और कुरानका ऊंचे स्वरसे पाठ कुफ्र भगानेकी सबसे बड़ी दवा है, यह कुतैबकी मान्यता थी।

७१३ ई० में कुतैबका संरक्षक हज्जाज मर गया। अगले साल खलीफा वलीद भी मर गया, जो कि भारतवर्षके अरब-शासित प्रदेश (सिंध) का प्रथम मुसलमान खलीफा था।

६. खलीफा सुलेमान (७१४-७१७ ई०)

वलीदके बाद उसका भाई सुलैमान नया खलीफा बना। वलीद अपने पुत्रको खलीफा बनाना चाहता था, जिससे हज्जाज भी सहमत था। स्वामीके सहमत होनेपर कुतैब कैसे असहमत रह सकता था? अपनी इस सहानुभूतिके कारण कुतैबको नया खलीफा फूटी आंखों देखना नहीं चाहता था। कुतैबको यह बात मालूम हो गई थी, इसीलिए सुरक्षित समझ उसने परिवारको समरकंद पहुंचा दिया। ७१४ ई० (९६ हि०) में कुतैबने अंतिम अभियानका नेतृत्व किया। वह त्यानशानकी पहाड़ियोंमें घुस गया, और फर्गाना-विजय करके तेरक जोत पारकर काश्गरके

---

[1] ७-१०–७१२ से २८-८७–७१३ ईसवी तक ([illegible] तबलित्सी, लेनिनग्राद १९४०)

ऊपर चढ़ा। तुर्कोंके उत्ताराधिकारी उइगुर फूटकी बीमारीसे ग्रस्त थे, और हरेक उइगुर राजकुमार कगान से अपनेको स्वतंत्र समझता था। काश्गर, खोतन, कुलजा आदि सभी जगहोंके राजकुमार अलग-अलग स्वतंत्र शासक बन बैठे थे। कुतैबको एक जगह एक ही छोटे राजासे मुकाबिला करना पड़ता था। काश्गरके राजाको नतमस्तक होना पड़ा। लेकिन कुतैब केवल राज्य ही दखल करना नहीं, बल्कि वहांके लोगोंको मुसलमान भी बनाना चाहता था। यह जहाद, धर्मयुद्ध था। धर्मयुद्धकी क्रूरताको अरबोंने कहां तक पहुंचा दिया था, इसे कहनेकी अवश्यकता नहीं। धर्म-मंदिरों और धर्मके नेताओंके साथ वह किसी प्रकारकी दया दिखलानेके लिए तैयार नहीं थे। इस शताब्दीके आरंभमें जर्मन विद्वान् लेकाकने रेगिस्तानमें एक उजड़े नगरकी खुदाईके वक्त एक भयंकर दृश्य देखा था। एक घरके भीतर कितने ही बौद्ध और नेस्तोरी भिक्षु तलवारके नीचे ढेर हुए पाये गये। यद्यपि इस्लामने आरंभिक कालमें ईसाइयों और यहूदियोंके प्रति बहुत सहानुभूति दिखलाई थी, पैगंबर मुहम्मद स्वयं उनके प्रशंसक थे; किंतु अब नेस्तोरी ईसाई भी अरब-विजेताओंके लिए काफिरोंसे कम घृणाके पात्र नहीं थे। मध्य-एसियाका यह पूर्वी भाग (तरिम-उपत्यका) कुनैबके सामने "त्राहि मां" "त्राहि मां" करता रहा, किंतु उसका कोई फल नहीं हुआ। कहीं पर किसीने यदि थोड़ा मुकाबिला किया, तो उसे बड़ी निर्दयतापूर्ण हत्याका सामना करना पड़ा, जिसमें बच्चे-बूढ़े भी नहीं बच सके। तुर्फानके लोगोंने अरबोंको देखते ही इस्लाम स्वीकार कर लिया। इसी से वह धन और जन दोनोंकी रक्षा समझते थे। कुतैबकी सेना क्यों न लड़नेके लिए तैयार होती, जब कि वह जानती थी, कि रेशम-पथके इन समृद्ध नगरोंकी सारी संपत्ति उन्हें लूटमें मिलने वाली है।

लेकिन, इस अपार लूटने अरबोंके भीतर भी भारी ईर्ष्याका बीज बो दिया था। कुतैबके अनुयायी एक दूसरेके धनको देखकर अपने स्वामीसे भी संतुष्ट नहीं थे। कुतैबका पुराना संरक्षक हज्जाज मर चुका था। नया खलीफा सुलेमान उसका शत्रु था। खलीफाका प्रधान सलाहकार यज़ीद मुहल्लबपुत्र था, जिसे कुतैबने खुरासानके राज्यपालके पदसे वंचित किया था। इधर खुरासानके अरब कबीलोंमें दलबन्दीने भयंकर वैमनस्य पैदा कर दिया था। भविष्य क्या होगा, इसे कुतैब जानता था। उसने एकके बाद एक तीन चिट्ठियां दूत द्वारा खलीफाके दरबारमें भेजते दूतसे कह दिया—इन तीनों चिट्ठियोंमेंसे पहले उस चिट्ठीको देना, जिसमें खलीफाके प्रति राजभक्ति प्रकट की गई है; फिर दूसरी चिट्ठी देना, जिसमें यज़ीद मुहल्लबपुत्रके प्रति घृणा प्रकट की गई है, तब तीसरी छोटे कागजवाली[१] चिट्ठी देना, जिसमें लिखा है—"मैं सुलेमानको अपना खलीफा नहीं मानता और मैंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया है।" कुतैबने दूतको कह रक्खा था, कि चिट्ठी देते वक्त खलीफाके चेहरेका भाव देखते रहना। यदि वह पहले पत्रको पढ़कर उसे यज़ीदको देदे, तो फिर उसके हाथमें दूसरा पत्र देना, यदि उसे भी वह यज़ीदको दे,

---

[१] अल्बेरुनी ने "किताबुल हिन्द" (पृ० २२४) में लिखा है—"किरतास मिस्र में बर्दी की गोंद से बनाया जाता है, और उसकी बनावटमें अक्षर खोद दिया जाता है। करीब करीब हमारे समय तक खलीफोंके आज्ञा-पत्र इसी पर लिख जाते थे। इसमें शब्दों के बदले जानेकी संभावना नहीं है, क्योंकि वह इससे खराब हो जाता है। कागज चीनका अविष्कार है। पहिले एक चीनी ने समरकन्द में कागज बनाया।"

आक्रमण करके उन्हें मार भगाया। काफी समय तक गोरकने मुकाबिला किया। कितनी ही बार शहरसे बाहर निकलकर तुर्क अरबोंपर आक्रमण कर उन्हें तंग करते, लेकिन रसद-पानीकी कमी और लड़नेकी शक्ति कम हो जानेके कारण अंतमें गोरकने सुलहकी प्रार्थनाकी। कुतैबने इसके लिए भारी हरजाना मांगा और शहरमें मस्जिद बनवा, नमाज शुरू करानेकी बातको भी शर्तोंमें रक्खा। शर्त मंजूर करनी पड़ी। ४०० हथियारबंद अरब समरकंदसे बुतपरस्तीको नेस्तोनाबूद करनेके लिए घुसे। उन्होंने समरकंदकी सभी मूर्तियोंको तोड़ या जला डाला। इस कामको सबसे पहले कुतैबने अपने हाथों आरंभ किया। गोरक खूब जानता था, कि अरब क्यों सफलता प्राप्त कर रहे हैं। उसने कुतैबके उत्तरमें कहा भी था—"तू अपने शत्रुओंको उनके भाई-बिरादरोंकी मददसे जीत रहा है।" और ऐसे भाई-बिरादर मुस्लिम अरबोंकी मदद करनेके लिए सभी देशोंमें तैयार थे।

७१२ ई० (९४[१] हि०) के जाड़ोंमें विश्राम करनेके बाद कुतैब फिर एक बड़ी सेनाके साथ विजययात्राके लिए निकल वक्षु पार हुआ। इस सेनामें केश, नखशाब और ख्वारेज्मके भी २०००० सैनिक थे। काशान, और खोजन्दको जीत उसने शाशपर आक्रमण कर इस्लामकी विजयध्वजा मध्य-एसियाके सबसे उत्तरी नगरपर जा गाड़ी। आधी शताब्दीके प्रतिरोधके बाद मानो मध्य-एसिया अब भवितव्यताके सामने शिर झुकानेके लिए तैयार था। क्यों न होता, जब कि धर्म बदल कर अपने भाई ही लाखोंकी तादादमें विजेताओंका साथ दे रहे थे। अरब-विजेता तीन पीढ़ियोंसे अजमी (गैर-अरब) लोगोंके संपर्कमें आकर उनकी स्त्रियोंमें संतानें पैदा कर अब शुद्ध अरब भी नहीं रह गए थे। जहां तक स्त्रियोंका संबंध था, अरब शुरू ही से रक्त-शुद्धिको नहीं मानते थे। कुतैबने बुखारा, समरकंद आदिमें पहले पहल मस्जिदें बनवाईं, जो कि अब भी इन शहरोंकी सबसे पुरानी मस्जिदें हैं। उसने बुखाराके आधे घरोंको खाली करवा उनमें अरबोंको बसा दिया था। मेर्वमें पहलेही ऐसा किया जा चुका था। घरमें बसे अरब जहां सुरक्षा रखनेका काम करते थे, वहां हर तरीकेसे लोगोंको मुसलमान बनानेका प्रयत्न करते थे। अज़ान और कुरानका ऊंचे स्वरसे पाठ कुफ्र भगानेकी सबसे बड़ी दवा है, यह कुतैबकी मान्यता थी।

७१३ ई० में कुतैबका संरक्षक हज्जाज मर गया। अगले साल खलीफा वलीद भी मर गया, जो कि भारतवर्षके अरब-शासित प्रदेश (सिंध) का प्रथम मुसलमान खलीफा था।

६. खलीफा सुलेमान (७१४-७१७ ई०)

वलीदके बाद उसका भाई सुलैमान नया खलीफा बना। वलीद अपने पुत्रको खलीफा बनाना चाहता था, जिससे हज्जाज भी सहमत था। स्वामीके सहमत होनेपर कुतैब कैसे असहमत रह सकता था? अपनी इस सहानुभूतिके कारण कुतैबको नया खलीफा फूटी आंखों देखना नहीं चाहता था। कुतैबको यह बात मालूम हो गई थी, इसीलिए सुरक्षित समझ उसने परिवारको समरकंद पहुंचा दिया। ७१४ ई० (९६ हि०) में कुतैबने अंतिम अभियानका नेतृत्व किया। वह त्यानशानकी पहाड़ियोंमें घुस गया, और फर्गाना-विजय करके तेरक जोत पारकर काशगरके

---

[१] ७-१०-७१२ से २८-८७-७१३ ईसवी तक (सिन्खोनिसिचिस्किय तबलित्सी, लेनिनग्राद १९४०)

ऊपर चढ़ा। तुर्कोंके उत्ताराधिकारी उइगुर फूटकी बीमारीसे ग्रस्त थे, और हरेक उइगुर राजकुमार कगान से अपनेको स्वतंत्र समझता था। काश्गर, खोतन, कुलजा आदि सभी जगहोंके राजकुमार अलग-अलग स्वतंत्र शासक बन बैठे थे। कुतैबको एक जगह एक ही छोटे राजासे मुकाबिला करना पड़ता था। काश्गरके राजाको नतमस्तक होना पड़ा। लेकिन कुतैब केवल राज्य ही दखल करना नहीं, बल्कि वहांके लोगोंको मुसलमान भी बनाना चाहता था। यह जहाद, धर्मयुद्ध था। धर्मयुद्धकी क्रूरताको अरबोंने कहां तक पहुंचा दिया था, इसे कहनेकी अवश्यकता नहीं। धर्म-मंदिरों और धर्मके नेताओंके साथ वह किसी प्रकारकी दया दिखलानेके लिए तैयार नहीं थे। इस शताब्दीके आरंभमें जर्मन विद्वान् लेकाकने रेगिस्तानमें एक उजड़े नगरकी खुदाईके वक्त एक भयंकर दृश्य देखा था। एक घरके भीतर कितने ही बौद्ध और नेस्तोरी भिक्षु तलवारके नीचे ढेर हुए पाये गये। यद्यपि इस्लामने आरंभिक कालमें ईसाइयों और यहूदियोंके प्रति बहुत सहानुभूति दिखलाई थी, पैगंबर मुहम्मद स्वयं उनके प्रशंसक थे; किंतु अब नेस्तोरी ईसाई भी अरब-विजेताओंके लिए काफिरोंसे कम घृणाके पात्र नहीं थे। मध्य-एसियाका यह पूर्वी भाग (तरिम-उपत्यका) कुतैबके सामने "त्राहि मां" "त्राहि मां" करता रहा, किंतु उसका कोई फल नहीं हुआ। कहीं पर किसीने यदि थोड़ा मुकाबिला किया, तो उसे बड़ी निर्दयतापूर्ण हत्याका सामना करना पड़ा, जिसमें बच्चे-बूढ़े भी नहीं बच सके। तुर्फानके लोगोंने अरबोंको देखते ही इस्लाम स्वीकार कर लिया। इसी से वह धन और जन दोनोंकी रक्षा समझते थे। कुतैबकी सेना क्यों न लड़नेके लिए तैयार होती, जब कि वह जानती थी, कि रेशम-पथके इन समृद्ध नगरोंकी सारी संपत्ति उन्हें लूटमें मिलने वाली है।

लेकिन, इस अपार लूटने अरबोंके भीतर भी भारी ईर्ष्याका बीज बो दिया था। कुतैबके अनुयायी एक दूसरेके धनको देखकर अपने स्वामीसे भी संतुष्ट नहीं थे। कुतैबका पुराना संरक्षक हज्जाज मर चुका था। नया खलीफा सुलेमान उसका शत्रु था। खलीफाका प्रधान सलाहकार यज़ीद मुहल्लबपुत्र था, जिसे कुतैबने खुरासानके राज्यपालके पदसे वंचित किया था। इधर खुरासानके अरब कबीलोंमें दलबन्दीने भयंकर वैमनस्य पैदा कर दिया था। भविष्य क्या होगा, इसे कुतैब जानता था। उसने एकके बाद एक तीन चिट्ठियां दूत द्वारा खलीफाके दरबारमें भेजते दूतसे कह दिया—इन तीनों चिट्ठियोंमेंसे पहले उस चिट्ठीको देना, जिसमें खलीफाके प्रति राजभक्ति प्रकट की गई है; फिर दूसरी चिट्ठी देना, जिसमें यज़ीद मुहल्लबपुत्रके प्रति घृणा प्रकट की गई है, तब तीसरी छोटे कागजवाली[1] चिट्ठी देना, जिसमें लिखा है—"मैं सुलेमानको अपना खलीफा नहीं मानता और मैंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया है।" कुतैबने दूतको कह रक्खा था, कि चिट्ठी देते वक्त खलीफाके चेहरेका भाव देखते रहना। यदि वह पहले पत्रको पढ़कर उसे यज़ीदको देदे, तो फिर उसके हाथमें दूसरा पत्र देना, यदि उसे भी वह यज़ीदको दे,

---

[1] अल्बेरुनी ने "किताबुल हिन्द" (पृ० २२४) में लिखा है—"किरतास मिस्र में बर्दी की गोंद से बनाया जाता है, और उसकी बनावटमें अक्षर खोद दिया जाता है। करीब करीब हमारे समय तक खलीफोंके आज्ञा-पत्र इसी पर लिख जाते थे। इसमें शब्दों के बदलै जानेकी संभावना नहीं है, क्योंकि वह इससे खराब हो जाता है। कागज चीनका अविष्कार है। पहिले एक चीनी ने समरकन्द में कागज बनाया।"

तो तीसरा पत्र पेश करना। खलीफाने पत्रको यज़ीदके हाथमें देनेके सिवा और कोई क्रोधका भाव प्रकट नहीं किया। दूत लौट आया। कुतैबके दूसरे और तीसरे पत्र खलीफाको नहीं दिये गये, इसलिए खलीफाने उसे उसके पदपर बहाल रखनेका स्वीकृतिपत्र दे अपने एक दरबारीको भेजा। हलवाई (बगदादसे उत्तर-पूरब ईरान और तुर्ककी सीमापर एक महत्वपूर्ण नगर) में पहुंचकर खलीफाके दूतने सुना, कि कुतैबने बगावत कर दी है। वह वहींसे लौट गया।

अपने दूतसे सारी बातें सुनकर कुतैबको जल्दी करनेके लिए अफसोस हुआ। सलाह करनेपर उसे मालूम हो गया, कि सुलेमान उसे क्षमा नहीं करेगा, हां, इस्लामकी सेवाओंके लिए शायद उसका प्राण बच जाये। कुतैबने कहा "वाय, मौतसे मुझे डर नहीं, लेकिन खलीफा जरूर यज़ीदको खुरासानका वली बनायेगा, और मुझे सारी दुनियाके सामने बेइज्जत करेगा। इससे मुझे मौत अधिक पसंद है।" उसके भाई अब्दुर्रहमानकी सलाह थी—"समरकंद जाकर अपने अनुचरोंसे कहो: जिसे मेरे साथ रहना हो, वह रहे और जो लौट जाना चाहता हो, वह लौट जाये। इसके बाद खलीफासे स्वतंत्र होनेकी घोषणा कर दो।" लेकिन, कुतैबने अपने दूसरे भाई अब्दुल्ला की सलाह मानी और तदनुसार अपने अफसरोंको बुलाकर खलीफाके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिये बड़ा जोशीला व्याख्यान दिया, अपनी इस्लामकी सेवाओं और सफलताओंकी बात कही और यज़ीदके दुष्कर्मोंको खोलकर कहा। तब भी उसके अफसर बिल्कुल चुप रहे। इसपर कुतैब गुस्सेमें पागल होकर अपने सहायकोंको "कायर, बुद्धू, काफिर, पाखंडी" कहते कांपते हुए अपने महलमें चला गया। अब्दुर्रहमान और दूसरोंने उसे शांत करनेकी कोशिश की, मगर कुतैब किसीकी बात माननेके लिए तैयार नहीं था। अरब भी इस बात को सहन नहीं कर सकते थे, विशेषकर, जबकि वह जानते थे, कि इस्लामका खलीफा कुतैबके विरुद्ध है। उन्होंने बदला लेने का नारा लगाते उसके महलको घेर लिया। जिनके बलपर उसने सारी सफलतायें प्राप्त की थीं, और काफिरोंपर अत्यन्त निर्दयतापूर्ण अत्याचार किए थे, वही अब उसके जानके गाहक हो गये। कुछ लोगोंने उसके अस्तबल में आग लगा दी। एक टुकड़ी ने उसके दरबार-हालमें दाखिल हो पहले ही तीरसे घायल कुतैब का तुक्का बोटी कर डाला। इस तरह ४६ सालकी उम्रमें धर्मके नामपर नृशंसता करनेमें अद्वितीय कुतैबका अवसान हुआ।

कुतैब जैसे दूसरे इस्लाम-प्रचारक शायद ही और हुए हों। अपने बुखाराके चारों अभियानोंमें वह वहांके नागरिकोंको उनका धर्म छुड़ाकर जबर्दस्ती मुसलमान बननेके लिए बाध्य करता रहा। उस समय तो लोग प्राण और धनकी हानिके डरसे मुसलमान हो जाते, किंतु फिर उन्हें अपनी जातीय संस्कृति और संबंधी याद आते, तो फिर बुत-परस्त (बुद्ध-पूजक) बन जाते। ७१२ ई० (९४ हि०) में समरकंदके एक अग्निमंदिरको गिराकर उसकी जगह कुतैब ने जुमा (शुक्रवार) की नमाजके लिए एक बड़ी मस्जिद बनवाई, जिसमें जो भी नमाज पढ़ने जाता, उसे दो दिरहम दिया जाता। कुतैबने घरोंको खाली करके ही अरबोंको नहीं बसाया था, बल्कि हर परिवारको अपने घरमें एक-एक अरब रखनेके लिये मजबूर किया था, जो चर, धर्म-प्रचारक और घरदामाद सबका काम करता। एक अंग्रेज इतिहासकार डेनिसन् रास[१] ने लिखा है "उस (कुतैब) का स्वभाव

[१] The Heart of Asia: "His character was an epitome of the qualities, which made Islam a terror to man-kind, and ultimately conspired to reduce it to empotance."

उन गुणोंका राशीभूत रूप था, जिसने मानवताके लिए इस्लामको भयकी वस्तु बना दिया और अंतमें उसे निष्पौरुष बना देनेमें सहायक हुआ।"

कुतैबके बाद विद्रोहियोंके अगुवा बाकीने खुरासानका राजकाज संभाला।

(१६) यजीद मुहल्लब-पुत्र (७१५ ई०) कुतैबके मरनेके ९ मास बाद यजीद राज्यपाल बनकर आया। उसने आते ही बाकीको पकड़कर बंदीखानेमें डाल दिया और कुतैबके दूसरे साथियोंको दंड दिया। कुतैबके अत्याचारोंसे सोग्दके लोगोंमें असंतोष था, और आशा की जाती थी, कि यज़ीद पहले उधर जायेगा। किंतु, यजीदने पूरब न जाकर खुरासानसे पश्चिमकी ओर विजय-यात्रा करनी चाही। ७१६ ई० (९८ हि०) को उसकी सेना जुर्जान और तबारिस्तानपर पड़ी। कास्पियनके पश्चिम खजारोंका बहुत जोर था, जिनसे रक्षा पानेके लिए अज़ोफ़ तट तक किलाबंदी की गई थी, तो भी ख़ज़ार ओर्दूका आतंक इतना था, कि सीमाके दक्षिणके निवासी अपनी सुरक्षाके लिए ख़जारोंको भी कर दिया करते थे। यज़ीदने खुरासानका प्रबंध अपने पुत्र मुखल्लदके हाथमें छोड़ा था। उमैया (और पीछे अब्बासी) वंशकी शासन-व्यवस्थाके अनुसार खलीफा स्वयं अपना मलिक (क्षत्रप, उपराज) नियुक्त करता, जो अपनी इच्छानुसार किसीको प्रदेश का वली (राज्यपाल) बनाकर भेजता। वली अपने अधीनस्थ सारे कर्मचारियोंकी नियुक्ति करता। जब तक नीचेवाले के लूटके मालमेंसे ऊपरवालोंको काफी भेंट मिलती रहती, तब तक उसको कोई खतरा नहीं था। जुरजानके लोगोंने अपनी स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृतिके दुश्मनोंका जी-जानसे प्रतिरोध किया, जिसपर यज़ीदने शपथ ले ली कि "मै तब तक अपनी तलवार को म्यानमें नहीं डालूंगा, जब तक इतना खून न बह जाये, जिससे आटेकी चक्की चल सके, और उसके पिसे आटेकी मैं रोटी न खालूं।" कहते है, उसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके छोड़ी। जब इस्लामका महासेनापति-गवर्नर ऐसा कर सकता था, तो नीचेवालोंकी बात ही क्या? काफिरोंके विरुद्ध जो भी किया जाये, सब उचित था।

७. खलीफा उमर II अजीजपुत्र (७१७-७२० ई०)

सुलेमानके मरनेपर उमर खलीफा बना। निष्पक्ष इतिहासकार भी कहते हैं, कि उमैया खलीफोंमें यह सबसे भलेमानुस और सदाचारी था। इसने यजीदके अत्याचारोंको सुना। यज़ीदने गनीमत (लूट) की बहुतसी राशि अपने पास दबा ली थी। खुरासानके नौमुस्लिमोंने भी उसकी निर्दयता और अत्याचारके लिए खलीफाके यहां गोहार की थी। उसने हुकुम दिया, कि सभी जातिके मुसलमानोंको अरब मुसलमानोंके बराबर माना जाये। काफिरोंपर चाहे जितना कर लगाया जाय। जिन लोगोंने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, उन्हें खतना करानेके लिये मजबूर न किया जाय। राज्यपालोंका काम है, वह अपने प्रदेशमें इस्लामका प्रचार करें, रवात (सराय) स्थापित करें, मस्जिदें बनायें। दूसरे धर्मवालोंके गिर्जे, सिनागोज और अग्निमंदिर न तोड़े जायं; हां, उन्हें नये मंदिरोंके बनानेकी इजाजत नहीं है।

(१७) जर्राह अब्दुल्लापुत्र ७१७-७१९ ई०)—खलीफा उमरने यजीदकी जगह जरहिको खुरासानका शासक नियुक्त किया।

८. खलीफा यजीद II अब्दुल्मलिक पुत्र (७१९-७२४ ई०)

उमरके मरनेपर यज़ीद नया खलीफा बना। हर नये खलीफाके बननेपर कुछ गड़बड़ होती थी। तीसरे खलीफा म्वाविया ii (६८३-६७७ ई०) के समयसे खिलाफत दो टुकड़ोंमें बँट गई थी, पश्चिमी खिलाफत (अरब-साम्राज्य) के खलीफा अब्दुल्लाके वंशज होते थे, जिन्होंने स्पेन तकको अपने अधिकारमें कर लिया था। नये खलीफाके सिंहासन-आरोहणके समय मौका पाकर यज़ीद मुहल्लबपुत्र जेलसे भागनेमें सफल हुआ। उसने बसरामें पहुंचकर खलीफाके विरुद्ध बगावत शुरू की, जिसका असर पूर्वी प्रदेशोंपर भी पड़ा और विद्रोहको एक साल बाद दबाया जा सका। खलीफाने मस्लमाको उभय इराक (मसोपोतामिया और ईरानका) क्षत्रप नियुक्त किया, जिसने कूफाके पास फुरात नदीके तटपर यज़ीदको हराकर मार डाला।

(१८) सईद अब्दुल्ला पुत्र (७१७-७१९ ई०) मस्लमाने सईदको खुरासानका राज्यपाल नियुक्त किया। इस वक्त खोजंद और फर्गानाके लोगोंने आम बगावत कर रखी थी। लेकिन सोग्दी तरखून अरबोंका करद सामन्त था। उसे देशद्रोही कहकर विद्रोहियोंने दबाना चाहा। तरखूनने मेर्वसे सहायता मांगी, लेकिन नया राज्यपाल निर्बल और ढुलमुल बुद्धिका आदमी था, वह सहायता नहीं भेज सका। इसपर सोग्दियोंने अपने उत्तरके पड़ोसी तथा शक्तिशाली तुर्क कगान सुलू (७१६-७३८ ई०) से मदद मांगी। सुलूने विधर्मियोंके खिलाफ धर्मयुद्ध करना लाभकी बात समझी, और समरकंदपर अक्रमण कर दिया। अरब देरसे आये, तब तक तुर्क ३००० सोग्दियोंको कतल कर चुके थे। यज़ीद दो साल तक खलीफा रहा, और इस सारे समय मध्य-एसियामें बराबर अशांति बनी रही। सुलू खाकान विद्रोहियोंकी पीठपर था। उधर पश्चिमकी ओर खाज़ार और किपचक कबीले भी अरबोंको फूटी आंखों नही देखते थे, जिसके लिए अरब सेनाको उधर भी बराबर लड़ना पड़ रहा था। वहां भी सफलता का मुंह देखनेको नहीं मिला। जिस समय मध्य-एसियावाले अपने सब तरहके दुश्मन अरबोंसे लड़ रहे थे, उस वक्त अरबोंके नीचे पिसे जाते सोग्दियोंको शरण देना पड़ोसी सहधर्मियोंका कर्त्तव्य था। फर्गानाके शासकने ७२१-७२२ ई० में अपने यहां इस्फारा जिलेमें सोग्दियोंका रहनेके लिये जगह दी। कुतैब द्वारा नियुक्त शासक हिशाम अब्दुल्लापुत्रको निकालकर फर्गाना पहले ही स्वतंत्र हो चुका था।

उभय-इराकसे पहलेकी अपेक्षा आमदनी कम हुई। यह भी सर्वत्र होते युद्धका परिणाम था। इस कसूरमें मस्लमा ७२० ई० (१०२ हि०) में हटा दिया गया, और उसकी जगह उमर हुबैरा पुत्र क्षत्रप नियुक्त हुआ। बेचारा सईद झूठे ही कुज़ैना (हिजडा) कहा जाता था, वह समरकंदकी दीवारोंके नीचे लड़ रहा था, जब कि दमिश्कसे बर्खास्तगीका हुक्म आया।

(१९) सईद अम्रपुत्र हरसी (७२१-७२२ ई०) नया राज्यपाल बहुत चुस्त आदमी था। विद्रोही सोग्दी सुलूकी सहायतासे बहुत मजबूत थे। उन्होंने जब नये राज्यपालकी दृढ़ता देखी, तो उनमें से बहुतेरों—विशेष कर देहकानों (जमींदारों) और व्यापारियों—ने जन्मभूमि छोड़नेका निश्चय कर लिया। सोग्दका तरखून गोरक इससे सहमत नहीं था, तो भी फर्गानाके राजाके इस्फारामें जगह देनेकी बात मानकर बहुतसे लोग वहां चले गये। पीछे उसने विश्वासघात कर शरणार्थियोंको अरबोंके हाथमें दे दिया। सईद ने

समरकंदको अपने हाथमें करके खोजंद (वर्तमान लेनिनाबाद) को घेर लिया। शहरके समर्पण करनेपर हम सब अपराध क्षमा कर देंगे, यह वचन दे कर भी उसने सोग्दियोंके साथ विश्वासघात कर उन्हें कत्ल कर डाला। वचन-भंग और निरीहों-निरपराधोंकी निर्मम हत्या अरब-शासन का आवश्यक रूप और मध्य-एसियामें इस्लामके प्रचारका साधारण ढंग था। इसी तरहकी धोखेबाजीसे सईदने जरफशां (सोग्द)-उपत्यकाके सभी दुर्गोंको अपने हाथमें किया। कश्क-उपत्यकामें भी यही बात हुई। वस्तुतः सोग्दी जितना लड़नेमें बहादुर थे, और जिस प्रकार सुलू जैसा पृष्ठपोशक उन्हें मिला था, वैसी ही यदि उनमें एकता होती; तो सईद फिर सोग्दपर अरब-शासन स्थापित नहीं कर सकता था। सोग्द-विजय करके सईदने जाकर फर्गानाको घेर लिया। वहांके राजाने एक लाख दिरहम और बहुतसे गुलाम देकर छुट्टीपाई। फिर "शठे शाठ्यं" की नीति उसे पसंद आई, और अगली रात जब मुसलमान अपनी सफलतासे निश्चित हो सो रहे थे, उसी समय वह १०००० आदमियोंको लेकर उनपर टूट पड़ा और बहुतोंको मार डाला। किंतु प्रधान सेनापति आलमको जब खबर लगी, तो उसने आकर खूब बदला लिया, और फर्गानाके राजा (तुर्क) को उसके २००० अनुयायियोंके साथ मार डाला। इस तरह सफल होते हुए भी ७२२ ई० (१०४ हि०) में सईद हरसीको पदच्युत कर दिया गया और उसकी जगह मुस्लिम नया सेनापति बनकर आया।

मुस्लिम सईदपुत्र किलाबी सारी पूर्वी सेनाका प्रधान-सेनापति नियुक्त हुआ था। उसने सुलू खाकानके हाथों हार पर हार खाई और बड़ी मुश्किलसे कुछ सेनाके साथ जान बचाकर आमू (जैहूं) दरियाके दक्षिण भाग कर बलख पहुंचनेमें सफलता पाई।

९. खलीफा हिशाम (७२३-७४२ ई०)

नया खलीफा यज़ीदका भाई था। इसने उमरकी जगह ख़ालिद अब्दुल्लापुत्र कसरीको उभय-इराकका क्षत्रप बनाया और ख़ालिदके भाई (२०) असद अब्दुल्लापुत्रको एक बड़ी सेनाके साथ तुर्कोंसे बदला लेनेके लिये मध्य-एसियाकी ओर भेजा। असद (सिंह) भी सुलूके सामने सियार साबित हुआ। तीन बार वक्षु पार हो सोग्दकी ओर बढ़ना चाहा, लेकिन हर बार उसे खाली हाथ लौटना पड़ा। इस अफसलतासे क्रुद्ध होकर उसने अपने सेनापतियोंको बहुत बुरी तरह फटकारा और बाल मुंड़वा, नंगा कर, बेड़ी डाल उन्हें अपने भाई ख़ालिदके पास भेज दिया। ख़ालिद अपने भाईकी इस मूर्खतापर बड़ा नाराज हुआ और उसने असरस अब्दुल्लापुत्रको पूर्वी सेनाका सेनापति बनाकर भेजा।

(२१) असरस अब्दुला-पुत्र (७२४-७२९ ई०) असरसने देख लिया, कि विद्रोहियों को केवल राजनीतिक [illegible] कामना ही भारी प्रेरणा नहीं दे रही है, बल्कि वह मुसलमानोंको विधर्मी समझकर भी बहुत घृणा करते हैं। उसने सारी प्रजाको मुसलमान बनानेकी योजना बनाई और प्रत्येक स्थानमें अरब और ईरानी दो-दो धर्म-प्रचारक नियुक्त किये। समरकंदमें नौमुस्लिमोंको कलमा दुहरानेके लिये दक्षिणा दी जाने लगी। इससे असाधारण सफलता मिली। लोग कलमा सुनाकर दक्षिणा भी लेते और बहुतसे करों और बेगारोंसे भी मुक्त हो जाते। लेकिन देहकानोंपर इसका प्रभाव बरा पड़ा। वह अब मुसलमान थे, गांवोंके बिना मुकुटके राजा थे, वह भला क्यों पसंद